॥ श्री ॥

बनेड़ा राज्य का इतिहास

भूमिका लेखक
राजाधिराज अमरसिंह

लेखक
नारायण श्यामराव चिताम्बरे

प्रकाशक
कर्नल राजाधिराज
श्री अमरसिंह, बनेड़ा
(राजस्थान)

मुद्रक
श्री यतीशचन्द्र मित्तल,
प्रबन्धकर्त्ता
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

उपहार

श्रीमान्

की सेवा में सप्रेम|सादर भेंट।

राजाधिराज अमरसिंह
बनेडा (राजस्थान)

अनुक्रमणिका

समर्पण

महान् बापा रावल के वंशज

स्वतन्त्रता के उपासक

स्वधर्म के संरक्षक

क्षात्रधर्म के पालक,

सूर्य कुलोत्पन्न,

प्रातः स्मरणीय,

वीरवर महाराणा राजसिंह

की

पावन स्मृति को सादर समर्पित।

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	२०	तुरुकों	तुरुष्कों
१५	६	सं० १५६४	सं० १५६६
१७	१६	इतिहास वेताओं	इतिहासवेत्ताओं
१७	२७	वैकुएठधाम	वैकुण्ठधाम
२१	४	शाक	शर्त
२१	१७	वदी	बदी
२३	२५	माडल	माडल
२४	२	माडल	माडल
२६	७	सम्मत्ति	सम्मति
३५	१७	जयसिह	जयसिंह
४०	१६	अनुमती	अनुमति
४४	१२	दत्तिणा	दत्तिण
४६	टि० ४	केशवराव	केशवराय
४७	२६	दह	दाह
४८	२	कहा	कहां
५७	१६	बहादुरशाह पदवी की	बहादुरशाह की पदवी
६२	१	स्वागवास	स्वर्गवास
६६	टि० १	ही	हाँ
७२	६	सुदी	बदी
७६	२१	लनकी	उसकी
८१	५	लुनावढ	लुनावडा
८२	२१	की	को
३८	६	इसकी	इनकी
८२	२०	निचे	नीचे
८३	२२	१२ । १७	१२ । २७
८६	२२	मेहत्ता	मेहता
८६	२६	महाराणा	महाराज
९३	८	वीं०	वि०
९३	१०	भीवसिंह	भीमसिंह
९६	३१	हजारों	हजार
११०	८	नगर बाग	नजरबाग
११६	४	उसा	उसी
११९	२	खुदादादख	खुदादादखां
११९	२	बापू	बापू
१३४	१५	अक्षण	अक्षुण्ण
१५३	११	जरीर	जरांर
१५४	२	अक्रकण	आक्रमण
१५६	१४	१००१६	१००१२६
१७१	१०	छः	नौ
२०१	३४	टिकनों	ठिकानों
२३६	२१	के	०
२४३	२८	समायें	सभायें
२५०	अन्तिम	घागधरा	घागरा
२५३	१	इन्सा	इन्स
२५४	१०	राजनीतिक	राजनीति
२६७	२२	राजा	राज्य
२६६	परिशिष्ट २ पंक्ति १०	बदी १०	बदी १

भूमिका

वि० सं० १९९० में मेरे पिताश्री ने प० नगजीरामजी देराश्री को 'अश्वनीति सुधाकर' ग्रंथ को छपाने के लिये बम्बई भेजा। वहां उनका यह विचार हुआ कि इस ग्रन्थ के साथ 'बनेड़ा राज्य' का इतिहास होना आवश्यक है। जितने ऐतिहासिक तथ्य उन्हें ज्ञात थे, उन्हीं के आधार पर इतिहास लिखकर ग्रन्थ के साथ छपाने की अनुमति मेरे पिताश्री से प्राप्त कर छपवाया, उक्त ग्रन्थ के दूसरे संस्करण के प्रकाशन के समय उस इतिहास में अधिक संशोधन और सुधार किये गये।

प० नगजीरामजी को उक्त कार्य से प्रेरणा मिली और वह ऐतिहासिक तथ्यों का संग्रह करते रहे। इसी संग्रह के आधार पर उन्होंने संस्कृत भाषा में श्लोक बद्ध "वीर वंश वर्णनम्" नामक इतिहास लिखा। संस्कृत श्लोकों का अर्थ हिन्दी भाषा में किया जाकर यह इतिहास वि० सं० १९८४ में मैंने प्रकाशित कराया। यह पंडित मेरे गुरु थे। इन्हीं दिनों मेरे अंग्रेजी भाषा के गुरु प० रामचन्द्रजी ओझा ने अंग्रेजी भाषा में बनेड़ा राज्य का संक्षिप्त इतिहास लिखा, वह भी मैंने छपवाया।

प० नगजीरामजी के भाई के पुत्र प० रविशंकरजी देराश्री बार० एट० ला० का इतिहास से बहुत अभिरुचि थी। उन्होंने बनेड़ा राज्य के इतिहास से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों का उत्साह पूर्वक संकलन करना प्रारम्भ कर दिया। वह जब इंग्लैण्ड गये, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि लन्दन के पुस्तकालय में भारत के मुस्लिम बादशाहों के समय के बहुत से अखबारात संगृहीत हैं। उन्होंने वहां फारसी के ज्ञाता एक व्यक्ति को ढूंढकर इस कार्य के लिये नियुक्त किया। उसे समझाया कि बनेड़ा राज्य से सम्बन्धित कोई पत्र, अखबार आदि मिलें तो उनकी प्रतिलिपि कर ली जावे। कुछ अखबार आदि वहां मिले, जिनकी प्रतिलिपि वह यहां ले आये।

बैरिस्टरी पास करके जब वह यहां आये तो उन्हें पता लगा कि जयपुर के आमेर के महलों के तलघरों में बहुत से बादशाही अखबारों की प्रतियां और प्राचीन पत्र मिले हैं। जिन्हें जयपुर राज्य के ऐतिहासिक कार्यालय में भेजा गया है। प० रविशंकरजी ने इसकी सूचना मुझे दी। मैंने जयपुर नरेश महाराजा सवाई मानसिंह जी को लिखा। उन्होंने कृपापूर्वक बनेड़ा राज्य से सम्बन्धित समस्त ऐतिहासिक पत्रों की प्रतिलिपि करा लेने की स्वीकृति प्रदान की। मैंने फारसी भाषा के ज्ञाता एक मौलवी को तथा एक पंडित को इस कार्य के लिये नियुक्त किया। उन्होंने एक वर्ष से अधिक कार्य किया। सहस्रों पत्रों में से छांटकर साढ़े चार सौ से अधिक पत्रों की प्रतिलिपियां कीं और फारसी के पत्रों का हिन्दी अनुवाद किया।

प० रविशंकरजी ने भारत के समस्त तीर्थों के पण्डों की प्राचीन पोथियां देखकर उनसे इतिहास संग्रह किया। मैंने दक्षिण में भी विद्यार्थियों को भेजा और वहां से ऐतिहासिक तथ्य मंगवाये।

प० रविशंकरजी देराश्री ने अंग्रेजी, हिन्दी, फारसी आदि भाषाओं की पुस्तकें तथा पुरानी हस्तलिखित ख्यातें पढ़कर उनसे इतिहास का संग्रह किया। वह कुछ वर्षों तक अपने कार्य में व्यस्त रहने के कारण इतिहास नहीं लिख सके। मैंने लेखन कार्य शीघ्र प्रारम्भ करने को कहा तब

उन्होंने वि० सं० २०१८ में पं० नारायण श्यामराव चिताम्बरे निवासी गुना मध्यप्रदेश को लेखन कार्य के लिये नियुक्त किया।

पं० रविशंकरजी अधिकतया राघौगढ़ मध्यप्रदेश में रहते थे अतएव वहां इतिहास लेखन का कार्य अक्टूबर सन् १९६१ में प्रारम्भ किया गया किन्तु दो मास ही कार्य हो पाया था कि दुर्भाग्यवश पं० रविशंकरजी अस्वस्थ हो गये और लेखन कार्य बन्द हो गया। विशेष दुर्भाग्य की बात यह हुई कि पं० रविशंकरजी का देहान्त मार्च सन् १९६२ ई० में हो गया।

इतिहास लिखने की सामग्री एकत्रित थी। संग्रह पूर्ण था। अतएव इतिहास लेखन कार्य को पूर्ण करने के लिये श्री चिताम्बरेजी को बनेड़ा बुलाया गया। उन्होंने आठ मास रहकर लेखन कार्य को सम्पूर्ण किया। मैं उनका आभारी हूं कि इस जटिल कार्य को इतना शीघ्र उन्होंने सफलता पूर्वक समाप्त कर दिया।

इतिहास प्रेमियों के लिये यह पुस्तक रुचिकर तथा प्रेरणादायक होगी ऐसा विश्वास है।

बनेड़ा
विजयादशमी सं० २०२१ वि०
(दि० १५ अक्टूबर सन् १९६४ ई०)

कर्नल अमरसिंह
राजाधिराज

लेखक की ओर से

विद्यार्थी जीवन से ही मेरी अभिरुचि इतिहास म रही है किन्तु उसे नियात्मक रूप मिला श्रद्धेय पंडित रविशंकरजी देराश्री के सम्पर्क में आने पर। जब मैं राघौगढ़ मध्यप्रदेश में नायब तहसीलदार था, तब उनसे प्रत्यक्ष परिचय हुआ। इनकी विद्वत्ता ने और ऐतिहासिक गहरे ज्ञान ने मुझे बहुत प्रभावित किया। जब मैं सेवा निवृत्त हुआ, तब उन्होंने इतिहास का काम करने के लिये फरवरी सन् १९२६ ई० में अपने पास बुला लिया। उन्होंने राज्य राघौगढ़ के खीचो चौहानों के, राज्य बनेड़ा के सीसौदियों के, तथा सादड़ी के झालाओं के ऐतिहासिक तथ्य एकत्रित करने को राजस्थान के भ्रमण पर भेजा। जहा ऐतिहासिक तथ्य मिलने की सम्भावना थी, मैं वहां गया और कुछ शिलालेखों के छाप लाया। सन् १९५० में भी मास जयपुर में रहकर आर्कोइज विभाग के कई सहस्त्र कागज पढ़कर उपरोक्त राज्यों से सम्बन्धित पत्रों की तथा शाही अखबारों की प्रतिलिपियां कर लाया।

मेरी सांसारिक अड़चनों के कारण इतिहास का काम कुछ दिन स्थगित रहा। सन् १९६० ई० के अक्टूबर में श्रद्धेय देराश्रीजी ने मुझे फिर बुलाया और कहा कि "राजाधिराज अमरसिंहजी बनेड़ा राज्य का इतिहास शीघ्र लिखाना चाहते हैं। मैं और आप मिलकर इस कार्य को पूरा करदें।" मैं उन्हें "गुरुजी" कहता था। उनकी आज्ञा मानना मेरा कर्तव्य था। मैंने स्वीकार किया और राघौगढ़ में इतिहास लेखन का कार्य प्रारम्भ किया गया, किन्तु सर्वशक्तिमान भगवान की इच्छा कुछ और ही थी। ता० १२ मार्च सन् १९६२ ई० को अचानक श्रद्धेय गुरुजी का स्वर्गवास हो गया। इतिहास का कार्य फिर रुक गया।

अगस्त सन् १९६२ में श्री राजाधिराज ने इस कार्य को करने के लिये मुझे बनेड़ा बुलाया और मैंने इतिहास लिखना प्रारम्भ किया।

इतिहास लिखने के तथ्यों तथा उपकरणों के संग्रह के सम्बन्ध में यहां दो शब्द लिखना आवश्यक है।

बनेड़ा राज्य का इतिहास राजा भीमसिंह स लिखना था। उनके तथा उनके पश्चात राजा सूर्यमल राजा सुरताणसिंह, राजा सरदारसिंह के समय का एक भी कागज बनेड़ा के ऐतिहासिक संग्रह में नहीं था। उनको प्राप्त करना पहला काम था, तभी इतिहास लिखा जा सकता था। श्रद्धेय रविशंकरजी इस कार्य म जुट गये और चालीस वर्ष अथक परिश्रम करके उपरोक्त राजाओं के समय के पत्र, शाही अखबार आदि एकत्रित किये। उनका परिश्रम, लगन और तथ्य एकत्रित करने की कुशाग्रबुद्धि देख दांतों तले उंगली देनी पड़ती है हजारों पत्रों का संग्रह करना साधारण बात नहीं थी। यदि वह इतना परिश्रम नहीं करते तो बनेड़ा राज्य का इतिहास लिखा जाना असम्भव था।

राजा रायसिंह से ऐतिहासिक पत्रों का संग्रह बनेड़ा राज्य म था। श्री राजाधिराज ने इसके ऐतिहासिक मूल्य को आंककर उसका एक अलग संग्रह किया स्वयं एक एक कागज पढ़ा और

उसे सुरक्षित रखा। ऐसे ही जैसे कोई लोभी अपने धन को बहुत सावधानी के साथ छाती से लगाकर रखता है। सत्य तो यह है कि यह संग्रह कई ऐतिहासिक तथ्यों से भरा पड़ा है। मैंने बनेड़ा राज्य से सम्बन्धित पत्रों का ही इस इतिहास में उपयोग किया है। जहां तक मुझे ज्ञात है बहुत कम ऐसे नरेश होंगे, जिन्होंने अपने राज्य के पुरातन पत्रों का संग्रह करके सुरक्षित रखा हो। श्री राजाधिराज भी यदि इन कागजों की अवहेलना कर देते तो इतिहास लिखा जाना असम्भव था।

इस प्रकार संग्रह पूर्ण था। श्रद्धेय रविशंकरजी का आधार नष्ट हो गया था, जो कुछ करना था, मुझे ही करना था। मैंने साहस पूर्वक इतिहास लिखना प्रारम्भ किया।

श्री राजाधिराज को राजस्थान के इतिहास का गहरा ज्ञान है। उदयपुर राज्य का इतिहास तो मानो उन्हें कंठाग्र है। इस कारण इतिहास लिखने में सन्तुलन रहा।

ता० २६ अप्रेल सन् १९६३ ई० को इतिहास लेखन कार्य समाप्त हो गया।

मुझे दुख है कि जिस पुण्यात्मा (श्रद्धेय रविशंकरजी) ने चालीस वर्ष तक जो परिश्रम किया था, उसका मूर्तरूप देखने वह आज इस संसार में नहीं हैं।

इतिहास कैसा लिखा गया है, इसका निर्णय तो इतिहासविज्ञ और विद्वान पाठक ही कर सकते हैं। सीमित साधन थे, समय कम था, अतएव इसमें भूलें रह जाना, ऐतिहासिक तथ्य छूट जाना सम्भव है। इतिहास प्रेमी पाठक उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे और अपने सुयोग्य सुझाव देकर अनुगृहीत करेंगे, अगले संस्करण में उन पर अवश्य विचार किया जावेगा।

मैं उन समस्त लेखकों का आभारी हूं जिनकी लिखी ऐतिहासिक पुस्तकों का मैंने इस इतिहास में उपयोग किया है।

श्री राजाधिराज का मैं किन शब्दों में आभार मानूं ? उन्होंने शान्तिपूर्वक मेरा हस्तलिखित इतिहास सुना और गम्भीरता पूर्वक सुयोग्य सुझाव दिये, जिनसे बल और प्रेरणा पाकर मैं यह इतिहास लिखने में समर्थ हो सका।

बनेड़ा
विजयादशमी सम्वत् २०२१ वि०
(दि० १५ अक्टूबर सन् १९६४ ई०)

नारायण श्यामराव चिताम्बरे

सिंहावलोकन

पुरातनकाल से क्षत्रियो के दो वश प्रचलित हैं। एक सूर्यवश दूसरा चन्द्रवंश। इसी सूर्यवश मे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्र ने अवतार लिया और उसी वंश मे उदयपुर के महाराणाओ की परम्परा चली आरही है।

जिस भूमि पर परम्परागत महाराणाओ का अधिकार चला आरहा है। उस भूमि का पुरातन नाम 'मेदपाट' होना संस्कृत शिलालेखो से पाया जाता है, बोलचाल की भाषा मे उसको 'मेवाड' कहते हैं, मेवाड राज्य की राजधानी पहले चित्तौडगढ थी। जब राजधानी उदयपुर मे आई तब से इसका नाम "उदयपुर राज्य" हो गया।

कुश के वश के राजा सुमित्र तक की नामावली पुराणो मे दी गई है। आगे चलकर इसी वंश मे वि० संवत् ६२५ के आस-पास मेवाड मे 'गुहिल' नामक प्रतापी राजा हुआ। सम्वत् १९२६ मे उसके २,००० से भी अधिक चाँदी के सिक्के आगरे से गडे हुए मिले हैं जिन पर 'श्री गुहिल' यह लेख है, तथा उदयपुर राज्य से मिले हुए शिलालेखो मे उदयपुर महाराणाओं की जो वशावली दी जाती रही है, वह भी गुहिल से ही प्रारम्भ होती है, जिससे ज्ञात होता है कि मेवाड के अधिपतियो का मूल पुरुष 'गुहिल' ही था। इसी नाम के कारण प्रथम इसके वशज 'गेहलोत' या 'गुहिलोत' कहलाये।

'गुहिल' के पश्चात भोज, महेन्द्र और नाग राजा हुये। इस वंश से सम्बन्धित सबमे पहिला शिलालेख वि० सम्वत् ७०३ का है, जो सामोली ग्राम से मिला था।

शिलादित्य के अनन्तर अपराजित राजा हुआ, इसके समय का शिलालेख नागदे के निकट कुडेश्वर के मन्दिर मे मिला है, जो मार्गशीर्ष सुदी ५ वि० सम्वत् ७१८ का है, जिसमे ज्ञात होता है, कि अपराजित का राज्य विशाल रहा होगा और वह प्रतापी राजा होगा।

अपराजित के बाद महेन्द्र और महेन्द्र के अनन्तर कालभोज हुये। यह कालभोज ही 'बापा रावल' के नाम से विख्यात हुआ। कालभोज उसका नाम और बापा उसकी उपाधि थी, बापा के समय का जो सोने का सिक्का मिला है, उस पर भी 'बप्प' अक्षर अंकित है।

'एकलिंग पुराण' के अध्याय २० के श्लोक २१, २२ मे कहा गया है कि 'हे मुनि सम्वत् ८१० मे अपने पुत्र को राज्य देकर बापा ने संन्यास ग्रहण किया' तो इसके पूर्व ही उसके राज्य करने का समय रहा होगा।

चित्तौड किले के निकट पूठोली गाव के पास मानसरोवर नाम का तालाब है, जिसको लोग मौर्यवशी राजा मान का बनाया हुआ बताते हैं उस पर वि० सम्वत् ७७० का राजा मान के समय का शिलालेख कर्नल टाड के समय विद्यमान था, जिसका अग्रेजी अनुवाद टाड राजस्थान मे छपा है, यह शिलालेख प्रमाणित करता है कि वि० सम्वत् ७७० मे

चित्तौड़गढ़ मान मौर्य के अधिकार में था, उसके बाद किसी समय बापा ने उसको जीता होगा, स्वर्गीय श्री ओझाजी बाईस वर्ष की आयु में बापा का चित्तौड़ लेना मानते हैं, इस हिसाब से बापा का राज्य समय वि० सम्वत् ७९१ से ८१० निर्धारित होता है, जो युक्तिसंगत है।

बापा की समाधि एकलिंगपुरी से एक मील पर उत्तर की ओर स्थित है। यह स्थान अत्यन्त रमणीय है और 'बापा रावल' के नाम से सुप्रसिद्ध है।

बापा के पश्चात की पीढ़ियां

बापा रावल के पश्चात् रावल सामंतसिंह तक की पीढ़ियों में कोई उल्लेखनीय ऐतिहासिक घटना नहीं मिलती, रावल सामंतसिंह का समय वि० सं० १२२८ के आस पास होना शिलालेखों से प्रमाणित होता है, उनके समय में जालोर के राजा चौहान कीतिपाल ने चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया था, किन्तु अल्प समय पश्चात ही सामंतसिंह के छोटे भाई कुमारसिंह ने कीतिपाल को पराजित कर चित्तौड़गढ़ पर फिर अपना अधिकार कर लिया था, कुमारसिंह के वंशज ही उसके पश्चात् मेवाड़ पर राज्य करते रहे।

रावल सामंतसिंह ने मेवाड़ के पड़ोस के बागड़ इलाके को विजय कर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया, डूंगरपुर, बांसवाडा का सम्मिलित प्रदेश बागड़ कहलाता था। राणा संग्रामसिंह प्रथम के समय में डूंगरपुर और बांसवाड़ा दो पृथक-पृथक राज्य हुये। डूंगरपुर का स्वामी पृथ्वीराज तथा बांसवाड़ा का स्वामी जगमाल हुआ।

रावल कुमारसिंह के पश्चात् चौथी पीढ़ी में रावल समरसिंह हुये, इनके सम्बंध में यह उल्लेख है कि "उसने अनेक युद्धों में तुरुकों (मुसलमानों) को पराजित किया" तत्कालीन शिलालेखों से प्रमाणित है कि इनका राज्यकाल वि० सम्वत् १३३० से वि० सम्वत् १३५८ तक रहा।

रावल समरसिंह के पुत्र रत्नसिंह थे। रानी पद्मावती का महान ऐतिहासिक जौहर इन्हीं के समय में हुआ और वि० सम्वत् १३६० भाद्रपद सुदी १४ को चित्तौड़ दुर्ग पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार हो गया, उसने अपने पुत्र खिजरखां को चित्तौड़ का शासक नियुक्त किया। खिजरखां ने अनुमानतः दस वर्ष चित्तौड़ का शासन किया होगा। इसके पश्चात् सुलतान अलाउद्दीन के आदेश से चित्तौड़ मालदेव सोनगरा को दे दिया गया।

उपरोक्त युद्ध में रावल रत्नसिंह के कुछ सम्बन्धी इधर-उधर चले गये, रत्नसिंह के एक छोटे भाई का नाम कुंभकर्ण था। इसी कुंभकर्ण के वंशज कुमाऊं के पहाड़ों में चले गये। वहां उन्होंने अपने क्षत्रियोचित स्वभाव के अनुसार पाल्पा पर अधिकार जमा लिया। धीरे-धीरे अपने राज्य का विस्तार करते-करते पृथ्वी नारायण शाह के समय में नेपाल पर भी अपना आधिपत्य प्रस्थापित कर लिया।

सीसोदे के राणा अजयसिंह के दो पुत्र सज्जनसिंह और खेमसिंह थे। अरिसिंह का पुत्र हमीरसिंह अपने ननिहाल में था। यह हाल जब अजयसिंह को मालूम हुआ तो उसने

हमीरसिंह को अपने पास बुला लिया, उसके वीरोचित गुणो को देखकर तथा बडे भाई का पुत्र जानकर उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। इस पर अजयसिंह के पुत्र सज्जनसिंह और क्षेमसिंह अप्रसन्न होकर दक्षिण की ओर चले गये वहा उन्होंने क्षत्रियो की मर्यादा के अनुसार कोल्हापुर, सावंतवाडी तंजावर आदि के आसपास के प्रदेशों को जीता और वहा के राजा बन बैठे। आगे चलकर इसी वश मे महान शिवाजी का जन्म हुआ जिन्होंने अपने बाहुबल तथा बुद्धि बल से औरंगजेब जैसे बलशाली सम्राट से लोहा लेकर स्वराज्य की स्थापना की तथा स्वराज्य संस्थापक स्वधर्म संरक्षक छत्रपति आदि बिरुद धारण कर सितारा के राज्यसिंहासन पर आरूढ हुये।

राणा अजयसिंह के पश्चात हमीरसिंह सीसोदे के स्वामी हुये। वीर होने के कारण उनके मन मे अपनी पैतृक भूमि चित्तौड पर अधिकार करने की प्रबल लालसा उत्पन्न हुई। उन्होंने मालदेव के पुत्र "जैसा" पर आक्रमण करके चित्तौड दुर्ग पर वि० सम्वत् १३८३ मे फिर अधिकार कर लिया। इस प्रकार केवल बीस वर्ष मुसलमानो के अधिकार मे रह कर चित्तौड दुर्ग फिर बापा रावल के वंशधर हमीरसिंह के अधिकार मे आगया। हमीरसिंह के समय से ही मेवाड मे रावल की उपाधि समाप्त होकर 'राणा' की पदवी प्रचलित होगई। उन्होंने रावल रत्नसिंह के समय मे अवनति पर पहुँचे हुये मेवाड को स्वपराक्रम से उन्नत किया और एक बार फिर बापा रावल के वश की नीव मेवाड मे दृढ करदी। इन महाराणा की मृत्यु वि० सम्वत् १४२१ मे हुई।

महाराणा हमीरसिंह के उत्तराधिकारी क्षेत्रसिंह भी वीर, पराक्रमी तथा साहसी थे उन्होंने अपने पराक्रम से मेवाड की सीमा की वृद्धि की और अनेको राजाओ को जीतकर अपने आधीन कर लिया, वह वि० सम्वत् १४२१ मे सिंहासन पर बैठे और इनकी मृत्यु वि० सम्वत् १४३९ मे हुई।

इनके पुत्र लक्षमणसिंह जो इतिहास मे महाराणा लाखा के नाम से विख्यात हैं चित्तौड के स्वामी हुये। उन्होंने यवनों को पर्याप्त धन देकर काशी, प्रयाग और गया को यवनों के करो से मुक्त कर दिया।

इतिहास प्रसिद्ध त्यागी वीर चूडा इन्ही के ज्येष्ठ पुत्र थे, राठौड रणमल अपनी बहिन हंसाबाई का विवाह युवराज चूडा से करना चाहता था, जब वह नारियल लेकर महाराणा के सामने उपस्थित हुआ तब महाराणा ने हंसी मे कहा कि 'युवको के लिए विवाह के नारियल आते हैं, हम जैसे वृद्धो को कौन पूछे?' बात वास्तव में हंसी मे कही गई थी, किन्तु पितृ भक्त चूडा के मन मे यह भावना उत्पन्न हुई कि पिता की इच्छा विवाह करने की है, उन्होंने रणमल से आग्रह किया कि वह अपनी बहिन का विवाह महाराणा से कर देवें, किन्तु रणमल ने कहा कि "आपसे मेरी बहिन का विवाह होने पर उसके पुत्र उत्पन्न हुआ तो वह मेवाड का स्वामी होगा क्योकि आप मेवाड के भावी स्वामी हैं और महाराणा से विवाह होने पर यदि पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसको चाकरी से निर्वाह करना पडेगा।"

त्यागी चूडा ने एक क्षण का भी विलम्ब न करके भीष्म प्रतिज्ञा की कि "एकलिंगजी साक्षी हैं, मैं इसी क्षण मे मेवाड का राज्य त्याग दिया, महाराणा से विवाह होने पर यदि

आपकी वहिन के पुत्र हुवा तो मेवाड़ का स्वामी वह होगा और मैं उसका सेवक बनकर रहूँगा।"

हँसी मे कही गई बात का ऐसा विपरीत परिणाम देखकर महाराणा भी चकित होगये। उन्होंने चूंडा को बहुत समझाया किन्तु चूंडा अपनी भीष्म प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे और पिता को विवाह के लिए बाध्य किया। महाराणा ने हंसाबाई से विवाह किया, जिसकी कोख से मोकल का जन्म हुआ। अपनी भीष्म प्रतिज्ञा को त्यागी चूंडा ने आजीवन प्राणपण से निभाया और सेवक बनकर मेवाड़ राज्य की रक्षा वे जीवन भर करते रहे, पिता की इच्छा पर महान् मेवाड़ का राज्य समर्पित कर उन्होंने भगवान रामचन्द्र का आदर्श उपस्थित कर दिया, उनका यह त्याग इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य है, उनके मुख्य वंशवरों में सलुम्बर के रावत हैं। महाराणा लाखा की मृत्यु वि० सम्वत् १४७६ से वि० सम्वत् १४७८ के बीच किसी समय हुई।

महाराणा लाखा के पश्चात् महाराणा मोकल सिंहासन पर बैठे, उन्होंने नागौर के स्वामी फीरोजखां को युद्ध में परास्त किया। कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति से पाया जाता है कि, महाराणा ने सपादलक्षदेश (सांभर) को बरबाद किया तथा जालन्धर वालों को कंपायमान किया, इससे पाया जाता है कि यह महाराणा वीर प्रकृति के थे और उन्होंने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। इनकी मृत्यु वि० सम्वत् १४९० मे हुई, देवलिया प्रतापगढ़ राज्य के स्वामी इन्हीं महाराणा मोकल के द्वितीय पुत्र क्षेमकर्ण के वंशज हैं।

सुप्रसिद्ध महाराणा कुम्भकर्ण इतिहास में महाराणा कुम्भा के नाम से विख्यात हैं, ये वि० सम्वत् १४९० में मेवाड़ के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इन महाराणा के समय में अनेक युद्ध हुये। सबसे बड़ा युद्ध मालवा के सुलतान महमूद गौरी से हुआ। इस युद्ध में महाराणा कुम्भा विजयी हुये। इस महान विजय को चिरस्थायी बनाने के हेतु चित्तौड़ में महाराणा ने वि० सम्वत् १४९७ में कीर्तिस्तम्भ बनवाया जो आज भी मस्तक उंचा किये गौरव से खड़ा है।

इन महाराणा का अधिकांश कार्यकाल युद्धों में ही बीता। उन्होंने मेवाड़ की राजश्री की वृद्धि की। मुसलमानों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोका तथा उनको कई बार पराजित किया। रणथम्भोर, गागरोन आदि सुदृढ़ दुर्गो को जीता और मेवाड़ राज्य की सीमा बढ़ाई। अनेक राजाओं को अपना मांडलिक बनाया। यह वीर, पराक्रमी, बलशाली तो थे ही साथ ही विद्वान, कवि तथा संगीतकला के ज्ञाता थे। उन्होंने संगीतराज, संगीत मीमांसा आदि ग्रन्थों की रचना की। चण्डी शतक की व्याख्या तथा गीत गोविन्द पर 'रसिक प्रिया' नामक टीका लिखी, वह लेखक और नाटककार भी थे।

महाराणा शिल्पकला के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने मेवाड़ में कई दुर्गों का निर्माण कराया। जिनमें कुम्भलगढ़ और अचलगढ़ (आबू) शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

एक दिन वह कुम्भस्वामी के मन्दिर के निकट जलाशय तट पर बैठे हुए थे कि उनके राज्यलोभी पुत्र उदयसिंह ने उन्हें कटार से अचानक मार डाला। यह घटना वि० सम्वत् १५२५ की है।

उपरोक्त कुकृत्य के कारण उदयसिंह को प्रजा द्वारा राज्यच्युत कर देने पर उनके छोटे भाई रायमल वि० सम्वत् १५३० मे मेवाड के स्वामी हुये। इन महाराणा के समय मे माडु के बादशाह से कई बार युद्ध हुये किन्तु विजय महाराणा रायमल की ही हुई। इनके तीन पुत्र थे। कुवर पृथ्वीराज, जयमल, और संग्रामसिंह। जयमल और पृथ्वीराज की मृत्यु महाराणा रायमल के सामने ही हो गई थी। जिससे महाराणा के हृदय पर बडा आघात हुआ और ज्येष्ठ सुदी ५ वि० सम्वत् १५६५ को इनकी मृत्यु हो गई। इनके पश्चात् महाराणा संग्रामसिंह सिंहासन पर आरूढ हुये।

दिल्ली के तख्त पर उन दिनो बादशाह इब्राहिम लोदी था, जब उसे मालूम हुआ कि महाराणा संग्रामसिंह बादशाही प्रदेशों पर आक्रमण कर मेवाड राज्य मे मिला रहे हैं, तब वह क्रोधित होकर मेवाड पर आक्रमण करने के लिये सेना सहित दिल्ली से चला। महाराणा संग्रामसिंह भी अपनी सेना सजाकर चित्तौड से रवाना हुये। हाडोती की सीमा पर दोनों सेनाओ मे मुठभेड हुई। बादशाह पराजित हुआ और विजय वैजयन्ती महाराणा संग्रामसिंह के गले मे पडी।

दूसरी सबसे बडी विजय उन्हे वि० सम्वत् १५७६ मे मिली। उन दिनों किला गागरोन मेदिनीराय के अधिकार मे था। उस पर माडू के सुलतान महमूद खिलजी द्वितीय ने आक्रमण किया। मेदिनीराय ने महाराणा संग्रामसिंह से सहायता मागी। स्वय महाराणा अपनी बलशाली सेना लेकर गागरोन आये। भयानक युद्ध हुआ और महाराणा विजयी हुये। सुलतान महमूद घायल होकर पकडा गया। उदार महाराणा ने उसका इलाज करवाया और उसे सम्मान पूर्वक माडू पहुँचा दिया। उन्होंने मुसलमानों के साथ अनेक युद्धो मे विजय प्राप्त कर मेवाड की सीमा तथा स्वयं का यश बढाया। उन दिनों उत्तर भारत के महाराजाओं मे महाराणा संग्रामसिंह सर्वोच्च समझे जाते थे। अनेक राज्य उनके आधीन थे और दण्ड (कर) देते थे। उनके भाग्यकाश मे यश सूर्य अपनी प्रखरता से तप रहा था और अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था, किन्तु जहा उत्थान है, वहा पतन भी है। महाराणा संग्रामसिंह के जीवन मे भी वह समय आया।

बाबर का भारत मे आगमन, उसका बढता प्रभाव, उसे मिलने वाली विजयो तथा दिल्ली के तख्त पर बैठना आदि घटनाओ से महाराणा सागा उत्तेजित हो उठे। उन्होंने विदेशी मुसलमानो को बाहर निकालने का तथा भारत को स्वतन्त्र कर स्वराज्य स्थापना करने का बीडा उठाया। उन्होंने बाबरको कईबार पराजित किया किन्तु उसकी पूर्ण पराजय नही हो पाई।

राजस्थान के तत्कालीन नरेश, बाबर की आक्रामक नीति से भयभीत हो गये। उन्होंने अल्प समय के लिये आपसी मनमुटाव भुलाकर महाराणा सागा के नेतृत्व मे एकत्रित होकर बाबर के विरुद्ध सामूहिक मोर्चा बनाया। फलस्वरूप चैत्र सुदी १४ वि० सम्वत् १५८४ को खानवा का इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध हुआ। इस युद्ध के पूर्वार्ध मे विजय राजपूतों के हाथों मे ही रही किन्तु राजपूतों के आपसी स्वार्थ के कारण युद्ध के उत्तरार्द्ध मे शिथिलता आ गई तथा महाराणा सांगा के मस्तक मे एक तीर आ लगा जिससे वह मूर्च्छित होकर गिर पडे। उनके कुछ सामन्त उन्हे उठाकर रणागण से ले गये। राजपूत सेना तितर बितर हो गई। बाबर की

विजय हुई और भारत कई शताब्दियों के लिये पराधीनता की शृंखला में आबद्ध हो गया, साथ ही मेवाड का यश सूर्य दिन प्रति दिन मन्द होता गया और भावी महाराणाओं को महान् विपत्तियों का सामना करना पड़ा। बाबर ने महाराणा संग्रामसिंह की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "वह महान् शक्तिशाली था। उसके अधिकार मे दस करोड़ की आय का प्रदेश था और उसकी सेना मे एक लाख सैनिक थे" यदि उसके तीन उत्तराधिकारी भी वैसे ही वीर और योग्य होते, तो मुगलो का राज्य भारतवर्ष मे जमने न पाता।

महाराणा संग्रामसिंह का स्वर्गवास माघ सुदी ६ वि० सम्वत् १५८४ को हुआ।

महाराणा संग्रामसिंह के पश्चात् उनके पुत्र रत्नसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर माघ सुदी १५ वि० सम्वत् १५८४ को बैठे। इनकी मृत्यु वि० सम्वत् १५८८ मे हुई।

महाराणा रत्नसिंह के पश्चात् महाराणा विक्रमादित्य वि० सम्वत् १५८८ में मेवाड़ के स्वामी हुये। यह महाराणा बुद्धिहीन, संशयी तथा उच्छृङ्खल थे। मेवाड़ के सब सरदार तथा राज्य के कर्मचारी इनसे अप्रसन्न हो गये तथा कुछ स्वामीभक्त सामन्त मेवाड़ से बाहर चले गये। राज्य व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई और महाराणा संग्रामसिंह के भाई पृथ्वीराज की पासवान से उत्पन्न बनवीर ने अवसर पाकर अपना प्रभाव महाराणा पर जमा लिया और एक दिन महाराणा को तलवार से मार डाला। उनके छोटे भाई उदयसिंह को जो अल्पवयस्क था जब वह मारने आया, उस समय पन्ना नामक धाय ने बनवीर को अपने पुत्र का पलंग दिखा दिया। बनवीर उसको मारकर चला गया। इस प्रकार धाय ने उदयसिंह को बचा लिया और वह उसे लेकर देवलिया के रावल रायसिंह के पास गई। यह घटना वि० सम्वत् १५९३ की है, किन्तु रायसिंह ने बनवीर के भय से उसे आश्रय नहीं दिया और डूंगरपुर भेज दिया, वहां भी आसकर्ण ने उसे आश्रय नहीं दिया। तब पन्ना उदयसिंह को लेकर कुम्भलमेर पहुँची वहां उसे आसा देपुरा ने आश्रय दिया। कुम्भलमेर मे मेवाड़ के सब सामन्त एकत्रित हुये। उदयसिंह का राज्याभिषेक किया गया और वि० सम्वत् १५९७ मे बनवीर पर आक्रमण कर उससे चित्तौड़ का किला छीन लिया। मेवाड़ पर महाराणा उदयसिंह का अधिकार हो गया। वि० सम्वत् १६१६ के चैत्र मे महाराणा के पौत्र अमरसिंह का जन्म हुआ। इस अवसर पर महाराणा एकलिंगजी के दर्शन करने गये। वहां से अहाड़ग्राम की ओर शिकार खेलने गये, सुरक्षित स्थान देखकर उस स्थान पर उदयपुर नामक नगर बसाया और उसे ही मेवाड़ की राजधानी बनाया।

महाराणा उदयसिंह के समय मे जलालुद्दीन अकबर दिल्ली का बादशाह था। उन दिनों उत्तर भारत के सभी राजे महाराजे अकबर के आधीन हो चुके थे। केवल उदयपुर के महाराणा ही ऐसे थे जिन्होंने मुगलों की गुलामी स्वीकार नहीं की थी। अकबर के हृदय में यह बात चुभ रही थी। उसने चित्तौड़ पर आक्रमण करने का विचार किया और वि० सम्वत् १६२४ के आश्विन मास में आगरे से चलकर मार्गशीर्ष वदी ६ गुरुवार सम्वत् १६२४ को चित्तौड़ दुर्ग के पास पहुँच कर डेरा डाला। पूरे पांच माह युद्ध करने के पश्चात चैत्र कृष्ण १२ सम्वत् १६२४ को महान् चित्तौड़ दुर्ग पर अकबर का अधिकार हो गया। महाराणा उदयसिंह पहाड़ों में चले गये और चार मास के पश्चात् उदयपुर आगये। इनकी मृत्यु फाल्गुन सुदी १५ वि० सम्वत् १६२८ को हुई।

इनके पश्चात् इनके सुपुत्र भारत विख्यात महाराणा प्रतापसिंह मेवाड के राज्य सिंहासन पर अधिष्ठित हुये, तथा कुम्भलमेर मे रहकर राज्य संचालन करने लगे। बादशाह अकबर को जब यह बात मालूम हुई तो उसने महाराणा प्रतापसिंह को युक्ति से आधीन करने का विचार किया। उसने आमेर के कु० मानसिंह को आषाढ वि० सम्वत् १६३० मे उदयपुर भेजा। उदयपुर आकर कुवर मानसिंह ने महाराणा को बादशाह की सेवा स्वीकार करने के लिये अनेक प्रकार से समझाया, प्रलोभन दिये किन्तु महाराणा पर कोई असर नही हुआ। महाराणा ने मानवता के नाते उसका सम्मान किया और गोठ दी। किन्तु जब भोजन के समय महाराणा को अनुपस्थित देखा तो मानसिंह ने कारण पूछा, उससे कहा गया कि महाराणा के पेट मे पीडा है। मानसिंह सब समझ गया। उसने कहा कि शीघ्र ही पेट की पीडा की दवा लेकर आऊगा। तब महाराणा ने भी कहलवाया कि "आप स्वयं के बल पर आओगे तो आपका स्वागत मालपुरे मे करेंगे, किन्तु अपने फूफा (अकबर) के बल पर आओगे तो जहा मौका मिलेगा स्वागत करेंगे।"

मानसिंह इस अपमान से क्रोधित होकर चला गया, किन्तु उसके हृदय मे अपमान का शल्य चुभता रहा, परिणाम स्वरूप हल्दीघाटी का सुप्रसिद्ध रण संग्राम हुआ।

यह इतिहास प्रसिद्ध युद्ध मिती द्वि० ज्येष्ठ सुदी २ वि० सम्वत् १६३३ को हुआ। इस युद्ध मे विजय किसकी हुई? यह प्रश्न इतिहासवेताओ को उलझन मे डाल रहा था, किन्तु अब ऐतिहासिक प्रमाणों ने सिद्ध कर दिया है, कि इस युद्ध मे महाराणा प्रताप का पक्ष ही प्रबल रहा।

पक्ष भले ही प्रबल रहा हो, किन्तु वह क्षणिक था। महाराणा का अकबर के सामने न झुकना ही उनके जीवन मे संकटो की परम्परा लाना रहा। अकबर ने अपने आतंक से समस्त भारत को आधीन कर लिया था, केवल महाराणा प्रताप ही एक ऐसे वीर रत्न थे जिन्होंने उसके प्रभाव तथा प्रताप के सामने मस्तक नत नही किया। यही बात अकबर को खटकती रहती थी। उसने महाराणा के सामने युद्धो की शृंखला उपस्थित करदी। आजीवन वह इसी शृंखला मे उलझे रहे। अनेकों कष्ट सहन किये, पहाडो और कन्दराओ मे निवास किया, अनन्त संकटों का सामना करते हुए वह अपने स्वामीभक्त राजपूतो के साथ अकबर जैसे बलशाली सम्राट से टक्कर लेते रहे, किन्तु झुके नही। दासता स्वीकार नही की। स्वतन्त्रता की आत्मसन्तोषभरी अन्तिम सास लेकर माघ सुदी ११ वि० सम्वत् १६५३ को वह वैकुण्ठधाम पधारे।

महाराणा प्रताप के देहावसान का समाचार सुनकर सम्राट अकबर उदास होगया। सभी दरबारियो को बडा विस्मय हुआ। जिस समाचार को सुनकर बादशाह को आनन्दित होना चाहिए था, उसे सुनकर बादशाह उदास क्यो होगये? दरबारी कवि दुरसा आढा ने बादशाह की वास्तविक मन स्थिति को ताड लिया। उसने तत्काल महाराणा प्रताप के निधन पर प्रशंसात्मक व प्रभावशाली कविता बनाकर सुनाई, जो महान् प्रताप की आन बान, शान, उनके देश प्रेम, स्वतन्त्रता पर मर मिटने की पुनीत भावना, अपूर्व महानता, धैर्य और शौर्य की द्योतक है।

अस लेगो अणदाग, पाग लेगो अणनामी।
गो आड़ा गवड़ाय, जिको वहतो धुर वामी॥
नवरोजे नह गयो, न गो आतसां नवल्ली।
न गो झरोखां हेठ, जेठ दुनियाण दहल्ली॥
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत शाह प्रतापसी॥

आशय:—हे गहलोत राणा प्रतापसिंह ! तेरी मृत्यु पर बादशाह ने दांतों के बीच जीभ दबाई तथा उसासों के साथ आंसू बहाये, क्योंकि तूने अपने घोडे को दाग नही लगने दिया। अपनी पगड़ी को किसी के सामने नत नही किया। तू अपना आड़ा (यश) गवा गया। तू अपने राज्य के धुरे को बायें कन्धे से चलाता रहा। नौरोजे में न गया, न बादशाही डेरों में गया, न कभी शाही झरोखों के नीचे खड़ा रहा और तेरा रौब दुनिया पर गालिब था अतएव तू सब तरह से जीत गया।

कवि का स्वर कह रहा है कि प्रताप जीत गया। अकबर की आत्मा कह रही है कि प्रताप मुझे पराजित कर चला गया। हल्दीघाटी का एक एक पत्थर कह रहा है, प्रताप विजयी है, मेवाड़ का कण कण कह रहा है स्थित-प्रज्ञ प्रताप जन्म जात विजयी था। इतिहास कहता है कि कभी न झुकने वाले अपने उन्नत मस्तक को उज्वल बनाकर विजयी प्रताप स्वर्ग सिधार गया। जब तक पृथ्वी रहेगी तब तक इतिहास रहेगा और जब तक इतिहास रहेगा तब तक प्रताप की यशोदुंदभी बजती रहेगी।

महाराणा प्रतापसिंह का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल १३ वि० सम्वत् १५९६ को हुआ और राज्याभिषेक फाल्गुन शुक्ल १५ सम्वत् १६२८ को हुआ।

महाराणा के पाटवी पुत्र महाराणा अमरसिंह का राज्याभिषेक माघ शुक्ल ११ वि० सम्वत् १६५३ को हुवा। इन्होंने सिंहासन पर आरूढ़ होते ही बादशाही प्रदेशों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। बादशाह अकबर को इसकी सूचना दी गई किन्तु दो वर्ष तक उसने उधर ध्यान नही दिया। जब महाराणा की शक्ति अधिक बढ़ने लगी तब बादशाह ने वि० सम्वत् १६५५ में मेवाड़ पर आक्रमण किया। महाराणा पहाड़ों मे चले गये। अवसर पाते ही वह बादशाह की फौज पर हमला कर देते और फिर पहाड़ों मे चले जाते। इस प्रकार कभी महाराणा के थाने मेवाड़ में कायम हो जाते कभी बादशाह का अमल उन पर होजाता। बादशाह अकबर की मृत्यु तक यही क्रम चलता रहा किन्तु अकबर की मृत्यु होते ही बादशाह जहांगीर ने मेवाड़ को आधीन करने का दृढ़ निश्चय किया। वि० सम्वत् १६६२ में उसने शाहजादा परवेज को मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिये भेजा। मेवाड़ में फिर एक बार युद्ध की आग भड़क उठी। महाराणा अमरसिंह तथा स्वामी-भक्त राजपूत मेवाड़ की स्वतन्त्रता की रक्षा के हेतु खून बहाते रहे। किन्तु हार नही मानी। बादशाह जहांगीर भी अचम्भे मे आगया, आश्चर्य इस बात का था कि बादशाही साम्राज्य की समस्त सैनिक शक्ति एक छोटे से प्रदेश के अल्प संख्यक सैनिकों को पराजित नहीं कर पा रही थी,

वीर भूमि मेवाड पर अधिकार प्रस्थापित करने की अपनी लालसा बादशाह अकबर अपने जीवन मे पूरी न कर सका तथा बादशाह जाहागीर के समय मे भी आठ वर्ष तक मेवाड के वीरों ने शाही सेना को विजय का गौरव प्राप्त नही होने दिया, शाहजादा परवेज, महावतखा, अब्दुल्लाखा आदि बड़े-बड़े मुगल सरदार हार मानकर लौट गये किन्तु मेवाड पर आधिपत्य प्रस्थापित नही कर सके।

बादशाह जहागीर क्रोधित होगया और मेवाड पर आक्रमण करने के लिये आश्विन सुदी ४ वि० सम्वत् १६७० को स्वय आगरे से चला और अजमेर आकर मुकाम किया। वहा से उसने लगातार मेवाड पर हमले करना प्रारम्भ कर दिया जिससे मेवाड का जीवन अस्त व्यस्त होगया। खेती किसानी रुक गई। युद्ध के अतिरिक्त तत्कालीन लोगों को कोई और काम करने को समय ही नही मिल पाता था। लगातार ४० वर्षो से मेवाड के महाराणा और दिल्ली के बादशाहों मे संघर्ष चल रहा था। धीरे धीरे मेवाड का बल कम होता गया, परिस्थिति यहा तक भयानक हो उठी कि न खाने को अन्न रहा न पहिनने को कपडा। जीवन इतना असुरक्षित और अनिश्चित होगया कि आज जो जीवित है कल उसकी मृत्यु का समाचार आता था। पति की मृत्यु पर पत्निया सती हो जाती थी। इन सारी घटनाओं से तत्कालीन विचारशील सामन्तों के मन मे यह आशका उत्पन्न हो गई कि यदि यही परिस्थिति रही तो किसी दिन मेवाड का नामोनिशान मिट जावेगा तथा बापा रावल का महान वंश भी समाप्त हो जायगा। उन्होंने यह भी सोचा कि समस्त उत्तर भारत मे मुगलों का एकाधिपत्य हो गया है। मेवाड के आस पास के समस्त भारतीय नरेश मुगलों के सामन्त बन चुके है, उनकी सेनाएं भी मेवाड को नष्ट करने के लिये युद्ध का शख फूक रही हैं, अतएव इस आपत्ति काल मे दूरदर्शिता एवं बुद्धिमानी से काम लेकर इस कुसमय को मुगल बादशाह से सुलह करके टाल देना ही उचित है। उन्होंने अपना यह प्रस्ताव युवराज कर्णसिह के सामने रखा। विचारशील करणसिह ने परिस्थिति को देखते हुये उनके प्रस्ताव का समर्थन किया और शाहजादा खुर्रम से इस सम्बन्ध मे विचार विनिमय किया। शाहजादा ने सहर्ष उक्त प्रस्ताव का अनुमोदन किया तथा मौलवी शुकुल्लाह और सुन्दरदास के द्वारा बादशाह को इसकी सूचना दी, बादशाह ने प्रसन्नता पूर्वक सन्धि करने की स्वीकृति देदी। इसके पश्चात कुंवर कर्णसिह ने महाराणा अमरसिह के सम्मुख यह प्रस्ताव धैर्य पूर्वक रखा। महाराणा अमरसिह इस प्रस्ताव को सुन चुप होगये, मुख पर उदासी छागई, उनका मुख सफेद पड गया, उन्होंने कापते स्वर मे केवल इतना ही कहा कि "जब आप सब लोग यही चाहते हैं तो मैं अकेला क्या कर सकता हू ?" इस प्रकार महाराणा ने बादशाह से सन्धि करना स्वीकार किया।

फाल्गुन वदी २ वि० सम्वत् १६७१ को महाराणा अमरसिंह शाहजादा खुर्रम से भेट करने चले। साथ मे उनके दो भाई सहसमल और कल्याण, तीन पुत्र भीमसिह, सुरजमल, बाघसिह तथा मेवाड के उच्च अधिकारी थे। गोगुदा के थाने पर सन्धि की रीति सम्पन्न होनी थी। जैसे ही महाराणा शाही शिविर के निकट पहुँचे शाहजादे ने अब्दुल्ला खा, राजा सूर्रसिह, राजा वीरसिह बुन्देला आदि को उनकी अगवानी के लिये भेजा। वे उन्हे बहुत सम्मान-पूर्वक शाहजादे के पास ले गये। शाहजादे ने उन्हे छाती से लगाकर बाईं तरफ

बैठाया। महाराणा ने शाहजादे को एक उत्तम लाल, जिसका वजन आठ टांक तथा कीमत साठ हजार रुपये थी वह, तथा सात हाथी और नौ घोड़े भेंट किये। शाहजादे ने भी उन्हें उत्तम खिलअत, जड़ाऊ जमधर, जड़ाऊ तलवार, सोने के साज समेत जड़ाऊ जीन वाला एक घोड़ा और चांदी की जरदोजी झूल वाला एक हाथी उपहार में दिये। भाइयों और पुत्रों को भी यथोचित उपहार देकर शुभ्रुल्लाह तथा सुन्दरदास को साथ देकर महाराणा को सम्मान पूर्वक विदा किया। सन्धि की मुख्य शर्तें निम्न प्रकार निश्चित हुईं:—

१—महाराणा बादशाह के दरबार में कभी उपस्थित नही होंगे।
२—महाराणा का ज्येष्ठ कुंवर शाही दरबार मे उपस्थित होगा।
३—शाही सेना मे महाराणा एक हजार सवार रखेगा।
४—चित्तौड़ के किले की मरम्मत न की जावेगी।

तत्कालीन फरमानों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह फरमान दासता के नही दोस्ती के थे।

राजकुमार कर्णसिंह जब शाहजादा खुर्रम की सेवा में उपस्थित हुये तब उसने उन्हें खिलअत, जड़ाऊ तलवार, जड़ाऊ जमधर, सुनहरी जीन का घोड़ा और खासा हाथी दिया और उन्हें साथ लेकर अजमेर के लिये प्रस्थान किया। फाल्गुन सुदी २ वि० सम्वत् १६७१ को कुंवर कर्णसिंह सहित वह बादशाह के दरबार में उपस्थित हुआ। बादशाह ने कर्णसिंह को दाहिनी ओर की पंक्ति में सबसे प्रथम खड़ा करने की आज्ञा दी, फिर उनको खिलअत और एक जड़ाऊ तलवार प्रदान की।

कुंवर कर्णसिंह के अजमेर आने के दिन से विदा होने के दिन तक बादशाह ने उनको दो लाख रुपये, पांच हाथी, एक सौ दस घोड़े दिये। पांच हजारी जात, पांच हजार का मनसब प्रदान किया। उनका इतना अधिक सम्मान किया गया कि उससे पूर्व तक किसी हिन्दू राजा का अथवा राजकुमार का नही किया गया था।

इस सुलह के होते ही मेवाड़ की जनता ने स्वस्ति और शान्ति की सांस ली। रणांगण मे खून बहाने के बदले मेवाड़ की भूमि को हरी भरी बनाने के लिये वह पसीना बहाने लगी।

महाराणा अमरसिंह का जन्म चैत्र सुदी ७ वि० सम्वत् १६१६ को हुआ और मृत्यु माघ सुदी २ बुधवार वि० सम्वत् १६७६ को हुई।

महाराणा अमरसिंह के पश्चात उनके पुत्र महाराणा कर्णसिंह माघ सुदी २ वि० संवत् १६७६ को मेवाड़ के स्वामी हुये। मुगलों से सन्धि हो जाने के कारण राज्य का प्रबन्ध करने में वह जुट गये, जनता भी खेती किसानी मे लग गई, अल्प समय पश्चात् ही मेवाड़ की उन्नति होगई, और जनता सुख-पूर्वक जीवन यापन करने लगी। महाराणा कर्णसिंह का जन्म माघ सुदी ४ वि० सम्वत् १६४० को होकर मृत्यु फाल्गुण वि० सम्वत् १६८४ मे हुई।

इनके पुत्र महाराणा जगतसिंह का राज्याभिषेक फाल्गुन वि० सम्वत् १६८४ में हुआ। इनके समय में सुख और शान्ति रही। केवल मुगल बादशाह का संरक्षण पाकर सिरोही, डूंगरपुर बांसवाड़ा के राजाओं ने उदयपुर के आधिपत्य को ठुकरा दिया था। सेना भेजकर उनका

वन्दोवस्त किया गया। मुगलो से सुलह होने पर भी महाराणा ने बहुत सी बाते ऐसी की जो सुलह के विरुद्ध थी। सिरोही, बासवाडा, डूगरपुर पर सेना भेजना भी एक प्रकार से मुगल बादशाह के प्रभाव को चुनौती देना था। दूसरे चित्तौड दुर्ग की मरम्मत कराना भी सुलह की शर्त के विरुद्ध था। जब यह सारी घटनाएं बादशाह शाहजहा के कानो पर गई तो वह नाराज हो गया, यह बात महाराणा को मालूम होने पर उन्होने वि० सम्वत् १६९० मे झाला कल्याण को बादशाह के पास भेजा, वहा उसने महाराणा की ओर से एक हाथी और एक अर्जी पेश की, जिससे बादशाह का क्रोध जाता रहा, किन्तु दिल्ली के बादशाह चित्तौड के महाराणाओ की ओर से हमेशा सशंक और सतर्क रहते थे, क्योंकि वह जानते थे, कि महाराणा से भले ही सुलह हुई हो, स्वतन्त्रता की चिनगारी अभी भी उनके हृदय मे सुलग रही है। महाराणा जगतसिह ने सुलह के विरुद्ध अनेक कार्य किये थे तथा शाही सेवक आये दिन उनकी शिकायत करते रहते थे। अतएव शाही प्रभाव की रक्षा के हेतु बादशाह सेना सजाकर आगरे से रवाना हुआ और अजमेर आकर मुकाम किया। महाराणा जगतसिह बुद्धिमान् और दूरदर्शी थे, उन्होंने समझ लिया कि अजमेर की जियारत का तो केवल बहाना मात्र है। बादशाह क्रोधित होकर आया है। उन्होंने चतुरता पूर्वक कुवर राजसिह को बादशाह के पास भेज दिया, उनकी उपस्थिति से बादशाह का कोप शान्त होगया। यह घटना वि० सम्वत् १७०० की है।

इन महाराणा का जन्म भाद्रपद सुदी २ वि० सम्वत् १६६४ को होकर मृत्यु कार्तिक वदी ४ वि० सम्वत् १७०९ को हुई।

महाराणा राजसिंह (प्रथम)

महाराणा राजसिंह का जन्म मेड़तिया राठौर राजसिंह की पुत्री जनादे की कोख से विक्रमी संवत् १६८६ कार्तिक वदी १ बुधवार को हुआ।

कुंवरपदे मे इनको वादशाह शाहजहां से मिलने का अवसर वि० संवत् १७०० में आया। उस समय उनकी आयु चौदह वर्ष की थी। वालक राजसिंह के हृदय में वादशाही ठाट वाट, वैभव और प्रभाव देखकर कौन से भाव उदित हुये होंगे, उन्हें प्रकट करना आज कठिन है, फिर भी उनके जीवन के समस्त स्वाभिमान भरे कार्यों की ओर दृष्टिपात करने पर अनुमान किया जा सकता है कि उनके मन मे शाही प्रभाव के विरुद्ध अवश्य ही प्रतिक्रिया हुई होगी और उनके हृदय में स्थित स्वतन्त्रता की भावनाओं को अवश्य ही वल मिला होगा।

वादशाह को उन्होंने एक हाथी नज़र किया, वादशाह ने प्रसन्न होकर उन्हें जड़ाऊ सरपेच, खिलअत, जड़ाऊ जमधर, सोने के जीन वाला घोड़ा दिया, जब वादशाह आगरे के लिये रवाना होने लगा तव कुंवर राजसिंह को फिर खिलअत, उम्दा तलवार, ढाल व सामान, सुनहरी मीनाकार समेत घोड़ा, हाथी तथा राजपूतों के पहिनने के जेवर दिये, उनके साथ के दो अव्वल दर्जे के सरदारों को खिलअत और घोड़े तथा आठ सरदारों को खिलअत दिये और उन्हें विदा किया।

उस समय आमेर महाराजा जयसिंह के कुंवर रामसिंह व कीर्तिसिंह भी वादशाह के दरवार में हाजिर हुये थे, उनको भी इसी समय घोड़ा और सिरोपाव दिये गये थे।

उपरोक्त दोनों राज्यों के कुंवरों के उपहारों के अन्तर को देखते हुए लिखा जा सकता है कि राजपूताने के तत्कालीन समस्त राजाओं में मेवाड़ के महाराणाओं का आदर वादशाह के मन में अधिक था, क्योकि उनसे मित्रता के आधार पर सन्धि हुई थी। इसके अतिरिक्त महाराणाओं के व्यवहार से वादशाह भलीभांति परिचित थे, वह जानते थे कि उनके हृदय में स्वतन्त्रता के स्फुलिंग जल रहे है और समय पाकर कभी भी उनका विस्फोट हो सकता है। अतएव वे उनसे हमेशा भय खाते थे और उन्हे प्रसन्न रखना आवश्यक समझते थे।

महाराणा जगतसिंह की माता जांवुवती ने वि० संवत् १७०५ में मथुरा और गोकुल की यात्रा की थी। इस यात्रा मे कुंवर राजसिंह भी उनके साथ थे, वहां पर जांवुवती ने चांदी की और कुंवर राजसिह ने सोने की तुला दान की थी।

महाराणा जगतसिंह का स्वर्गवास होने के पश्चात् कार्तिक वदी ४ वि० संवत् १७०९ को महाराणा राजसिंह का राज्याभिषेक हुआ, इसी वर्ष के मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष में एकलिंगजी जाकर उन्होंने रत्नों का तुलादान किया, भारतीय इतिहास में रत्नों के तुलादान का यही एक उल्लेख है।

एकलिंगजी से आकर फाल्गुन वदी २ संवत् १७०९ को राज्याभिषेकोत्सव सम्पन्न किया, इस शुभ अवसर पर उन्होने चादी का तुलादान किया। बादशाह शाहजहा ने उनको राणा का खिताब, पाच हजार जात, पाच हजार सवारो का मनसब दिया और उपहार मे जडाऊ जमधर, हाथी, घोडे आदि भेजे।

इन सब कार्यो मे निबटते ही उनका ध्यान राज्य प्रबन्ध की ओर गया, महाराणा जगतसिंह के समय मे चित्तौड दुर्ग की मरम्मत पूरी नही हो पाई थी। महाराणा राजसिंह उसे शीघ्रतापूर्वक सम्पूर्ण करने मे लग गये। इसकी सूचना जब बादशाह शाहजहा को मिली तो वह आश्विन सुदी ४ स० १७११ को ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की 'जियारत' के बहाने दिल्ली से अजमेर के लिये रवाना हुआ। मार्ग से ही उसने अबदाल बेग को चित्तौड इसलिये भेजा कि वह देखे कि वास्तव मे मरम्मत की जा रही है या नही ? अबदाल बेग चित्तौड गया, पता लगाया और लौटकर बादशाह से निवेदन किया कि "मरम्मत वास्तव मे की जा रही है, कई दरवाजे नये बनाये गये हैं, तथा नये कोट बनाये जा रहे हैं।"

यह सुनकर बादशाह बहुत क्रोधित हुआ उसने सादुल्लाखा वजीर को चित्तौड दुर्ग को गिरा देने के लिये भेजा और स्वयं कार्तिक वदी १३ संवत् १७११ को अजमेर पहुच गया।

महाराणा राजसिंह दूरदर्शी तथा सोच विचार कर काम करने वाले होने से उन्होंने अपने भावावेश को बडे ही धैर्य पूर्वक सयमित किया और चित्तौड दुर्ग से अपनी सेना को हटा लिया। सादुल्लाखा चित्तौड दुर्ग मे पन्द्रह दिवस रहा और बुर्जो और कंगुरो को गिराकर बादशाह के पास हाजिर हो गया।

शाहजादा दाराशिकोह के मुन्शी चन्द्रभान के द्वारा सुलह हुई और महाराणा राजसिंह ने कुंवर सुलतानसिंह को अपने सामन्तों के साथ बादशाह के पास भेजा। बादशाह ने उसको मोतियों का सरपेच, जडाऊ तुर्रा, मोतियों का हार आदि उपहार मे दिये और छः दिन पश्चात् उसे उदयपुर भेज दिया।

इस सुलह से महाराणा राजसिंह को शान्ति प्राप्त नही हुई। उनका स्वाभिमानी हृदय कराह उठा क्योकि यह सुलह अपमानजनक थी। चित्तौड की मरम्मत को ढाह देने से हुई धनहानि और पुर, माडल, खैराबाद, माण्डलगढ, जहाजपुर, सावर, फूलिया, बनेडा, हुरडा, और बदनौर आदि परगनो का शाही सीमा मे सम्मिलित किया जाना उन्हें अत्यन्त अशोभनीय प्रतीत हुआ। विद्रोह की भावनाए बडे आवेग से उनके मन मे उठी और वे अवसर की प्रतीक्षा करने लगे सौभाग्य से वह अवसर उन्हे शीघ्र ही मिल गया।

वृद्ध बादशाह शाहजहा के बीमार पडते ही उसके दाराशिकोह, औरंगजेब, मुराद और शुजा इन चारो पुत्रो के हृदयो मे साम्राज्य हथियाने की प्रबल लालसा उत्पन्न हो गई और वे अपना पक्ष मजबूत बनाने मे जुट गये और आपस मे ही लडने लगे। स्वभावत शाही फौज भी चार भागो मे विभक्त हो गई और उसे आपस मे ही लडने को बाध्य होना पडा। चतुर और बुद्धिमान महाराणा ने ऐसे सुअवसर को हाथ से जाने देना उचित नही समझा, उन्होंने बादशाही

प्रदेश को लूटने के लिये प्रस्थान किया। सबसे प्रथम उन्होंने मांडलगढ़ को विजय किया, फिर वह वैशाख सुदी १० सम्वत् १७१५ को चित्तौड़ से चले और माडल को विजय कर वहां से बाईस हजार रुपये लिये। इसी प्रकार बनेड़ा वालों से छत्तीस हजार रुपये, शाहपुरा वालों से बाईस हजार रुपये दण्ड स्वरूप लिये। जहाजपुर, सावर, फूलिया आदि पर अपना आधिपत्य प्रस्थापित कर वह मालपुरा पहुँचे, वहां वे नौ दिन रहे और उसे लूटा। इस लूट में अगणित सम्पत्ति उनके हाथ लगी। टोडे वालों से छ हजार रुपये लिये, इसके अनन्तर महाराणा ने टोंक, सांभर, लालसोट और चाटसू पर भी आक्रमण कर दण्ड वसूल किया तथा वर्षा ऋतु के पूर्व ही उदयपुर लौट आये।

शाहजहां के चारों शाहजादे साम्राज्य के लिये लालायित थे और एक दूसरे के खून के प्यासे थे। इतिहास में स्पष्ट है कि महाराणा ने औरंगजेब का पक्ष लिया और औरंगजेब जब समूनगर के युद्ध मे विजयी होकर आगरे आया तब आषाढ सुदी १ वि० सम्वत् १७१५ को महाराणा के भाई अरिसिंह तथा कुंवर सुलतानसिंह ने सलीमपुर मे उपस्थित होकर औरंगजेब को विजय की बधाई दी। उसने कुंवर सुलतानसिंह को खिलअत, मोतियों की कंठी, सरपेच जड़ाऊ छोगा दिया और महाराणा के लिए एक जड़ाऊ बहुमुल्य सरपेच प्रदान किया। मालूम होता है, कुंवर सुलतानसिंह औरंगजेब के साथ ही रहा क्योंकि श्रावण सुदी ३ वि० सम्वत् १७१५ को अपने पिता को कैद कर मुगलराज्य का स्वामी बनने के पश्चात् जब वह दाराशिकोह का पीछा करने के लिये पंजाब जाने लगा तब उसने कुंवर को सरपेच और जड़ाऊ तुर्रा देकर बिदा किया और कुछ दिन बाद अरिसिंह को भी खिलअत, जड़ाऊ जमधर, मोतियों की कंठी तथा सामान सहित घोड़ा देकर रवाना किया। उसने भाद्रपद वदी ४ वि० सम्वत् १७१५ को महाराणा राजसिंह को एक फरमान भेजकर छः हजारी जात, छः हजार सवार का मनसब और पांच लाख रुपये, एक हाथी व हथिनि उपहार में दिये तथा बदनौर, मांडलगढ़ के अतिरिक्त डूंगरपुर, बांसवाड़ा और ग्यारसपुर भी महाराणा को प्रदान किये। इसी फरमान के द्वारा उसने कुंवर सरदारसिंह तथा अरिसिंह को अपने पास बुला लिया। शाहजादा शुजा से हुए युद्ध में कुंवर सरदारसिंह शाही सेवा मे उपस्थित था। औरंगजेब ने उसे भी मोतियों की कंठी, जड़ाऊ सरपेच और छोगा उपहार मे दिया।

दाराशिकोह ने भी महाराणा राजसिंह को अपनी ओर मिलाने का भरसक प्रयत्न किया उसने माघ सुदी २ वि० सम्वत् १७१५ को एक पत्र भी भेजा किन्तु महाराणा ने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, प्रत्युत औरंगजेब की सहायता करते रहे और अपनी सेना भी उसकी मदद के लिये भेजते रहे।

उपरोक्त विवरण से प्रमाणित हो जाता है कि महाराणा राजसिंह ने औरंगजेब को सभी प्रकार से अपनाया। किन्तु यह अपनत्व अधिक दिनो तक नही टिक सका। औरंगजेब साम्राज्य लोलुप, स्वार्थी, कुटिल और धर्मान्ध था। उसके विपरीत महाराणा राजसिंह स्वतन्त्रता के उपासक, उदार, विवेकी और धर्मपरायण थे। विरोधी भावनाओं के दो हृदयों में मित्रता निभ भी कैसे सकती थी? शीघ्र ही वह अवसर आया जब उन दोनों मे गहरी शत्रुता हो गई।

शत्रुता की यह चिनगारी किशनगढ के राजा मानसिंह की बहिन चारुमति के विवाह की घटना से प्रस्फुटित हुई। औरंगजेब उसकी सुन्दरता की ख्याति सुनकर उससे विवाह करना चाहता था। निर्बल मानसिंह ने विवश होकर इस विवाह की स्वीकृति दे दी। किन्तु वैष्णव धर्म की उपासिका चारुमति औरंगजेब की बेगम होने की अपेक्षा मृत्यु से आलिंगन करना अधिक श्रेयस्कर समझती थी। उसने प्रथम राजपूताने के समस्त महाराजाओ की ओर दृष्टि दौडाई कि कौन ऐसा समर्थ है, जो सम्राट से शत्रुता करे, तथा उससे विवाह करे, उसके सतीत्व तथा धर्म की रक्षा करे? तब उसकी आंखें महाराणा राजसिंह पर आकर टिक गईं। आत्मविश्वास से प्रेरित होकर उसने उन को एक करुणाजनक पत्र लिखा। इस पत्र के पाते ही महाराणा ने एक सभा भरवाई, उस सभा मे उस पत्र को प्रस्तुत किया गया तथा सभी सामन्तों ने निवेदन किया कि आप चारुमति से विवाह करके उसका उद्धार कीजिये। तब महाराणा ने वि० सम्वत् १७१७ मे किशनगढ जाकर उससे विवाह किया और उसे उदयपुर ले आये।

शत्रुता की वह चिनगारी तब और अधिक धधकी जब औरंगजेब ने समस्त तीर्थस्थानो के मन्दिरो को तोडने के आदेश प्रसारित किये और महाराणा राजसिंह ने उसका विरोध किया, केवल शाब्दिक विरोध ही नही किया वरन् धैर्य पूर्वक वल्लभ सम्प्रदाय के द्वारकाधीश की मूर्ति की कांकरोली मे प्रतिष्ठा कराई और श्रीनाथजी की मूर्ति को सीहोड (नाथद्वारा) मे पधराकर अभिषिक्त कराया। श्रीनाथजी जी की मूर्ति के गुसाईं मूर्ति को लेकर बूंदी, कोटा, जोधपुर आदि के महाराजाओ के पास गये, किन्तु औरंगजेब के भय से किसी ने उनकी सुरक्षा का बीडा नही उठाया, जब वे महाराणा राजसिंह के पास पहुँचे तो वीरवर तथा धर्म प्राण महाराणा ने बडे हर्ष से कहा कि "आप भगवान को प्रसन्नता पूर्वक ले आईये। मेरे एक लाख राजपूतो के मस्तक धड से अलग होने पर ही औरंगजेब श्रीनाथजी की मूर्ति को स्पर्श कर सकेगा।"

शत्रुता की वह चिनगारी तब और भी अधिक भडकी जब धर्मान्ध औरंगजेब ने हिन्दू प्रजा पर "जजिया" नामक कर लगाया तथा सख्ती के साथ उसे वसूल करने लगा। महाराणा राजसिंह को इससे आंतरिक पीडा हुई, वे उत्तेजित हो उठे उनके धार्मिक तथा स्वाभिमानी हृदय मे क्रान्ति की भावनाएं जागृत होगईं और उन्होंने औरंगजेब को एक ओजस्वी तथा नीति से भरा पत्र भेजकर अपना विरोध प्रकट किया। उन्होंने निश्चय किया कि स्वयं तो वह जजिया देंगे ही नहीं मेवाड की जनता से भी वसूल नही होने देंगे।

इस शत्रुता की चिनगारी का विस्फोट तब हुआ जब जोधपुर के बालक राजा अजीत-सिंह को उन्होंने अपने यहां आश्रय दिया और औरंगजेब के बार बार मांगने पर भी नही भेजा।

औरंगजेब क्रुद्ध होकर भाद्रपद सुदी ८ वि० संवत् १७३६ को महाराणा से युद्ध करने के लिये दिल्ली से विशाल सेना लेकर चला। उसने शाहजादा अकबर को आज्ञा दी कि शाही सेना के पहुँचने के पूर्व अजमेर पहुँच जावे। तेरह दिन मे बादशाह अजमेर पहुँचा और आना-सागर के महलों मे ठहरा।

औरङ्गजेब के मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिये अजमेर आने की सूचना महाराणा को मिल गई थी, किन्तु वे तनिक भी नहीं घबड़ाये। स्वतन्त्रता के उपासक तथा धर्म के आराधक इस बात की चिन्ता नहीं करते कि उनके विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है। वे तो केवल स्वतन्त्रता तथा धर्म पर उत्सर्ग होना जानते हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार महाराणा ने भी युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी। सबसे प्रथम उन्होंने एक सभा का आयोजन किया। जिसमें कुवर भीमसिंह, कुंवर जयसिंह तथा मेवाड़ राज्य के अधिकांश स्वामीभक्त सामन्त उपस्थित हुये। इस सभा मे सर्व सम्मत्ति से निश्चय हुआ कि बादशाह की विशाल सेना से प्रत्यक्ष युद्ध करने से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक है। विजय की सम्भावना भी कम है, अतएव सेना लेकर पहाडों में चले जाना और वहां से युद्ध करना विजय पाने का सुगम तथा श्रेयस्कर मार्ग है।

इस निश्चय के अनुसार महाराणा अपनी सेना तथा परिवार सहित पहाड़ों में चले गये एवं वहां से युद्ध का संचालन करने लगे।

बादशाह ने अपने सेनापतियों को तथा शाहजादा अकबर को महाराणा का पीछा करने तथा मेवाड़ को नष्ट करने के आदेश दिये।

यह युद्ध महाराणा के जीवन के अन्तिम क्षण तक चलता रहा। महाराणा ने हार नही मानी, न कभी सुलह करने का विचार किया। इस युद्ध का विस्तृत वर्णन हम राजा भीमसिंह के जीवन वृतान्त मे करेंगे क्योकि इस युद्धावली में प्रमुख भाग उनका ही रहा है, और उन्होंने शाही सेना को त्रसित कर नाकों चने चवाये थे। यहां तो हम केवल इतना ही लिखेंगे कि महाराणा के कुशलता पूर्वक युद्ध संचालन करने से तथा कुंवर भीमसिंह के अतुल पराक्रम तथा धुंआधार आक्रमणों से मुगल सम्राट को अत्यन्त हानि उठानी पड़ी और लाभ कुछ भी नहीं हुआ।

महाराणा की आयु ५१ वर्ष की हो चुकी थी। एक दिन महाराणा के ध्यान में आया कि मैंने कुंवर भीमसिंह का पाटवी होने का अधिकार छीनकर कुंवर जयसिंह को दे दिया है। कही ऐसा न हो कि मेरी मृत्यु के पश्चात् दोनों भाई आपस मे लड़कर मेवाड़ राज्य को नष्ट कर देवें।

इस विचार के आते ही उन्होंने कुवर भीमसिंह को बुलाकर कहा "वीरवर-पुत्र, मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है। तुम्हारा अधिकार छीनकर जयसिंह को दे दिया है। मुझे इसका पश्चाताप है, किन्तु अपने वचन पर दृढ़ रहना राजा का कर्तव्य होने से, मुझे वैसा करने के लिये बाध्य होना पड़ा है। मुझे भय है कि तुम दोनों भाई आपस में लड़कर मेरे प्रिय देश मेवाड़ का नाश न कर दो। अतएव पुत्र यह तलवार लो और मेरे सामने भाई जयसिंह का मस्तक उड़ा दो।"

अपने आदर्श पिता के व्यथा भरे शब्द सुनकर दृढ़ स्वर मे भीमसिंह ने कहा "पिताजी मैं एकलिंगजी को साक्षी कर के प्रतिज्ञा करता हूं कि आपके स्वर्गवास के पश्चात् मैं देवारी की सीमा के अन्दर अन्नजल ग्रहण नही करूंगा। जयसिह मेरा छोटा भाई है, अपना मेवाड़ के

सिंहासन का अधिकार मैं उसे सहर्ष सौंपता हूँ। मुझे तो केवल आपका आशीर्वाद चाहिये, उसके पुण्य प्रताप से मैं कहीं भी रोटी कमा खाऊंगा। आप निश्चिन्त रहिये।"

पिता के हृदय को सान्त्वना देकर कुंवर भीमसिंह अपने युद्धस्थल की ओर रवाना हो गये। इस आश्वासन से महाराणा को मेवाड की सुरक्षा का विश्वास हो गया।

इसके कुछ दिन पश्चात् कार्तिक सुदी १० वि० संवत् १७३७ को औडा ग्राम मे अचानक महाराणा का स्वर्गवास हो गया, किंवदन्ति यह भी है कि उनको विष दिया गया था।

महाराणा राजसिंह के जीवन का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि शिल्पकला पर उनका विशेष प्रेम था, उन्होने अपने कुंवरपदे मे सर्वऋतु विलास नामक महल तथा बावडी सहित एक बाग बनवाया। राजसिंहासन पर विराजित होने पर रंगसागर तालाब, अपनी माता जनादे के नाम पर जना सागर तालाब तथा कई मन्दिर और महल बनवाये।

उनका सबसे बडा और महत्वपूर्ण शिल्पकार्य "राजसमुद्र" नामक एक विशाल व अद्‌भुत तालाब है। इसकी नीव खोदने के कार्य का प्रारम्भ माघ वदी ७ वि० सवत् १७१८ को हुआ। इसकी आधार शिला पंचरत्नो के साथ पुरोहित गरीबदास के ज्येष्ठ पुत्र रणछोडदास के हाथ से रखवाई गई और चुनाई का कार्य प्रारम्भ किया गया। इस तालाब को बनाकर तैयार होने मे पूरे चौदह वर्ष लगे। इसकी प्रतिष्ठा का कार्य राजप्रशस्ति के अनुसार माघ सुदि ९ वि० सवत् १७३२ को प्रारम्भ हुआ।

प्रतिष्ठा का उत्सव बहुत ही समारोह पूर्वक मनाया गया। महाराणा ने नगे पैर चलकर १४ कोस की यह यात्रा पाच दिन मे सम्पूर्ण की। प्रतिष्ठा के दिन महाराणा एक भुक्त रहे और रात्रि जागरण किया। विधिवत होम हवन आदि धार्मिक कार्य सम्पन्न किये गये। हजारो ब्राह्मणो को मुक्तहस्त से दान दिये गये तथा उन्होंने मुक्तकंठ से आशीर्वाद दिये, दो सोने की और पाँच चादी की तुलाएं की गईं। इस उत्सव को देखने के लिए इतर प्रान्तों से ४६,००० ब्राह्मण और अन्य लोग आये थे। राजसमुद्र को बनवाने मे १०५०७६०८ रुपये खर्च हुये।

राजसमुद्र का निर्माण मेवाड के लिये ही नही, भारत के लिये भी महाराणा राजसिंह की अपूर्व देन है। साथ ही उन्होंने एक अभूतपूर्व कार्य और भी किया, वह है "राज प्रशस्ति महाकाव्य"। पचीस सर्गो की पचीस शिलाखण्डो पर उत्कीर्ण यह प्रशस्ति भारत की सबसे बड़ी प्रशस्ति है। काव्य कला की दृष्टि से तथा इतिहास की दृष्टि से भी इस प्रशस्ति का बहुत बड़ा महत्व है। इन पचीस शिला खण्डो को नौ चौकी बाध पर ताको मे जड दिया गया है। दर्शको के लिये राजसमुद्र दर्शनीय और राजप्रशस्ति महाकाव्य पठनीय तथा मननीय है।

महाराणा राजसिंह की अठारह रानिया थी। उनमे सुलतानसिंह, सरदारसिंह, भीमसिंह, जयसिंह, गजसिंह, सूरतसिंह, इन्द्रसिंह, बहादुरसिंह, तथा तख्तसिंह नौ पुत्र तथा पुत्री इन्द्रकुंवरी थी।

महाराणा राजसिंह सच्चे क्षत्रिय, स्वतन्त्रता के उपासक, धार्मिक विचारो के, वीर, पराक्रमी तथा रणकुशल थे। निर्भीकता तथा कर्तव्यपरायणता उनके विशेष गुण थे। औरङ्गजेब

की सैनिक शक्ति से न तो वे कभी भयभीत हुये न कभी कर्तव्यच्युत हुये। उनकी तेजस्विता तथा निडरता इसी से प्रकट होती है कि वहादुरखां नामक शाही कर्मचारी की ओर से वादशाह से सुलह करने के लिये लिखा आने पर उन्होंने वदी वहादुरी से उसे लिखा कि "मैंने सुलह करा देने के लिये पहिले कभी नही लिखा। मैं सुलह नहीं चाहता, सुलह की वात मुझसे मत करो और तुमसे मेरे खिलाफ जितना वन पड़े अवश्य करो।"

वादशाह इससे चिढ़ गया और हुसैनअली खां को लिखा कि "राणा की ओर से सुलह के लिये वकील आये तो सुलह मत करो और उसे तम्वीह करो।"

महाराणा प्रताप के अनन्तर महाराणा राजसिंह ही एक ऐसे वीर पुङ्गव हुये जिन्होंने त्याग के स्नेह से लवालव भरे स्वतन्त्रता दीपक मे कर्तव्य की दीपशिखा को आजीवन प्रज्वलित रखा। महाराणा कवि भी थे, उन्होंने अपनी एक कविता में कर्तव्य की महिमा वताकर बड़े सुन्दर ढंग से यह प्रतिपादित किया है कि कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति की कीर्ति ही जीवित रहती है और शरीर नष्ट हो जाता है। अतएव उस कीर्ति को स्वर और शब्द की माला में गूंथकर प्रकट करने वाले कवियों की पूजा करो।

कहां राम कहां लखण, नाम रहिया रामायण।
कहां कृष्ण वलदेव, प्रगट भागोत पुरायण॥
वालमीकि शुक व्यास, कथा कविता न करंता।
कुण सरूप सेवता, ध्यान मन कवण धरंता॥
जग अमर नाम चाहो जिके, सुणो सजीवण आखरां।
राजसी कहे जग राणरो, पूजो पांव कवीसरां॥

बनेड़ा राज्य की वंशावली
(महाराणा राजसिंह तथा राजा भीमसिंह से राजा गोविन्दसिंह तक)

बनेड़ा राज्य का इतिहास

राजा भीमसिँह (प्रथम)

बनेडा राज्य के संस्थापक राजा भीमसिंह का जीवन अनेक अलौकिक तथा वीरता भरी घटनाओ से परिपूर्ण है। उनके जीवन प्रवाह की गति को प्रमुखतया दो मोड मिले हैं। इसी कारण उनका जीवन स्वभावत दो भागो मे विभक्त हो जाता है। इतिहास का परिशीलन करने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि हर एक भाग का दृष्टिकोण एक दूसरे से विपरीत था। प्रथम भाग जिसे पूर्वार्ध कहा जा सकता है, क्रान्ति की आग भरी भावनाओ से ओत प्रोत था। पितृ भक्ति, स्वदेश की सेवा, विदेशी शत्रुओ के विरुद्ध किया जानेवाला घनघोर संग्राम आदि भावनाए उनके किशोर एवम् तरुण जीवन को सचालित करती रही हैं किन्तु राजनैतिक परिस्थितियो के कारण बाध्य होकर उन्हे उन भावनाओं से विमुख होना पडा तभी से उनके जीवन का उत्तरार्व प्रारम्भ होता है। उनका समस्त उत्तरार्व जीवन सेव्य-सेवक भाव मे व्यतीत हुआ। जिस लगन, कर्तव्य-शीलता, पराक्रम तथा नैतिकता से पूर्वार्ध जीवन उन्होंने बिताया, उत्तरार्ध-जीवन भी उसी प्रकार व्यतीत किया। दोनो भागों मे उनकी वीरता पराक्रम और प्रभाव अक्षुण्ण रहे हैं। जिनका विशद विवेचन यथा समय किया जायगा।

जन्म—उनका जन्म वि० स० १७१० पौष कृष्ण ११ की रात्री को हुआ। इनके जन्म के कुछ समय पश्चात् राजकुमार जयसिंह का भी जन्म हुआ। जिस समय इन दोनों राजकुमारो के जन्म की सूचना देने सेविकाये पहुँची उस समय महाराणा राजसिंह सो रहे थे। जयसिंह के जन्म की सूचना देने वाली सेविका पैरों की ओर तथा भीमसिंह के जन्म की सूचना देनेवाली सिरहाने की ओर खडी हो गई। जब महाराणा जागे तब उनकी दृष्टि प्रथम महाराणी पुंवार की सेविका की ओर गई तब उसने निवेदन किया कि "महाराणी पुंवार के गर्भ से राजकुमार का जन्म हुआ है।" फिर मस्तक की ओर खडी महाराणी चहुवान की सेविकाने प्रार्थना की कि "महाराणी चहुवान के गर्भ से राजकुमार का जन्म इससे पूर्व हुआ है।" महाराणा ने कह दिया कि "जिसके जन्म की सूचना हमें पहले मिली वह बडा है, जिसकी सूचना बाद मे मिली वह छोटा है।"[1]

महाराणा राजसिंह के उक्त निर्णय का उस समय कोई विशेष महत्त्व नही था क्योंकि भीमसिंह तथा जयसिंह के जन्म के पूर्व दो राजकुमार सुलतानसिंह और सरदारसिंह जिवित थे। उनकी जीवित दशा मे भीमसिंह अथवा जयसिंह को युवराज पद मिलना नितान्त असम्भव था। दैववशात् सुलतानसिंह तथा सरदारसिंह की मृत्यु हो गई तब युवराज पद की समस्या

१—वीर विनोद पृष्ठ ४६१। १।

उत्पन्न हुई। महाराज राजसिंह, जन्म के समय जयसिंह को ज्येष्ठ घोषित कर चुके थे अतएव वह अपने वचन पर दृढ़ रहे और उन्होंने जयसिंह को पाटवी राजकुमार बना दिया।

राजकुमार भीमसिंह ने नत मस्तक हो पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर अपनी पितृ-भक्ति का अनुपम परिचय दिया। आजीवन वह उस आज्ञा का पालन दृढ़ता पूर्वक करते रहे। महान् मेवाड़ राज्य के उपभोग के प्रलोभन मे आकर कोई ऐसा कार्य जिससे पिता की आज्ञा भंग होती हो उन्होंने नहीं किया। मेवाड़ राज्य को तिनके के समान सहज त्याग दिया। यहां तक कि इस राज्य से उन्होंने कोई जागीर भी ग्रहण नही की। उनका यह त्याग इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाने योग्य है।

राजकुमार भीमसिंह की माता का नाम जगीसकुंवर था वह बेदला के पूर्विया चहुवान राव रामचन्द्र की पुत्री थी।

राजनीति में प्रवेशः—राजकुमार भीमसिंह को सामरिक शिक्षा दी गई थी जो उन दिनों राजकुमारों के लिए नितान्त आवश्यक थी। वह युद्ध-कला में पारंगत थे। तत्कालीन समस्त शस्त्रों के उपयोग करने मे चतुर, सैन्य संचालन करने मे कुशल तथा समरांगण में कराल काल के समान थे।[1]

राजनीतिक प्रांगण मे उनका प्रत्यक्ष प्रवेश वि० सम्वत् १७३६ में हुआ। यह वह समय था जब कि बादशाह औरंगजेब महाराणा राजसिंह से अप्रसन्न हो गए थे। इस अप्रसन्नता के प्रमुख कारण चार थे १—बादशाह की मंगेतर कृष्णगढ की राजकुमारी चारुमति से महाराणा राजसिंह का विवाह करना २—जजिया कर का घोर विरोध कर बादशाह को पत्र लिखना ३—श्रीनाथजी तथा द्वारकाधीश को अपने राज्य में स्थान देकर संरक्षण का वचन देना ४—स्वर्गीय जसवंतसिंह राठौड के पुत्र अजीतसिंह को अपने संरक्षण में रखना।

उपरोक्त कारणों से बादशाह महाराणा राजसिंह पर कोपित हो गये। वि० सं० १७३६ भाद्रपद सुदी ८ को एक विशाल सेना लेकर वह मेवाड पर आक्रमण करने के हेतु दिल्ली से अजमेर की ओर चल पड़े। उन्होंने शाहजादा अकबर को शीघ्र अजमेर रवाना कर दिया। बादशाह तेरह दिन बाद अजमेर पहुँचकर आनासागर के महलों में ठहरे।[2]

बादशाह के दिल्ली से रवाना होने की तथा मेवाड पर आक्रमण करने की योजना की सूचना जब महाराणा राजसिंह को मिली, तब उन्होंने अपने सामन्तों की तथा सम्बन्धियो की एक सभा बुलाई। उस सभा मे राजकुमार भीमसिंह तथा राजकुमार जयसिंह उपस्थित थे। पुरोहित गरीबदास के प्रस्ताव पर सर्वानुमत से यह निर्णय किया गया कि "बादशाह की सेना बहुत अधिक है उससे प्रत्यक्ष युद्ध करना लाभदायक नही होगा अतएव पहाड़ों में जाकर वहां से युद्ध करना श्रेयस्कर है।"

१—राजविलास श्लोक ७७ से ६३

२—उदयपुर राज्य का इतिहास। (ओझाजी)

इस योजना के अनुसार महाराणा अपने सम्बन्धी, सामन्त, सेना तथा जनता सहित पहाड़ों में चले गये। इस समय उनके पास बीस हजार सवार तथा पच्चीस हजार पैदल थे। धनुषबाण वाले पचास हजार भील भी आकर उनकी सेना में सम्मिलित हो गये। महाराणा ने उन्हें आदेश दिया कि "दस दस हजार के झुण्ड बनाकर घाटों और नाकों का प्रबंध कर बादशाह की सेना का मार्ग रोको तथा उनकी रसद लूट कर हमारे पास पहुँचाओ।"

बादशाह की युद्ध योजना यह थी कि समस्त पर्वतीय प्रदेश को घेर कर उदयपुर, राजसमुद्र तथा देसुरी घाटे से उसमें प्रवेश किया जावे। इस योजना को सफल बनाने के लिए बादशाह ने बारह हजार सेना देकर शाहजादा अकबर को चित्तौड जिले में नियुक्त किया। उसकी अध्यक्षता में हसन अली खा तथा तहव्वर खा की नियुक्ति की गई।[1]

महाराणा पहाड़ों में रहकर युद्ध का संचालन कर रहे थे। पहाडो से निकलकर उनकी सेना बादशाह की सेना पर बार-बार आक्रमण करने लगी। इन आक्रमणों में प्रमुख भाग राजकुमार भीमसिंह का था। उनके आक्रमण अचानक और तीर के समान होते थे। पर्वतीय प्रदेश से अपरिचित होने के कारण साम्राज्य के सैनिक भयभीत हो भाग जाते थे। राजकुमार भीमसिंह ने साम्राज्य के सैनिको के लिए आनेवाली रसद कई बार लूट ली थी। एक बार दस हजार बैलो पर मालवे से मुगल सेना के लिए रसद आरही थी, राजकुमार भीमसिंह ने अचानक हमला करके उसे लूट लिया।[2] उन्होंने बादशाह के कई थानो पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट कर दिया।

राजकुमार भीमसिंह के प्रलयंकारी आक्रमणो से तथा दूसरे राजपूत सामन्तो की मार से बादशाह के सैनिक इतने भयभीत हो गए थे कि पहाडो मे जाने से मना कर देते थे। सैनिक ही नही बादशाह के सेनापति हसनअली खा तथा तहव्वरखा भी पहाडो मे जाने से डरने लगे थे। साम्राज्य के थाने इतने अरक्षित हो गए थे कि मुगल सेना का प्रत्येक अफसर थानेदारी स्वीकार करने मे भय खाता था। बार बार शाही रसद लूट ली जाने से बादशाह की सेना भूखो मरने लगी थी।

शाहजादा अकबर राजपूत सेना पर विजय प्राप्त नही कर सके, न मेवाड को ध्वस्त कर सके। उनकी इस असफलता से बादशाह की पहली युद्ध योजना विफल हो गई। वह शाहजादा अकबर पर बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने उनकी नियुक्ति चित्तौड से हटाकर मारवाड मे कर दी तथा उनके स्थान पर शाहजादा आजम को नियुक्त कर दिया।

अब बादशाह ने दूसरी युद्ध योजना इस प्रकार बनाई कि शाहजादा आजम देबारी तथा उदयपुर से बढे, शाहजादा मुअज्जम राजनगर की ओर से तथा शाहजादा अकबर देसुरी से बढे। इस प्रकार तीनो ओर से बादशाह की सेना बढकर महाराणा और उनकी सेना को घेर लेवे। शाहजादा आजम एवं शाहजादा मुअज्जम के समस्त प्रयत्न विफल होगये। शाहजादा अकबर की कार्यवाही का विवेचन निम्न प्रकार है —

१—उदयपुर राज्य का इतिहास (श्री ओझाजी)

२—अदबई आलमगिरी पत्र ६६६-६६७

शाहजादा अकबर आषाढ़ सुदी १० सं० १७३७ को मारवाड़ की ओर चले। तहव्वर खां उनकी हरावल के साथ आगे रहा। श्रावण सुदी ३ को वह दोनों सोजत पहुँचे। मारवाड़ मे भी बादशाह की सेना को मेवाड़ से अधिक सफलता नही मिली, क्योंकि राठौड़ शाही थानों पर आक्रमण कर रहे थे।

शाहजादा अकबर को बादशाह का आदेश मिला कि "मुख्य स्थान सोजत को सुरक्षित कर नाडोल जावे और वहां से तहव्वरखां की अध्यक्षता में अपने हरावल सेना को देसुरी घाटे से मेवाड़ मे भेजे तथा कुम्भलगढ़ पर आक्रमण करे।"

तहव्वरखां राजपूतों के भयानक आक्रमणों से पहिले से ही भयभीत था। उसने नाडोल जाने के लिए आगे बढ़ने से मना कर दिया और सेना सहित खरवे में ही एक मास तक पड़ा रहा, फिर नाडोल पहुँचा।

शाहजादा अकबर आश्विन के अन्त में मार्ग में थाने बैठाते तथा रसद का प्रबन्ध करते हुए नाडोल आये।[1]

बादशाह २१ दिन तक देवारी मे रहे। राजपूतों के धुवांधार आक्रमणों के कारण हसनअली खां ने बादशाह से निवेदन किया कि "वह चित्तौड़ चले जावें"। बादशाह चित्तौड आये[2] और वहां से अजमेर चले गये।[3]

बादशाह के चित्तौड़ चले जाने के बाद महाराणा राजसिह पहाड़ों से निकलकर नाई ग्राम में आये, वहां से कोटड़ा आकर ठहरे। बादशाह ने मेवाड़ के आक्रमणों मे अनेक मन्दिरों को गिराया था। पवित्र देव-प्रतिमाओं को भंग कर अपमानित किया था तथा प्रिय मेवाड़ देश का विध्वंस किया था, उसे देख महाराणा बहुत क्रोधित हुवे। उन्हें यह भी सूचना मिली थी कि बादशाह ने शाहजादा अकबर को सैन्य सहित मारवाड़ की ओर भेजा है। महाराजा अजीतसिंह के संरक्षण का भार उन पर होने से उनका उत्तरदायित्व मारवाड़ की रक्षा करने का भी था। उन्होंने राजकुमार भीमसिह को बुलाकर बादशाह के अत्याचार का बदला लेने को गुजरात पर आक्रमण करने की तथा मारवाड़ मे जाकर देशभक्त राठौड़ों की सहायता करने की आज्ञा दी।[4]

अपनी बलशाली सेना लेकर वीरवर राजकुमार भीमसिह गुजरात की ओर चले। कवि मान ने "राजविलास" काव्य ग्रंथ मे राजकुमार भीमसिह तथा उनकी सेना का वर्णन अत्यन्त ओजस्विनी भाषा में किया है। शब्दों की प्रखरता और भावों की तीव्रता से ऐसा लगता है मानो बरसाती नदी दोनों कूलों से टकराती हुँकारती चली जा रही हो। उसने लिखा है "जब राजकुमार भीमसेन की सेना चली तब धरती डोल उठी। शहर के कोट गिर गए।

१—उदयपुर राज्य का इतिहास (श्री ओझाजी)

२—राजविलास

३—उदयपुर राज्य का इतिहास

४—राजविलास। रेऊजी कृत मारवाड़ का इतिहास।

गढ ढह गये। शत्रु के हृदय दहल गये। ऐसी भयानक सेना लेकर राजकुमार भीमसिह ने गुजरात की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे उन्होंने वडनगर को लूटकर चालीस हजार रुपये दण्ड स्वरूप वसूल किये, बिसनगर तथा सिद्धपुर को लूटते हुए वह ईडर पहुँचे। वहा के किले पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया और अपने प्रभाव से वहा के राजा को बादशाह के विरुद्ध युद्ध करने के लिए बाध्य किया। वहा से वह अहमदनगर गये और दो लाख रुपये का सामान लूटा। वहा की सबसे बडी मस्जिद तथा तीन सौ छोटी मस्जिदों को धराशायी कर दिया। खम्भात को जीतकर सूरत को लूटा। जूनागढ को विजय कर कच्छ तक अपनी धाक जमादी।[1]

इस प्रकार राजकुमार भीमसिह अपने अपूर्व पराक्रम से मालवा और गुजरात को आतंकित कर तथा अपार धन लेकर लौट आये और राठौडों की सहायता के लिए मारवाड की ओर रवाना हुये। मार्ग मे उन्हे ज्ञात हुआ कि शाहजादा अकबर और तहव्वरखा अपने सैन्य सहित नाडोल मे है वह अपनी सेना सहित उधर चल पडे।

तहव्वरखा राजपूतों की मार से इतना भयभीत हो गया था कि पर्वतीय मार्ग से आगे बढने का उसको साहस नही होता था। शाहजादा अकबर के बहुत दबाव डालने पर वह आश्विन सुदी १४ विक्रम संवत् १७३७ को देसुरी के घाटों के पास पहुचा। राजकुमार भीमसिह को इसकी सूचना मिलने ही उन्होंने अपनी और राठौडों की सेना के दो भाग किये। उन्होंने राठौड़ गोपीनाथ (घाणेरावका) तथा सोलंकी वीका (विक्रम रूपनगर का) को साथ लेकर एक ओर से तथा राठौड़ दुर्गादास और सोनगजी ने दूसरी ओर से मुगल सेना पर आक्रमण किया। घमासान युद्ध हुआ किन्तु पूर्ण सफलता किसी पक्ष को नही मिली, फिर भी प्रबलता राजपूतों की ही रही और शाही सेना की पराजय हुई।[2]

जहा राजकुमार भीमसिह के तीव्र आक्रमणों से शाही सेना भयभीत एवं त्रसित हुई, वहाँ राणा राजसिह के दूसरे सामन्तों ने भी शाही सेना के छक्के छुडाने मे कोई कोर कसर उठा नही रखी। मारवाड के राठौड वीरों ने भी इसमे हार्दिक सहयोग दिया। सिसोदियों तथा राठौडों के सामूहिक आक्रमणों से बादशाह औरंगजेब का मेवाड को तहस नहस करने का तथा उदयपुर पर अधिकार कर राणा राजसिह को आधीन करने का स्वप्न भग होगया। बादशाह की विजय की सभी योजनाये विफल हो गईं। तब उन्हे शाहजादा आजम को लिखना पडा कि वह मेवाड से जहा तक हो सके शीघ्र सुलह कर लेवे।[3] किन्तु दुर्भाग्य वश इसी समय कार्तिक सुदी १० सम्वत् १७३७ को महाराणा राजसिह का स्वर्गवास होगया और सुलह नही होसकी।

महाराणा जयसिह उदयपुर राज्य सिहासन पर आरूढ हुये। तहव्वरखां अभी भी देसुरी के घाटे मे पडाव डाले पडा था। बहुत समय व्यतीत होने पर भी शाहजादा अकबर

१—राजविलास, राजप्रशस्ति।

२—मारवाड की ख्यात में अजीतसिंह के वृतान्त में लिखा है कि आसोज सुदी १४ सं० १७३७ गांव नाडोल रै लडाई हुई एक अणी में तो राणो भीम राजसिंघोत थो न एक अणी में राठौड दुर्गादासजी सोनगजी या राठोडा की फतह हुई।

३—अदब ई आलमगिरी, राजप्रशस्ति।

और तहव्वरखां के आगे बढ़ने की सूचना जब बादशाह को नहीं मिली, तब उन्होंने मार्ग शीर्ष शुक्ल २ सं० १७३७ को हसनअलीखां को शाहजादा अकबर के पास भेजा। उनके आने पर शाहजादा अकबर स्वयं देसूरी गये और तहव्वरखां को छः हजार सवार तथा तीन हजार बन्दूकची देकर जीलवाड़े की ओर भेजा। इसकी सूचना महाराणा जयसिंह को मिलने पर उन्होंने अपने भाई भीमसिंह तथा बीका सोलंकी को मुगलसेना का सामना करने के लिये भेजा। आठ दिन तक युद्ध होता रहा। दोनों दलों की बहुत हानि हुई। शाही सेना विजयी हुई।[1] सम्भव है यह युद्ध और कुछ दिनों तक चलता किन्तु इसी समय तत्कालीन बादशाही रंगमंच पर एक अद्भुत घटना घटित हुई और उसने मेवाड़ राज्य के सारे राजनैतिक वातावरण को ही परिवर्तित कर दिया।

वह घटना है शाहजादा अकबर का विद्रोही होना। महाराणा राजसिंह की मृत्यु हो जाने से बादशाही सेना की प्रबलता बढ़ने की तथा आक्रमणों में वृद्धि होने की सम्भावना थी अतएव मेवाड़ और मारवाड़ के राजपूतों ने यह युक्ति सोची कि यदि शाहजादाओं में से किसी शाहजादा को बादशाह के विरुद्ध उकसाकर उसके द्वारा विद्रोह खड़ा कर दिया जावे तो राजपूतों के विजय की पूरी-पूरी सम्भावना है। उन्होंने प्रथम शाहजादा मुअज्जम को विद्रोही बनाना चाहा किन्तु मुअज्जम ने इसे स्वीकार नहीं किया, तब उनका ध्यान शाहजादा अकबर की ओर गया। महाराणा जयसिंह ने राठौड़ दुर्गादास, राव केसरीसिंह आदि को गुप्त रूप से शाहजादा अकबर के पास भेजा। राजा भीमसिंह व राजकुमार अमरसिंह भी शाहजादा अकबर की सेना में उपस्थित थे।[2] शाहजादा अकबर ने विद्रोह करना स्वीकार कर लिया और माघ वदी ७ वि० सं० १७३७ को उसने स्वयं को बादशाह घोषित कर दिया।

यह विद्रोह अधिक दिनों तक नही चला और बादशाह ने अपनी कूटनीति से उक्त विद्रोह को विफल कर दिया। शाहजादा अकबर मरहठों के राजा सम्भाजी के पास भाग गये।

शाही राजनीति पर शाहजादा अकबर के इस विद्रोह का प्रभाव चाहे क्षणिक ही रहा हो किन्तु मेवाड़ की राजनीति पर वह एक स्थाई प्रभाव छोड़ गया।

शाहजादा अकबर का विद्रोही होना—दक्षिण में मराठों का साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध पुकारना—सिक्खों का संघटन आदि घटनाओ को देखकर बादशाह ने महाराणा जयसिंह से संधि कर लेना उपयुक्त समझा। उन्होंने शाहजादा आजम को संधि की बातचीत करने का आदेश दिया। शाहजादा ने महाराणा कर्णसिंह के पौत्र श्यामसिंह को सधि की बातचीत करने के हेतु महाराणा जयसिंह के पास भेजा। श्यामसिंह ने महाराणा को समझाया कि "ऐसे समय जबकि शाहजादा अकबर ने विद्रोह किया है अनुकूल शर्तों पर संधि हो सकती है। ऐसा स्वर्ण अवसर हाथ से जाने देना उचित नही है।"

महाराणा जयसिंह ने श्यामसिंह का कहना मानकर शाहजादा आजम, दिलेरखां तथा हसन अली के कहे अनुसार बादशाह के पास अर्जी लिखकर भेजी। बादशाह ने संधि करना

१—मारवाड़ का इतिहास (श्री रेऊजी) उदयपुर राज्य का इतिहास (ओझाजी)
२—अदब-ई आलमगिरी।

स्वीकार कर लिया। श्रावण वदी ३ वि० सं० १७३८ को महाराणा जयसिंह अपने सामन्तो सहित शाहजादा आजम से राजसमुद्र पर मिले। बातचीत होकर सधि की शर्तें निश्चित की गईं। बादशाह ने श्रावण सुदी १३ वि० सं० १७३८ को फरमान भेजकर महाराणा राजसिंह की मातमी तथा महाराणा जयसिंह की गद्दी नशीनी का खिलअत भेजा।

इस सधि ने भीमसिंह के राजनीतिक जीवन मे महान् परिवर्तन उपस्थित कर दिया। संधि की बातचीत प्रारम्भ होते ही मेवाड़ का युद्ध समाप्त हो गया। भीमसिंह की स्वतन्त्रता की भावना को ठेस लगी और वह देसुरी घाटे से सीधे अपने ननिहाल बेदला मे चले गये। भावी जीवन के प्रति वह चिन्तित हो उठे। मेवाड भूमि का कण-कण वह अपने कनिष्ठ भ्राता जयसिंह को प्रदान कर चुके थे। यदि भीमसिंह चाहते तो महाराणा जयसिंह उन्हे मेवाड के कुछ ग्राम जागीर मे दे देते, जैसे कि उन्होंने अपने दूसरे भाइयो को दिये थे किन्तु भीमसिंह के स्वाभिमानी हृदय ने इस प्रतिदान को स्वीकार नही किया। वह अपने भावी जीवन का ध्येय ऐसे निर्धारित करना चाहते थे जिससे उनकी वीरश्री मे वृद्धि होकर उनका नाम अमर हो सके। मेवाड़ का राज्य शाही आक्रमणो से मुक्त हो गया था। अब उस पर कोई आपत्ति आने वाली नही थी। राठौड़ो का लक्ष्य सीमित और व्यक्तिगत होने से न उनकी वीरश्री मे वृद्धि हो सकती थी न लाभ ही था। शाहजादा अकबर के विद्रोह का दुखद परिणाम और उसकी विफलता वह देख ही चुके थे। यह भी सभव है कि शाहजादा आजम की ओर से महाराणा जयसिह से सधि की बातचीत करने भेजे गये श्यामसिंह ने भी भीमसिंह को शाही सेना मे आने को प्रेरित किया हो। एक मास विचार करने के पश्चात् शाही सेवा मे जाने का उन्होंने निश्चय किया। वहा जाना उनके प्रिय देश मेवाड के लिये भी लाभकारी था। शाही मनसब दार होने पर मेवाड की सुरक्षा स्वाभाविक थी। यहा उनके जीवन का पूर्वार्ध समाप्त हो जाता है।

उन दिनों शाही सेनापति दिलेरखा का मुकाम माडल में था। उससे भेंट करने का उन्होंने विचार किया। बेदला से वह प्रथम उदयपुर आये। अपने भाई महाराणा जयसिंह से मिले। अपने विचारो से उन्हे अवगत कराकर वहा से रवाना हुये। मार्ग मे प्यास लगी तो सेवक ने चादी के पात्र मे पीने का पानी दिया। पात्र होठों से लगने ही वाला था कि उन्हे अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया कि "देववाडी की सीमा मे पानी पीना पिता को दिये हुये वचन तथा अपनी प्रतिज्ञा का भग करना है" उन्होंने तत्काल वह चादी का पात्र दान कर दिया और देववाडी के बाहर आकर पानी पिया।[1]

वि० स० १७३८ भाद्रपद कृष्ण ४ को वह मांडल पहुँचे। दिलेरखा ने अपने पुत्र फतहमामूर को उनकी अगवानी के लिये भेजा। फतहमामूर उन्हे लेकर आया, तब उनके सम्मानार्थ दिलेरखां डेरे से बाहर आया और 'बगलगीर' होकर मिला। भीमसिंह ने पाच अशर्फी और पाच घोडे दिलेरखा को दिये। खान ने एक घोडा रखकर शेष लौटा दिये। खान ने एक घोडा सुनहरी साज समेत, एक थान कपडे का, एक जडाऊ जमधर तथा जडाऊ फूलों की एक ढाल

१—टॉड राजस्थान।

भीमसिंह को दिये। तीन कपड़े उनके पुत्रों को और उनके तीन सम्बन्धियों को खिलअत दिये।

भीमसिंह के साथ सेना, कुटम्बीजन तो थे ही और भी बहुत से आश्रितजन थे। भीमसिंह का ठाठबाट देखकर दिलेरखां प्रभावित हुये बिना नही रहा। उसने बादशाह को यह भी लिखा कि "भीमसिंह अपनी सेना तथा कुटम्बीजनों के साथ उपस्थित हुये है, रहने के लिये स्थान चाहते हैं।"

बादशाह ने भाद्रपद कृष्ण ८ को दिलेरखां को लिखा कि "वनेड़ा परगना पद्मसिंह बीकानेर वाले से बदलकर भीमसिंह को दिया जाता है।"[1]

शाही आज्ञा के पाते ही भीमसिंह वनेड़ा आये। राम सरोवर के पूर्व की ओर के प्राचीन भवन में ठहरे और परगने का प्रबन्ध करने में संलग्न होगये।

उन दिनों बादशाह का मुकाम अजमेर में था। उन्होंने असदखां के द्वारा दिलेरखां को आदेश दिया कि "केवल दो सौ सवारों के साथ भीमसिंह को शाही दरबार में उपस्थित किये जावे।"[2] दिलेरखां ने शाही आज्ञा के पालन में अपने भतीजे मुजफ्फर के साथ भीमसिंह को अजमेर भेज दिया। रुहल्लाखां ने बादशाह को भीमसिंह के उपस्थित होने की सूचना दी। उन्होंने आदेश दिया कि "शाही दरबार में उपस्थित होवे।"[3]

भीमसिंह जैसे ही शाही दरबार के निकट पहुँचे, बादशाह ने उनके स्वागतार्थ गजनफ-रखां, मुफ्तखिरखां, बक्सी उल्मुल्क रुहल्लाखां को भेजा। उन्होने बड़े सम्मान पूर्वक भीमसिह को बादशाह के सम्मुख उपस्थित किया। भीमसिंह ने अभिवादन के पश्चात् सौ अशर्फी, दो हजार रुपये, एक हाथी, पांच घोड़े बादशाह को भेंट किये। जो लोग उनके साथ गये थे उनमें से दिलेरखां के भतीजे मुजफ्फर ने दो मोहरें और अठारह रुपये, जयसिंह चौहान[4] ने नौ मोहरें, रावत कृष्णसिंह ने नौ मोहरें और सौ रुपये बादशाह को भेंट किये।[5]

बादशाह ने भीमसिंह को खासा खिलअत, सुनहरी साज वाला घोड़ा कीमत एक हजार रुपये का, एक हाथी सात हजार रुपये की कीमत का, आलम और नक्कारा उपहार में दिये। चार हजारी जात तीन हजार सवार का मनसब प्रदान कर 'राजा' की उपाधि से विभूषित किया। इतना ही नही, बादशाह ने व्यक्तिगत सभा (गुसलखाना) में उपस्थित होने का सम्मान प्रदान कर गौरव बढ़ाया तथा रुपहली कटहरे मे उपस्थित होने का सौभाग्य प्रदान किया।[6]

उपरोक्त गौरव तथा उपहारों को देखते हुये यह प्रमाणित हो जाता है कि भीमसिंह

१—शाही अखबार।

२—शाही अखबार भाद्रपद कृष्ण १४ सम्वत् १७३८।

३—शाही अखबार भाद्रपद सुदि २ सम्वत् १७३८।

४—जयसिंह चौहाम वेदला के आत्माराम का पुत्र था।

५—शाही अखबार।

६—शाही अखबार भाद्रपद शुक्ल ८ वि० सं० १७३८।

के प्रति बादशाह के हृदय मे कितना अधिक सम्मान था। वह उनके विगत पराक्रमो से अत्यन्त प्रभावित थे। भीमसिंह के साथी सैनिक तथा उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को देखकर बादशाह बहुत प्राभावित हुये। उन्होंने प्रथम भेंट मे ही भीमसिंह को चार हजारी जात तीन हजार सवारों का मनसब और राजा की पदवी दी। विशेष रूप से तब जबकि वह किसी भू प्रदेश के स्वामी नही थे। राजा कर्णसिंह जो बीकानेर राज्य के अधिपति थे वह जब बादशाह की सेवा मे उपस्थित हुये थे, तब उन्हे केवल दो हजारी जात डेढ़ हजारी सवार का मनसब दिया गया था और उनके भाई शत्रुसाल को तो केवल पाच सौ जात दो सौ सवारो का ही मनसब मिला था।

भाद्रपद सुदी १० सं १७३८ को फिर बादशाह ने राजा भीमसिंह को एक कबजा, जमधर जडाऊ कीमती एक हजार आठ सौ रुपये का प्रदान किया और वकील के निवेदन करने पर शुक्रवार के दिन नमाज को जाते समय अभिवादन करने का आदेश दिया।[1]

भाद्रपद सुदी १३ को कुवर अजबसिंह शाही दरबार मे गये। बादशाह को १८ मोहरे तथा २०२ रुपये भेट किये। बादशाह ने उन्हें खिलअत प्रदान किया। इसी दिन राजा भीमसिंह के भतीजे फतहसिंह ने भी बादशाह को १८ मोहरें और २०२ रुपये भेंट किये। उन्हें भी खिलअत दिया गया।[2]

अधिक आश्विन बदी २ सम्वत् १७३८ को कुंवर अजबसिंह को बादशाह ने यशम पत्थर की एक पहुँची जडाऊ कीमती २५० रुपये की उपहार मे दी।[3]

राजा भीमसिंह की माता का स्वर्गवास होने से वह शोक मे बैठे थे। इसकी सूचना बादशाह को रुहुल्लाखा की ओर से मिलने पर लुतफुल्लाखा को आदेश दिया गया कि "राजा भीमसिंह को वहां से उठाकर दरबार मे लाया जावे।" कमालुद्दीनखा ने उन्हें शोक से उठाकर दरबार मे उपस्थित किया बादशाह ने उन्हे खिलअत दिया।[4]

अधिक आश्विन बदी ६ को बादशाह ने उन्हे शिकार के बाडे[5] मे दो मोहरे प्रदान की

१—शाही अखबार। २—शाही अखबार। ३—शाही अखबार।

४—शाही अखबार आश्विन बदी ५ व ७ सम्वत् १७३८।

५—शिकारबाड़ा। डॉ॰ बर्नियर फ्रान्स के निवासी थे। विश्व का भ्रमण करते हुवे वह भारतवर्ष में आये थे। ई॰ सन् १६५६ से ई॰ सन् १६६८ तक वह भारत में रहे। कुछ वर्ष मुगल दरबार में रहकर आखों देखा हाल उन्होंने अपनी 'भारत यात्रा' पुस्तक में लिखा है। वह समय मुगल बादशाह औरंगजेब का था। अपनी पुस्तक में 'शिकार बाड़े' का स्पष्टीकरण उन्होंने निम्न प्रकार किया है —

इस शिकार का नियम यह था कि शेर के स्थान का पता लगने पर वहां एक गधा बांध दिया जाता था। शेर उसको खा जाता, तब उसके चारों ओर लोहे के जाल तनवा दिये जाते थे। बादशाह के आने की सूचना मिलने पर जालों का घेरा कम करते जाते थे। उपयुक्त समय पर बादशाह हाथी पर बैठकर आते जिनके साथ शस्त्र लिये कुछ सरदार और सैनिक भी होते थे। बादशाह जाल के बाहर से शेर पर गोली चलाते, शेर घायल होकर उछलता तो जाल में उलझ कर रह जाता, फिर बादशाह लगातार गोलियां चलाकर उसे मार डालते थे।

और आश्विन वदी १० को उनको बादशाह ने बारां तथा नौलाय (बड़नगर) का परगना वेतन में जागीर स्वरूप दिये। इसी दिन जयसिंह चौहान शाही सेवा के लिये दरबार में उपस्थित हुआ। उसने ९ मोहरें और १९ रुपये भेंट किये। बादशाह की ओर से खिलअत दिया गया।[1]

राजा भीमसिंह ने बादशाह से निवेदन किया कि मऊ मैदाना का परगना वेतन में जागीर स्वरूप प्रदान किया जावे। उस समय वह परगना राव जगतसिंह कोटा के आधीन होने से बादशाह ने इसे स्वीकार नहीं किया।[2]

कार्तिक वदी २ सम्वत् १७३८ को राणावत कुशलसिंह को राजा भीमसिंह के निवेदन पर छः सौ जात तीन सौ सवारों का मनसब देकर शाही सेवा में रख लिया गया।[3]

बादशाह के आदेश से दौरे के समय मुकाम पर शाहजादा शाहआलम को बादशाह के डेरे के सामने, शाहजादा कामबक्ष को दाहिनी ओर, असदखां को बाईं ओर तथा राजा भीमसिंह को पीछे उतरने का बहुमान प्रदान किया गया।[4]

इससे पूर्व भाद्रपद सुदी ३ सम्वत् १७३८ को खां जहांबहादुर के द्वारा बादशाह को सूचना मिली कि "विद्रोही शाहजादा अकबर दक्षिण में पाली के किले में ठहरे हुये हैं। उनके साथ दो सौ सवार और आठ सौ पैदल है। उनके खर्चे का प्रबन्ध मरहठों के राजा सम्भाजी की ओर से किया जाता है।[5]

इस समाचार से बादशाह चिन्तित हो उठे। महाराणा जयसिंह से संधि हो जाने के कारण मेवाड़ की ओर से वह निश्चिंत हो चुके थे। केवल मारवाड़ के प्रबन्ध के लिये उन्होंने अजमेर रहना उचित नहीं समझा। एक प्रमुख कारण यह भी था कि दक्षिण में मरहठों की प्रबलता दिन पर दिन बढ़ रही थी। शाहजादा अकबर के उनसे जा मिलने के कारण वहां की स्थिति और भी जटिल होने की सम्भावना थी। वह अजमेर का प्रबन्ध किसी सुयोग्य शाहजादे को सौंपकर शीघ्र दक्षिण जाना चाहते थे। उन्होंने शाह की पदवी देकर शाहजादा आजम को दक्षिण की ओर भेज दिया।[6] शाहजादा अजीमुद्दीन को अजमेर का प्रबन्ध सौंपा तथा असदखां और राजा भीमसिंह को उसकी सहायता के लिये नियुक्त किया। इस प्रकार प्रबन्ध करके बादशाह ने अधिक आश्विन सुदी ६ सम्वत् १७३८ को दक्षिण की ओर कूच किया, पहिला मुकाम देवराय में हुआ। यहीं से उन्होंने शाहजादा अजीमुद्दीन को खिलअत खासा, मोती की सुमरनी, जड़ाऊ खंजर, तलवार, घोड़ा, असदखां को खिलअत खासा, जड़ाऊ खंजर, घोड़ा तथा राजा भीमसिंह को खिलअत खासा, पहुँची जड़ाऊ जोड़ एक कीमती

१—शाही अखबार।

२—शाही अखबार अधिक आश्विन सुदी १३।

३—शाही अखबार।

४—शाही अखबार भाद्रपद सुदी १० सम्वत् १७३८।

५—मारवाड़ का इतिहास (श्री रेऊजी)।

६—मारवाड़ का इतिहास (श्री रेऊजी) तथा शाही अखबार।

एक हजार रुपये की और काफूरदानी देकर तीनो को अजमेर रवाना कर दिया। कुवर अजबसिंह को भी राजा भीमसिंह के साथ जाने का आदेश होने से उन्हे भी खिलअत दिया गया। फतहसिंह को पाच सदीजात तीन सौ पचास सवारो का मनसब तथा चैतसिंह को चार सदीजात डेढ़सौ सवारो का मनसब देकर राजा भीमसिंह के साथ भेजा गया। दिलेरखा के निवेदन करने पर बादशाह ने अधिक आश्विन सुदी १३ स० १७३८ को राजा भीमसिंह को उणियारा मुकाम से बीस हजार रुपये सहायनार्थ प्रदान किये।[१]

अधिक आश्विन सुदी ११ को राणा राजसिंह के भाई अरिसिंह के पुत्र भगवंतसिंह शाही सेवा के लिये आये और राजा भीमसिंह की प्रार्थना पर शाही सेवा मे रख लिये गये।

बारा परगना कम आय का होने के कारण राजा भीमसिंह ने सेराबाद तथा मऊ मैदाना परगने की माग की, यह भी प्रार्थना की कि यदि यह परगने नही दिये गये तो ३८ लाख दाम बारा परगने से कम कर दिये जावें। बादशाह ने उपरोक्त दोनो परगने देना अस्वीकार करके बारा परगने मे १५ लाख दाम कम करने का आदेश दिया।[२]

बादशाह के दक्षिण मे जाते ही राठौडों के आक्रमणों में तीव्रता आगई। उन्होंने शाही प्रदेशो पर आक्रमण करके मुगल सेनापतियों को चैन नही लेने दिया। तब असदखा ने राजा भीमसिंह को राठौडों से सधि की बातचीत करने को कहा। उन्होंने राठौडों के प्रमुखों को सधि करने के लिये बुलवाया। राठौडों के प्रमुख सोनगजी आदि अजमेर की ओर रवाना हुये किन्तु पुजलोत गाव मे सोनगजी की अचानक मृत्यु हो गई, तब सधि की बातचीत नही हो सकी।[३]

वीर सोनगजी की मृत्यु होने पर भी राठौडों के आक्रमणों मे कमी नहीं हुई। राजा भीमसिंह राठौडों से लडना नहीं चाहते थे अत उन्होंने बादशाह से निवेदन कराया कि "मैंने पहिले ही प्रार्थना की थी कि मेरी नियुक्ति राणाजी तथा राठौडों के साथ होने वाले युद्धों मे न की जावे, इस ओर ध्यान न देते हुवे मेरी नियुक्ति करदी गई। आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझकर म अजमेर आगया। मेरी प्रार्थना पर पुनर्विचार किया जाकर मुझे यहा से हटाया जावे और बादशाह स्वय अपनी सेवा मे रखने की कृपा करें। इसके अनन्तर मेरी जहा नियुक्ति होगी वहा म चला जाउगा।" इस पर बादशाह ने आदेश दिया कि दो सप्ताह अपनी जागीर नोलाय (बडनगर) मे रहकर शाही दरबार मे आवें।[४]

परगना नोलाय (बडनगर) से राठौड रूपसिंह को तीन लाख कई हजार दाम वेतन में दिये जाते थे। राजा भीमसिंह के वकील के निवेदन पर बादशाह ने वह बन्द करके पूरा परगना राजा भीमसिंह के वेतन की जागीर मे कर दिया।[५]

१—शाही अखबार।

२—शाही अखबार निज आश्विन सुदि ११ सं० १७३८।

३—उदयपुर याणी विलास में रखी ख्यात संख्या १२७६ पृष्ठ २६।

४—शाही अखबार दूसरा आसोज सुदी ११ संवत् १७३८।

५—शाही अखबार कार्तिक सुदी १३ संवत् १७३८।

राजा भीमसिंह ने बादशाह से तीन मास नोलाय (बड़नगर) में रहने की स्वीकृति चाही थी किन्तु बादशाह ने इसे अस्वीकृत करके एक मास रहने को आज्ञा दी ।[1]

इसी समय हाडा दुर्जनसिंह[2] तथा बूंदी नरेश राव अनिरुद्धसिंह में किसी कारणवश अनबन हो गई । दोनों बादशाह की ओर से मरहठों से युद्ध कर रहे थे । दुर्जनसिंह शाही सेवा छोड़कर उत्तर भारत में आया और उसने बूंदी पर अधिकार कर लिया । इस घटना की सूचना जब बादशाह को मिली तब उसने अनिरुद्धसिंह को बूंदी जाने की आज्ञा दी । उनकी सहायतार्थ मुगलखां, भदोरिया का रूद्रसिंह, सैयद मुहम्मदअली को भेजा और राजा भीमसिंह को जो उस समय नोलाय मे थे राव अनिरुद्धसिंह की सहायता करने को लिखा ।[3]

बादशाह ने पौष कृष्ण १२ संवत् १७३८ को मऊ मैदाना का परगना भीमसिंह को वेतन की जागीर मे देकर आज्ञा दी कि विद्रोही दुर्जनसिंह को पकड़ कर शाही दरबार में उपस्थित करें ।[4]

राजा भीमसिंह की छुट्टी समाप्त हो गई थी वह नोलाय से शाही सेवा में जाने की सोच ही रहे थे कि सदीरबेग नामक शाही सेवक ने उपरोक्त शाही आज्ञापत्र राजा भीमसिंह को दिया । उन्होंने शाही सेवक को पांच सौ रूपये, खिलअत और घोड़ा इनाम में दिया । शाही सेवक ने वापिस जाकर जब बादशाह की सेवा में इसकी सूचना दी तब उन्होंने तीन सौ रूपये भीमसिंह के वकील को लौटाकर शेष रकम रखने की अनुमती दी ।[5]

राजा भीमसिंह के निवेदन पर कुशलसिंह राणावत को उनके साथ बूंदी जाने की और जयसिंह चौहान को वेतन में जागीर देने की बादशाह ने आज्ञा दी । राव अनिरुद्धसिंह (बूंदी) तथा राव जगतसिंह (कोटा) को आदेश दिया कि उनके राज्य के कर्मचारी राजा भीमसिंह की सहायता करें ।[6]

शाही आज्ञा पाते ही राजा भीमसिंह अपनी सेना को लेकर नोलाय से चले और बूंदी आकर राव अनिरूद्धसिंह से मिले और शाही सेना मे सम्मिलित हुए । बूंदी पर आक्रमण किया गया । दुर्जनसिंह ने बूंदी से भागकर मऊ मैदाने के किले का आश्रय लिया । राव अनिरूद्धसिंह का बूंदी पर अधिकार करा कर राजा भीमसिंह मऊ मैदाना मे आये । मोर्चे बन्दी की और किले पर आक्रमण किया । घमासान युद्ध हुआ । दुर्जनसिंह हारकर भाग गया । राजा भीमसिंह विजयी हुवे । उनके भी कुछ सैनिक मारे गये और कई घायल हुवे । इस विजय के अवसरपर शाही सेवक कलीज बेग को पांच सौ रूपये खिलअत और घोड़ा देकर उसे विजय

१—शाही अखबार मार्गशीर्ष वदी २ संवत् १७३८ ।

२—हाडा दुर्जनसिंह बलबन का जागीरदार था ।

३—राजपूताने का इतिहास (गहलोतजी) ।

४—शाही अखबार ।

५—शाही अखबार माघ सुदी ८ संवत् १७३८ ।

६—शाही अखबार फाल्गुन वदी १ विक्रम संवत् १७३८ ।

की सूचना देने बादशाह की ओर भेजा।[१]

दुर्जनसिंह भागकर राव अनिरूद्धसिंह के राज कर्मचारियो के आश्रय मे रहने लगा। बादशाह को इसकी सूचना दी गई, उन्होंने क्रोधित होकर राव अनिरूद्धसिंह को आदेश दिया कि वह अपने राज कर्मचारियो द्वारा दुर्जनसिंह को बन्दी कर लेवे।[२]

दुर्जनसिंह पर विजय प्राप्त करने के पश्चात राजा भीमसिंह के वकील के निवेदन करने पर मऊ मैदाने का परगना जो वेतन की जागीर मे था वह देश (राज्य) के रूप मे दिया जाकर शाही सनद दी गई।[३] यह भी शाही आदेश था कि दुर्जनसिंह को मऊ मैदाने की सीमा से नही निकाला गया तो यह परगना निकाल लिया जावेगा।[४]

कटन पाखरी के फौजदार चेला नाहरदिल के पुत्र कुतुबुद्दीन ने बादशाह से राजा भीमसिंह की शिकायत की। उसने उन पर यह आरोप लगाया कि "दुर्जनसिंह से दबकर राजा भीमसिंह ने उसको सात हजार रूपये दिये। दुर्जनसिंह ने विक्रमाजीत की जागीर मे जाकर लूटमार की तथा बीस हजार रूपये वसून किये। उनकी दो पुत्रियों को पकड लिया आदि" उसने मऊ मैदाने की फौजदारी की माग करते हुवे बादशाह को यह विश्वास दिलाया कि यदि मऊ मैदाने का परगना उसे दिया जावे तो वह उत्तम प्रबन्ध कर सकता है। बादशाह का राजा भीमसिंह पर पूर्ण विश्वास होने से उन्होने कुतुबुद्दीन की प्रार्थना पर कोई ध्यान नही दिया।[५]

राजा भीमसिंह ने दुर्जनसिंह को चैन नही लेने दिया। वह लगातार उस पर आक्रमण करते ही रहे। अन्त मे वह शेरपुर की सीमा मे भाग गया और वहा उपद्रव मचाने लगा। उसने जजिये के दरोगा को तथा अन्य शाही सेवको को घायल किया। धनी गांवो को लूटकर वीरान कर दिया। वहा के फौजदार शेर अफगान ने उस पर आक्रमण किया। दुर्जनसिंह के कई साथी मारे गये तथा कई घायल हुए उसका एक साथी फतहसिंह अपने पुत्र सहित पकडा गया। शेर अफगान ने उसे बादशाह के आदेश से रणथम्भोर के किले मे भेज दिया।[६]

शेर अफगान से परास्त होकर दुर्जनसिंह कालाकोट के किले मे चला गया। राजा भीमसिंह को इसकी सूचना मिलते ही उन्होने कालाकोट के किले को घेर लिया। दुर्जनसिंह भी युद्ध के लिए तत्पर हो गया। रणोद के फौजदार पहाडसिंह गौड को राजा भीमसिंह की सहायता करने का शाही आदेश था किन्तु वह नही आया तब उसे शीघ्र कालाकोट पहुँचने के लिए बादशाह ने कड़े आदेश भेजे।[७]

१—शाही अखबार निज चैत्र सुदी ४ संवत् १७३६।
२—शाही अखबार निज चैत्र सुदी ५ संवत् १७३६।
३—शाही अखबार आषाढ सुदी ८ संवत् १७३६।
४—शाही अखबार श्रावण शुक्ल १२ संवत् १७३६।
५—शाही अखबार आश्विन शुक्ल १५ संवत् १७३६।
६—शाही अखबार कार्तिक बदी ४ विक्रम संवत् १७३६।
७—शाही अखबार मार्ग शीर्ष शुक्ल ४ संवत् १७३६।

कालाकोट के किले का घेरा वहुत दिनों तक चलता रहा। किसी प्रकार अपने कुछ साथियों सहित दुर्जनसिंह इस घेरे में निकल कर राजा भीमसिंह के अधीनस्थ बारां परगने के ग्रामों को लूटने लगा किन्तु वहां के प्रबन्धक सैनिकों ने उसे भगा दिया। वहां से वह कोटा के जंगल की ओर चला गया। इसकी सूचना राजा भीमसिंह के फौजदार ने बादशाह की ओर भेजी।[१]

दुर्जनसिंह ने कदाचित यह समझा हो कि बारां परगने के ग्रामों पर आक्रमण करने से राजा भीमसिंह अपने परगने की रक्षा के हेतु घेरा छोड़ कर चले जावेंगे किन्तु राजा भीमसिंह वहीं डटे रहे। सम्भव है दुर्जनसिंह स्वयम् न गया हो, उसने राजा भीमसिंह का ध्यान बटाने के लिये अपने कुछ साथियो को वहां भेज दिया हो।

कालाकोट का यह घेरा मार्गशीर्ष के शुक्ल पक्ष में प्रारंभ हुआ था। दो मास व्यतीत होने पर भी किले पर अधिकार नही हो सका। कई बार आक्रमण किये गये। दोनों ओर के सैनिक हताहत होते रहे परन्तु फल कुछ नही निकला। तब राजा भीमसिंह ने एक आवेश भरा आक्रमण किया। दुर्जनसिंह के अनेक सैनिक मारे गये। राजा भीमसिंह के भी कई सैनिक मारे गये और वह स्वयं घायल हुवे, तब दुर्जनसिंह के पिता के प्रयत्न से उन दोनों में संधि हो गई। दुर्जनसिंह ने भविष्य में शाही प्रदेश को न लूटने का वचन दिया और फिर शाही सेवा में जाना स्वीकार कर लिया। उसने अपनी स्वयं की पुत्री का विवाह कुंवर अजबसिंह से तथा अपने भाई की पुत्री का विवाह राजा भीमसिंह से कर दिया।

इसी बीच कुंवर अजबसिंह शाही सेवा मे ले लिये गये थे और उनको तीन सदी जात सौ सवारों का मनसब दिया जाकर बक्शी रूहल्ला खां के रिसाले मे नियुक्त किया गया था।[२]

राजा भीमसिंह ने संधि की सूचना बादशाह को देकर लिखा कि "इस युद्ध में पहाड़सिंह गौड़ आदि किसी ने भी मेरी सहायता नहीं की। मुझे स्वयम् अकेले ही युद्ध करना पड़ा, मेरे बहुत से सैनिक और सम्बन्धि मारे गये, मै स्वयम् भी घायल हुआ। मेरा धन भी बहुत खर्च हुवा फिर भी मैने दुर्जनसिंह से हार नही मानी। वह भी भयभीत हो गया था तब उसके पिता ने बीच मे पड़कर सुलह करादी। दुर्जनसिंह फिर शाही सेवा मे आने को उत्सुक है। उसके सब अपराध माफ होकर उसे फिर शाही सेवा में लिया जाकर मनसब प्रदान किया जावे। मेरा स्वयम् का बहुत खर्च हुआ है। शाही दरबार से मुझे भी सहायता दी जावे।" इसी पत्र के द्वारा राजा भीमसिंह ने कुंवर अजबसिंह के विवाह की तथा स्वयम् के विवाह की सूचना भी बादशाह को दी थी। बादशाह ने राजा भीमसिंह के निवेदन को स्वीकार कर के लिखा कि जब दुर्जनसिंह तुम्हारे पास आवेगा तब मनसब दिया जावेगा।[३]

राजा भीमसिंह दुर्जनसिंह से निश्चिन्त होने पर मऊ मैदाना के प्रबन्ध में संलग्न हो गये।

१—शाही अखबार पौष कृष्ण ८ संवत् १७३६।

२—शाही अखबार माघ सुदी १३ संवत् १७३६।

३—शाही अखबार फाल्गुन कृष्ण १० संवत् १७३६।

उन्होंने शाहबाद मुकाम से चैत्र वदी ७ संवत् १७४० को एक पट्टा किया जिससे ज्ञात होता है कि वह शाहबाद के फौजदार थे और अपने प्रदेश का प्रबन्ध कर रहे थे।

संवत् १७४० के आश्विन मे वह बूदी राज्य के ग्राम सूकेत[1] मे थे। वहा से उन्होंने आश्विन सुदी ४ संवत् १७४० को अपने पुरोहित जयदेव तथा धाय भाई रघुनाथ के नाम पत्र लिखा था, उस पत्र से ज्ञात होता है कि उस समय वह अस्वस्थ थे। उन्हे ज्वर आने लगा था। उसके निवारणार्थ उन्होंने प्रथम तीन दिन लघन किये, फिर मुनक्कादाख का सेवन किया। इसके पश्चात् मूग की दाल का पानी लेते रहे। जब कुछ स्वस्थ हो गये, तब भोजन के पश्चात् कमायु हरडो को खाते रहे। कुछ दिन पश्चात स्वस्थ हो गये[2] इस पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि सावर का परगना उस समय बनेडे के आधीन था।

हाडा दुर्जनसिह संधि होजाने पर भी अपने वचन पर दृढ नही रहा। वह सधि होजाने के पश्चात् दक्षिण मे तो गया किन्तु बादशाह की सेवा मे उपस्थित नही हुआ और राठौड दुर्गादास से मिल गया।[3] उन दिनों वह (दुर्गादास) शाहजादा अकबर के साथ दक्षिण मे थे। कुछ समय तक उनके पास रहकर हाडा दुर्जनसिह वि० सम्वत् १७४१ मे दक्षिण से लौट आया और फिर शाही प्रदेश मे उपद्रव करना प्रारम्भ करने लगा। बादशाह ने उसको पकडने अथवा मार डालने के लिए राजा भीमसिह, राव अनिरुद्धसिह और पहाडसिह गौड को आश्विन सुदी १ तथा आश्विन सुदी १४ वि० सं० १७४१ को आदेश दिए।[4] किन्तु उपरोक्त तीनों मे से किसी एक ने भी बादशाह की आज्ञा का पालन नही किया। दुर्जनसिह शाही प्रदेश मे लूटमार करता ही रहा। उसने सीरोंज के आस-पास के प्रदेशों को लूटा और सुरक्षित निकल भागा, तब बादशाह ने क्रोधित होकर राजा भीमसिह के मनसब मे ५०० सवारो को तथा राव अनिरुद्धसिह के मनसब मे २०० सवारों को कम करने की आज्ञा कार्तिक शुक्ल ११ सम्वत् १७४१ को दी।[5]

बादशाह ने राजा भीमसिह से मऊ मैदाना परगना उनके मनसब में कमी हो जाने के कारण निकालकर राव अनिरुद्धसिह को इजारे पर दिया और चेतावनी दी कि छ मास मे दुर्जनसिह को पकडकर शाही दरबार मे उपस्थित करे। राजा भीमसिह से मऊ मैदाना परगना निकल जाने से शाहबाद की फौजदारी समाप्त हो गई। बादशाह ने उन्हें अपने पास दक्षिण मे उपस्थित होने को फाल्गुन वदी १३, वि० स० १७४१ तथा चैत्र सुदी १३ वि० स० १७४२ को आदेश भेजे।[6]

१—सूकेत कोटा और झालावाड के बीच में है जो उस समय बूदी राज्य के अन्तर्गत था।

२—इस पत्र को लिखने का दृष्टिकोण यह है कि उस समय ज्वर का उपचार किस प्रकार किया जाता था यह मालूम हो सके।

३— वाकेआते आलमगिरी।

४—शाही अखबार।

५—शाही अखबार।

६—शाही अखबारात।

इसी समय पहाड़सिंह गौड़ और राव अनिरुद्धसिंह में अनबन हो गई। राव अनिरुद्धसिंह ने उस पर आक्रमण किया किन्तु हारकर बूंदी लौट आये। उन्होंने फिर ग्यारह हजार सेना लेकर पहाड़सिंह पर आक्रमण किया। इस युद्ध में भी राव अनिरुद्धसिंह की पराजय हुई। वह बूंदी की ओर भागे। पहाड़सिंह ने तीन कोस तक उनका पीछा किया। उनके घोड़े, हाथी और सामान लूटकर अपने किले में लौट गया। बादशाह को जब यह समाचार मालूम हुआ तब उन्होंने श्रावण सुदी ४ सम्वत् १७४२ को राव अनिरुद्धसिंह से मऊ मैदाना की जागीर तथा फौजदारी निकाल कर राजा मनोहरदास गौड़ को देकर लिखा कि वह दुर्जनसिंह का नामोनिशान मिटा देवे।[१]

श्रावण शुक्ल ८ वि० सं० १७४२ को बादशाह ने मनोहरदास गौड़ के पोते उत्तमराम को उसका नायब नियुक्त किया तथा दुर्जनसिंह को मार डालने अथवा पकड़ कर बादशाह के पास भेजने का आदेश दिया।[२]

राव अनिरुद्धसिंह पर विजय प्राप्त कर पहाड़सिंह गौड़ साम्राज्य विरोधी कार्य करने लगा। बादशाह ने वि० सं० १७४२ आश्विन शुक्ल १० को पहाड़सिंह को रन्नौद की फौजदारी से निकाल देने का आदेश दिया।[३] और उस को दण्ड देने के लिये रायरायां मलूकचन्द की नियुक्ति की। उसकी सहायता करने के लिए राजा भीमसिंह तथा राव अनिरुद्धसिंह को लिखा। राजा भीमसिंह समय पर रायरायां मलूकचन्द के पास नहीं पहुँचे। मलूकचन्द ने कार्तिक बदी ९ सम्वत् १७४२ के पूर्व ही पहाड़सिंह पर आक्रमण करके उसको मार डाला और उसका मस्तक बादशाह के पास भेज दिया।[४]

राजा भीमसिंह जब उज्जैन पहुँचे तब पहाड़सिंह गौड़ मारा जा चुका था। वह समय पर मलूकचन्द के पास नही पहुँचे थे अतएव बादशाह ने उनके मनसब मे पांच सौ सवारों की कमी करने की वि० सं० १७४२ कार्तिक सुदी १४ को आज्ञा दी और उन्हें दक्षिण में अपने पास आने को लिखा।[५]

राजा भीमसिंह उज्जैन से चलकर अजमेर आये और वहां से दक्षिण जाने के लिये रवाना हुवे। मार्ग मे श्रावण कृष्ण ४ वि० सं० १७४३ को प्रसिद्ध तीर्थ स्थान नासिक में त्रिम्बकेश्वर के दर्शन किये। दक्षिण पहुँचने पर औरंगाबाद मुकाम से पाराशर गोत्री ओंकार भट को सनद लिखकर भेजी।

नासिक से रवाना होकर वह आश्विन वदी २ वि० सं० १७४३ को बीजापुर मुकाम

१—शाही अखबार।

२—शाही अखबार। इसके पश्चात् दुर्जनसिंह का इतिहास अज्ञात है। श्री गहलोतजी ने अपने "राजपूताने का इतिहास" में लिखा कि "बाद में जोधपुर के राठौड़ दुर्गादासजी ने बीच में पड़कर दुर्जनसिंह हाडा को राव अनिरुद्धसिंह के पैरों में नमाया और उनके आपस में मेल करा दिया।"

३—शाही अखबार।

४—औरंगजेब नामा भाग २ पृष्ठ २५।

५—शाही अखबार।

पर बादशाह की सेवा मे उपस्थित हुवे। उस समय शाही सेना ने बीजापुर के किले पर घेरा डाल रखा था और युद्ध चरम सीमा पर था। राजा भीमसिंह की नियुक्ति इसी युद्ध मे कर दी गई। वह अपने पुत्रों, सम्बन्धियों तथा सेना सहित युद्ध मे सम्मिलित हो गये। उनके साथ किशनगढ के राजा मानसिंह राठौड भी थे।

फतुवाते आलमगिरी मे इस युद्ध का वर्णन इस प्रकार किया है कि "बादशाह ने कुलीचखा, सरबुलन्दखा, राजा भीमसिंह और किशनगढ का राजा मानसिंह राठौड को बीजापुर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। सबने मिलकर विशाल सेना के साथ आक्रमण किया। प्रथम तोपें दागी, फिर तीर चलाये, बन्दूको से गोलियो की बौछार की गई। भयकर युद्ध हुआ। दोनों ओर के अनेक सैनिक मारे गये। शत्रु सेना पराजित होकर भाग गई। विजयी शाही सेना ने शत्रु के शिविरों के सामान और सम्पत्ति को लूटा। अनेक सैनिको को वन्दी बनाया।

दूसरे दिन प्रात काल शत्रु ने अपनी सेना के तीन भाग किये और शाही सेना पर तीन ओर से आक्रमण किया। शाही सेना भी सजग और सतर्क थी। घुडसवार तथा पैदल सेना ने आगे बढकर शत्रु सेना का सामना किया। घमासान युद्ध हुआ। बादशाह ने मन्वरखा और बरामन्दखा को सहायतार्थ भेजा। एक ओर गाजीउद्दीनखा ने तथा दूसरी ओर से रूस्तमखा ने धावा बोला। शत्रु के असंख्य सैनिक मारे गये।'[1]

इस युद्ध मे राजा भीमसिंह ने बडे उत्साह से भाग लिया। कुवर अजबसिंह ने भी अपने पिता का प्राणपन से साथ दिया। कई वीरता पूर्ण आक्रमण करके युद्ध कुशलता का परिचय दिया। अनेक शत्रुओं को मारकर कुवर अजबसिंह इस युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुवे।[2] विजापुर के किले पर आश्विन सुदी ६ वि० सं० १७४३ को बादशाह का अधिकार हो गया।[3]

कुवर अजबसिंह की मृत्यु से राजा भीमसिंह बडे दु खी हुए किन्तु वीरोचित धैर्य से उन्होंने उस दु ख को सहन किया और वि० स० १७४५ के मध्य तक वह शाही सेना मे रहकर शत्रुओं पर आक्रमण करते रहे।

उत्तर भारत मे वि० सं० १७४५ मे जाटों का उपद्रव उठ खडा हुआ। राजाराम जाट ने शाही प्रदेश को लूटना प्रारम्भ कर दिया। वह सनसनी[4] का निवासी था, जाटों का नेता तथा पराक्रमी और शूरवीर था। उसका साहस यहा तक बढ गया था कि सिकन्दरा (अकबर की

१—फतुवाते आलम गिरी, ईसरदास कृत सरजदुनाथ सरकार द्वारा फारसी से अंग्रेजी का अनुवाद।

२—फतुवाते आलमगिरी फोलियों ११० (ए) कुवर अजबसिंह की मृत्यु गोलकुण्डा के युद्ध में हुई ऐसा कहीं कहीं लिखा है औरंगजेब नामा भाग २ पृष्ठ ४८ के अनुसार गोलकुण्डा पर युद्ध ही नहीं हुआ जब युद्ध ही नहीं हुआ तो उनकी मृत्यु वहां कैसे हो सकती है।

३—औरंगजेब नामा भाग २ पृष्ठ ३५।

४—सनसनी भरतपुर से सोलह मील दूर उत्तर पश्चिम के कोण में है।

हो गये। किन्तु होली का पर्व मनाना बन्द नहीं किया। मुस्लिम अधिकारियों का अनुमान था कि बादशाह राजा भीमसिंह तथा विष्णुचंद को कड़ा दण्ड देंगे। बादशाह राजा भीमसिंह के पराक्रम, प्रभाव और स्वाभिमानी स्वाभाव से परिचित थे। उनकी वीरता की छाप बादशाह के हृदय पर गहरी थी। उन्होंने उन पर कोई आक्षेप नहीं किया न कोई दण्ड ही दिया केवल मात्र यह आदेश दिया कि "भविष्य में ऐसा न किया जावे।"

पन्हालागढ़ का घेरा बहुत दिनों तक चलता रहा। इसी गढ़ से उन्होंने फाल्गुन वदी १२ वि० सं० १७५० को एक पत्र साहदयाल सांवलदास के नाम लिखा था। उसमें प्रारम्भ में "विजय कटक सुभस्थाने" लिख कर अन्त में "मु० प्रनाले" लिखा है। जिससे ज्ञात होता है कि राजा भीमसिंह पन्हालागढ़ के मोर्चे पर थे।

बहुत समय व्यतीत होने पर भी जब पन्हालागढ़ पर शाही सेना का अधिकार नहीं हो सका तब बादशाह ने वि० सं० १७५१ चैत्र सुदी १० को शाहजादा बेदारबख्त को पच्चीस हजार सेना के साथ उस पर आक्रमण करने का आदेश दिया।[1] शाहजादा ने बादशाह की आज्ञा का पालन कर पच्चीस हजार सैनिकों को लेकर उक्त दुर्ग पर आक्रमण किया। उनके सहायक राजा भीमसिंह आदि ने भी अपने पराक्रम की बाजी लगादी। गढ़ पन्हाला का एक बुर्ज टूट गया। शाही सेना की इस सफलता की सूचना बादशाह को देकर शाहजादा ने लिखा कि "शीघ्र ही पन्हाला गढ़ पर शाही सेना का अधिकार हो जावेगा।"

पन्हाला दुर्ग दक्षिण मे एक अजेय दुर्ग माना जाता है। उसको विजय करना साधारण काम न था। शाही सेना धावे पर धावे बोल रही थी किन्तु दुर्ग पर अधिकार नहीं हो पा रहा था। राजा भीमसिंह ने भी अपने पराक्रम को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। बादशाह ने उनके पराक्रम तथा वीरता को लक्ष करके उनका मनसब पांच हजारी जात पांच हजार सवारों का कर दिया।[2]

१—शाही अखबार

२—कविराजा श्यामलदास कृत वीर विनोद भाग २ पृष्ठ १६१ पर पंच हजारी मनसबदार के वेतन आदि का विवरण निम्न प्रकार दिया है:—

घोड़े

इराकी	दोगले	तुर्की	टट्टू	ताजी	जंगला	योग
३४	३४	६८	६८	६७	६६	=३३७

हाथी

शेरगीर	सादा	मंझोला	करहा	फुन्दर्किया	योग
२०	२०	२०	२०	१०	=१००

बारबरदारी

ऊंट	खच्चर	बैलगाड़ी	योग
८०	२०	१६०	= २६०

कुलयोग ६६७

वेतन प्रतिमास ३०००० रुपये।

वेतन के लिये उतनी आय के परगने दिये जाते थे जो मनसबदारी जागीर कहलाती थी।

राजा भीमसिंह ने पन्हाला दुर्ग विजय करने के लिए कई आवेश भरे आक्रमण किये और शत्रु से युद्ध करते हुवे वि० सं० १७५१ भाद्रपद सुदी ९ को धारातीर्थ मे सोकर उन्होंने अमरत्व प्राप्त किया।

दक्षिण मे उस समय उनकी एक राणी महा कुंवर जो बीकानेर के पद्मसिंह की पुत्री थी, साथ थी। वह उनके साथ सती होने लगी तो, शाहजादा बेदारबख्तने उसे बहुत रोका और समझाया किन्तु उस सती ने नही माना और अपने पति के साथ चिता मे बैठ कर स्वर्ग सिधार गई।[1] राजा भीमसिंह की मृत्यु की सूचना जब बनेडा पहुँची तब उनकी एक राणी चापावत राम कुंवर सती हुई।

उनके पाटवी कुंवर सूर्यमल उन दिनों अपने विवाह के लिये उत्तर भारत मे आये थे। बादशाह ने उनको आश्विन वदी २ वि० स० १७५१ को हजारी जात पाच सौ सवारों का मनसब दिया।[2] दूसरे पुत्र अर्जुनसिंह को तीन सदी दस सवार का तथा उनके सम्बधि सुजानसिंह को पाच सदी दो सौ सवार का मनसब[3] तथा उनके पुत्रो और सम्बन्धियो को एक करोड पचास लाख दाम वेतन मे देना आश्विन सुदी ११ वि० स० १७५१ को स्वीकार किया।[4]

राजा भीमसिंह के पुत्र खुमानसिंह तथा कीर्तिसिंह जो उनके साथ पन्हाला मे थे वहा से आकर शाही दरबार मे उपस्थित हुवे। उन्हे पौष कृष्ण ३० वि० सं० १७५१ को खिलअत दिया गया। उसी प्रकार उनके पुत्र पृथ्वीसिंह पन्हालागढ मे आकर शाही दरबार मे उपस्थित हुवे। उन्हे 'मातमी' का खिलअत और दो मोहरें तथा उनके सेवक बक्शीचद को खिलअत और एक मोहर कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा सं० १७५२ को दिये गये।[5]

धार्मिक आस्था — (दान) राजा भीमसिंह की धर्म मे बडी आस्था थी। उन दिनो दान मे भूमि देने का प्रचलन था। उन्होंने विक्रम सवत् १७४० मे ग्राम ब्रह्मखेडी परगना मऊ पाठक गंगाराम कनहोन को दान मे दिया। इसी पाठक गंगाराम को वि० स० १७५५ मे मथुरा यात्रा के समय ग्राम पिपलूद दान मे दिया। वि० सं० १७५५ मे दवे रघुपत कर्णानन्द को भूमिदान दी। संवत् १७४७ मे पुरोहित जयदेव को सौ बीघा भूमिदान दी। बक्सराम, चारण निवासी ग्राम भोवडली को ८१ बीघा भूमि वि० सं० १७४९ मे दान दी। ब्राह्मण सगो गोसाई को राजा रायसिंह (टोडा) के समय से चली आ रही दान की भूमि की पुरानी सनद देखकर मुकाम पन्हाला से उसको नई सनद देकर उक्त भूमि उसको दे दी। वि० सं० १७५१ मे परगना माण्डलगढ का ग्राम मिवाना दान मे दिया। वैसे तो उन्होंने बहुत अधिक भूमि दान दी है किन्तु जितने पुरातन पत्र मिले उनके अनुसार उतनी ही भूमि यहा लिखी है। राजा भीमसिंह ने निम्नांकित ग्राम जागीर मे दिये —

१ विक्रमी संवत् १७३८ चैत्र बदी १ को भाणावत मोहनदास उदयभानोत को ग्राम सालरया जागीर मे दिया। इसका पट्टा राजा भीमसिंह ने अजमेर मुकाम से दिया।

१—शाही अखबार आश्वीन बदी २ वि सं० १७५१। २—शाही अखबार। ३—शाही अखबार। ४—शाही अखबार। ५—शाही अखबार।

२. भदेसर के वल्ला को ग्राम लाम्बिया तथा उसके भाई को ग्राम कूकोल्या जागीर मे दिया।

तीर्थ यात्राएं:—राजा भीमसिंह को तीर्थ स्थानों की यात्रा करने की बड़ी अभिलाषा रहती थी। सदा युद्धों में मग्न रहने वाले उस वीर को इतना अवकाश ही कहां मिलता था कि वह केवल तीर्थ यात्राओं के लिए भ्रमण करे किन्तु फिर भी युद्ध के हेतु कूच करने पर मार्ग में पड़ने वाले तीर्थ स्थानों के दर्शन किये बिना वह कभी आगे नही बढ़ते थे। दक्षिण के युद्ध में सम्मिलित होने के लिए जब वह रवाना हुये तब मार्ग में त्रिम्बकेश्वर (नासिक) के दर्शन किये। उसी प्रकार पर्ली वैजनाथ और ओडा नागनाथ के भी दर्शन किये। वि० सं० १७७५ में जब वह फिर उत्तर भारत में आये थे तब उन्होंने मथुरा तथा सोरोंजी की यात्रा की थी।

साहित्य सेवा:—'शिवसिंह सरोज' नामक पुस्तक के लेखक ठाकुर शिवसिंह ने उक्त पुस्तक के पृष्ठ ४८६ पर लिखा है कि 'राणा राजसिंह के राज कुमार भीम (वि० संवत् १७३७ में) थे वह महान् कवि थे।'

राजा भीमसिंह रचित कोई कविता उपलब्ध नही है अतएव उनकी कविता के संबंध में तो कुछ लिखा नही जा सकता, इतना अवश्य है कि उनको साहित्य मे अनुराग था। उन्होंने सूर्यसेन महिमहेन्द्र विरचित निर्णयामृत-अशौच प्रकरण को श्रीपति नामक ब्राह्मण से ग्राम खानपुर मे लिखवाया था।[1]

कृष्णदास निवासी उज्जैन से भी उन्होंने पुरातन ग्रंथों पर टीकाएं लिखाई थीं, ऐसा पुरातन कागजों से ज्ञात होता है किन्तु कृष्णदास की कोई टीका उपलब्ध नहीं हो सकी।

राज्य का विस्तार:—राजा भीमसिंह जब उदयपुर से चले थे तब उनके अधिकार में एक इंच भी भूमि नही थी। स्वाभिमानवश उन्होंने मेवाड़ राज्य से कोई जागीर नहीं ली थी। उन्हें अपनी वीरता और तलवार का विश्वास था। उस समय बादशाह की ओर से दिये जाने वाले प्रदेश तीन प्रकार के होते थे। एक व दो तो 'तन तथा वतन' (स्थायी जागीर) के रूप में तीसरे "तनख्वाह" के रूप मे (मनसबदारी के आकार के अनुसार वेतन के रूप मे) दिये जाते थे। किसी कारणवश मनसब कम हुआ तो वेतन में कमी हो जाती थी, वेतन कम होने पर प्रदेश कम होना स्वाभाविक था। उसी प्रकार मनसब बढ़ा तो वेतन के आकार के अनुसार प्रदेश मे भी वृद्धि कर दी जाती थी। बादशाह की सेवा में आने पर उन्हें बादशाह ने चार हजारी जात तीन हजार सवारों का मनसब प्रदान कर बनेड़ा तथा नोलाय (बड़नगर) वतन की जागीर में और बारां परगना मनसब के वेतन में दिया। बारां परगना कम आय का होने से मऊ मैदाना का परगना और दिया गया। जब इनके मनसब में एक हजार सवारों की कमी हुई तब मऊ मैदाना और बारां परगना इनसे निकाल लिया गया। फिर जब इनका मनसब बढ़ा तब फिर मालपुरा तथा बदनावर[2] का परगना उन्हें दिया गया।

१—ग्राम खानपुर उस समय मऊ परगने के अन्तर्गत था। वर्तमान समय में वहां राजस्थान की तहसील है।

२—रतलाम राज्य का इतिहास। मालवामें युगान्तर। (श्री रघुवीरसिंह)

मृत्यु के समय उनके अधिकार मे बनेडा, नोलाई (बडनगर), बदनावर, मालपुरा, सावर तथा भाण्डलगढ़ के परगने थे।

मालपुरा —यह परगना पहिले बादशाह की ओर से जयपुर नरेश को जागीर मे दिया गया था। वि० सं० १७४९ के ज्येष्ठ मास मे उनसे निकाल कर राजा भीमसिंह तथा दलसिंह सीसोदिया को एक करोड बीस लाख दाम पर वेतन मे दिया गया। जयपुर नरेश इस परगने को छोडना नही चाहते थे। उन्होंने अपने वकील मेघराज को फिर यह परगना लेने के लिए शाही दरबार मे प्रयत्न करने को लिखा। वकील मेघराज अपने स्वामी के स्वार्थ साधन मे निपुण था। उसने अपने पक्ष को सबल बनाने के लिये जिन उपायो का अवलम्बन किया तथा ऐतिहासिक तथ्यों को जिस रूप मे प्रस्तुत किया वह बडे ही मनोरजक हैं। शाही दरबार मे किये गये अपने प्रयत्नों का विवरण वह जयपुर नरेश को भेजा करता था। एक पत्र मे उसने लिखा "मैने शाही दरबार मे यह निवेदन कराया कि राजा मजकूर (भीमसिंह)—इस अदावत से कि जब राणा ने इस परगने को लूटने का इरादा किया था तब इन लोगों ने मुकाबला किया था,—चाहता है कि जिस बहाने हो झगडा किया जावे।"

दूसरे एक पत्र मे वह लिखता है, "मैं शाही दरबार मे प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करूंगा किन्तु श्रीमान् भी एक प्रार्थना पत्र शाही दरबार मे भेजे कि "यह मुहाल हमारे दादा, परदादा की जागीर मे रहे हैं और इस परगने मे ठाकुर हरिसिंह की जमीदारी है और इस परगने के दाम उनकी तनख्वाह मे हैं। राजा भीम जो राणा के भाई हैं और राणा ने जब इस परगने को लूटा था और जमीदारों ने मुकाबला किया था, यही अदावत है। यह परगना भीम सिसोदिया को नही देना चाहिये, किसी प्रकार अपना दखल होना ही चाहिये।"

महाराणा राजसिंह ने मालपुरे पर वि० स० १७१५ मे आक्रमण करके नो दिन तक लूटा था और अपार सम्पत्ति लूटकर ले गये थे। इसी ऐतिहासिक तथ्य की ओर मेघराज का सकेत है।

एक पत्र मे उसने अनेक बातो के साथ यह लिखा कि "राजा भीम की नौकरी पायेदार नही है। राजा भीम के आदमियो ने वक्त देखकर रास्ती करली है।"

मालपुरा परगने मे हरिसिंह की जमीदारी होने से तथा राजा भीमसिंह के अधिकार मे आने के पूर्व वह परगना जयपुर नरेश के अधिकार मे होने से वहा के कुछ व्यक्ति तथा उनके सेवक राजा भीमसिंह के कामदारो के सामने अनेक बाधाए उपस्थित कर देते थे। अतएव राजा भीमसिंह ने शाही दरबार मे इसकी शिकायत की। इस शिकायत के प्रतिकारार्थ शाही दरबार मे मेघराज ने जो प्रयत्न किये उसका विवरण अपने स्वामी को उसने इस प्रकार लिखा "राजा भीमसिंह ने शिकायत लिखने मे कोई कोर कसर बाकी नही रखी है। मने सोचा यह उसी वैमनस्य का कारण है कि जब राजा मानसिंह ने राणा (प्रतापसिंह) के राज्य पर आक्रमण करके उसे पराजित किया था। इसी वैमनस्य को अपने हृदय मे रखकर राजा भीमसिंह चाहता है कि हमारे परम्परागत बने भवनों को गिराकर स्वयम् अपने नाम के भवन बनवाकर जमीदारी करे और कछवाहा जाति की जमीदारी मे सिसोदिया जाति से खतरा

उत्पन्न हो। इस जाति के व्यक्ति अवसर पाकर नौकरी करते हैं और फिर छोड़कर चले जाते हैं।"

वकील मेघराज ने अपने स्वामी के स्वार्थ साधन के लिए भूतकालीन ऐतिहासिक थंग्र को जातीयता के आवरण में जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वह पढ़ने योग्य है तथा तत्कालीन राजनीति को दिग्दर्शित करते हैं।

इतने सारे प्रयत्न करने पर भी परगना मालपुरा राजा भीमसिंह के अधिकार से नही निकाला जा सका। एक बार उनके अधिकार से कम किये जाने का शाही आदेश हुआ था किन्तु शाहजादा बेदारवख्त ने बादशाह को निवेदन किया कि "पन्हालागढ़ के युद्ध में राजा भीम प्राणपण से लड़ रहे हैं, ऐसे समय मालपुरा उनके अधिकार से नही निकाला जाना चाहिये" इस पर बादशाह ने वि० सं० १७५० कार्तिक वदी ५ को परगना मालपुरा राजा भीमसिंह को वेतन की जागीर में पूर्णतया दे दिया। जो जीवन पर्यन्त उनके अधिकार में ही रहा।

विवाह:—राजा भीमसिंह की सोलह राणियां थीं, उनके नाम निम्न प्रकार हैं।

१. कल्याण कुंवर पुंवार वम्बोरा के रूपसिंह की पुत्री।
२. चन्द्रकुंवर झाली गंगराड के प्रतापसिंह की पुत्री।
३. रतनकुंवर राजावत भलाय की अचयराज की पुत्री।
४. देवकुंवर इडरेची राठौड़ जगमाल की पुत्री।
५. आनंदकुंवर झाली सादडी की।
६. कुशलकुंवर जोधपुरी भणाय के राजा उदयभान की पुत्री।
७. रामकुंवर चांपावत आवुआ की अचयसिंह की पुत्री।
८. विचित्रकुंवर खीचण मऊ मैदाने के राजा जोगीदास की पुत्री।
९. अजवकुंवर झाली देलवाड़ा के सुजानसिंह की पुत्री।
१०. किशनकुंवर इडरेची द्वारकादास की पुत्री।
११. सेवकुंवर खीचण खिलचीपुर के हठीसिंह की पुत्री।
१२. रावाबाई हाडी दुर्जनसिंह हाडा के भाई की पुत्री।
१३. महाकुंवर बीकानेरी पद्मसिंह की पुत्री।
१४. फूलकुंवर चौहानजी कोठारिया के रुक्मांगद की पुत्री।
१५. अमृतकुंवर चौहानजी कोठारिया के साहबखान की पौत्री।
१६. सरदारकुवर हाडी बूंदी की।

उपरोक्त इन सोलह राणियों मे से नो राणियों से राजा भीमसिंह के विवाह राजसमुद्र की प्रतिष्ठा (वि० सं० १७३२) के पूर्व ही हो गये थे। सोलह राणियों से ग्यारह पुत्र हुए। इनमें से कुंवर अजयसिंह बीजापुर के युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुवे। इनके पश्चात् कुंवर सूर्यमल पाटवी राजकुमार बनाये गये। खुमानसिंह को खरसोद मालवे में वड़नगर परगने से, पृथ्वीसिंह को पारोली मांडलगढ़ परगने से तथा वड़ा मोथ्रा और सीदड़यावास बनेड़े परगने से,

विजयसिंह को अमला वडनगर परगने से, जोरावरसिंह को वरडया वडनगर परगने से तथा कीर्तिसिंह को खेडावदा वडनगर परगने से जागीर मे दिये गये थे। कुं० अर्जुनसिंह को परगना नोलाई (वडनगर) मे ग्राम भौरामा जागीर मे दिया गया था तथा एक पुत्र का नाम सौभाग्य-सिंह था। शेष दो पुत्रो की शैशव काल मे ही मृत्यु हो गई थी।

पुत्रिया दो हुई। जिनमे से एक का विवाह राजा भीमसिंह के स्वर्गवास के पश्चात् राजा सूर्यमल ने जयपुर नरेश महाराजा जयसिंह से जेष्ठ सुदी ११ सवत् १७५६ मे किया। जयसिंह उस समय कुवर पदे मे थे।

दूसरी पुत्री स्वरूप कुवर का विवाह बूदी के राव जोधसिंह हाडा से हुवा था। उन्होने वहा एक वावडी वनवाई।

शाही सेवा में उनके सम्बन्धियों का तथा पुत्रों का आना —राजा भीमसिंह के साथ उनके अनेक सम्बंधि तथा पुत्र शाही सेवा मे आये थे। उनके नाम और मनसब का विवरण निम्न प्रकार है —

१ आतमाराम का पुत्र जयसिंह चौहान वेदला का था। उसका मनसब चार सदी जात दो सौ सवार का था। उसे राजा भीमसिंह ने वनेडा राज्य से रीछडा ग्राम जागीर मे दिया था।

२ कुशलसिंह चित्तौड का था, उसका मनसब छ सदी जात तीन सौ सवारो का था।

३ फतहसिंह राणा राजसिंह के भाई और अरिसिंह के पुत्र थे। उनका मनसब छ सदी जात तीन सौ सवारो का था।

४ भगवतसिंह, अरिसिंह के दूसरे पुत्र भी शाही सेवा मे आये थे।

५ सुजानसिंह, फतहसिंह के पुत्र थे उनका मनसब पाच सदी जात दो सौ सवारो का था।

६ दलसिंह सीसोदिया राजा भीमसिंह के नाते मे काका थे। उनका मनसब एक हजारी जात दो सौ सवारो का था।

राजा भीमसिंह के पुत्रो मे कुवर अजबसिंह शाही सेवा मे आये थे। मृत्यु के समय उनका मनसब तीन सदी जात दो सौ सवारो का था। कुंवर सूर्यमल भी शाही सेवा मे थे। कुवर खुमानसिंह का मनसब सात सदी जात तीन सौ सवारो का था। कुवर जोरावरसिंह का मनसब तीन सदी जात दो सौ सवारों का था। कुंवर पृथ्वीसिंह भी शाही सेवा मे थे। कुवर विजयसिंह का मनसब चार सदी जात सौ सवारो का था।

राजा भीमसिंह का रग गोरा, शरीर सुन्दर और सुदृढ़ तथा कद ऊचा था। वह वीर, युद्ध प्रिय, दानी और उदार थे।[1] मृत्यु के समय उनकी आयु चालीस वर्ष की थी।

१—राज विलास काव्यग्रन्थ।

उनके समय में उनके सम्बन्धियों का शाही सेवा में आना:—राणा राजसिंह के पुत्र इन्द्रसिंह तथा बहादुरसिंह राजा सूर्यमल के समय में शाही सेवा मे आये। इन्द्रसिंह ने बादशाह को सौ मोहरें, एक हजार रुपये, हाथी और घोड़े भेंट किये, उन्हें 'खिलअत अव्वल' उपहार में मिला। बहादुरसिंह ने ५० मोहरें, चार सौ रुपये और घोड़े भेंट किये। यह घटना आषाढ़ वदी ५ वि० सं० १७५६ की है।[1] बादशाह ने इन्द्रसिंह को दो हजारी जात हजार सवार का मनसब तथा बहादुरसिंह को एक हजारी जात पांच सौ सवार का मनसब श्रावण वदी ८ सम्वत् १७५६ को दिया।[2]

इनके समय में इनके भाई जोरावरसिंह जो दो सदी जात सौ सवारों के मनसबदार थे, उनकी नियुक्ति शाहजादा मुहम्मद आज़म के पास भाद्रपद वदी १२ वि० सं० १७५७ को गई थी।[3]

तीर्थ यात्रायें:—अपने अल्प जीवन में उन्होंने रणक्षेत्र में जाते समय मार्ग में पड़ने वाले तीर्थ स्थानों के दर्शन किये तथा गंगा स्नान किया।

अधिकार के प्रदेश:—इनकी मृत्यु के समय इनके अधिकार मे नोलाय (बडनगर) बदनावर, बनेडा परगने थे। इनका मनसब राजा भीमसिंह से कम होने के कारण मालपुरा और माण्डलगढ़ बादशाह की ओर से निकाल लिये गये थे। राजा सूर्यमल वीर और साहसी थे, सुदूर मुलतान तथा काबुल मे उन्होंने अपने स्वामी के लिये प्राणोत्सर्ग किया। यही उनकी वीरता, निर्भयता, पराक्रम का ज्वलंत उदाहरण है। मृत्यु के समय उनकी आयु केवल २३ वर्ष की थी।

१—शाही अखबार। २—औरंगजेब नामा भाग २ पृष्ठ १२८ व शाही अखबार। बहादुरसिंह भेणास के जागीरदार थे। ३—शाही अखबार।

राजा सुरताणसिंह

जन्म —राजा सुरताणसिंह का जन्म वि० सं० १७२ मे हुआ। इनकी माता ईडरेची इन्हें नोनाय (वडनगर) ले गई।[1] इनके पिता सूर्यमल का स्वर्गवास हुआ तब वह अपनी माता के साथ वनेडा आये। अपने पिता के फूल और भस्मी गंगार्पण करने वह हरिद्वार गये और बनेडा मे उन्होंने फाल्गुन वदी ११ वि० सं० १७५७ को उदक दान दिया।[2] उस समय उनकी आयु पाच वर्ष की थी।

राजनीति में प्रवेश —वि० सं० १७५७ निज आश्विन सुदी ७ को शाहजादा मुईज्जुद्दीन के निवेदन करने पर वादशाह ने उनके पिता सूर्यमल की सेवाओं की ओर देखते हुए उन्हे हजारी जात पाच सौ सवारो का मनसव प्रदान किया और उनकी नियुक्ति वि० स १७५७ मार्गशीर्ष वदी ९ को शाहाजादा मुईज्जुद्दीन के साथ कर दी गई।[3]

वि० सं० १७६१ मार्गशीर्ष वदी ६ के एक परवाने से ज्ञात होता है कि उस समय राजा सुरताणसिंह की ओर से नो हाथी और दो हजार सवार शाही सेना मे रहते थे।

वि० सं० १७५७ से वि० सं० १७६३ तक वह शाहजादा मुईज्जुद्दीन के साथ शाही लश्कर मे ही रहे और उनकी सेना तथा सम्वन्धि शाही प्रदेश की रक्षा मे भाग लेते रहे

महाराजा सवाई जयसिंह जयपुर की राणी सीसोदिनी (राजा भीमसिंह वनेडा की पुत्री) को पुत्र हुआ। महाराजा सवाई जयसिंह ने पुत्रोत्सव के अवसर पर पौष सुदी ९ वि० सं० १७६३ को अपने वकील के द्वारा वादशाह को नो अशरफी एक हजार रुपये भेट किये।[4]

फाल्गुन कृष्णा १८ वि० सं० १७६३ को वादशाह औरंगजेब की मृत्यु हो गई। उस समय शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम कावुल मे थे। अपने पिता की मृत्यु का समाचार उन्हे चैत्र कृष्णा १३ वि० सं० १७६३ को मिला। उन्होंने शाहआलम वहादुरशाह पदवी को धारण कर स्वयम् को वादशाह घोषित किया और वह वहा से सेना सहित दिल्ली आने के लिये निकले। मार्ग से ही उन्होंने मुनइमखा को दिल्ली के प्रवन्ध के लिये रवाना कर दिया। स्वयम् भी ज्येष्ठ कृष्णा १३ वि० सं० १७६४ को दिल्ली पहुँच गये। उनका सवसे वडा पुत्र शाहजादा मुईज्जुद्दीन मुलतान से चलकर लाहौर मे उनसे आ मिला। उसके साथ ही राजा सुरताणसिंह भी दिल्ली आ गये।

शाहजादा आजम उस समय वादशाह औरंगजेब के साथ दक्षिण मे था। वादशाह ने उसे मालवे की ओर भेज दिया। शाहजादा आजम जानता था कि वादशाह की आयु अब अधिक नहीं है। अतएव वह धीरे धीरे मार्ग आक्रमण कर रहा था। औरंगजेब की मृत्यु का

१—एक पुरातन कागज। २—बड़ों की पोथी। एक पुरातन कागज।
३—शाही अखबारात। ४—महाराजा जयसिंह का पत्र।

समाचार शाहजादा आज़म को उसकी बहन जेबुन्निसा ने भेजा और वह मार्ग से ही लौट आया।[1] वि० सं० १७६३ फाल्गुन सुदी १२ को उसने भी स्वयम् को बादशाह घोषित किया और चैत्र कृष्ण १ वि० सं० १७६३ को सेना सहित दिल्ली की ओर चल पड़ा। वह वि० सं० १७६४ ज्येष्ठ सुदी १३ को ग्वालियर पहुँच गया।

बादशाह बहादुरशाह ने शाहजादा आज़म को बहुत समझाया कि आपसी वैमनस्य तथा युद्ध से मुगल साम्राज्य जर्जरित होकर खण्ड-खण्ड हो जावेगा किन्तु जब शाहजादा आज़म नहीं माना तब दोनों भाइयों में युद्ध हुआ। आज़म और बेदारबख्त मारे गये। बहादुरशाह विजयी हुवे। शाहजादा मुईज्जुद्दीन के साथ राजा सुरताणसिंह भी इस युद्ध में सम्मिलित हुये थे। बादशाह ने शाहजादा मुईज्जुद्दीन को "जहांदरशाह बहादुर" की पदवी प्रदान की।[2]

राजा सुरताणसिंह वि० सं० १७६४ मे दिल्ली ही रहे। वह अल्पवयस्क तथा शाही सेवा में होने से उनकी माता इडरेची की सम्मति से महाराणा अमरसिंह उदयपुर ने परगना बनेड़ा अपने अधिकार मे ले लिया और वि० सं० १७६५ तक उसका प्रबन्ध करते रहे। राजमाता इडरेची ने नोलाय (बड़नगर) और बदनावर का प्रबंध संभाला। वि० सं० १७६६ में परगना बनेड़ा फिर राजा सुरताणसिंह के अधिकार में दे दिया गया। वि० सम्वत् १७६४ भाद्रपद वदी ५ को महाराणा अमरसिंह ने परगने बनेड़े का गांव मूसा जो राणावत भारतसिंह की भोम में था, उससे निकालकर बबराणा के ठाकुर सांवलदास को दिया।[3]

माघ सुदी १३ वि० सं० १७६५ को राजा सुरताणसिंह को बादशाह बहादुरशाह ने खिलअत प्रदान किया।[4]

वि० सं० १७६५ में वह बनेड़ा ही थे। ज्येष्ट सुदी १२ वि० सं० १७६६ को वह बादशाह की सेवा में उपस्थित हुये। मोअज्जुद्दीन से भेंट की, उसने उन्हें सिरोपाव प्रदान किया। इसकी सूचना उन्होंने ज्येष्ठ शुक्ल १४ को महाराजा सवाई जयसिंह जयपुर को दी कि "बादशाह सकुशल पहुँच गये। मैंने उनसे और शाहजादा मोअज्जुद्दीन से भेंट की। मुझे सिरोपाव प्रदान किया गया"।[5]

१—बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जयपुर नरेश के वकील ने जो पत्र उनके पास भेजा उसमें उस समय का प्रत्यक्ष वर्णन है। वह उसी की भाषा में नीचे दिया जाता है:—

"फाल्गुन सुदी १ शुक्रवार गजर बाजतां श्री पातस्याहजी को वाको हुओ। तीपर बेगम आलमशाह ने बद (अमावस) पहर रात गया खबर दोड़ाई तीपर अमीर उलउमराव ने चीखलीजखां ने फुरमान आयोज लसकर की खबरदारी राखजो, हूं भी आउं हूं। तीपर सुदी १ पहर दिन चढ़तां अमीरुल उमराव व चीकलीजखा, आतसखां नो खड़ोकर गुलालबाड में जाय बैठा। बेगम की दिलासा की हिदायत फेसखां, काम बक्स का वकील ने गुलालबाड में नजरबंद कर बैठाय राखो, सुद १ तीसरा पहर ने सुलतान नजर संदल का तखता ताबुत के वास्ते ले आयो सुं बणाये है येक सियाने आजमशाह को हुक्म आयो फौजबंदी तयार करो तुमार तयार होय है आजरात तांई आजमसाह भी आसी और समाचार होसी सुं पाछातुं अरजदास्त करसुं।" २—वीर विनोद।

३—एक तत्कालीन पत्र। ४—शाही अखबार। ५—एक तत्कालीन पत्र।

जारा सुरताणसिंह शाही सेवा मे दिल्ली रहे। बादशाह बहादुरशाह के शासन काल मे मुगल साम्राज्य का प्रबन्ध नितान्त अव्यवस्थित हो गया था। शाही सेनापतियों पर तथा अधिकारियों पर उनका लेशमात्र प्रभाव नहीं रहा था। जयपुर नरेश के वकील ने वि० सं० १७६६ आषाढ़ वदी ५ के अपने एक पत्र मे तत्कालीन शाही दरबार का एक ही वाक्य मे दिग्दर्शन किया है, जो पढने योग्य है। उसने लिखा है, "पातस्याहजी हजूर गुसुणुहोय रही है, सरे दीवान 'भट्यारा' की सी लडाई होय रही है जी।"

बादशाह बहादुरशाह की मृत्यु वि० सं० १७६८ फाल्गुन वदी ६ को हो गई और फिर एक बार मुगल साम्राज्य को प्राप्त करने के लिये शाही रंगमंच पर शाहजादों ने तथा सेनापतियो ने रक्त की होली खेली।

बादशाह की मृत्यु होते ही मोअज्जुद्दीन जहादरशाह, अख्तरजहाशाह, रफीउश्शान तीनो शाहजादों ने मिलकर शाहजादा अजीमुश्शान पर आक्रमण किया। यह युद्ध लाहौर मे हुआ। अजीमुश्शान को हार हुई। उसका हाथी रण मैदान से उसे लेकर भागा और रावी नदी मे दोनो डूबकर मर गये। मोअज्जुद्दीन जहादरशाह ने जहाशाह और रफीउश्शान को मारकर आषाढ़ कृष्ण ४ वि० सं० १७६६ को स्वयम् को बादशाह घोषित किया।[1]

बादशाह जहादरशाह आठ मास भी बादशाहत नही कर पाया कि उसे मारकर फर्रुखशियर माघ कृष्ण १ वि० सं० १७६९ को बादशाह बन बैठा।[2]

कार्तिक वदी ६ वि० सं० १७७० को बादशाह फर्रुखशियर ने अपने जन्म दिवस का उत्सव मनाया। उसमे राजा सुरताणसिंह ने बादशाह को दो मोहरें भेंट की। बादशाह ने वि० सं० १७७१ वैशाख सुदी ५ को राजा सुरताणसिंह को हजार पान सदीजात आठ सौ सवारो का मनसब प्रदान किया।[3]

बादशाह औरङ्गजेब के समय से चला आ रहा जाटो का विद्रोह अभी समाप्त नहीं हुआ था। चुरामण जाट सक्रिय था और शाही प्रदेश मे उपद्रव मचा रहा था। शाही सेना उसको दण्ड देने के लिये भेजी गई, उसमे राजा सुरताणसिंह की भी नियुक्ति की गई। अधिक आषाढ़

१—तत्कालीन पत्र। २—वीरविनोद व बनेड़ा संग्रह।—बादशाह मोअज्जुद्दीन जहांदरशाह तथा फररुखशियर के युद्ध का वर्णन तत्कालीन जयपुर नरेश के वकील ने उनके पास भेजा था वह उसीके शब्दों में पढ़िये —

माघ वदी २ विक्रम संवत् १७६९ श्री जी सलामत माघ वदी २ रवी, पहर रात गया ग़ुस्लखाना ठोर मारयो अर नगारखाना के आगे धड़ जुदो पड़ो है, सिर जुदो पड़ो है।

श्री जी सलामत मोअज्जुद्दीन ने जहानाबाद सु हाथी का खुला होदा ऊपर बैठकर ले आया, गला में तोक, हाथों में हथकड़ी, पावों में बेड़ी ई भांत सहर में सु लीया लाया हजुर में ले आया। तब गुसलखाना में जिबह कियो सुं नगारखाना आगे हाथी ऊपर मोअज्जुद्दीन की लोथ पड़ी है पातीस्याह का हुकम हुआ कि नौबत बजाओ। सो नौबत बाजे छै जी। देस जे अब आसफदौला को काई करे, अबजदी ने काढ़ करे, सो अरजदासत करस सु जी।

३—शाही अखबार।

सुदी ९ वि० सं० १७७१ को सुरताणसिंह के मोर्चे पर पांच सौ जाट सैनिकों ने आक्रमण किया। राजा सुरताणसिंह ने उनका डटकर सामना किया। जाटों के कई सैनिक मारे गये और कई घायल हुवे। राजा सुरताणसिंह ने अपने सैनिकों का उत्साह वर्धन कर उन्हें उपहार दिये।[1]

इसके पूर्व ही मरहठों के आक्रमणों का सूत्रपात मालवा में हो गया था। प्रतिवर्ष उनके आक्रमण मालवे पर होने लगे थे। राजा सुरताणसिंह के जागीर के परगने नोलाय (बड़नगर) तथा बदनावर मरहठों के आक्रमणों से अछूते नहीं रहे। उन दिनों मालवे के सूबेदार महाराजा सवाई जयसिंह थे।[2] राजा सुरताणसिंह जाटों के उपद्रव को दबाने में संलग्न थे। अपने परगनों का प्रबन्ध करने नहीं जा सकते थे। मरहठों के आक्रमणों की सूचना जब उन्हें उनके वहां के प्रबन्धकों द्वारा मिली, तब राजा सुरताणसिंह ने महाराजा सवाई जयसिंह को लिखा। सवाई जयसिंह ने राजा सुरताणसिंह की जागीर की रक्षा के हेतु मालवे के तत्कालीन मुगल अधिकारियों को लिखा और आश्विन सुदी ३ वि० सं० १७७१ को उसकी सूचना राजा सुरताणसिंह को दी।[3] किन्तु सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं हुआ, तब राजा सुरताणसिंह ने बादशाह की सेवा में निवेदन कर अपनी जागीर में जाने की स्वीकृति फाल्गुन सुदी ७ वि० सं० १७७१ को प्राप्त की। वह अपनी मुख्य जागीर बनेड़ा आये और वहां से नोलाय (बड़नगर) तथा बदनावर जाकर वहां का प्रबंध किया। सुरक्षा का प्रबंध करने के उपरान्त वह फिर शाही सेवा में उपस्थित हुवे। बादशाह फर्रुखशियर ने उन्हें ज्येष्ठ सुदी ११ वि० सं० १७७३ को खिलअत प्रदान किया और हुसैनअली खां बख्शी उलमुल्क की सेना मे उनकी नियुक्ति का आदेश दिया।[4]

बख्शी उलमुल्क हुसैनअली को बादशाह ने भाद्रपद वि० सं० १७७३ में शाही प्रदेश की रक्षा के लिये दक्षिण जाने का आदेश दिया। राजा सुरताणसिंह भी उनके साथ दक्षिण पहुँच गये। वहां उनका निवास औरङ्गाबाद मे रहा। शाही प्रबंध के हेतु वह शोलापुर आदि स्थानों पर गये किन्तु कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। क्योंकि बख्शी उलमुल्क हुसैनअली तथा बादशाह फर्रुखशियर मे अन्दरूनी अनबन थी, अतएव उसका सारा ध्यान दिल्ली के राजनैतिक वातावरण की ओर था। वि० सं० १७७५ तक वह दक्षिण में रहा और वि० सं० १७७५ के फाल्गुन में फिर वह दिल्ली पहुँच गया। उसके साथ राजा सुरताणसिंह भी दिल्ली आ गये। औरंगाबाद में जहां उनका सैनिक शिविर था उस स्थान पर 'सुरताण पुरा' नामक ग्राम बस गया, जो अब तक विद्यमान है।

वि० सम्वत् १७७५ में दक्षिण से लौटने पर राजा सुरताणसिंह शाही सेवा में दिल्ली रहे। उन दिनों मुगल साम्राज्य का शनैः शनैः पतन हो रहा था। शाही सत्ता सेना नायकों के हाथों में चली गई थी तथा बादशाह कठपुतली मात्र रह गये थे। सैयदों ने बादशाह फर्रुखशियर को पकड़कर पहिले तो कैद किया, फिर आंखे निकाली और फिर फाल्गुन वदी ११ वि० सम्वत् १७७५ को उसे मार डाला।

१—शाही फौजी अखबार। २—मालवा में युगांतर। (श्री डॉ० रघुवीरसिंह)
३—बनेड़ा संग्रह। ४—शाही अखबार।

इधर मालवा मे मरहठों के आक्रमणो मे तीव्रता आती गई। मरहठो का लक्ष्य मालवा को अपने आधीन करने का था। उसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये वह बार बार मालवा पर आक्रमण करने लगे। राजा सुरताणसिंह की जागीर नोलाय (वडनगर) और बदनावर मालवा मे थी एवम् मुख्य जागीर बनेडा भी मालवा की ओर ही थी। मरहठों के आक्रमणो की आच उनकी जागीरो को भी लगती थी अतएव महाराजा सवाई जयसिंह (जयपुर) ने शाही दरबार मे निवेदन किया कि "राजा सुरताणसिंह जमीदार नोलाय (बडनगर) की जागीरों के गावों के निवासी शत्रुओ की लूट खसोट के कारण इधर उधर भाग रहे हैं। गाव वीरान हो रहे हैं। अभी निकट भविष्य मे फिर शत्रु इधर आने वाला है। अत राजा सुरताणसिंह को अपनी जागीर मे जाने की स्वीकृति प्रदान की जावे। वहां का प्रवन्ध करने पर वह फिर जब आदेश होगा, सेवा मे उपस्थित हो जावेगे।"[1]

राजा सुरताणसिंह के निरतर शाही सेवा मे, अपनी जागीर से दूर रहने के कारण जागीरी प्रवन्ध मे शिथिलता तथा विश्रृंखलना आना स्वाभाविक था, आर्थिक स्थिति असन्तोष जनक होती जारही थी। उनकी माता ईडरेची जागीरो का प्रवन्ध किसी प्रकार चला रही थी। कई बार उनको स्वामी देवपुरी से ऋण लेना पडा था। किन्तु जब मरहठो के आक्रमणो से जागीर के गाव वीरान होने लगे तब स्थिति और भी नाजुक हो गई और राजा सुरताणसिंह को अपनी जागीर मे आना आवश्यक हो गया। शाही दरबार की रक्त रंजित घटनाओ के कारण सभी शाही सेवक ऊब गये थे, न तो किसी को उत्साह रह गया था, न आकर्षण, न व्यवस्थित रूप से पद मे, मनसब मे तथा जागीर मे वृद्धि होने की सम्भावना रह गई थी। जहा स्वयम् साम्राज्य ही पतन की ओर उन्मुख हो रहा था वहा यह सब बातें कहा सम्भव थी। मुगल साम्राज्य का पतन और मरहठों का मालवा मे आगमन दोनो को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर राजा सुरताणसिंह का अपनी जागीर मे आना ही श्रेयस्कर था अतएव शाही आज्ञा प्राप्त कर वह अपनी जागीर बनेडा मे आ गये।

मार्गशीर्ष सुदी ७ वि० स० १७७७ को राजा सुरताणसिंह जयपुर गये और महाराजा सवाई जयसिंह से मिले। यथोचित आदर सत्कार के पश्चात् उन्हे जयपुर नरेश ने सिरोपाव दिया। ज्येष्ठ सुदी १ वि० सं० १७८१ मे फिर वह महाराजा सवाई जयसिंह से भेट करने जयपुर गये। नियमानुसार उन्हे उपहार दिये गये।[2]

महाराजा सवाई जयसिंह का मुकाम जब सोरोंजी था तब राजा सुरताणसिंह भी वही थे। उन्होंने वैशाख वदी १३ वि० सम्वत् १७८२ को महाराजा जयसिंह से भेंट की, उन्हे जयपुर नरेश की ओर से उपहार दिये गये।[3]

महाराजा सवाई जयसिंह जब उदयपुर आये थे तब आश्विन सुदी ९ विक्रम सम्वत् १७८५ को राजा सुरताणसिंह ने उनसे भेंट की तब जयपुर नरेश ने उनको उपहार आदि दिये।[4]

जोधपुर नरेश महाराजा अभयसिंह जब राजा सुरताणसिंह की कन्या स्वरूपकंवर से विवाह करने बनेडा आये थे तब राजा सुरताणसिंह बहुत अस्वस्थ थे। दुर्भाग्यवश पाणि

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह। ४—जयपुर रिकार्ड।

ग्रहण संस्कार के पूर्व ही आषाढ़ सुदी ७ विक्रम सम्वत् १७११ को उनका स्वर्गवास हो गया। पाणिग्रहण संस्कार की विधि कुंवर सरदारसिंह ने सम्पन्न की।

विवाह:—राजा सुरताणसिंह की चार राणियां थी उनके नाम निम्न प्रकार हैं:—

१—झाली मानकुंवर देलवाड़े के मानसिंह की पुत्री सज्जा की पौत्री।

२—चौहान लाडबाई रीछड़ा के विजयसिंह की पुत्री जयसिंह की पौत्री।

३—भदावरनी अमेदकुंवर भदावर के गोपालसिंह की पुत्री कल्याणसिंह की पौत्री।

४—राजावत किशनकुंवर झनाय के कुशलसिंह की पुत्री गजसिंह की पौत्री।

संतति:—कुंवर सरदारसिंह का जन्म राजावत किशनकुंवर की कोख से हुआ था। पुत्रियां सात थी उनके नाम और विवाह का विवरण निम्न प्रकार है:—

१—मानकुंवर, (२) रूपकुंवर, (३) नाथकुंवर, (४) रतनकुंवर, (५) अजबकुंवर, (६) स्वरूपकुंवर, (७) सुरजकुंवर।

१—स्वरूपकुंवर बाई का विवाह जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के साथ हुआ था।

२—नाथकुंवर बाई तथा मानकुंवर बाई दोनों का विवाह नागौर के राजा बख्तसिंह के साथ हुआ था।

३—रूपकुंवर बाई का विवाह चत्रसिंह भदावर के साथ हुआ था।

४—रतनकुंवर बाई का विवाह महाराजा माधवसिंह जयपुर के साथ हुआ था।

५—अजबकुंवर बाई का विवाह महाराजा ईश्वरीसिंह जयपुर के साथ हुआ था।

धार्मिक आस्था:—माघ वदी १ विक्रम संवत् १७५९ को राजा सुरताणसिंह ने पुष्कर तीर्थ में स्नान कर मालाखों में ५१ बीघा भूमि व गाय दान में दी।

श्रावण वदी ८ विक्रम संवत् १७६० को उन्होंने ग्राम बड़ी लाम्बिया में भूमि दान दी।

वैशाख सुदी पूर्णिमा विक्रमी संवत् १७६१ को नोलाय (बड़नगर) के श्री जगन्नाथराय के मन्दिर के पुजारी बालकृष्णदास को उन्होंने १०१ बीघा भूमि दान देकर १२५ रु० वर्षासन कर दिया। इसी बालकृष्णदास को वृन्दावन में चीरघाट स्थान से १०६ बीघा भूमि दान दी।

कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा विक्रम संवत् १७६१ को जब वह दिल्ली में थे तब गंगा स्नान कर दान दिया।

मार्गशीर्ष सुदी ९ वि० सं० १७६३ को उन्होंने आनन्दराम को दस बीघा भूमि दान दी।

विक्रम संवत् १७६४ के श्रावण मास मे सौरोजी जाकर उन्होंने गंगा स्नान किया।

मार्गशीर्ष सुदी ५ विक्रम संवत् १७६४ को उन्होंने आनन्दराम श्री किशन को बनेड़े में ३० बीघा भूमि दान दी।

कार्तिक वदी १ विक्रम संवत् १७६५ को उन्होंने शक्तावत सांवलदास केशवदासोत को खंडवा-बीबी तथा बणवणा परगना नोलाय (बड़नगर) में जागीर में दिये।

कार्तिक सुदी १५ विक्रमी संवत् १७६५ भट्ट थम्बई जसवन्तसुत लाल को निम्बाहेडा गाव मे १२१ बीघा, बनेडा मे २० बीघा, सुरताणगढ मे १२ बीघा, कुल १५३ बीघा भूमि दान दी।

विक्रमी सवत् १७७२ के आश्विन वदी मे वह सोरोंजी गंगा स्नान करने गये और विक्रमी संवत् १७७३ चैत्र सुदी ११ को मुकाम औरंगाबाद से काका बखतसिंह को लिखकर बनेडे मे पुरोहित जयदेव को चालीस बीघा भूमि दान दी।

कार्तिक सुदी ७ विक्रमी सवत् १७७३ को जब दक्षिण की ओर रणक्षेत्र पर जा रहे थे तब नासिक मे त्र्यम्बकेश्वर के दर्शन किये और तीर्थ गुरु ओंकार सुत विश्वनाथ को पट्टा लिखा।

वैशाख सुदी पूर्णिमा विक्रम संवत् १७७५ को वह औरंगाबाद से ओडानागनाथ के दर्शन करने गये।[1] विक्रम संवत् १७७६ मे फिर वह सोरोंजी मे गंगा स्नान करने गये।

विक्रमी सवत् १७७६ मे वैशाख बदी सोमवती अमावस को उन्होंने स्वामी ज्ञाननाथ चेला बालकनाथ को ८१ बीघा भूमि दान दी।

वैशाख बदी अमावस विक्रम सवत् १७७७ को ग्राम सूरजपुरा मे व्यास काशीराम को २१ बीघा भूमि दान दी।

ज्येष्ठ सुदी १ विक्रमी संवत् १७८१ को नगजीराम आनन्दराम जोशी को ५१ बीघा भूमि दान दी।

माघ सुदी पूर्णिमा विक्रमी संवत् १७८१ को भट्ट थम्बई जसवन्त सुत को १०१ बीघा भूमि दान दी। फाल्गुन मे और भी भूमि दान दी।

वैशाख सुदी १ विक्रमी संवत् १७८२ सोरोंजी गंगा स्नान करने गये।[2]

सम्बन्धियों की शाही सेवा—राजा सुरताणसिंह के समय मे उनके सम्बन्धियों की शाही सेवा का विवरण निम्न प्रकार है.—

अर्जुनसिंह,[3] (भोरासा, बडनगर)—श्रावण सुदी २ वि० सं० १७५८ को अर्जुनसिंह ने शाही दरबार मे उपस्थित होकर पाच मोहरें तथा नौ रुपये बादशाह औरंगजेब को भेट किये। बादशाह ने उनका मनसब तीन सदी जात पचास सवार से बढाकर चार सदी जात ३५० सवार कर दिया[4] और श्रावण सुदी ११ को उनकी नियुक्ति मुतालिबखा के पास कर दी।[5]

आश्विन सुदी ६ विक्रमी संवत् १७५९ को बादशाह औरंगजेब के आदेश से अर्जुनसिंह की नियुक्ति धन्ना जाधव पर आक्रमण करने भेजी गई शाही सेना के साथ दक्षिण मे की गई।[6]

१—नागनाथ —द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में नागेश लिङ्ग। कम्पीगुडा मनमाड लाइन पर औरङ्गाबाद से ११० मील दूर परभणी स्टेशन है वहा से एक लाइन पर्ली बैजनाथ तक जाती है। इस लाइन पर परभणी से १४ मील दूर चौंडी स्टेशन है। वहां से औंढा नागनाथ बारह मील है। यहां पर राजा भीम सिंह भी गये थे।

२—पुरातन दान पत्र, पुरानी बहियें आदि से। ३—अर्जुनसिंह, राजा सुरताणसिंह के काका थे। ४—शाही अखबार। ५—शाही अखबार। ६— शाही अखबार।

भाद्रपद वदी १० विक्रमी संवत् १७६७ को बादशाह फर्रुखसियर ने उनको बारां का फौजदार नियुक्त किया।[1]

शाहजहाँपुर (मालवा) के इनायतउल्ला नामक शाही अधिकारी ने साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। उसे दण्ड देने के लिये महाराजा सवाई जयपुर की नियुक्ति बादशाह ने की। उनके साथ अर्जुनसिंह की भी नियुक्ति चैत्र वदी १३ वि० सं० १७७२ को शाही आदेश से की गई।[2] उनको खिलअत और हाथी देकर उनका मनसब हजारी जात चार सौ सवार कर दिया गया।[3]

चैत्र शुक्ल २ वि० सं० १७६७ को बादशाह बहादुरशाह ने अर्जुनसिंह को कारखाने जात की गाड़ी के साथ आने का आदेश प्रदान किया।[4]

वि० सं० १७६५ के वैशाख में अर्जुनसिंह ने मथुरा के प्रयाग नामक ब्राह्मण को २५ बीघा भूमि दान दी।

विजयसिंह (अमला):—भाद्रपद वदी ८ वि० सं० १७६० को विजयसिंह शाही दरबार में उपस्थित हुवे और बादशाह औरंगजेब को उन्होंने एक मोहर तथा नौ रुपये भेंट किये। उस समय उनका मनसब तीन सदी जात पचास सवार था। बादशाह ने आश्विन वदी १ को उसे बढ़ाकर पांच सदी जात सौ सवार कर दिया।[5]

जयपुर से प्राप्त किये गये तत्कालीन पत्रों से ज्ञात होता है कि विजयसिंह की गिनती उन दिनों वीर सेनानी तथा राजनीतिज्ञों मे की जाती थी। महाराजा सवाई जयसिंह जयपुर ने उस समय कई पत्र लिखकर शाही दरबार में यह निवेदन किया था कि "विजयसिंह की नियुक्ति मेरे साथ मालवे में की जावे" बादशाह ने इसकी स्वीकृति दी। इन पत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि विजयसिंह ने अफगानों के युद्ध में बहुत वीरता दिखाई थी। मरहठों के आक्रमणों को रोकने के लिये उनकी नियुक्ति नर्मदा के घाट पर की गई थी।[6]

मार्गशीर्ष सुदी ७ सम्वत् १७७७ को महाराजा सवाई जयसिंह (जयपुर) का मुकाम जब जयसिंहपुरा दिल्ली मे था तब विजयसिंह ने वहां जाकर उनसे भेंट की। महाराजा सवाई जयसिंह ने नियमानुसार उन्हे उपहार दिये।

माघ सुदी १३ वि० सं० १७७७ को विजयसिंह ने महाराजा सवाई जयसिंह को लिखा कि "मै आपके पास आ रहा था कि शत्रु के आने की सूचना मिली मैंने और रियायतखां ने उन पर आक्रमण किया शत्रु नर्मदा के उस पार चला गया। शाही प्रदेश को वीरान न कर सका। अब मैं आपके पास आऊं या आपके नायब नारायणदास के पास उज्जैन जाऊं"।[7]

जोरावरसिंह:—इनकी नियुक्ति बादशाह औरगजेब के आदेश से भाद्रपद वदी १२

१—शाही अखबार। २—शाही अखबार। ३—शाही अखबार। ४—शाही अखबार। ५—शाही अखबारात। ६—शाही अखबारात। ७—शाही अखबारात।

वि० सं० १७५७ को दो सदी जात सौ सवार का मनसब प्रदान कर शाहजादा मुहम्मद आजम शाह के पास की गई थी।

श्रावण सुदी ४ वि० सं० १७५८ को मालोजी के विद्रोहियों को दबाने के लिये सिआदतखां के साथ इनकी नियुक्ति की गई।

जोरावरसिंह को मुगलखां के साथ नियुक्त किया गया था किन्तु उनके बीमार पड जाने से फाल्गुन बदी ५ वि० सं० १७५९ को बादशाह ने वह नियुक्ति स्थगित करदी। अनन्तर चैत्रसुदी १० वि० सं० १७६० को उनकी नियुक्ति शाही आदेश से मुहम्मद अमीनखां के साथ की गई।[1]

कीर्तिसिंह (रेड़ावदा) —महाराजा सवाई जयसिंह (जयपुर) ने इनकी पदवृद्धि करके नर्मदा के घाट पर विजयसिंह के साथ नियुक्ति करने को बादशाह की सेवा मे निवेदन किया था। मार्गशीर्ष सुदी ४ वि० सं० १७६७ को इनकी नियुक्ति हजारी बन्दूकचियो के पान सौ सवार तथा पाच हजार पियादा बन्दूकचियों के समेत दयानतराम वालाशाही के साथ नियुक्त करके फीरोजखां मेवाती के पास भेजे गये थे।[2]

खुमानसिंह (खरसोद) —यह शाही सेवा मे जब दिल्ली थे तब वहा से खरसोद के अपने प्रवन्धक शाह सावलदास को लिखकर इन्होंने स्वामी बालकनाथ को भूमि दान दी। यह पत्र आषाढ़ बदी १२ वि० स० १७६८ का है।

वैशाख सुदी ५ वि० सं० १७७१ को शाही आदेश से इनका मनसब हजारी जात पाच सौ सवारो का कर दिया गया।

पृथ्वीसिंह—बादशाह फर्रुखशियर ने इनका मनसब पाच सदी जात २५० सवार से बढाकर आठ सदी जात तीन सौ सवार करने का आदेश श्रावण शुक्ल १३ वि० सं० १७७० को दिया।

श्रावण शुक्ल १३ वि० स० १७५६ को बादशाह औरंगजेब ने आदेश दिया कि इन्द्रसिंह[4] दो हजारी जात हजार सवार, बहादुरसिंह हजारीजात पाच सौ सवार, दलसिंह हजारी जात चार सौ सवार तीनों मुहम्मदशाह आलम के साथ रहे।

प्रदेश —राजा सुरतार्णासिंह के स्वर्गवास के समय उनके अधिकार मे परगना बनेड़ा, परगना बदनावर और परगना नोलाय (बडनगर) थे।

शिल्पकला —इन्होंने बनेड़ा की प्राचीन गढी मे दक्षिण की ओर भवन बनाये। ऊपरी खण्ड मे पूर्व की ओर के भवन मे कुशल चित्रकारो द्वारा भीतो पर तथा छत पर जो चित्र बनवाये हैं वह कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। उसी प्रकार पश्चिम की ओर के एक भवन में कांच का

१—शाही अखबारात। २—शाही अखबारात।

३—अर्जुनसिंह, विजयसिंह, जोरावरसिंह, कीर्तिसिंह, खुमानसिंह, पृथ्वीसिंह राजा भीमसिंह के पुत्र थे। ४—इन्द्रसिंह तथा बहादुरसिंह महाराणा राजसिंह के पुत्र थे। दलसिंह नाते में राजा भीमसिंह के काका थे।

जड़ाऊ काम कराया था जो आज भी विद्यमान है। उन्होंने राजा भीमसिंह तथा राजा सूर्यमल की छतरियां बनवाईं। इन छतरियों की भव्यता देखते ही बनती है।

विदेशी प्रवासी:—इनके समय में लार्ड जोहन जोमुआ केटेलार जो मुगल सम्राट शाहआलम बहादुरशाह तथा जहांदारशाह के समय में डच ईस्ट इन्डिया कम्पनी की ओर से मुगल दरबार मे राजदूत था, वह ता० १२ जनवरी सन् १७१३ (वि० सं० १७७०) को उज्जैन से बदनावर आया था। वहां से उसे झाबुआ जाना था। मार्ग बीहड़ पर्वतों से घिरा तथा असुरक्षित था। राजा सुरताणसिंह का निवास उन दिनों बदनावर मे था। डच राजदूत उनसे मिला। उन्होंने मार्ग की कठिनाइयों से उसे अवगत कराया और अपने पच्चीस घुड़सवार तथा सौ पैदल उसके साथ दिये। वह ता० १६ जनवरी सन् १७१३ (वि० सं० १७७०) को झाबुआ के लिये रवाना हो गया।[१]

परगना बदनावर (मालवा) बादशाह औरंगजेब की ओर से राजा भीमसिंह को जागीर मे दिया गया था, वह इस समय भी राजा सुरताणसिंह के अधिकार में था।

व्यक्तित्व:—वह प्रजा पालक थे। प्रजा को सुख में रखना अपना कर्तव्य समझते थे। काटुन्डा नामक एक ग्राम बनेड़ा से पश्चिम की ओर था। वहां के निवासी 'नायक' नामक जाति के थे। वे आसपास के ग्रामो की प्रजा को बहुत कष्ट देते थे। चोरी और लूट खसोट करते थे। राजा सुरताणसिंह ने उन्हें बहुत समझाया किन्तु वह नहीं माने, तब उन्होंने वहां से उन्हें भगा दिया। उनकी गढ़ी को गिरा दिया तथा वहां सुरतानगढ़ नामक नया ग्राम बसाकर प्रजा को सुखी किया।

वह कला के उपासक, वीर और उदार थे। समय सूचकता उनका विशेष गुण था। मृत्यु के समय उनकी आयु ३९ वर्ष की थी।

१—जर्नल आफ दी पंजाब हिस्टोरिकल सोसायटी भाग १० बिभाग १
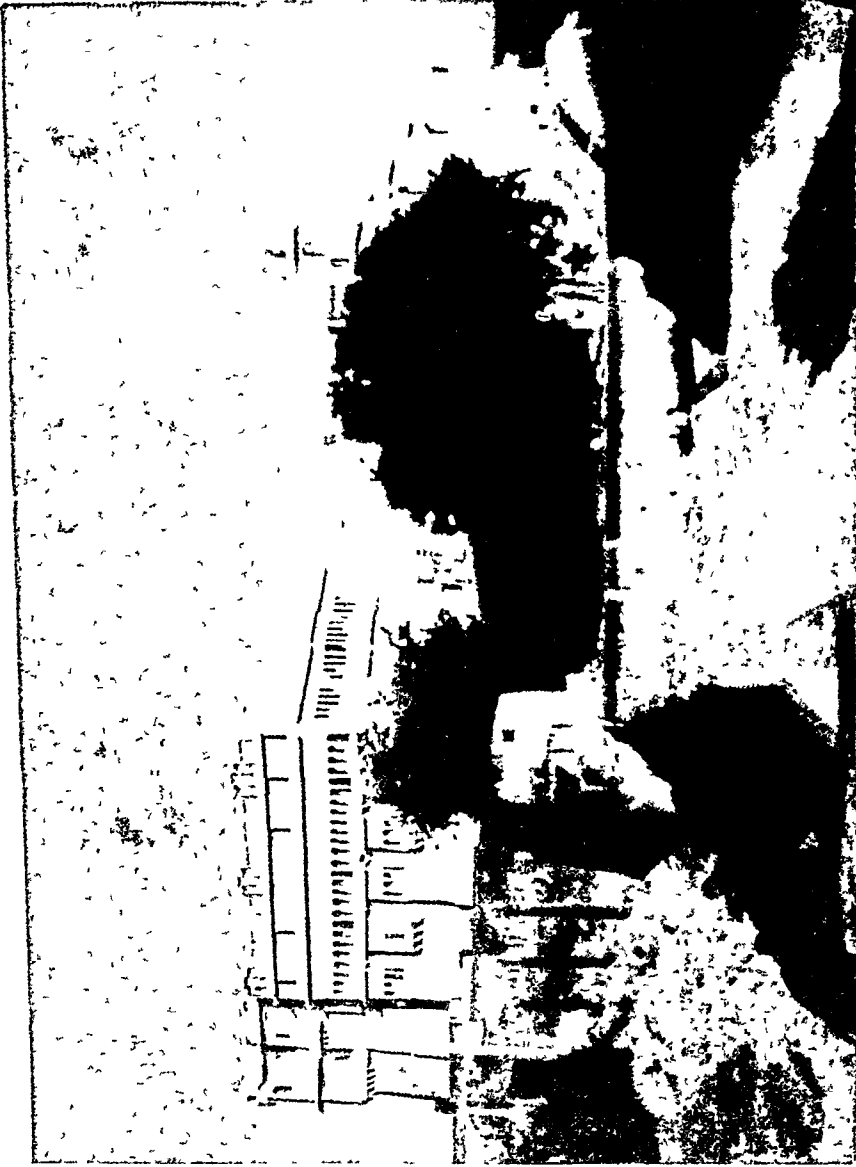
दुर्ग के भवन

राजा सरदारसिंह

जन्म —राजा सरदारसिंह का जन्म आश्विन कृष्ण अमावस विक्रम सवत् १७८० को हुआ।

राज्य कार्य का प्रारम्भ —राजा सुरताणसिंह की जीवनी मे लिखा गया है कि उनकी पुत्री का विवाह महाराजा अभयसिंह जोधपुर से हुआ था। उस समय वह अस्वस्थ थे। पुत्री के पाणिग्रहण संस्कार के पूर्व ही अचानक उनका स्वर्गवास हो गया तब पाणिग्रहण संस्कार राजा सरदारसिंह ने सम्पन्न किया। यह घटना आषाढ़ सुदी ७ विक्रम संवत् १७९१ की है। उस समय उनकी आयु केवल ग्यारह वर्ष की थी। विवाह के पश्चात् महाराजा अभयसिंह ने अपनी सास ईडरेची से कहलवाया कि "समय कठिन है, जब तक दुर्ग बाधकर उसमे निवास नही किया जावेगा तब तक सुरक्षा नही हो सकेगी।"

राजमाता ईडरेची ने कहा कि "सरदारसिंह तो बालक है, आप जो आज्ञा देंगे वही करेंगे।"

महाराजा अभयसिंह ने दुर्ग बाधने को कहकर पहाड भी नियत कर दिया। राजमाता ईडरेची ने फिर कहा कि "दुर्ग बाधने को तो मै तत्पर हू किन्तु बादशाह की स्वीकृति लेनी आवश्यक है।"

इस पर महाराजा अभयसिंह ने कहा कि "आप इसकी चिन्ता न करें। तीन हजार लोगो के साथ मेरा कामदार यहा रहेगा। कोई बडा सङ्कट आवे तो खारी नदी पर राठौडो के ठिकाने हैं, उनकी सेना आपकी सहायता करेगी। इससे भी अधिक सङ्कट आवे तो जोधपुर हमे लिखो, हम आकर सङ्कट निवारण करेंगे।"

उन्होंने अपने कारीगरों से कहा कि "जोधपुर के गढ के आकार का यह दुर्ग भी बनना चाहिए" इतना सब प्रबंध करके महाराजा अभयसिंह हुरडा ग्राम वापिस चले गए।[1]

हुरडा उस समय तत्कालीन राजनैतिक वातावरण का केन्द्र बना हुआ था। मरहठों की बढ़ती हुई शक्ति, उनकी आक्रामक नीति तथा सैनिक प्रबलता का भय दिखाकर धन वसूल करने की प्रवृत्ति से राजपूताने के समस्त राजाओ का चिन्तित होना स्वाभाविक था, अतएव मरहठों की सैनिक प्रबलता को चुनौती देने के लिए राजपूताने के सभी राजाओ की सेना सम्मिलित कर एक विशाल सेना का निर्माण किये जाने के लिये एक बृहत् सभा का आयोजन इसी हुरडा ग्राम मे किया गया था। इस विचार के जनक महाराजा सवाई जयसिंह (जयपुर नरेश) थे। मरहठों के घावों से सभी राजे, महाराजे त्रस्त थे अतएव सभी ने इस विचार का स्वागत किया और महाराणा उदयपुर तथा जोधपुर, जयपुर, कोटा, बीकानेर, किशनगढ़, नागौर आदि प्रदेशों के राजा महाराजा एकत्रित हुवे। श्रावण वदी १३ विक्रम सवत् १७९१ को

१—तत्कालीन एक पत्र।

एक अहदनामा लिखा गया और पारस्परिक सहायता की शर्तें उसमें लिखी गई। किन्तु इन शर्तों का पालन नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि प्रत्येक राजा के अपने अपने स्वार्थ थे और वे व्यक्तिगत रूप से अपनी अपनी स्वार्थ सिद्धि मे लगे हुए थे, परिणामस्वरूप मरहठों की शक्ति बढ़ रही थी।[1]

इसी समय महाराजा अभयसिंह हुरड़ा से बनेड़ा आये थे। विवाह के पश्चात् किले की नींव का शिलारोपण कर वापिस चले गये।

दुर्ग बांधने की सम्मति लेने के लिए महाराजा अभयसिंह, राजा सरदारसिंह को विक्रम संवत् १७९२ मे शाही दरबार में ले गये। विक्रम संवत् १७९२ ज्येष्ठ वदी ३ को दिल्ली जाकर बारे पुल पर डेरे लगाये। ज्येष्ठ वदी ६ को नवाब खानदौरान के साथ राजा सरदारसिंह को लेकर बादशाह से मिलने चले। शाही दरबार मे उपस्थित होकर बादशाह मुहम्मदशाह से भेंट की। बादशाह ने उन्हें सिरपेच कलंगी, मोती की माला दी और महाराजा के निवेदन करने पर राजा सरदारसिंह को सिरोपाव हाथी, तोग, कलंगी देकर "राजा" की पदवी तथा चार परगने जागीर में देकर मनसब प्रदान किया।[2] बादशाह ने बनेड़ा में दुर्ग बांधने की स्वीकृति भी दी। इस प्रकार महाराजा अभयसिंह ने बालक सरदारसिंह के प्रति सहानुभूति तथा प्रेम भरा व्यवहार कर अपने कर्तव्य को निभाया।

ज्यों ज्यों मुगल सम्राट की शक्ति क्षीण होती गई त्यों त्यों मरहठों की शक्ति बढ़ती गई। भारत में उनकी शक्ति को सर्वोपरि समझा जाने लगा। मालवा पर आधिपत्य प्रस्थापित करने का उनका प्रमुख लक्ष्य तो था ही किन्तु राजपूताने के तत्कालीन नरेश अपने आपसी वैमनस्य तथा स्वार्थ सिद्धि के हेतु एक दूसरे के विरुद्ध उनकी सहायता लेते थे, जिससे उन्हें प्रचुर धन का लाभ होकर उनकी शक्ति वृद्धिङ्गत होती थी। प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु के अनन्तर वह पूना (दक्षिण) से उत्तर भारत में आकर धावे बोलते और फिर वर्षा ऋतु के पूर्व ही वह पूना लौट जाते।

परगना बनेड़ा मुगल सम्राट औरंगजेब की ओर से राजा भीमसिंह को मिला था। राजा सुरताणसिंह के समय तक तो उसकी सुरक्षा का भार मुगल सम्राट पर रहता आया था किन्तु राजा सरदारसिंह के समय में मुगल साम्राज्य जर्जर हो गया था। दिन प्रतिदिन उसकी शक्ति क्षीण होती जा रही थी, उधर मालवे मे मरहठों की प्रबलता बढ़ रही थी। ऐसे चिन्तनीय समय मे राजा सरदारसिंह ने महाराणा उदयपुर की छत्र छाया में जाना उचित समझा। उन्होंने रावत केसरीसिंह (सलुम्बर) के द्वारा अपना मन्तव्य महाराणा जगतसिंह से निवेदन कराया। तब महाराणा ने रावत केसरीसिंह को वचन दिया कि "हम उनकी सुरक्षा का भार लेते हैं। मेवाड़ से उन्हें पट्टा दिया जावेगा। तब उन्हें मेवाड़ की चाकरी करनी पड़ेगी।" राजा सरदारसिंह ने इसे स्वीकार किया और महाराणा के संरक्षण में परगना बनेड़ा हो गया।[3]

१—उदयपुर राज्य का इतिहास (श्री ओझाजी)

२—जोधपुर से प्राप्त तत्कालीन पत्र।

३—भाद्रपद सुदी १२ वि० सं० १८२५ को रावत पहाड़सिंह द्वारा राजा रायसिंह को लिखा पत्र।

ई० सन् १७३५ अक्टूबर मे स्वयम् पेशवा बाजीराव पूना से उत्तर भारत की रणयात्रा पर निकले। नवम्बर मे उन्होने ताप्ती नदी को नन्दूर बार घाट से पार किया और दिसम्बर मे उन्होंने कुक्षी दुर्ग पर आक्रमण किया। लूणावडा तथा डूगरपुर से सरदेशमुखी वसूल की। जनवरी सन् १७३६ ई० मे वह बामवाडा मेवाड की सीमा पर पहुचे। उन्हाने अपना वकील भेजकर महाराणा उदयपुर से बनेडा परगने की मांग की। पेशवा लूणावडे मे थे। तब महाराणा ने बाबा तख्तसिह को उनका स्वागत करने के लिए भेजा। फरवरी के प्रथम सप्ताह मे पेशवा उदयपुर आये और अपना डेरा अहाड गाव के पास चम्पाबाग मे लगाया। अपनी सेना उन्होंने शाहपुरे की ओर रवाना की और आठ हजार चुनी हुई सेना अपने साथ रखी। पेशवा की अगवानी बाबा तख्तसिह ने बडे ठाट बाट से की। जो मेवाड का प्रथम श्रेणी का सामन्त था। दूसरे दिन पेशवा महाराणा के दरबार मे पहुँचे। महाराणा जगतसिह ने स्वयम् उनका स्वागत किया। महाराणा ने अपनी गद्दी के सामने दो गद्देले रखवा दिये थे, एक पर बाजीराव तथा दूसरे पर महाराणा के पुरोहित बैठे। औपचारिक बातचीत होने के पश्चात् पेशवा ने बनेडा परगने की माग करते हुए कहा कि "मुझे तो आप अपने प्रथम श्रेणी के सामन्तों के बराबर समझिये।" महाराणा ने बनेडा परगना मरहठो के अधिकार मे देने की बात अस्वीकार की किन्तु उसे अपने अधिकार मे ठेके के तौर पर रखकर एक लाख पचास हजार रुपए (खिराज) के रूप मे दस वर्ष तक देना स्वीकार किया।[1]

बाजीराव पेशवा की दृष्टि बनेडा परगने पर होने का एक ऐतिहासिक कारण था। राजा भीमसिह, राजा सूर्यमल तथा राजा सुरतानसिह तीनों ने मुगल सम्राट के मनसबदार होने के नाते मुगल सेना के साथ मरहठो से युद्ध किये थे, इसी विद्वेष के कारण पेशवा बाजीराव ने बनेडा परगने की मांग की थी किन्तु महाराणा ने बुद्धिमता के साथ उस पर मरहठों का अधिकार नही होने दिया।

राजा सरदारसिह की आयु उस समय तेरह वर्ष की थी। उनको जब उपरोक्त समाचार ज्ञात हुवे, तब वह उस किशोर अवस्था मे भी बहुत चिंतित हुवे। मरहठो के आक्रमण के भय के कारण उन्होंने अपनी समस्त सैनिक शक्ति बनेडा मे केन्द्रित की, क्योंकि वह उनका प्रमुख जागीरी स्थान था तथा वहा दुर्ग का निर्माण हो रहा था किन्तु इसका एक विपरीत परिणाम यह हुआ कि उनके नोलाय (बडनगर) तथा बदनावर परगने अरक्षित रह गये और नारू नामक मरहठा सेनापति ने नोलाय (बडनगर) के किले पर वैशाख बदी १३ विक्रम सम्वत् १७९३ को अधिकार कर लिया।[2] कुछ समय पश्चात् बदनावर पर भी मरहठों का अधिकार हो गया।[3]

विक्रम सम्वत् १७९८ मे महाराजा सवाई जयसिह तथा नागोर के महाराजा बख्तसिह मे गगवाणा मुकाम पर युद्ध हुआ। इस युद्ध का कारण यह था कि महाराजा अभयसिह जोधपुर नरेश तथा बख्तसिह दोनो भाइयों मे अनबन हो जाने से बख्तसिह ने महाराजा सवाई जयसिह

१—पेशवा बाजीराव (अंग्रेजी) डी० जी० डिगे। वीर विनोद

२—एक तत्कालीन पत्र। ३—मालवा में युगान्तर

से सहायता चाही। उन्होंने सहायता देना स्वीकार किया क्योंकि उस समय महाराजा अभयसिंह बीकानेर राज्य पर अधिकार करना चाहते थे और महाराजा सवाई जयसिंह बीकानेर की सहायता पर थे। ऐसे समय बख्तसिंह की सहायता करने में उन्होंने लाभ देखा किन्तु महाराजा अभयसिंह ने उन्हें २१ लाख रुपये देकर मार्ग से ही लौटा दिया। राजा बख्तसिंह का जोधपुर के सिंहासन पर बैठने का स्वप्न भंग हो गया और वह सवाई जयसिंह से अप्रसन्न हो गये। फलस्वरूप गगवाणा का युद्ध हुआ। इस युद्ध में सवाई जयसिंह की सहायतार्थ शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह, झलाय के ठाकुर तथा राजा सरदारसिंह[१] भी थे। इस युद्ध में महाराजा सवाई जयसिंह विजयी हुवे।[२]

विक्रम सम्वत् १७९८ में महाराणा जगतसिंह ने अपना वकील दिल्ली भेजकर बादशाह मुहम्मदशाह से निवेदन करके शाहपुरा, जहाजपुर, सावर और बनेड़ा परगनों से शाही सेवक जो नजराने आदि वसूल करते थे, वह माफ कराये।[३]

विक्रम संवत् १८०० आश्विन सुदी १४ को महाराजा सवाई जयसिंह का स्वर्गवास हो गया। उनके पश्चात् महाराजा ईश्वरीसिंह जयपुर के सिंहासन पर आरूढ़ हुवे, तब बनेड़ा से राजा सरदारसिंह ने अपने सेवक पंचोली किशनराम के साथ टीके का सामान घोड़ा और सिरोपाव भेजा।[४] राज्य जयपुर की ओर से नियमानुसार विदाई के उपहार पंचोली किशनराम को दिये गये।[५]

महाराजा जयसिंह की मृत्यु होने से राजा सरदारसिंह शोक प्रदर्शनार्थ जयपुर गये और माघ सुदी २ विक्रम संवत् १८०० को दरबार में जाकर बैठे तब राजामल उन्हें भीतर ले गये। शोक प्रदर्शन कर राजा सरदारसिंह अपने डेरे पर लौट आये।[६]

महाराणा जगतसिंह ने पिछोला तालाब पर जगन्निवास नामक महल बनवाये थे। विक्रमी सम्वत् १८०२ माघ सुदी ९ को उनका वास्तु संस्कार किया गया। इस समारोह पर महाराणा की ओर से सामन्तों को जो उपहार दिये गये उनमे राजा सरदारसिंह को कल्याण कुमेत घोड़ा उपहार में दिया गया।[७]

वि० स० १८०५ आषाढ़ सुदी पूर्णिमा को महाराजा अभयसिंह का अजमेर में स्वर्गवास हो गया। उनका दाह संस्कार पुष्कर तीर्थ में किया गया। उनके साथ उनकी राणी सीसौदनी राजा सुरताणसिंह की पुत्री सती हुई।[८]

जयपुर नरेश महाराजा ईश्वरीसिंह का स्वर्गवास[९] होने से उनके भाई महाराजा माधवसिंह जयपुर के सिंहासन: पर बैठे। राजा सरदारसिंह ने उन्हें ज्येष्ठ सुदी ३ वि० सं० १८०७ को पत्र लिखा और अभयराम पंचोली के साथ टीके का सामान भेजा। जिसे उसने जयपुर जाकर आषाढ़ बदी २ वि० सं० १८०७ को प्रस्तुत किया। जयपुर राज्य की ओर से उसे सिरोपाव

१—वाणी विलास में रखी ख्यात। २—जोधपुर का इतिहास।
३—वीर विनोद। ४—तत्कालीन पत्र। ५—तत्कालीन पत्र।
६—तत्कालीन पत्र। ७—वीर विनोद। ८—तत्कालीन पत्र।
९—महाराजा ईश्वरीसिंह के साथ राणी सीसोदनी (राजा सुरताणसिंह की पुत्री सती हुई)।

दिया गया। राजा सरदारसिंह ने स्वयम् फाल्गुन बदी ८ को जयपुर जाकर महाराजा माधवसिंह से भेंट की। उन्हें जयपुर राज्य की ओर से घोडा दिया गया।'

बनेडा के इतिहास मे पौष बदी १२ शनिवार वि० सं० १८१३ को एक दुखद घटना घटी, वह है। 'शाहपुरा के उम्मेदसिंह द्वारा धोके से बनेडा के किले पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लेना।' उक्त घटना का विवरण लिखने के पूर्व उस घटना के पीछे जो लम्बा इतिहास है, उस पर प्रथम हम प्रकाश डालेंगे।

उदयपुर के महाराणा जगतसिंह तथा उनके पाटवी कुवर प्रतापसिंह मे किसी कारण वश मनोमालिन्य हो गया था। स्थिति यहां तक आगई कि महाराणा ने कुवर को बंदी बनाना चाहा किन्तु कुंवर प्रतापसिंह सत्रह वर्ष की आयु होने पर भी बहुत बलवान थे। उनको पकडना साधारण बात नही थी। महाराणा के छोटे भाई बागौर के स्वामी नाथसिंह जो स्वयम् एक मल्ल थे, उनके द्वारा धोके से कुवर को बन्दी बना लिया गया। यह घटना वि० ०सं १७९९ माघ सुदी २ की है।

कुवर प्रतापसिह को बन्दी बनाने के काम मे नाथसिंह के तीन साथी और थे। देवगढ़ के रावत जसवन्तसिंह, देलवाडा के राघव देव, सनवाडे के बाबा भारतसिंह। महाराणा जगतसिंह जब बहुत बीमार हुवे तब इन चारो सामन्तो को भय हुआ कि महाराणा के पश्चात् कुंवर प्रतापसिंह के महाराणा होने पर वह अवश्य ही हमसे बदला लेंगे और बरबाद कर देंगे अतएव उन्होंने शाहपुरा के उम्मेदसिंह को मिलाकर विचार किया कि "कुंवर प्रतापसिंह को विष दे देना चाहिये।" इस षडयन्त्र का समाचार किसी प्रकार बीमार महाराणा के कानो तक पहुचा तब उन्होंने पाचो सामन्तो को बुलाकर कहा कि "मेरी आज्ञा है कि आप लोग अपने अपने ठिकानो मे चले जाये।"

कुवर प्रतापसिंह ने महाराणा होने पर पाचो सामन्तों को बुलाकर उन्हें समझाया और विश्वास देकर अपने पास रख लिया। एक दिन महाराणा राज सभा मे बैठे थे। उस समय उन्होंने पीठ पर हाथ रख कर नाक सिकोडी तब सब सामन्तो ने आश्चर्य से उनकी ओर देखा। महाराणा ने हंसकर कर कहा कि "काकाजी ने बन्दी बनाते समय मेरी पीठ पर घुटने की जो चोट दी थी, वह अब बादल होने के कारण कसक रही हैं।" बात सहज की गई थी किन्तु पाचों सामन्तों के मन मे शका निर्माण हुई और वह अपने अपने ठिकानो मे चले गये। उन्हें भय लगा कि महाराणा ने बदला लेने की भावना से उपरोक्त बात कही है। यह घटना वि० स० १८०६ श्रावण मास की है।

पांचों सामन्त महाराणा से अप्रसन्न होकर मेवाड का प्रदेश लूटने लगे। महाराणा ने राजा सरदारसिंह को आदेश दिया कि "मेवाड के प्रदेश मे आने का मार्ग बनेडा के प्रदेश मे से है, अतएव उनका अपने प्रदेश से निकलना बंद कर देवें तथा अपने सैनिकों द्वारा उनका सामना भी करते रहें।" स्वामी भक्त राजा सरदारसिंह ने महाराणा के आदेश का पूर्णतया पालन किया, जिससे उम्मेदसिंह उनका विरोधी बन गया।

१— (तत्कालीन पत्र)।

शीघ्र ही माघ वदी २ वि० सं० १८१० को महाराणा प्रतापसिंह (द्वितीय) का स्वर्गवास हो गया और महाराणा राजसिंह (द्वितीय) सिंहासन पर बैठे। वह अल्पवयस्क थे। इनके समय में मरहठों के आक्रमण बार बार होने लगे और महाराणा के सामन्तों तथा सेनापतियों को उधर अधिक ध्यान देना पड़ा, परिणामस्वरूप राजप्रबन्ध में शिथिलता आगई। राजा उम्मेदसिंह शाहपुरा ने राजा सरदारसिंह से पुराने वैर का बदला लेने का यही अवसर उपयुक्त समझा और जब पौष सुदी १२ वि० सं० १८१३ को एक प्रहर रात व्यतीत होने पर राजा सरदारसिंह के अधिकांश सैनिक तथा सेनानायक बलदरखा नामक ग्राम में चले गये और गढ़ में जोधा राजपूतों के सैनिक ही रह गये, तब ग्राम अरज्यास का जोधा ठाकुर राजा उम्मेदसिंह से मिल गया, उसने दुर्ग पर आक्रमण करने के लिये उसे बुलवाया। आधी रात बीत जाने पर राजा उम्मेदसिंह ने एकदम आकर अचानक बनेड़ा दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। जोधा सैनिकों ने उनकी सहायता की, यह देखकर राजा सरदारसिंह गढ़ से बाहर चले गये। उम्मेदसिंह का बनेड़ा गढ़ पर अधिकार होगया।

उस समय महाराणा की सेना माण्डलगढ़ में थी। उस सेना के सेनापतिको जब इस घटना की सूचना मिली तब वह पौष सुदी २ को भीलवाड़ा आ गया। राजा सरदारसिंह ने भी अपनी सेना एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया तथा महाराजा माधवसिंह जयपुर को भी सहायता करने को लिखा।[2]

राजा उम्मेदसिंह को जब यह समाचार मिला कि महाराणा की सेना भीलवाड़ा आगई है और शीघ्र ही बनेड़ा दुर्ग को कूच करने वाली है तब वह बनेड़ा दुर्ग का सामान धन आदि जो उसके हाथ लगा उसे लेकर शाहपुरा चला गया।

राजा सरदारसिंह को दुर्ग की दुर्दशा देख बहुत दुख हुआ और वह अधिकतर उदयपुर में महाराणा के पास रहने लगे। ठाकुर शिवसिंह (रूपाहेली) ने उनके साथ सहानुभूति प्रकट कर सहायता देने का वचन दिया तब राजा सरदारसिंह कुछ दिन रूपाहेली जाकर रहे थे।

उक्त दुखद घटना का राजा सरदारसिंह के हृदय पर ऐसा आघात हुआ कि वह अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे और चैत्र वदी १४ विक्रम सम्वत् १८१५ को उदयपुर में उनका स्वर्गवास हो गया।[3]

विवाह और संतति:—राजा सरदारसिंह की सात राणियां थीं, जिनका विवरण निम्नांकित है:—

१. नरूकी उणियारा की राव राजा दौलतसिंह की पुत्री।

२. बांकावतनी।

३. चौहानी हरिसिंह की पुत्री, लालसिंह की पौत्री।

४. मेड़ताणी।

५. जगमालोतरी मसूदा की जयसिंह की पुत्री सुरताणसिंह की पौत्री।

१—वीर विनोद। २—तत्कालीन पत्र। ३—पुरानी बही (बनेड़ा रेकार्ड)।

६ जोधपुरीजी ।

७ खंगारोतणी ।

उपरोक्त राणियों से कुवर रायसिह तथा कुवर रूपसिह दो पुत्र हुवे । कुवर रायसिह तो पाटवी बने और कुवर रूपसिह को रोछडी ग्राम जागीर मे मिला । जिसका नाम आजकल गोपालपुरा है ।

पुत्रियां —कमलाकुवरी, ब्रजकुंवरी तथा सौभाग्यकुवरी तीन हुई ।

ब्रजकुमारी का विवाह जयपुर नरेश महाराजा माधोसिह के साथ आषाढ वदी १ विक्रम सम्वत् १८१८ को राजा रायसिह के समय मे हुआ । दूसरी पुत्री कमलाकुवरी का विवाह जोधपुर राज्य के कुवर जालमसिह के साथ हुआ । तीसरी पुत्री सौभाग्यकुमारी का विवाह भदावर के स्वामी बख्तसिह से हुआ था ।

राजा सरदारसिह ने अपने जीवन काल मे अपनी तीन वहिनो का विवाह किया । एक वहिन के विवाह का वर्णन पहले लिखा जा चुका है । दूसरी वहिन का विवाह उन्होंने नागौर के महाराजा बख्तसिह के साथ किया । तीसरी वहिन का विवाह महाराजा ईश्वरसिह जयपुर के साथ किया ।

धार्मिक कार्य —विक्रम सम्वत् १७९२ मे राजा सरदारसिह मथुरा यात्रा को गये । माघ सुदी १५ को ब्राह्मण जयराम को भूमिदान दी ।

चैत्र वदी १ विक्रम सम्वत् १७९६ को गोपीनाथ को ग्राम कुवार परगना बनेडा जागीर मे दिया ।

महाराणाओं की मृत्यु —इनके समय मे महाराणा जगतसिह का स्वर्गवास आषाढ वदी ७ वि० स० १८०८ को तथा महाराणा प्रतापसिह (द्वितीय) का स्वर्गवास माघ वदी २ विक्रम सम्वत् १८१० को हुआ ।

भवन निर्माण —इनकी बाल्यावस्था मे ही महाराजा अभयसिह जोधपुर के परामर्श से बनेडा दुर्ग का निर्माण प्रारम्भ हुआ । इनकी राणी नरूकी ने चतुर्भुज नारायण का मन्दिर तथा उसके सामने कुण्ड बनवाया ।

राजा सरदारसिह ने वर्तमान नगर के चांदपोल की तरफ सरदार विलास नामक बाग बनवाया तथा दुर्ग मे विक्रम सम्वत् १८०६ मे सरदार निवास नामक महल बनवाया ।

इनकी दादी राजा सूर्यमल की रानी धनकुवर बाघेली (रीवा) ने एक बावडी बनेडा नगर मे बनवाई, इसकी नीव विक्रम सम्वत् १८०० मे लगी और प्रतिष्ठा चैत्र सुदी १५ विक्रम सम्वत् १८०१ को हुई । इसका नाम बाईजीराज की बावडी है । बावडी के सामने एक शिवरचन्द महादेव का मन्दिर भी बनवाया ।

साहित्य सेवा —राजा सरदारसिह एक सफल कवि और सगीत के ज्ञाता थे । उन्होंने खडी बोली मे "स्वर तरग" नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की । उसमे गान कला को विविध राग रागनियों के स्वरों का ललित भाषा मे वर्णन किया गया है । काव्य का प्रवाह गतिमान

और रसभरा है। शैली सरल है। उन दिनों उक्त ग्रन्थ को बहुत मान्यता मिली है। रचना इसकी वि० सं० १८०५ में की गई।

व्यक्तित्व:—राजा सरदारसिंह कवि हृदय और भावुक थे। विश्वासघात से उन्हें चिढ़ थी। ग्राम आरज्याम के जिस जोधा ठाकुर ने शाहपुरा नरेश उम्मेदसिंह की सहायता कर बनेड़ा दुर्ग पर अधिकार कराया था, उसके विश्वासघात का राजा सरदारसिंह ने उसे यह दण्ड दिया कि जब उनका अधिकार बनेड़ा दुर्ग पर हो गया, तब उसके ग्राम आरज्याम पर आक्रमण किया और उस जोधा ठाकुर को मार डाला तथा उस गांव को वीरान कर दिया। उस स्थान से दक्षिण की ओर आध कोस पर सरदारनगर नामक नया ग्राम बसाया। मृत्यु के समय उनकी आयु केवल २४ वर्ष की थी।

राजा रायसिंह

जन्म —राजा रायसिंह का जन्म विक्रम संवत् १७९८ कार्तिक वदी ३० बुधवार को हुआ।

राजकार्य का प्रारम्भ—इनके पिता राजा सरदारसिंह की मृत्यु के समय इनकी आयु केवल सोलह वर्ष की थी। राजा रायसिंह वैशाख वदी ८ विक्रम सवत् १८१५ को बनेडा राज्य के सिंहासन पर बैठे और महाराणा राजसिंह (द्वितीय) ने राजा सरदारसिंह को दिये हुवे वचन के अनुसार राजा रायसिंह को वैशाख सुदी ७ विक्रम सवत् १८१५ को परगना बनेडा दिया और तलवार बंधाई के समय हाथी, घोडा आदि उपहार प्रदान किये। उक्त परगना महाराणा ने दसोद, बिराड़ आदि करो से भी मुक्त रखा।[1] उस समय परगना बनेडा मे ५६ ग्राम थे और आय १५३२०० रुपया थी।

महाराणा ने विक्रम सवत् १८१५ वैशाख सुदी १४ को परगना बनेडा के समस्त पटेलों के नाम आदेश भेजे। महाराणा की छत्र छाया पाकर राजा रायसिंह अपने राज्य के अस्त व्यस्त राज प्रबन्ध को पुन सुव्यवस्थित करने मे लग गये। विशृंखल सेना को फिर एकत्रित किया। मरहठो की बढती हुई शक्ति को देख उन्होंने भी अपनी सेना को दृढ और सुसज्जित बनाया। इस प्रकार सैनिक दृढता सुनियन्त्रित तथा राजकीय प्रबन्ध सुव्यवस्थित करने मे उन्हे दो वर्ष लग गये।

विगत दो वर्षों मे मरहठो का प्रभाव और भी बढ गया और वह समस्त उत्तर भारत मे फैल गये। मालवा पर उनका अधिकार हो चुका था किन्तु वहा से उन्हें पर्याप्त धन की प्राप्ति नही हो पा रही थी तब उनका ध्यान राजपूताना ऊमटवाडा, खीचीवाडा आदि समस्त उत्तर भारत के प्रदेशों की ओर गया और वहा के राजाओं से चौथ वसूल करना उन्होंने प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही मरहठो के प्रभाव और शक्ति पर विपत्ति के बादल मडराने लगे। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणो ने मरहठो की शक्ति तथा प्रभाव को चुनौती दी।

विक्रम सवत् १८१७ के प्रारम्भ मे अब्दाली ने भारत मे प्रवेश किया और मरहठो के सेनापति दत्ताजी सिंधिया से उसकी मुठभेड हुई, जिसमे दत्ताजी की हार होकर वह रणक्षेत्र मे खेत रहा।

अहमदशाह की इस विजय ने मरहठों को चौंका दिया और दिल्ली की राजनीति की ओर ध्यान देने को विवश कर दिया। अपने प्रभाव की रक्षा के लिये उन्हे यह भी आवश्यक हो गया कि वह अहमदशाह को भारत से खदेड देवें। सदाशिवराव भाऊ के सेनापतित्व मे मरहठों की एक विशाल सेना दक्षिण मे पानीपत के मैदान मे आ उपस्थित हुई। सदाशिवराव भाऊ ने राजपूताने के राजा-महाराजाओ को सहायता के लिये सेना भेजने को लिखा किन्तु

१—तत्कालीन पत्र।

मरहठों की आक्रामक नीति के कारण न तो किसी ने सहायता की, न सेना भेजी। अहमदशाह अब्दाली और सदाशिवराव भाऊ का यह युद्ध १४ जनवरी ई० सन् १७६१ (विक्रम संवत् १८१८) को हुआ। जिसमे मरहठों की पराजय हुई, परिणामस्वरूप उत्तर भारत मे उनका प्रभाव कुछ समय के लिये क्षीण हो गया।

हमारे संग्रह में एक तत्कालीन अधूरा पत्र है। जिसका लेखक अज्ञात है. उसमे इस युद्ध का वर्णन इस प्रकार किया है कि "पठान और दक्षिणियो का युद्ध हुआ। दक्षिणी हार गये। पठान जीत गये। जनकोजी सिंधिया, मल्हारराव हुलकर[1] भाऊ सब दक्षिणियों के सरदार मारे गये। दक्षिणी बहुत मारे गये। पठान भी बहुत मारे गये। यह युद्ध पौष सुदी ८ को हुआ।"

मरहठों की उपरोक्त पराजय से उनकी शक्ति और प्रभाव नितान्त समाप्त नही हुवे। मल्हारराव हुलकर ने तथा माधवराव सिंधिया ने निरन्तर लगन, परिश्रम तथा बुद्धिमता से, खोई हुई शक्ति को फिर अर्जित किया और धाक जमा दी। वह पूर्ववत् चौथ वसूल करने लगे तथा उत्तर भारत की, विशेष रूप से राजपूताने की राजनीति मे प्रमुख रूप से भाग लेने लगे।

विक्रम संवत् १८२० मे राजा उम्मेदसिह शाहपुरा ने किसी कारण-वश अप्रसन्न होकर मांडलगढ के कानावतों पर आक्रमण करने का विचार किया और राजा रायसिह को सहायतार्थ कुछ सैनिक भेजने को लिखा। राजा रायसिह ने सैनिक भेज दिये। यह एक अद्‌भुत बात है कि जिस राजा उम्मेदसिह ने राजा सरदारसिह के समय में धोके से बनेड़ा दुर्ग पर अधिकार कर उनको संकट मे डाल दिया था, उन्ही के पुत्र राजा रायसिह ने राजा उम्मेदसिह की सहायता की। इससे उनके हृदय की विशालता प्रकट होती है किन्तु कानावतों के विरुद्ध राजा उम्मेद-सिह की सहायता करने के कारण महाराणा उनसे अप्रसन्न हो गये। उन्ही दिनों किसी राजकार्य-वश धाय भाई रूपजी बदनौर होता हुआ मांडल आया, तब राजा रायसिह भी मांडल जाकर उनकी सेना मे सम्मिलित हो गये। महाराणा के रुख के अनुसार वह भी उनसे अप्रसन्न था। अतएव उसने आषाढ़ बदी ९ प्रातःकाल राजा रायसिह के डेरे को चारो ओर से घेर लिया। उनके डेरे के पास ही ठाकुर अक्षयसिह बदनौर का डेरा था, वह उसके डेरे मे चले गये। सारे राठौड एकत्रित हो गये, जो राजा रायसिह के पक्ष मे थे। धाय भाई ने जब झगडा बढ़ते देखा तब ठाकुर अक्षयसिह को मध्यस्थ बनाकर यह करार लिखाया कि बीस दिन तक राजा राय-सिह बनेडा नही जावेंगे। ठाकुर अक्षयसिह के साथ रहेगे। इस घटना की सूचना राजा राय-सिह ने महाराजा सवाई माधौसिह जयपुर को देकर विक्रम संवत् १८२० आषाढ़ सुदी १३ को लिखा कि "धाय भाई का विचार बनेड़ा दुर्ग छुड़ाने का है किन्तु दुर्ग का प्रबध दृढ़ है। आप महाराणा को लिखकर अथवा अपना कर्मचारी भेजकर इस मामले को सुलझा देवे। मैंने महाराणा का कोई अपराध नही किया है। उनकी सेवा करता आया हू और उसका यह फल मिला है।"

अपने आश्विन बदी १० वि० सं० १८२० के पत्र मे फिर उन्होने सवाई माधौसिह से आग्रह किया कि "वह महाराणा के पास अपना मुतसद्दी भेजकर उनकी अप्रसन्नता को दूर करा देवें।

१—मल्हारराव हुलकर जीवित रहे थे।

मुझसे उम्मेदसिंह की सहायता करने का जो अपराध बन पडा है, उसे क्षमा करा देवे। मैं अब तक उनकी सेवा करता आया हू, उसी प्रकार आजीवन करता रहूगा। यदि यह न हो सके तो आप यहा का प्रबन्ध करे। तुकोजीराव हुलकर जावद से पचास हजार सेना लेकर इस ओर आया है। मै बदनोर से आश्वीन बदी ४ को ठाकुर अक्षयसिंह से विदा होकर बनेडे आ गया हू।"

किन्तु वह समय भी आया जब महाराणा की अप्रसन्नता दूर होकर वह फिर राजा रायसिंह पर प्रसन्न हो गये। उस प्रसंग का वर्णन करने के पूर्व हम तुकोजीराव हुलकर के मेवाड मे सेना लेकर आने का कारण लिखेंगे।

पूर्व महाराणा राजसिंह (द्वितीय) ने जो परगने खिराज के बदले अपने पास ठेके पर रखे थे, उनका रुपया वर्तमान महाराणा अरिसिंह, अकाल के कारण आर्थिक स्थिति बिगड जाने से समय पर दे नही पाये। मल्हारराव हुलकर ने रुपयो की माग की। उसने प्रथम तुकोजीराव हुलकर को मेवाड मे भेजा और स्वय भी मेवाड पर आक्रमण करता हुआ उटाले तक पहुँच गया। तब महाराणा ने अर्जुनसिंह कुरावड तथा धायभाई रूपा को संधि की बात चीत करने के लिये उसके पास भेजा। मल्हारराव ने साठ लाख रुपया मागा किन्तु बातचीत होकर ५१ लाख रुपये लेकर वह चला गया।

विक्रम सम्वत् १८२२ मे उदयपुर के राजनीतिक वातावरण मे एक नया सकट उपस्थित हुआ। जिससे मेवाड राज्य की एकता भग होगई। रत्नसिंह को महाराणा बनाकर उदयपुर के सिंहासन पर बैठाने का उद्योग मेवाड के कितने ही सामन्त कर रहे थे। यही वह संकट था। रत्नसिंह स्वर्गीय महाराणा राजसिंह (द्वितीय) की झाली राणी से उनके स्वर्गवास के पश्चात् उत्पन्न हुआ था। महाराणा राजसिंह की मृत्यु विक्रम सम्वत् १८१७ चैत्र बदी १३ को हुई। उनके कोई संतान नही थी। महाराणा की मृत्यु के पश्चात् झाली राणी ने गर्भ न होना प्रकट किया तब सामन्तो ने महाराणा जगतसिंह के छोटे पुत्र अरिसिंह को विक्रम सम्वत् १८१७ चैत्र बदी १३ को राजगद्दी पर बैठाया किन्तु राणी झाली के गर्भ था और रत्नसिंह का जन्म हुआ। जब महाराणा अरिसिंह से उनके सामन्त अप्रसन्न हो गये तब उनको पदच्युत कर रत्नसिंह को महाराणा बनाकर मेवाड के सिंहासन पर बैठाने का वह प्रयत्न करने लगे। मेवाड के बहुत से सामन्त रत्नसिंह की ओर हो गये। जसवन्तसिंह (गोगूदा) ने इस कार्य मे प्रमुख भाग लिया क्योंकि झाली राणी उसकी बहिन थी। महाराणा ने अपनी शक्ति क्षीण होते देखी, तब वह भी रूठे हुए सामन्तों को मनाने लगे। राजा उम्मेदसिंह (शाहपुरा), झाला राघवदेव देलवाडा आदि को उन्होंने अपनी ओर मिला लिया। राजा रायसिंह तो पहिले से ही महाराणा के भक्त थे वह सहर्ष उनके पक्ष मे हो गये। इसी समय झाला जालिमसिंह कोटे से महाराणा के पास आगया। इस प्रकार महाराणा की शक्ति मे वृद्धि हुई और उन्हे धैर्य बंधा।

राजा रायसिंह के महाराणा के पक्ष मे आने के पूर्व उनको मरहठो की ओर से तथा रत्नसिंह की ओर से अपने पक्ष मे आने के लिये जो प्रलोभन दिये गये उस पर प्रकाश डालना आवश्यक है, क्योंकि तत्कालीन पत्रों से उस समय की राजनीतिक परिस्थिति स्पष्ट हो जाती है। ऐसे समय जबकि चारो ओर विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो, प्रलोभनो का उपहार

बीच-बीच में बनेडा आकर राज्य प्रबन्ध को देखते रहते थे। विक्रम संवत् १८२५ के श्रावण के पूर्व वह कुछ दिन के लिये बनेडा आये थे।

बनेड़ा आने पर उन्होंने राज्य प्रबन्ध के साथ-साथ एक काम और किया। उन्होंने चतुरतापूर्वक मेवाड के सामन्तों को पत्र लिखकर यह जानना चाहा कि कौन रत्नसिंह की ओर है और कौन महाराणा की ओर है। जब एक सिंहासन के दो अधिकारी उत्पन्न होते हैं तब उस राज्य के सामन्तों की स्थिति किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाती है। ऐसे संकटकाल में यदि बुद्धिमानी से कार्य नहीं किया गया तो अन्त मे राज्य से विमुख होकर पछताना पड़ता है। राजा रायसिंह राजनीति निपुण थे। वह रत्नसिंह के पक्षवालों की शक्ति को तौलना चाहते थे, उन्होंने बेगूं के रावत सवाई मेघसिंह को भी इस सम्बन्ध में पत्र लिखे। सवाई मेघसिंह के राजा रायसिंह को लिखे चार पत्र हमारे संग्रह मे हैं। यह पत्र श्रावण सुदी २।६।८।१२। विक्रम संवत् १८२५ के हैं। इन पत्रों से ज्ञात होता है कि उस (मेघसिंह) ने राजा रायसिंह को रत्नसिंह के पक्ष मे आने के लिये प्रोत्साहित किया था। उन दिनों रत्नसिंह को लेकर उसके सामन्तों का मुकाम कुम्भलमेर में था। वहीं से महाराणा के सामन्तों को अपनी ओर मिलाने का वह प्रयत्न कर रहे थे। मेघसिंह ने तो राजा रायसिंह को यहां तक लिखा कि कुम्भलमेर से सनद तो आपके पास आ ही गई होगी। यदि उनके पक्ष मे आने का विचार हो तो मैं उनके लिखे अनुसार आपके खर्च के लिये रुपये भिजवा दूंगा। मरहठों के सेनानायक आनाजी तथा जसवंतरायजी से बातचीत पक्की कर रहा हूँ। मरहठों ने रत्नसिंह का पक्ष लिया है। तीन लाख रुपये तो नंदलाल देगा और तीन लाख रुपये रत्नसिंह देगा। जोधपुर के राजा विजयसिंह भी रत्नसिंह के पक्ष मे है। मरहठे और राजा विजयसिंह दोनों मिलकर रत्नसिंह को उदयपुर के राज्य सिंहासन पर बिठाना चाहते हैं। रत्नसिंह का डेरा राजसमुद्र पर है। सदाशिवराव और जसवन्तराव ने मुझे लिखा है, "हमारे भीलवाड़े जाते ही आप हमारी सेना मे आकर सम्मिलित हो जाओ। आपका क्या विचार है? आप आगे जावेगे या इनके साथ चलेगे।"

रत्नसिंह के सामन्तो ने भी राजा रायसिंह को पत्र लिखकर तथा सनद भेजकर अपने पक्ष मे आने के लिये प्रलोभन दिया था। रत्नसिंह के मुख्य प्रधान साह बसंतपाल देपुरा ने श्रावण सुदी ९ वि० सं० १८२५ को उन्हे रत्नसिंह का पक्ष ग्रहण कर कुम्भलमेर आने को लिखा। रत्नसिंह की ओर से श्रावण सुदी १२ वि० सं० १८२५ को सनद भेजकर लिखा कि:—

१. सांगानेर के बदले ग्राम सवाणा देगे। वहां आप गढ़ी बांध सकते हैं।
२. आपके जिन सामन्तो ने गढ़ियां बांध ली है, उदयपुर आने पर हम उन्हे खाली करा देगे।
३. भीलवाड़ा की गाड़ियों पर प्रति गाड़ी २ रुपये प्रमाण से परगने के अनाज के लिये दिये, सो लेते रहें।
४. २,०००० रुपये की जागीर आपके भाई-बन्दों को देगे।

दौलामियां से भी उन्होंने पत्र व्यवहार किया। उसने श्रावण सुदी १५ वि० सं० १८२५ को पत्र भेजकर राजा रायसिंह को सहायता करने का वचन दिया।

इस प्रकार पत्र व्यवहार करके चतुरतापूर्वक राजा रायसिंह ने महाराणा के पक्ष मे जाना ही निश्चित किया। वह भाद्रपद वि० स० १८२५ मे उदयपुर पहुँच गये। राजा रायसिंह के आगमन से महाराणा बहुत प्रसन्न हुये। राजा रायसिंह ने बनेडा के अपने परिवार को लिखा कि "राणाजी मुझसे बहुत प्रसन्न है। नये, नये सरदार आये हैं, दौलामिया मरहठो को छोडकर महाराणा की सेवा मे आ गया है। लुनावडका ठाकुर भी महाराणा के पक्ष मे हो गया है।"

आश्विन सुदी १२ को महाराणा ने राजा रायसिंह को जब वह उज्जैन रणक्षेत्र पर रवाना हो रहे थे तब आदरपूर्वक जो सम्मान प्रदान किया उसका विवरण निम्न प्रकार है—

"जयपुर नरेश तथा जोधपुर नरेश से जब हम भेट करेंगे तब आपको अपने सामने गादी पर लेकर बैठेंगे। जब आप उदयपुर आवेगे तब द्वार के बाहर आपकी अगवानी करने आवेगे और जब आप सैन्य शिविर मे आओगे, तब डेरे के बाहर आकर आपका स्वागत करेंगे। आपके भाई सगे मेवाड राज्य की चाकरी करेगे, उनको व्यवहार के अनुसार पट्टा देवेंगे, मेवाड की राजसभा मे आपके साथ आपके आठ सरदार, एक पुरोहित, दो मुत्सद्दी को बैठने दिया जावेगा। आप नालकी रख सकोगे।" उदयपुर राज्य की यह प्रथम सनद है।

मार्गशीर्ष बदी २ सवत् १८२५ को अमला के देवीसिंह[1] ने राजा रायसिंह को एक विस्तृत पत्र लिखा। उस पत्र मे उज्जैन की राजनीतिक परिस्थिति का विस्तृत वर्णन है। उसका साराश यह है कि "राणा रत्नसिंह बिवरोदे परगना रतलाम मे थे। मेहता सूरतसिंह उनके पास आये। वहा से वह सूबेदार माधवराव सिंधिया के पास उज्जैन गये। सिंधिया ने एक कोस आगे जाकर उनकी अगवानी की और राणाजी को ले गया। रत्नसिंह ने निवेदन किया कि "मुझे उदयपुर की गद्दी पर बैठाओ। तीस लाख रुपये[2] आपको भेंट करू गा। उसमे से दस लाख रुपये तो मदसौर के डेरे पर दू गा शेष बीस लाख उदयपुर की गद्दी पर बैठने पर दू गा। यह करार बेल भडार उठाकर महाकालेश्वर उज्जैन को बीच मे रख कर हुआ। सेना चार पाच हजार है। पवार का दीवान तीन हजार सेना के साथ माडव आया है। तुकोजी हुलकर इन दिनों दक्षिण मे है।"

राजा रायसिंह को नौलाय परगना उनके पिता के समय निकल जाने से बडा दुख था। अब फिर उसे हस्तगत करने का विचार कर उन्होंने इस सम्बन्ध मे देवीसिंह से विचार विनिमय किया। देवीसिंह (अमला) ने उपरोक्त पत्र मे नौलाय (बडनगर) के सम्बन्ध मे यह लिखा कि "नौलाय के सम्बन्ध मे यह समाचार है कि दक्षिण के एक पण्डित के अधिकार मे उज्जैन के आठ परगने हैं, उनमे नौलाय है। इस समय नौलाय दो लाख चौबीस हजार मे है, कचेरी खर्च अलग है। रूपिजावाला सुमानसिंह इसे लेना चाहता है, किन्तु अभी दिया नहीं गया है। आप यह परगना लेने की बातचीत करें तो दो लाख तक करना।" किन्तु भावी इतिहास किन्ही दूसरे ही अक्षरों मे लिखा जा रहा था और परगना नौलाय (बडनगर) फिर कभी बनेडा राज्य के अन्तर्गत नही आया।

१—देवीसिंह राणा भीमसिंह के पुत्र विजयसिंह के वंशज हैं।

२—उदयपुर राज्य के इतिहास में भी ओझाजी ने एक करोड़ रुपये लेना लिखा है।

वहिरजी ताकपीर नामक एक मरहठा सेनापति ने भी मार्गशीर्ष ८ व १५ विक्रम संवत् १८२५ को पत्र लिखकर राजा रायसिंह को मरहठों के पक्ष में आने का बहुत आग्रह किया किन्तु राजा रायसिंह ने उधर ध्यान नही दिया।

उपरोक्त पत्रों से ज्ञात होता है कि सूबेदार माधवराव सिंधिया ने रत्नसिंह का पक्ष लिया[1] और एक करोड़ रुपये ठहराये।[2] यह बात जब महाराणा अरिसिंह को मालूम हुई तब उन्होंने माधवराव सिंधिया को अपनी ओर मिलाने के विचार से प्रथम झाला जालिमसिंह तथा मेहता अगरचन्द को पेशवा के अधिकारी रघुपायगिया तथा दौलामियां के पास भेजा। उन्होंने महाराणा अरिसिंह का पक्ष लेने के लिये माधवराव सिंधिया को समझाया किन्तु अधिक रुपयों के लोभ में आकर माधवराव ने उन दोनों का कहना नहीं माना, इस पर वह दोनों अप्रसन्न होकर अपने आठ हजार सैनिकों सहित महाराणा की सेना मे आकर सम्मिलित हो गये। महाराणा ने एक बार फिर रावत पहाड़सिंह, उम्मेदसिंह शाहपुरा तथा झाला राघवदेव को सिंधिया को समझाने भेजा किन्तु फिर भी उसने अपना हठ नहीं छोड़ा, तब महाराणा ने युद्ध को अनिवार्य समझकर रावत पहाड़सिंह, उम्मेदसिंह शाहपुरा, झाला जालिमसिंह, बनेड़ा के राजा रायसिंह, बिजौलिया का शुभकरण, भैंसरोड़ का रावत मानसिंह, आमेट का फतेहसिंह, वीरमदेव (घाणेराव) का, अक्षयसिंह बदनौर, रावत कल्याणसिंह बम्भोरा, रघुपायगिया तथा दौलामिया आदि सेना-नायकों के आधिपत्य में एक विशाल सेना भेजी और अपने सामन्तों को समझाया कि "प्रथम सिंधिया से संधि की बातचीत करना। वह जो 'पेशकस' के रुपये लेगा वह दे दिये जावेंगे।"

उपरोक्त सामन्तों ने ससैन्य रवाना होकर उज्जैन में क्षिप्रा नदी के तट पर डेरा डाला और महाराणा के आदेशानुसार माधवराव सिंधिया से संधि की बातचीत चलाई किन्तु उसने नही माना। तब पौष सुदी ६ विक्रम संवत् १८२५ को युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह युद्ध तीन दिन तक चलता रहा। महाराणा के सैनिक बहुत वीरतापूर्वक लड़े। राजपूतों ने पहिले ही आक्रमण में मरहठों की सेना को तितर बितर कर दिया। महाराणा के सैनिकों की विजय निकट थी किन्तु इसी समय देवगढ़ के रावत जसवन्तसिंह के द्वारा भेजी गई, पन्द्रह हजार नागाओं की सेना मरहठों की सहायता पर आ गई और युद्ध का रूप बदल गया। जो विजय महाराणा को मिलने वाली थी वह मरहठों को मिली। महाराणा की सेना की हार हुई और उसमें रावत पहाड़सिंह, शाहपुरा के उम्मेदसिंह खेत रहे। राजा रायसिंह ने वीरतापूर्वक लड़ते हुवे पौष सुदी ९ विक्रम संवत १८२५ को रणक्षेत्र में सोकर अमरता प्राप्त की।[3] इनके साथ इनके सामन्त बल्ला रतनसिंह, बल्ला उदयसिंह, राठौड़ दलसिंह, राठौड़ गूजरसिंह इस युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुवे।[4]

राजा रायसिंह की वीरता पर मुग्ध होकर किसी कवि ने अपनी ओजस्वी भाषा मे एक कविता लिखी है। वह निम्नांकित है:—

१—बनेड़ा संग्रह के पत्र। २—उदयपुर राज्य का इतिहास (श्री ओझाजी)।
३—राजपूताने का इतिहास (ओझा)। ४—बनेड़ा संग्रह।
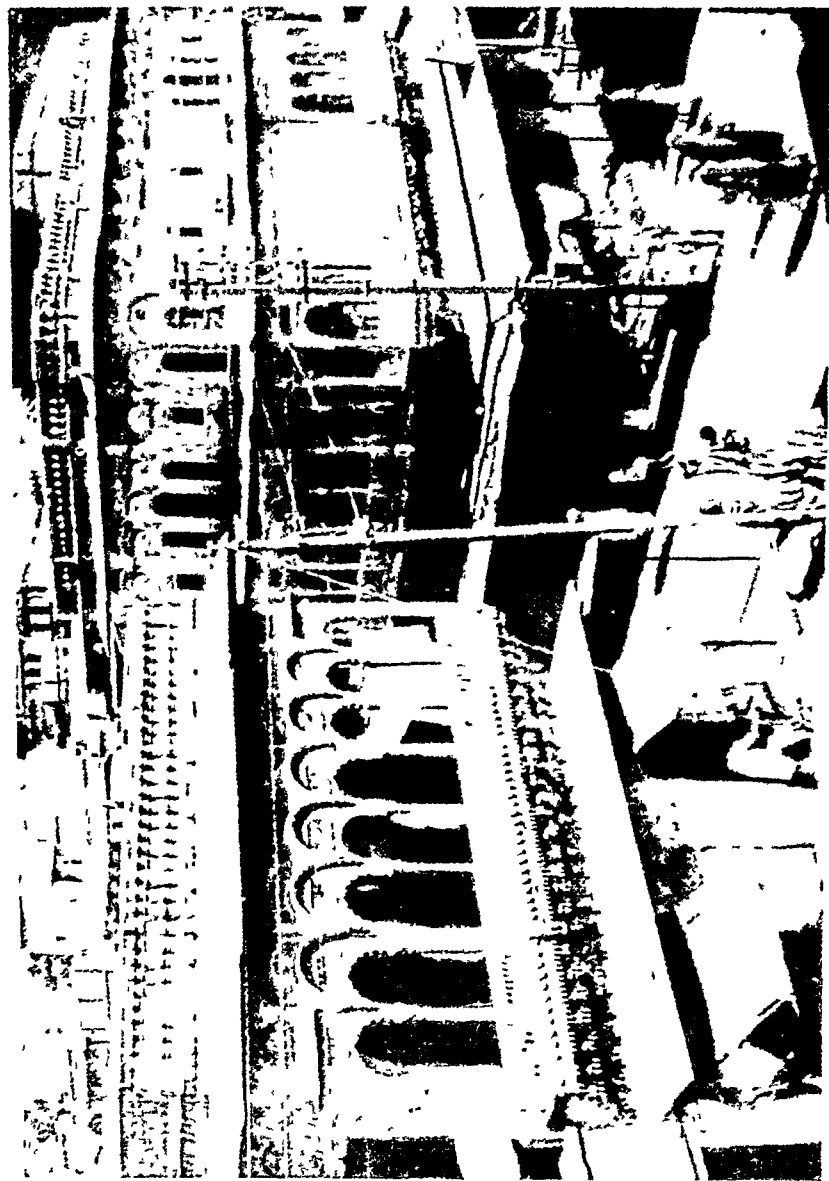
राजपुर (बनेड़ा) के बाजार का दृश्य

रचे उजीनी राड, वे दखनी खड खड आविया।
मटका द्रोहण झाड, रण रहियो भड रायसी।

तीन हजार तोखार, उमग फौजा मे बोरिया।
पडिया पेलेपार, रण रहियो भड रायसी।

खळहळ रगता खेत, सफरा तो नेहये सरे।
रे बाला चढता वेप, रण रहियो भड रायसी।

ढारण डूबो दीवाण, सुरपुर तो पुग्यो रहो।
वाचे कवि बरवाण, रण रहियो भड रायसी।

विवाह और सतति —इसकी राणी जोधपुरी पीसागन के राजा फतेहसिह की पौत्री तथा सौभाग्यसिह की पुत्री थी। इस राणी से तीन पुत्र —

१—हमीरसिह २—आनन्दसिह ३—किशोरसिह हुवे।

धार्मिक आस्था —आषाढ़ वदी ३० विक्रमी सवत् १८०४ को राजा रायसिह ने अपने कुंवर पदे मे चतुर्भुज ब्राह्मण को ५१ बीघा भूमि दान दी। चैत्र बदी ९ विक्रम संवत् १८१४ को उन्होंने सोमसुत, शम्भु, सुन्दर तथा रणछोड को ५१ बीघा भूमि ग्राम सिवाणा मे दान दी। वैशाख सुदी १५ विक्रम सवत १८१७ को चन्द्रग्रहण के अवसर पर ४१ बीघा भूमि कन्हैया सुत उदयराम को बनेडे मे दान दी।

भवन निर्माण —राजा रायसिह ने बनेडा दुर्ग के आसपास कोट बनाने का काम प्रारम्भ किया और वर्तमान बनेडा नगर बसाकर उसका नाम अपने मूल पुरुष राणा राजसिह के नाम पर "राजपुर" रखा। उस समय से अब तक सरकारी कागजात मे "राजपुर बनेडा" लिखा जा रहा है। राजपुर गाव की जन्म पत्री की प्रतिलिपि निचे लिखी जाती है।

संवत् १८२३ शाके १६८८ प्रवर्तमाने वैशाख बदी १ शुक्रे घटी ५२।४० स्वात नक्षत्र घटी १९।१२ सिधि नाम जोग घटी १२।१७ श्री सुर्योदयात इस्ट घटी १६-० सूर्य स्पष्ट ०।१५।१७।५८।१३ राजपुर जन्म।
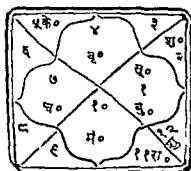
इन्होंने वि० स० १८२१ मे राय आगन बनाया। पनरा चौकी बनाई और अजमेरी द्वार बनवाया।

रत्नसिंह के प्रधान वसंतपाल ने उनको अपनी ओर मिलाने के लिये फाल्गुन बदी ४ वि० सं० १८२५ को पत्र लिखकर प्रलोभन दिये, किन्तु राजा हमीरसिंह ने तथा उनके कर्मचारियों ने उस ओर ध्यान नहीं दिया[1] और महाराणा अरिसिंह की सेवा में रहे। उनकी इस सेवा की सराहना करते हुवे मेवाड़ राज्य की ओर से चैत्र बदी ८ वि० सं० १८२६ को भीलवाड़ा के पंच महाजनों को आदेश दिया गया कि "परगना बनेड़ा के अनाज की लागत प्रति गाड़ी डेढ़ रुपया बनेड़ा राज्य को दिया जाया करे।"[2]

माधवराव सिंधिया ने रत्नसिंह का पक्ष लिया था और मेवाड़ के सिंहासन पर बिठाने का वचन दिया था। इस कार्य के लिये एक करोड़ रुपये देना निश्चित हुआ था। यह हम राजा रायसिंह की जीवनी में लिख आये हैं किन्तु सिंधिया को समय पर रुपये नहीं मिले। इस कारण रत्नसिंह अथवा उसके साथियों पर से उसका विश्वास उठ गया हो तो वह स्वाभाविक ही था।

इधर मेवाड़ की राज्य व्यवस्था में भी परिवर्तन हुआ। जब महाराणा का सैनिक बल कम हुआ, आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गई तथा मुसलमान सैनिक वेतन न मिलने से विद्रोह पर उतारू हो गये, तब रावत भीमसिंह (सलुम्बर) ने महाराणा से निवेदन किया कि "अमरचन्द बड़वा को मेवाड़ का प्रधान बनाकर उसके हाथों में राज्य व्यवस्था की बागडोर दी जावे।" महाराणा ने उसका कहना स्वीकार कर अमरचन्द को प्रधान बनाया। उसने अपनी कार्य क्षमता, चतुरता और बुद्धिमानी से राज्य व्यवस्था को सन्तुलित कर स्थिर किया। सैनिकों को वेतन देकर उनके हृदयों में विश्वास उत्पन्न किया तथा युद्ध के लिये उत्साहित किया।

रत्नसिंह के साथी सिंधिया को फिर ले आये। उसने उदयपुर के निकट अपना सैनिक पड़ाव डाला। अमरचन्द ने भी युद्ध करने का निश्चय किया। उसकी कुशलतापूर्वक की गई सैनिक व्यूह रचना से तथा बाघसिंह (करजाली) की दुख भंजन नामक तोप की मार से, छः मास तक युद्ध करने पर भी सिंधिया उदयपुर पर अधिकार नहीं कर सका। तब वह चिन्तित हो उठा। उसके धन और जन की हानि तो हो ही रही थी। रत्नसिंह से ठहरे हुवे रुपये भी नहीं मिल रहे थे। उसने रत्नसिंह के साथियों से दृढ़ता-पूर्वक रुपयों की मांग की तब उन्होंने कहा कि "अभी हमारे पास रुपया नहीं है। उदयपुर पर अधिकार होने पर हम आपको रुपया देंगे।"

इस प्रकार संधि के उपयुक्त वातावरण निर्माण कर बड़वा अमरचन्द ने सिंधिया से संधि की बातचीत प्रारम्भ की। वह भी यही चाहता था। उसका स्वार्थ धन में था। उसने मेवाड़ से साठ लाख रुपये लिये, संधि की और मेवाड़ राज्य की रक्षा का वचन देकर श्रावण बदी ३ वि० सं० १८२६ को वह उज्जैन चला गया। उपर्युक्त संधि में रुपयों की कमी के कारण महाराणा ने जावद, जीरण और मोरवण परगने सिंधिया के पास गिरवी रख दिये। जो फिर कभी मेवाड़ राज्य के अंतर्गत नहीं आये।[3]

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह।
३—वीर विनोद, उदयपुर राज्य का इतिहास।

सिंधिया ने संधि के अनुसार मेवाड के समस्त सामन्तों के नाम आदेश प्रसारित किये। उसने मार्गशीर्ष सुदी १४ वि० सं० १८२६ को राजा हमीरसिंह को लिखा कि "जो सामन्त राणाजी से विद्रोह करेगा, उसको दण्ड दिया जावेगा। आप भी राणाजी की चाकरी मे उपस्थित रहे। हमारी सेनाये उधर से निकलें तो किसी प्रकार की शका न करे। आपके प्रदेश को कोई हानि नही पहुँचेगी। हमारी सेना मेवाड राज्य की रक्षा के लिये रहेगी। आप अपनी सेनाये भी वहा भेज देवें।"[१]

रावत भीमसिंह ने चैत्र सुदी ७ वि० सं० १८२७ को पत्र लिखकर राजा हमीरसिंह को विश्वास दिलाया कि "एकलिङ्गजी साक्षी हैं, मेरी ओर से तथा राणाजी की ओर से रंचमात्र भी अविश्वास न रखे। आप निश्चिन्त होकर अपने परगने की उन्नति करे।"[२]

स्वयं महाराणा अरिसिंह वि० सं० १८२७ के वैशाख मे बनेडा आये। राजा हमीरसिंह ने उनका यथायोग्य सत्कार किया। उनके इस बनेडा आगमन की सूचना मरहठा सेनापति को मिलने पर उसने वैशाख बदी ५ वि० स० १८२७ को चीलूजी कदम को लिखा कि "महाराणा बनेडे गये हैं। यदि उन्होंने किसी के कहने मे आकर बनेडे के प्रदेश को हानि पहुँचाई, तो यह बात ठीक नही होगी। हमने रावत भीमसिंह के कहने पर राजा हमीरसिंह को वचन दिया और उसकी सेना को मेवाड की सेना मे भेजा है। जो महाराणा की सेवा कर रही है। राणाजी के बनेडा जाने से रावतजी को चिन्ता हुई है। राणाजी बनेडा की हानि नही करेंगे तो यह बात उनके लिये लाभदायक होगी। यदि राणाजी आपका कहना न माने तो आप यहा चले आवे। हमारे दिये हुये वचन का पालन होना चाहिये।"[३]

किन्तु महाराणा ने कोई ऐसी बात, जिससे बनेडा राज्य का अहित होता हो, नही की और राजा हमीरसिंह को सब प्रकार से विश्वास देकर उदयपुर चले गये। उदयपुर जाकर द्वितीय आषाढ सुदी १४ वि० सं० १८२७ को उन्होंने बनेडा राज्य के अधीनस्थ भौमियो को आदेश भेजे कि "बनेडा राज्य को जो बाटा मुकाता देते आये हो, वह देते रहो और जिस प्रकार चाकरी करते आये हो उसी प्रकार करते रहो।"[४]

रत्नसिंह का पक्ष सिंधिया ने छोड दिया था, फिर भी उसके साथियो ने धीरज नही छोडा और उसे महाराणा बनाने का प्रयत्न करते रहे। इस संबध मे घाणेराव के वीरमदेव ने राजा हमीरसिंह को भाद्रपद बदी १४ वि० स० १८२७ को सूचना दी कि "महाराणा का मुकाम नाथद्वारा मे है और रत्नसिंह की सेना ग्राम नजरा मे पडी है, वहा से कूच करने का अभी उसका विचार नही है।

रत्नसिंह का एक साथी भीडर का मुहकमसिंह था। महाराणा ने उस पर आक्रमण किया। संधि की बातचीत चली किन्तु सधि नही हो सकी।[५]

विद्रोही सरदारो ने महापुरुषो की एक विशाल सेना लाकर महाराणा के ग्रामो को लूटना प्रारम्भ कर दिया। महाराणा स्वय सेना लेकर उन पर आक्रमण करने को रवाना हुवे।

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह। ४—बनेडा संग्रह।
५—बनेडा संग्रह का फाल्गुन बदी ८ वि० सं० १८२७ का एक पत्र।

इस युद्ध में बनेड़ा राज्य की सेना भी थी।[1] इस युद्ध में महापुरुषों की हार हुई। विजयी महाराणा उदयपुर लौट आये। रत्नसिंह की शक्ति नितान्त क्षीण होगई।[2]

राजा हमीरसिंह तथा उनके राज कर्मचारियों ने महाराणा के प्रत्येक आदेश का पालन किया तथा अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दिया। महाराणा अरिसिंह बहुत प्रसन्न हुवे। महाराणा की ओर से बनेड़ा के प्रत्येक राजा के सिंहासनारूढ होने के समय तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न की जाती रही थी। उस रीति का पालन अभी तक महाराणा की ओर से नहीं हुआ था, अतएव श्रावण वदी ९ वि० सं० १८२८ को महाराणा ने अपने कर्मचारियों के साथ सुनहरी तलवार, सिरोपाव, आभूषण, मोतियों की कंठी, सिरपेच, हाथी और घोड़े उपहार में भेजे। महाराणा ने लिखा कि "तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न होते ही आप उदयपुर आवें" और यह विश्वास दिलाया कि "पूर्व से ही तलवार बंधाई के समय बनेड़ा राज्य से कोई रकम नहीं ली जाती है, उसका पालन होगा।"[3]

कार्तिक सुदी १३ वि० सं० १८२८ को रावत भीमसिंह (सलुम्बर) ने राजा हमीरसिंह को पत्र लिखकर बहुत विश्वास देकर उदयपुर बुलाया।

वि० सं० १८२८ मे मरहठा सेनापति गोविन्दराव, रावत भीमसिंह, ठाकुर अक्षयसिंह बदनौर जयपुर से लौटते समय बनेड़ा आये। राजा हमीरसिंह ने उनका यथोचित सम्मान कर विश्वास सम्पादन किया।[4]

रत्नसिंह के साथी एक वर्ष तक शान्त रहे। फिर दस हजार महापुरुषों को एकत्रित कर मेवाड़ के प्रदेश को लूटना प्रारम्भ कर दिया, तब महाराणा ने काका बाघसिंह को गोडवाड़ भेजा, क्योंकि विद्रोही उस पर अधिकार करना चाहते थे। रावत भीमसिंह को उदयपुर के रक्षार्थ रखा तथा स्वयं महापुरुषों पर आक्रमण करने के लिये रवाना हुवे। यह युद्ध गंगार के किले के पास हुआ। महाराणा विजयी हुवे।[5] बनेड़ा राज्य की सेना भी इस युद्ध मे सम्मिलित हुई थी।[6]

महाराजा बाघसिंह ने गोडवाड़ जाकर वहां से रत्नसिंह का अधिकार उठा दिया। उदयपुर आकर महाराणा से निवेदन किया कि "गोडवाड़ मे मेवाड़ की सेना रखना अत्यन्त आवश्यक है, नही तो रत्नसिंह उस पर अधिकार कर लेगा और उसकी शक्ति बढ़ जायगी।"

इस पर महाराणा ने जो सैनिक व्यवस्था की, उसका अन्तिम परिणाम मेवाड़ के लिये हानिप्रद सिद्ध हुआ। उन्होने वहां मेवाड़ की सेना नही रखी और जोधपुर के राजा विजयसिंह को गोडवाड़ मे सेना रखने को लिखा और उसके व्यय के लिये उस परगने की आय लेने को कहा। यह प्रबन्ध केवल तब तक के लिये था, जब तक वहां सेना रखने की आवश्यकता थी। महाराणा ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि वहां के सामन्त मेवाड़ के अधिकार में रहेंगे।

महाराजा विजयसिंह ने इस प्रबन्ध को स्वीकार किया और गोडवाड़ परगने पर सेना भेजकर अधिकार तो कर लिया किन्तु कुम्भलमेर से रत्नसिंह की सेना को नहीं हटाया। न

१—बनेड़ा संग्रह। २—उ० रा० इति० (श्री ओझा)। ३—बनेड़ा संग्रह।
४—बनेड़ा संग्रह। ५—उ० रा० इ०। ६—बनेड़ा संग्रह। ६—उ० रा० इ०।

कभी गोडवाड का परगना महाराणा को वापिस किया। इस प्रकार यह परगना सदा के लिये महाराणा के अधिकार से निकल गया।[1]

मरहठों के आक्रमण रत्नसिंह के विद्रोह, तज्जन्य युद्धों की परम्परा आदि से मेवाड की आर्थिक स्थिति नितान्त बिगड गई। इस कमी को पूर्ण करने के लिये महाराणा अपने अधीनस्थ सामन्तों से धन वसूल करने मे सकोच नही करते थे। यहा भी यही हुआ। महाराणा अरिसिंह सेना सहित बनेडा आये। राजा हमीरसिंह से ४१ हजार रुपये तथा बनेडा परगने से १४३१४ रुपये विराड के वसूल किये।[2] इससे पूर्व कभी बनेडा राज्य से बिराड आदि की कोई रकम वसूल नही की गई थी, किन्तु जब महाराणा अरिसिंह स्वय आये तो स्वामिभक्त राजा हमीरसिंह ने किसी प्रकार की आपत्ति न करके उक्त धन उनकी सेवा मे प्रस्तुत कर दिया। यह प्रथा नई थी और भविष्य मे उसकी स्थायी होने की सम्भावना थी अतएव राजा हमीरसिंह ने रावत भीमसिंह (सलुम्बर) को लिखकर अपनी आपत्ति प्रकट की इस प्रकार मार्गशीर्ष सुदी २ वि० सं० १८२९ को उसने लिखा कि "आपकी आपत्ति उचित है किन्तु उस समय परिस्थिति ही ऐसी थी। सिंधी सैनिक विद्रोह करने पर उतारू हो गये थे। इस कारण आपसे रुपया लिया गया है। मैंने उसी समय महाराणा से बात की थी। उन्होंने वचन दिया कि अब भविष्य मे कभी बनेडा राज्य से कोई कर वसूल नही किया जावेगा। आप विश्वास रखे।"[3]

महाराणा अरिसिंह तथा बूंदी के महाराव अजीतसिंह मे वैमनस्य हो गया था। महाराव उन्हे शिकार के बहाने अमरगढ के अरण्य मे ले गया। वहा उसने धोके से उन पर आक्रमण कर दिया, जिससे चैत्र बदी १ वि० सं० १८२९ को उनका स्वर्गवास हो गया। उनके पश्चात् मेवाड के राज्य सिंहासन पर चैत्र बदी ३ वि० सं० १८२९ को महाराणा हमीरसिंह (द्वितीय) आरूढ हुवे।

महाराणा के अल्प वयस्क होने के कारण मेवाड राज्य के प्रबन्ध मे परिवर्तन होना स्वाभाविक था, अमरचन्द बडवा तथा अगरचन्द मेहत्ता के निवेदन करने पर महाराज बाघसिंह और महाराज अर्जुनसिंह मेवाड के राज्य का प्रबन्ध देखने लगे किन्तु राजमाता ने राजकार्य अपनी इच्छानुसार चलाना चाहा और शक्तावनो को अपनी ओर मिलाना प्रारम्भ कर दिया। रामप्यारी नामक एक तुच्छ दासी के कहने पर उसने अमरचन्द बडवा जैसे राजकार्य कुशल तथा राज्य भक्त व्यक्ति को विष देकर मरवा डाला। उसके मरते ही मेवाड की आर्थिक स्थिति अत्यन्त विकट हो गई।

सिंधी सैनिक वेतन न मिलने से विद्रोह करने पर तुल गये और धमकियां देने लगे। तब महाराणा बाघसिंह महाराज अर्जुनसिंह आदि ने तथा कुरावड के रावत अर्जुनसिंह ने उन्हें समझाया कि खजाने मे रुपया नही है। तुम लोग हमारे साथ मेवाड के प्रदेशों में चलो, रुपया एकत्र करके तुम्हारा वेतन चुका देंगे।" इस पर दस हजार सिंधियों सहित रावत अर्जुनसिंह मेवाड के प्रदेश से धन एकत्रित करने निकला। मार्ग मे मरहठा सेनापति बहिरजी

१—उ० रा० इ०। (श्री ओझा) २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह।

सांकपीर से युद्ध हुआ और वह हार कर भाग गया। चित्तौड़ के किलेदार रावत भीमसिंह ने सिन्धियों को किले में बुलाकर वेतन के स्थान पर जागीरें देकर शान्त कर दिया।[१]

मेवाड़ राज्य के राज्य प्रबंधकों ने रुपया प्राप्त करने के लिये जिस मार्ग को अपनाया था उससे मेवाड़ राज्य की प्रजा और सामन्तों में बड़ी घबराहट फैल गई। मरहठों की लूट मार से पहले ही प्रजा दुखी थी। प्रदेश में अराजकता का बोलबाला था। ऐसी परिस्थिति में मेवाड़ राज्य के उपरोक्त कार्य से स्थिति और भी शोचनीय हो गई। तत्कालीन वास्तविक अवस्था का दिग्दर्शन ठा० अखयसिंह (बदनोर) द्वारा राजा हमीरसिंह को वैशाख सुदी १४ वि० सं० १८३२ को लिखे पत्र से होता है। उसने लिखा "रावत अर्जुनसिंह का मुकाम 'आसींद' हुआ है, गढ़ी बांध रहा है। परगने में पूर्णतया उपद्रव उठ खड़ा हुआ है। हमको आपस में एक दूसरे की सहायता करनी चाहिये।"[२]

मेवाड़ के राज्य प्रबंध में स्थिरता नहीं थी। राजमाता ने भींडर के मुहकमसिंह को मेवाड़ के राज्य प्रबंध का प्रमुख बना दिया। इस कार्य से रावत भीमसिंह और रावत अर्जुनसिंह अप्रसन्न हो गये और मेवाड़ राज्य में चूंडावतों तथा सक्तावतों के संघर्ष का श्रीगणेश हो गया। राजमाता ने वि० सं० १८३३ मे मेवाड़ की स्थिति को संतुलित करने तथा मरहठों के आक्रमणों से बचाने के लिये किशनगढ़ के राजा बहादुरसिंह से कहा। उसने सहर्ष इसे स्वीकार कर राजमाता से प्रार्थना की कि "मेरी पोती अमरकुंवर का विवाह महाराणा से कर लिया जावे।" राजमाता ने इसे स्वीकार किया।[३]

राजा हमीरसिंह को इस विवाह की सूचना चित्तौड़ में मिली। उन्होंने पौष सुदी ११ वि० सं० १८३३ को बनेड़े के अपने कर्मचारी पंचोली अमरदास को लिखा कि "पौष सुदी ५ मंगलवार को हम चित्तौड़ आ गये। दूसरे दिन हम रावत भीमसिंह, और गुसांईजी से मिले। वह बहुत प्रसन्न हुवे। महाराणा का विवाह किशनगढ़ के राजा की पौत्री के साथ निश्चित हुवा है। माघ वदी १२ को विवाह होगा। मैं यहां से परभारे ही विवाह मे सम्मिलित होने के लिये रावतजी के साथ जाऊंगा। आप लिखा हुआ सब सरंजाम भेज दीजिये।"[४]

राजा हमीरसिंह महाराणा की बरात के साथ ही किशनगढ रवाना हो गये। मार्ग में महाराणा ने एक दिन बनेड़ा मुकाम किया। राजा ने उनका यथा योग्य आदरसत्कार किया। दूसरे दिन बरात रवाना हुई। यह विवाह माघ वदी १२ वि० सं० १८३३ को हुआ।[५]

महाराणा विवाह करके जब लौटे तो नाहर मगरा तथा नाथद्वारा होते हुवे विद्रोही रत्नसिंह को दबाने के लिये कुम्भलगढ़ की ओर गये। उसी समय रत्नसिंह का पक्षपाती देवगढ़ का रावत राघवदेव विशाल सेना के साथ रत्नसिंह की सहायतार्थ जारहा था। महाराणा ने उस पर आक्रमण किया। युद्ध हुवा और राघवदेव पराजित होकर भाग गया।[६] इस युद्ध में राजा

१—उ० रा० इ०।
२—बनेड़ा संग्रह।
३—उ० रा० इ०।
४—बनेड़ा संग्रह।
५—बनेड़ा संग्रह।
६—उ० रा० इ०।

हमीरसिंह सम्मिलित हुवे थे।[1] विजयी महाराणा उदयपुर आ गये। राजा हमीरसिंह महाराणा की स्वीकृति लेकर बनेड़ा आये।[2]

राजा हमीरसिंह ने अपने भाई आनन्दसिंह को महाराणा की सेवा मे उदयपुर भेजा था। उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर राजमाता ने उनकी प्रशसा और गौरव करते हुवे मार्गशीर्ष बदी ९ वि० स० १८३४ को लिखा कि "आपका भाई आनन्दसिंह मेवाड़ राज्य की सेवा उत्तम करता है।"[3]

इसी समय महाराणा शिकार खेलने गये, वहा गोली चलाते समय बन्दूक फट गई और उनके हथेली मे घाव हो गया। अनेक उपचार करने पर भी वह घाव अच्छा नही हुआ और पौष सुदी ८ वि० सं० १८३४ को उनका स्वर्गवास हो गया। उस समय उनकी आयु केवल सौलह वर्ष की थी। उनकी अकाल मृत्यु से राजपरिवार तथा प्रजा में सर्वत्र शोक छा गया। इनके पश्चात् इनके कनिष्ठ भ्राता महाराणा भीमसिंह पौष सुदी ९ वि० सं० १८३४ को मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर बैठे। उस समय उनकी आयु दस वर्ष की थी। राजकार्य राज माता की सम्मति से संपन्न होने लगा।[4]

विद्रोही रत्नसिंह अब तक बहुत निर्बल हो गया था। देवगढ का रावत राघवदेव उसका साथ छोड़ महाराणा के पक्ष मे आ गया था। उदयपुर राज्य के राजनीतिक रंगमंच पर चूंडावतो और शक्तावतों मे पारस्परिक कलह प्रकट होने लगा था। इस कलह का प्रभाव मेवाड़ राज्य की प्रजा और सामन्तों पर पडे बिना नही रहा। राज्य व्यवस्था मे भी अस्थिरता आना स्वाभाविक था। वि० स० १८३८ मे चूंडावतों का प्रभाव बढ़ गया था सलुम्बर के रावत भीमसिंह, कुरावड के रावत अर्जुनसिंह तथा आमेट के रावत प्रतापसिंह के हाथों मे राज्य कार्य की बागडोर थी।

ऐसे समय जब राज्य मे दो पक्ष निर्माण हो जावे तब राज्य कर्मचारियों की तथा उस राज्य के अधीनस्थ सामन्तों की स्थिति बडी शोचनीय हो जाती है। रावत भीमसिंह चित्तौड का किलेदार था और महाराणा उसके कहने मे थे। ऐसे समय राजा हमीरसिंह के सम्बन्ध मे उसके मन मे कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया। राजा हमीरसिंह चिंतित हो उठे। उन्होंने वहां के जमातदार सादिक अली को पत्र लिखा। उसके प्रयत्न से रावत भीमसिंह का सशय दूर हुआ। जिसकी सूचना सादिक अली ने श्रावण बदी ८ वि० स० १८३५ को राजा हमीरसिंह को दी।[5]

चूंडावत और शक्तावत दोनों अपनी शक्ति बढाने मे सलग्न हो गये। चूंडावत रावत भीमसिंह ने आश्विन सुदी १ वि० सं० १८३७ को पत्र लिखकर राजा हमीरसिंह से सैनिक सहायता की माग की उसने लिखा "शक्तावतों के विरुद्ध शीघ्र ही सेना एकत्रित होगी अतएव आप अपनी सेना शीघ्र यहा भेज देवे और जब मैं स्वयम् सेना मे आऊंगा तब आप भी यहां आजावें। अपनी सेना दसहरे के पूर्व यहा अवश्य भेज देवे तथा स्वयम् आने को तत्पर रहें।"

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह।
४—उ० रा० इ०। ५—बनेड़ा संग्रह।

आक्रमण कर दिया है। गोले बरसा रहा है। मोर्चे दृढ़ लगाये हैं।" इस पत्र मे पिडारियों का भी उल्लेख है। लिखा है "पांच हजार सेना पीडारी की डुङ्गल पडी है।"

इसी प्रकार का एक पत्र उदयपुर से उत्तमराम नामक व्यक्ति ने बनेडा के किशनराम गोपीराम को ज्येष्ठ वदी १ वि० स० १८४१ को लिखा है। यह पत्र भी उदयपुर की वास्तविक स्थिति को दिग्दर्शित करता है। इसमे महाराणा भीमसिंह के विवाह के सम्बन्ध मे उल्लेख हैं, सामन्तो के आपसी व्यवहार, महाराणा का उनसे व्यवहार आदि का विशद वर्णन है।[1]

साराश यह है कि उन दिनो मेवाड राज्य की स्थिति अनिश्चित थी। किस सामन्त पर, किस समय अवकृपा होगी, यह नही कहा जा सकता था। वि० सं० १८४१ मे राजा हमीरसिंह पर भी इसी प्रकार अवकृपा हो गई थी। बनेडा राज्य के लुलास नामक ग्राम के सम्बन्ध मे रावत भीमसिंह ने वैशाख बदी ५ वि० सं० १८४१ को राजा हमीरसिंह को लिखा कि "लुलास शीघ्र खाली कर दीजिये, इसमे देरी न करे।"[2]

जब किसी प्रकार अवकृपा कम नही हुई। तब राजा हमीरसिंह ने राजा भीमसिंह शाहपुरा को इसकी सूचना देकर श्रावण सुदी ९ वि० स० १८४१ को सहायता के लिये लिखा।[3] उन्होंने राजा बिड्दसिंह किशनगढ को भी इस सम्बन्ध मे लिखकर महाराणा से समझौता करा देने के लिये निवेदन किया। श्रावण सुदी ८ वि० स० १८४१ को राजा बिड्दसिंह ने लिखा कि "मैंने आपके काम के लिये उदयपुर से मुहणोत देवीदास को बुलाया है, उसको तथा पुरोहित किशनराम को उदयपुर भेजूंगा, महाराणा मान जावेगे, नही मानेगे तो मै अपनी सेना सहित आपके साथ हूं।"[4]

चूंडावतो तथा शक्तावतों के इस पारस्परिक वैमनस्य की खीचातानी मे सामन्तो की स्थिति कितनी शोचनीय हो जाती थी, उपरोक्त पत्र इसी के साक्षी हैं। आज जो प्रिय है, कल उसका अप्रिय हो जाना एक साधारण सी बात थी।

वि० स० १८४० मे उदयपुर के राजनीतिक वातावरण मे फिर परिवर्तन आया। अब तक मेवाड राज्य में चूंडावतो की प्रबलता थी। एक दिन उनसे राजमाता ने महाराणा के जन्मोत्सव के खर्च का प्रबंध करने के लिये कहा उन्होने उधर ध्यान नही दिया। इस पर राजमाता उनसे अप्रसन्न हो गईं। उसने सोमचन्द गांधी को अपना प्रधान बनाया। चूंडावत उससे द्वेष करने लगे। प्रतिक्रिया स्वरूप सोमचन्द ने चूंडावतो के प्रभाव को कम करने के लिए भीडर और लावा के शक्तावतों को राजमाता के द्वारा सिरोपाव आदि दिलाकर अपनी ओर मिलाया। झाला जालिमसिंह जो चूंडावतो का शत्रु था, उसे कोटे से बुलाया। माधवराव सिंधिया तथा अम्बाजी इङ्गले को अपनी ओर मिला लिया। भीडर का शक्तावत मुहकमसिंह जो बीस वर्ष से उदयपुर राज्य के विरुद्ध था, उसको उदयपुर लाने के हेतु राजमाता को उत्साहित किया। महाराणा वि० स० १८४० मे उदयपुर से रवाना होकर भीडर पहुंचे। उसी समय झाला जालिमसिंह भी अपने पांच हजार सैनिकों सहित उनसे आ मिला।[5]

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह।
४—बनेडा संग्रह। ५—उदयपुर राज्य का इतिहास।

अब शक्तावतों की शक्ति बढ़ रही थी और चूंडावतों की शक्ति कम हो रही थी किन्तु सोमचन्द गांधी भलीभांति जानता था कि मेवाड़ के शत्रु चूंडावत नहीं हैं। उनमें और शक्तावतों में भले ही वैमनस्य हो, मेवाड़ के वास्तविक शत्रु तो मरहठे हैं, जिन्होंने मेवाड़ के बहुत से प्रदेशों पर अधिकार कर लिया है। जो दिन रात मेवाड़ को लूट रहे हैं। उनको मेवाड़ से निकाल बाहर करना चाहिये। यह तभी सम्भव है जब मेवाड़ की दो प्रबल शक्तियां, चूंडावत और शक्तावत एक हो जावें। इस उन्नत दृष्टिकोण से प्रेरित होकर उनमें मित्रता कराने का वह प्रयत्न करने लगा। इस सम्बन्ध में राजा हमीरसिंह को कई बार चित्तौड़ और उदयपुर जाना पड़ा था।[1]

मरहठों के सेना नायक असावधान नहीं थे। उन्हें मेवाड़ में जो कुछ घटित हो रहा था, उसकी सूचनाएं मिल रही थीं। स्वयम् माधवराव सिंधिया लालसोट में था। और अपनी सैनिक प्रबलता का प्रदर्शन कर राजस्थान के नरेशों से राजनीतिक दांव पेंच खेल रहा था। चैत्र बदी १३ वि० सं० १८४२ को शाहपुरा से मोहनराम द्वारा बनेड़ा के भंडारी भोपतराम को लिखे पत्र से ज्ञात होता है कि उस समय माधवराव सिंधिया लालसोट में था और जयपुर नरेश की ओर से आये मुत्सद्दी उससे बातचीत कर रहे थे। बातचीत किसी एक निर्णय पर नहीं पहुंच पा रही थी। रावत प्रतापसिंह और मरहठों की सेनाओं में डिग्गी में युद्ध हो रहा था। युद्ध का सामान किशनगढ़ से जा रहा था। आगे पत्र में लिखा है कि "जोधपुर से चार लाख रुपये ठहरे हैं। सिंधिया ने जोधपुर वालों से कहा कि 'तुम जयपुर के साथी हो' तब जोधपुर के वकील ने कहा कि "जयपुर से भी रुपये लो तो हम उनके साथ नहीं हैं किन्तु आपने हम लोगों के प्रदेश पर अधिकार करने का विचार किया तो हम और जयपुर एक हैं।" गुसांई उमरावगिरी ने सिंधिया के एक दो थानों पर आक्रमण कर उन्हें जीत लिया है। मेवाड़ की ओर से भी मुन्शी चमनलाल सिंधिया के पास गये हैं।"[2]

राजनीतिक परिवर्तनों के साथ जब प्रमुख राज्य की राज्य व्यवस्था असंतुलित हो उठती है, तब उसके अधीनस्थ सामन्तों को बहुत सतर्कता पूर्वक अपने राज्यों की रक्षा करनी पड़ती है। मेवाड़ में भी यही हो रहा था। राजनीतिक वैमनस्य के कारण पुरानी रीति नीति को विस्मृत कर नये आदेश प्रचारित कर दिये जाते थे। राजा हमीरसिंह के साथ भी यही हुवा। राज्य बनेड़ा से "नुता" (एक कर) के रुपये वसूल करने के लिये उदयपुर से किसी व्यक्ति को भेजा गया। यह बनेड़ा राज्य की चली आ रही परम्परा के विरुद्ध था। राजा हमीरसिंह ने इसकी शिकायत रावत भीमसिंह से की तब उसने आश्विन सुदी ३ वि० सं० १८४२ को पंचोली प्रतापजी, पुरोहित दौलतराम, मेहता अगरजी मांडलगढ़ को लिखा कि "राजा हमीरसिंह से नुता के रुपये कभी वसूल नहीं हुवे हैं। यह नई रीति कैसी प्रचलित की गई अतएव जो व्यक्ति वहां भेजा गया है, उसे वापिस बुला लिया जावे और भविष्य में कभी किसी व्यक्ति को इस कार्य के लिये वहां न भेजा जावे।"[3] इस प्रकार एक नई प्रथा का प्रचलन नहीं हो पाया और पुरानी परम्परा कायम रही।

माधवराव सिंधिया राजस्थान के जोधपुर, जयपुर आदि नरेशों से बातचीत कर तथा धन एकत्रित कर मथुरा आया और उसने बादशाह शाहआलम द्वितीय से भेंट की। बादशाह

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह।

जब मथुरा के निकट आया तब सिंधिया मथुरा से पन्द्रह कोस चलकर उसकी अगवानी के लिये सिकुराबाद आया, और उससे भेट कर उसके साथ रामगढ तक गया। इस घटना की सूचना जोधपुर से पचोली गुमानीराम ने राजा हमीरसिंह को मार्गशीर्ष सुदी १० वि० स० १८४२ को दी।

बादशाह शाहआलम द्वितीय के समय मुगल साम्राज्य अत्यन्त निर्बल हो गया था। सिंधिया ने उसकी सहायता कर दिल्ली के सिंहासन की रक्षा की थी। अतएव बादशाह ने पेशवा को "वकील मुतलक" बनाकर सिंधिया को उसका नायब बनाया था। इस प्रकार दिल्ली के राजनीतिक वातावरण पर मरहठों का प्रभाव छा गया। एक समय था जब राजपूतों ने मुगल साम्राज्य की बेल को अपने रक्त से सिंचित कर विकसित और पल्लवित किया था और मुगल साम्राज्य के राजनीतिक रंगमंच पर वह गौरव से आसीन थे। उनका वह सम्बल अब जाता रहा था। मरहठो की शक्ति का आधार उन्होने लिया किन्तु वह आधार उन्हे बहुत महगा पडा। मुगलो का शासन स्थिर और प्रबंध दृढ था। मरहठो का प्रबंध कभी स्थिर नही हो पाया और न प्रबंध मे दृढता आ पाई। वह वीर, साहसी, चपल और युद्ध कुशल होते हुवे भी न तो अपने प्रबंध मे दृढता ला सके, न शासन मे स्थिरता। इसका प्रमुख कारण है उनका कभी समाप्त न होने वाला धन का लोभ और व्यक्तिगत स्वार्थ। यही कारण है कि धीरे धीरे राजपूतो के मन मे उनके प्रति अरुचि उत्पन्न हो गई और वह उन्हे राजस्थान से निकालने पर कटिबद्ध हो गये। सोमचन्द गाधी इसका प्रेरक था।

चूडावतों और शक्तावता मे मित्रता कराने का सोमचन्द का प्रयत्न चल रहा था। महाराज मुहकमसिंह का इसमे सहयोग था। उन्होने रावत भीमसिंह जो शक्तावतो के बढते हुवे प्रभाव से अप्रसन्न होकर उदयपुर से चला गया था उसे बुलवाया। रावत भीमसिंह ने यह सोचकर कि शक्तावत कहीं उसके साथ धोका न करें अपने साथ रावत अर्जुनसिंह, रावत प्रतापसिंह को भी ले गया। उदयपुर पहुचकर वैशाख बदी १० वि० सं० १८४३ को रावत भीमसिंह ने राजा हमीरसिंह को लिखा कि "महाराणा ने मुझे उदयपुर बुलाया सो वैशाख बदी ४ को मैं यहा आया। मेरा मुकाम कृष्ण विलास मे है। राजा मुहकमसिंह रातोरात जाकर कोटे से सेना लेकर यहा वैशाख सुदी ८ को आ गया है। उसका मुकाम अर्जुनबाडी मे है। उसके साथ एक बडी सेना है। संग्रामसिंह को भी बुला लिया है जो आज कल मे मजरा से आजावेगा। इस प्रकार का (राजनीतिक) स्वरूप है जो हितैषी थे उन्हे दूर कर दिया गया है। जो दूर थे, उन्हे पास बुला लिया है जिससे संकट उत्पन्न हो गया है। कठिन परिस्थिति निर्माण हुई है। अतएव आप शीघ्र आवे, अपनी सेना तत्काल भेज देवे। आपका मुझे भरोसा है। स्वामीभक्ति का यह फल मिला है। यह सब देखकर मन मे उदासी छागई है।"

दूसरे दिन फिर रावत अर्जुनसिंह तथा रावत भीमसिंह ने राजा हमीरसिंह को पत्र लिखा "राजा मुहकमसिंह के साथ कोटे की सेना आई है। शाहपुरा से भी दो सौ सैनिक आये हैं। जिसे बुलाना है उसे बुलावें इसका तो सोच नही है किन्तु नाम तो कोटा के सैनिको का

१—बनेडा संग्रह।

है पर वास्तव में है मरहठों की सेना। परदेशियों को राज्य का धन देते हैं। अपनों को पने लगावें तो धन की वृद्धि हो। इसलिये सब सामन्त एकत्रित होकर स्वामी को समझावेंगे कि परदेशी मरहठों का विश्वास न कीजिये। स्वामी ने माना तो ठीक है नहीं तो अपना कर्तव्य निभाकर निर्दोष बन उनसे विदा ले लेंगे। लोग कहते हैं, दरबार तो बुलाते नहीं हैं, रावतजी क्यों बुलाते हैं? सो मैं तो इसलिये बुलाता हूं कि सबका लाभ हो। मैं स्वामी-धर्म का पालन करूंगा तो मेरे बुलाने से ही सब आवेंगे। सभी सामन्तों को मैंने इस प्रकार लिख दिया है, आप कागद देखते ही आ जावें।"[1]

इन पत्रों को पाकर राजा हमीरसिंह ने उदयपुर जाने का निश्चय किया और अपनी सेना तत्काल उदयपुर भेज दी।[2]

राजा मुहकमसिंह के साथ सैनिक जमाव देखकर रावत भीमसिंह के मन में यह संदेह उत्पन्न होना स्वाभाविक था कि "मेरे साथ कहीं धोका तो नहीं होगा? यह सैनिक संग्रह चूंडावतों को नष्ट करने के लिये तो नहीं किया गया है।" इस संशय के उत्पन्न होते ही अपने साथियों सहित वह रातोरात उदयपुर छोड़कर चला गया। यह समाचार जब राजमाता को ज्ञात हुआ तो वह महाराणा पर कोपित हुई और कहा कि "जिन्होंने तेरे पिता के समय राज्य की रक्षा की उन्हीं से तू कपट करता है।"

राजमाता स्वयम् पलाणा ग्राम तक गईं और भीमसिंह आदि को उदयपुर ले आई।[3] राजा हमीरसिंह उदयपुर गये। रावत भीमसिंह से मिले और समझौता होने पर वापिस बनेड़ा आ गये।[4]

चूंडावतों और शक्तावतों का समझौता हो जाने पर सोमचन्द गांधी ने मेवाड़ के बाहर के जयपुर, जोधपुर आदि राजस्थान के नरेशों को संघटित करने का प्रयत्न किया। उसने उन्हें मरहठों के विरुद्ध भड़काया। सभी नरेश महाराणा का साथ देने को सहर्ष तैयार हो गये।

वि० सं० १८४४ मे राजस्थान के नरेशों की सम्मिलित सेना ने लालसोट मे मरहठों को गहरी हार दी। जिससे राजस्थान मे उनका प्रभाव कुछ कम हो गया।[5]

इस अवसर से लाभ उठाने के लिये सोमचन्द तथा उदयपुर के अन्य सामन्तों ने मरहठों पर फिर शीघ्र आक्रमण करने का विचार किया। चूंडावतों को उदयपुर की रक्षा का भार सौंप कर मेहता मालदास की अध्यक्षता में मेवाड़ तथा कोटे की संयुक्त सेना नींबाहेड़ा और जीरण पर अधिकार करती हुई जावद पहुँची। नाना सदाशिव नामक मरहठे सेनापति से कुछ दिन युद्ध करने पर वह स्थान भी राजपूतों के अधिकार मे आ गया। इसके पश्चात् राजपूत सेना चलदू नामक स्थान की ओर रवाना हुई।

मरहठों की इस हार का समाचार जब अहिल्याबाई हुलकर को मिला, तब उसने तुलाजी सिंधिया के तथा मालजी भाई के अधिकार में पांच हजारी सैनिक देकर जावद भेजा। वहां

१—बनेड़ा संग्रह। २—राजा भीमसिंह शाहपुरा को वैशाख सुदी ५ को लिखा पत्र।
३—उदयपुर राज्य का इतिहास। ४—बनेड़ा संग्रह। ५—उदयपुर राज्य का इतिहास।

नाना सदाशिव की सेना भी उनमे आकर मिल गई। मदमोर होती हुई, यह सेना मेवाड की ओर बढी, तब महाराणा ने मेहता मालदास की अध्यक्षता मे सेना भेजी। वि० स० १८६४ के माघ मास मे हडक्या खाल के पास दोना सेनाओं मे युद्ध हुआ। इस युद्ध मे राजपूतों की हार हुई और सेनापति मालदास आदि प्रमुख सामन्त मारे गये। जो थाने मरहठो के अधिकार से निकल गये थे, उन पर फिर मरहठा का अधिकार हो गया।[1]

उदयपुर मे यद्यपि चू डावतो तथा शक्तावतो मे मेल हो गया था किन्तु वह दिखावा मात्र था। दोनो के मन मे एक दूसरे के प्रति विरोधी भाव थे। शक्तावतों की शक्ति बढ रही थी। चू डावतों की परिस्थिति का दिग्दर्शन कौसीथ के पहाडसिंह के पत्र से होता है। यह पत्र वैशाख सुदी ६ वि० सं० १८५ का है। उसमे लिखा है कि "महाराणा तो बुलाते नहीं हैं। रावतजी बुलाते हैं। मैं वैशाख बदी १४ को गया था और अमावस को लौट आया। रावत प्रतापसिंहजी जाने की तैयारी मे है। पुरोहित मनजी आया है। देवगढ से बख्तावरसिंहजी ने भेजा है। बारह वर्ष तक रावत भीमसिंह ने महाराणा की सेवा की फिर अब उन्हे अलग कैसे कर दिया ?"

चू डावतों को यह भलीभाति विदित था कि सोमचन्द का झुकाव शक्तावतों की ओर है और उसका साथी मुहकमसिंह (भीडर का) है। महाराणा का भी झुकाव चू डावतों की अपेक्षा शक्तावतों की ओर है। परिणाम स्वरूप चू डावतों के पक्षपाती सामन्तों पर कभी कभी महाराणा की अकृपा हो जाती थी। यह सर्वविदित था कि राजा हमीरसिंह पर रावत भीमसिंह की कृपा थी। इसी कारण महाराणा उन पर अप्रसन्न हो गये। तब राजा हमीरसिंह ने बनेडा मे सेना एकत्रित करना प्रारंभ कर दिया। आषाढ बदी ६ वि० सं० १८४६ को अपने एक सामन्त को उन्होंने लिखा, "महाराणा मे और हममे तनाव उत्पन्न हो गया है। इसलिये तुम्हारे पास जितनी सेना हो, अधिक से अधिक जितनी ला सको उसे लेकर तत्काल बनेडा आओ।"

किन्तु वह नही चाहते थे कि महाराणा की इस अप्रसन्नता का परिणाम कटु हो। बिना रक्तपात के सम्बन्धो मे फिर मधुरता लाने का वह प्रयत्न करने लगे। उन्होंने झाला जालिमसिंह को महाराणा की अप्रसन्नता दूर करने को लिखा। उसने भाद्रपद सुदी ४ वि० सं० १८४६ को पत्र भेजकर लिखा कि "शीघ्र ही मैं अपना एक कर्मचारी महाराणा की सेवा मे भेज रहा हूँ। वह उनसे निवेदन करके अप्रसन्नता दूर करा देगा।"[2]

यह सत्य है कि रावत भीमसिंह की कृपा राजा हमीरसिंह पर थी किन्तु वह स्वामी भक्त होने से उस कृपा की अपेक्षा महाराणा के हित को अधिक प्रमुखता देते थे। वह महाराणा के अनुगामी थे और किसी के पक्षपाती नही थे। शीघ्र ही महाराणा को इसका विश्वास हो गया और उनकी अप्रसन्नता दूर हो गई।

वि० सं० १८४६ मे उदयपुर के राजनीतिक रंगमंच पर फिर एक पट परिवर्तन हुआ। सोमचन्द गाधी के उदयपुर की राजनीति मे प्रवेश करने के पश्चात् ही शक्तावतों की शक्ति

१—उदयपुर राज्य का इतिहास (श्री ओझा)। २—बनेडा संग्रह।

बढ़ी थी। उनकी शक्ति का मूल वही था। चूंडावत उस मूल को काट देना चाहते थे। कार्तिक सुदी ६ को रावत अर्जुनसिंह (कुरावड़) तथा रावत सरदारसिंह (चावंड) ने कटार भोंक कर सोमचन्द को मार डाला। इस घटना से महाराणा चूंडावतों से बहुत अप्रसन्न हो गये। उन्होंने सोमचन्द के भाई सतीदास को प्रधान बनाया। चूंडावतों ने चित्तौड़ पर अपना अधिकार बनाये रखा।

रावत भीमसिंह जानता था कि झाला जालिमसिंह चूंडावतों का शत्रु है। उसके आन्तरिक विचारो का पता भी रावत भीमसिंह ने लगा लिया था। झाला जालिमसिंह मेवाड़ के शासन सूत्र अपने हाथों में लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता था। सोमचन्द गांधी की मृत्यु के पश्चात् महाराणा चूंडावतों से अप्रसन्न हो गये थे। चित्तौड़ का किला रावत भीमसिंह के अधिकार में था, उसको वहां से निकालकर चित्तौड़ पर अधिकार करने के लिये महाराणा ससैन्य उदयपुर से रवाना हुवे। चित्तौड़ के पास सेती गांव मे महाराणा ने डेरा डाला और रावत भीमसिंह की ओर किला खाली कर देने का आदेश भिजवाया। महाराणा के साथ झाला जालिमसिंह था, इस कारण भीमसिंह ने किला खाली नही किया और युद्ध प्रारम्भ हो गया किन्तु रावत भीमसिंह ने महाराणा की सेवा मे निवेदन करवाया कि "हम तो आपके चरणों के सेवक हैं। झाला जालिमसिंह को मेवाड़ से विदा कर दिया जावेगा तो हम किला खाली करके सेवा मे उपस्थित हो जावेगे।" महाराणा ने उसका कहना मानकर झाला जालिमसिंह को रवाना कर दिया। उसके जाने के पश्चात् रावत भीमसिंह महाराणा की सेवा में उपस्थित हो गया।[१]

रत्नसिंह अभी कुम्भलमेर मे ही था। उसे वहां से निकालने का महाराणा ने विचार किया। उन्होंने अम्बाजी इंगले की अध्यक्षता मे शिवदास गांधी, मेहता अगरचन्द, किशोरदास देपुरा, रावत अर्जुनसिंह को सेना सहित भेजा। समीचा गांव के पास रत्नसिंह के साथी महापुरुषों से युद्ध हुआ। वे हारकर भाग गये। महाराणा की सेना विजयी हुई। रत्नसिंह भाग गया और पौष वदी ७ वि० सं० १८४६ को महाराणा का कुम्भलगढ़ पर अधिकार हो गया।[२]

रत्नसिंह और उसके साथी दो वर्ष तक शान्त रहे। इसके पश्चात् वह फिर गोडवाड़ परगने में उपद्रव मचाने लगे। इसकी सूचना जब महाराणा को मिली तब उन्होने राजा हमीरसिंह को श्रावण वदी १४ वि० सं० १८५१ को सेना सहित शीघ्र उदयपुर आने को लिखा। महाराणा का आदेश पाते ही वह सेना सहित उदयपुर गये और मेवाड़ राज्य की सेना मे सम्मिलित हुवे। यह सेना गोडवाड़ गई और उपद्रव को दबाकर लौट आई।[३]

वि० सं० १८५२ में फिर एकबार गुमान भारती नामक एक महापुरुष ने कुम्भलगढ लेने का प्रयत्न किया। आठ हजार महापुरुषों की सेना लेकर वह कुम्भलगढ की ओर चल पड़ा। महाराणा ने सतीदास गांधी की अध्यक्षता मे मेवाड़ की सेना भेजी।[४] इस सेना के साथ राजा हमीरसिंह ससैन्य गये थे।[५] मेवाड़ की सेना और गुमान भारती की सेना में युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा हमीरसिंह ने अपनी वीरता को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। उन्होंने महापुरुषों

१—उदयपुर राज्य का इतिहास। (श्री ओझा)। २—उ० रा० इ०।
३—बनेड़ा संग्रह। ४—भीमविलास हस्तलिखित। ५—बनेड़ा संग्रह।

के प्रमुख सेनापति गुमान भारती का मस्तक काट डाला तथा उसका खाडा बनेडा ले आये। यह खाडा अभी तक बनेडे मे सुरक्षित है और विजयादशमी के दिन प्रतिवर्ष उसकी पूजा की जाती है।[१]

राजा हमीरसिह की वीरता पर महाराणा बहुत प्रसन्न हुये। आश्विन सुदी ९ वि० सं० १८५२ को महाराणा ने एक गौरव पूर्ण पत्र भेजकर लिखा "आप सेना मे सम्मिलित हुये। यह आप जैसे वीर के लिये योग्य ही है। आप कभी कर्तव्य से विमुख नही हुए। आपकी जितनी प्रशसा की जाय, थोडी है। हमारा आप पर विश्वास है और आप उस विश्वास को निभाते हैं। यह बहुत प्रसन्नता की बात है।"[२]

साह सतीदास गाधी ने भी आश्विन सुदी १० वि० स० १८५२ को पत्र भेजकर उनका गौरव और अभिनन्दन किया।[३]

महाराणा केवल शाब्दिक गौरव करके ही स्तब्ध नही रहे उन्होंने मार्गशीर्ष वदी १ वि० सं० १८५२ को लिखा कि "आपका सूरजमुखी मेरी सवारी मे चलती आई है वह चलती रहेगी। नालकी की आपको स्वीकृति दी जाती है। जब आप जयपुर, जोधपुर आदि नरेशो से भेट करने जावेगे तब आपकी सेना मे नालकी सोने की छडी, चवर, मोरछल साथ चला करेगी। जिसकी स्वीकृति आपको दी जाती है।"

उन दिनो यह गौरव मिलना साधारण बात नही थी। यह गौरव प्रदान कर उन्होंने फिर वैशाख सुदी २ वि० सं० १८५४ को राजा हमीरसिह को नालकी रखने का बहुमान देकर लिखा कि "आपके पूर्वज स्व० राजा भीमसिह ने बादशाह (औरगजेब) से मनसब और लवाजमा पाया। आपने विद्रोहियो का सामना किया, महापुरुष को मारा तथा विजय सम्पादन की, इस वीरश्री पर हम बहुत प्रसन्न हुवे हैं। आपको नालकी रखने का सम्मान प्रदान करते हैं।"[४]

उपरोक्त पत्रो से ज्ञात होता है कि महाराणा बनेडा राज्य के स्वामियो को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखते थे, और उन्हें अपना आत्मीय समझते थे। महाराणा का तीसरा विवाह ईडर के राजा भवानीसिह की पुत्री तथा गम्भीरसिह की बहन के साथ ज्येष्ठ वि० सं० १८५५ मे होना निश्चित् हुआ। उस समय उन्होंने उदयपुर के महलो की रक्षा का भार राजा हमीरसिह को सौपा। वह उदयपुर पहुँच गये। ज्येष्ठ सुदी १० को महाराणा अगवानी को आये और बहुत प्रसन्न हुवे। कहा कि "महल मे रहने वाले मेरे आत्मीयजनों की रक्षा का भार आपको सौंपकर मैं रवाना होता हूं।" राजा हमीरसिह ने इसे सहर्ष स्वीकार किया।[५]

मेवाड के सामन्त तथा महाराणा मरहठो के आतक से त्रसित हो चुके थे। सभी यह चाहते थे कि मरहठे मेवाड को छोडकर चले जावें तो अच्छा हो। इसके लिये प्रचुर मात्रा मे धन देना पडे तो दे दिया जावे। इस दृष्टिकोण से प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। उस समय राजा हमीरसिह ने बीकानेर नरेश सूरतसिह को माघ वि० स० १८५४ मे इसकी सूचना दी कि

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह। ४—बनेडा संग्रह।
५—बनेडा संग्रह राजा हमीरसिह द्वारा कुंवर भीमसिह को लिखा हुवा पत्र ज्येष्ठ वि० सं० १८५५।

"सत्रह लाख रुपये देना ठहरा है। आधे रुपये तो अभी देंगे और आधे रुपये मेवाड़ छोड़ते समय देंगे।"[1] किन्तु मरहटे सहज मे ही मेवाड़ से जाने वाले नही थे। ज्ञात होता है कि मेवाड़ी सामन्तों का यह विचार कार्यान्वित नही हो सका क्योंकि शीघ्र ही मेवाड़ मे मरहठा सेनापति अम्बाजी इंगले तथा लखवादादा शेणवी मे संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

माधवराव सिंधिया ने मेवाड़ का प्रबंध करने के लिये अम्बाजी इंगले को नियुक्त किया था। वह वहां का यथोचित प्रबंध कर स्वयम् तो चला गया और गणेशपन्त को वहां रखा।

माधवराव सिंधिया की मृत्यु पौष सुदी ११ वि० सं १८५० को होने पर दौलतराव राज्य का स्वामी हुआ। उसने अपने राज्य के प्रबंध में अनेक परिवर्तन किये। अम्बाजी इंगले जो अब तक मेवाड़ का सूबेदार था, उसको पूर्वी भारत का सूबेदार बनाया। वह सिंधिया के आदेशानुसार मेवाड़ राज्य के प्रबंध का भार गणेशपंत तथा महाराणा के दो अधिकारी मेहता सवाईसिंह और मेहता शेरसिंह को सौंपकर पूर्वी भारत की ओर चला गया। अधिकार पाते ही गणेशपत तथा उसके साथी अत्याचार करने लगे तथा मेवाड़ को लूटकर अपना घर भरने लगे। इस अत्याचार की आंच सब से अधिक चूंडावतों को लगी। कुरावड़ की जागीर छीन ली गई और सलुम्बर पर तोपों के मोर्चे लगाये गये।[2]

वि० सं० १८५५ में दौलतराव सिंधिया ने मेवाड़ की सूबेदारी पर लखवादादा शेणवी की नियुक्ति की और महाराणा को लिखा कि "अम्बाजी के प्रतिनिधि गणेशपंत को मेवाड़ से निकाल दीजिये।" अम्बाजी इंगले और लखवा दादा में गहरी शत्रुता थी। अम्बाजी ने अपने प्रतिनिधि गणेशपंत को आदेश दिया कि "लखवादादा को मेवाड से निकाल बाहर कर दो।"[3]

इस समय तक मेवाड़ के राजनीतिक प्रबंध मे भी परिवर्तन हो गया था। शक्तावतों की शक्ति कम हो गई थी और चूंडावत फिर शक्तिशाली हो गये थे। मेहता अगरचंद मेवाड़ का प्रधान था और रावत भीमसिंह मुसाहिब के पद पर आसीन था।[4] लखवादादा जब मेवाड़ में आया, तब चूंडावतों ने उसकी सहायता करने का निश्चय किया। गणेशपत और उसके स्वामी अम्बाजी से चूंडावत पहिले से ही अप्रसन्न थे। गणेशपंत ने अम्बाजी का आदेश पाते ही मेवाड़ के सामन्तों से सहायता की मांग की। सामन्तों ने आपस में विचारविमर्श करके गणेशपंत तथा अम्बाजी का अधिकार मेवाड़ से उठा देने का विचार किया किन्तु उन्होंने गणेशपंत के विरुद्ध एकदम कोई कदम नही उठाया। ऊपर से वह उससे मीठी बातें करते रहे और सहायता का आश्वासन देते रहे।

गणेशपंत उनकी बातों में आ गया और लखवादादा की सेना पर उसने आक्रमण कर दिया किन्तु उसे हारकर चित्तौड़ चला जाना पड़ा क्योंकि मेवाड़ के सामन्तों मे से किसी ने उसकी सहायता नही की।[5]

१—बनेड़ा संग्रह-राजा हमीरसिंह को महाराजा सूरतसिंह द्वारा फाल्गुन सुदी ५ वि० सं० १८५४ को लिखे पत्र से।

२—उ० रा० इ०। ३—उ० रा० इ०। ४—उ० रा० इ०। ५—उ० रा० इ०।

प्रश्न यह है कि इस संघर्ष मे राजा हमीरसिंह का रुख किस ओर था ? उन्होंने किस की सहायता की ? बनेडा संग्रह मे माघ वदी १४ वि० सं० १८५५ को अम्बाजी इगले द्वारा राजा हमीरसिंह को लिखा एक पत्र है। उससे ज्ञात होता है कि उन्होंने अम्बाजी के प्रतिनिधि गणेशपत की सहायता की। पत्र का साराश यह है, "आपने लिखा है कि "गणेश नाना का पत्र आते ही हम अपनी सेना लेकर उनकी सहायतार्थ रवाना हुवे।" सो हमे आपका ऐसा ही विश्वास है। हमे यह भी समाचार मिला है कि आप से भी झगडा हुआ। आपने हमारे प्रति यह प्रेम प्रदर्शित किया है सो आप आनन्द मे रहेंगे। हमने यहा से श्री दरबार (महाराणा) के तथा समस्त सरदारों के नाम पत्र लिखे हैं। यह आपको ज्ञात हुआ ही होगा। अब यहा से सेना सहित गुलाबराव कदम तथा बोहरा रामकिशन को भेजा है। वह भी शीघ्र आकर सेना मे सम्मिलित होंगे और सरकारी थानों पर अमल करेंगे और "हराम खोरों" का नाश करेंगे। श्रीमंत महाराज शीघ्र ही हिन्दुस्थान (मेवाड़) मे आवेंगे और आपको भी प्रसन्न करेंगे।"[1]

विचारणीय यह है कि रावत भीमसिंह आदि सामन्त जिनकी कृपा राजा हमीरसिंह पर थी, उसी प्रकार महाराणा जो उनके स्वामी थे, वह सब गणेशपन्त को मेवाड़ से निकालने के पक्ष मे थे। तब राजा हमीरसिंह का उनके विपक्षी का पक्ष लेकर उसकी सहायता करना असम्भव प्रतीत होता है। हो सकता है गणेशपन्त का पत्र सहायता के लिये आया हो, उस समय उन्हे उदयपुर के सामन्तो की तथा महाराणा की विचारधारा का ज्ञान न हो पाया हो। उन्होंने सेना भेज दी हो और इंगले को पत्र लिख दिया हो। विचारधारा का ज्ञान होने पर उन्होंने गणेशपन्त को सहायता देना बन्द कर दिया होगा और अपनी सेना वापिस बुला ली होगी। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि महाराणा ने ज्येष्ठ बदी ११ वि० सं १८५६ को मरहठा सेनापति जगन्नाथराव बहादुर तथा लक्ष्मणराव अनन्त बहादुर को लिखा "राजा हमीरसिंह उदयपुर मे हमारे पास हैं। इनके परगने को रंच मात्र भी हानि न कीजिये। यह मेवाड राज्य के सुपुत्र हैं। किसी के कहने सुनने से इनके परगने को हानि न पहुँचावे।"[2]

अम्बाजी इगले की सेना मे तथा लखबादादा के सैनिकों मे वि० सं० १८५५ तथा वि० सं० १८५६ मे अनेक मुठभेडे हुईं और अन्त मे इगले को मेवाड से अपना सम्बध विच्छेद कर लेना पड़ा। मेवाड की सूबेदारी लखबादादा की ओर ही रही।[3]

पौष वि० सं १८५६ मे माडलगढ मे मेहता अगरचद की मृत्यु हो गई। महाराणा ने उसके ज्येष्ठ पुत्र देवीचन्द को अपना मंत्री बनाया और माडलगढ का किला उसके अधिकार मे दे दिया। यह प्रबंध भी अधिक दिनो तक नहीं चला। कुछ समय तक मौजीराम को प्रधान बनाया गया। उसने मरहठों के आतक तथा अत्याचार को देख महाराणा से निवेदन किया कि "मेवाड की सेना मे यूरोपियन ढंग की शिक्षा पाये हुवे सैनिक भरती किये जावें तथा उनका व्यय सामन्तो से वसूल किया जावे। इससे मेवाड के सामन्त उससे अप्रसन्न हो गये। मौजीराम पदच्युत कर दिया गया और फिर सतीदास गाधी को प्रधान बनाया गया।[4]

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेडा सग्रह। ३—उ० रा० इ०। ४—उ० रा० इ०।

मरहठों के आक्रमण, तज्जनित अराजकता और बनेड़ा राज्य से सम्बन्धः—मुगल साम्राज्य के समय में राजस्थान के नरेशों की शक्ति साम्राज्य की शक्ति से बंधी हुई थी। साम्राज्य का पतन होते ही वह टूटी हुई माला के गुरियों की भांति इतस्ततः बिखर गई। दक्षिण में एक नई शक्ति का उदय हुआ। महान् शिवाजी ने स्वराज्य प्राप्ति का पुनीत सन्देश देकर जनता मे अपूर्व चेतना निर्माण की किन्तु आगे चलकर उनके अनुयायियो ने स्वराज्य के पुनीत लक्ष्य को भुला दिया और व्यक्तिगत स्वार्थ तथा धन लिप्सा में लिप्त हो गये। अपनी सैनिक प्रबलता के बलपर राजस्थान में उन्होंने जो धमाचौकड़ी मचाई उसने अराजकता को जन्म दिया। जिससे राजस्थानी जनता में प्रेम और आत्मीयता के स्थान पर भय और आतंक तथा वहां के नरेशों के मन मे श्रद्धा और भक्ति के स्थान पर अश्रद्धा और अरुचि उत्पन्न हो गई।

राजस्थान में भी उन दिनों कोई ऐसा नरेश अथवा जन प्रतिनिधि नही था, जो उस बिखरी हुई शक्ति को संघटित कर एक सूत्र मे पिरोने का प्रयत्न करता। सभी नरेश, जागीरदार, और भौमिये छोटी छोटी बातों को लेकर आपस में लड़ते और एक दूसरे का प्रदेश लूटकर वीरान कर देते। राजस्थानी जनता को उन दिनों महान् सकटों का सामना करना पड़ा। राजस्थान के लिये वह समय बड़ा ही दुःखपूर्ण तथा दुर्भाग्यपूर्ण था। राजस्थान के भाग्य विधाता नरेशों के आपसी वैमनस्य ने मरहठो के आक्रमणों से उत्पन्न अराजकता को बल दिया। उसी वैमनस्य ने मरहठों की सैनिक शक्ति को बारबार राजस्थान मे बुलाया। मरहठा सेनानायक यहां आते, सहायता के नाम पर असीम धन लेते, अपना प्रतिनिधि यहां रखते और लौट जाते। फिर वह प्रतिनिधि भी अपने स्वामी की भांति धन लूटने मे कोई कोर कसर बाकी नही छोड़ता। बनेडा के ऐतिहासिक संग्रह में ऐसे कितने ही पत्र है, जो उपरोक्त वर्णित स्थिति को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करते हैं। उनमें से कुछ पत्रों के उद्धरण हम नीचे दे रहे हैं।

फाल्गुन वदी ८ वि० सं० १८२७ को शिवसिंह रूपाहेली ने राजा हमीरसिह को लिखा, "आपने (राजा हमीरसिह ने) लिखा है कि राणाजी भीडर मे युद्ध कर रहे है। कानोड़, का झगड़ा, रावत अर्जुनसिह का पंडित गोविन्दराव के पास जाना, चीलूजी के समाचार, धुर और मांडल के झगड़े, सालिमपुर का झगडा आदि सारे समाचार मैंने पढ़े। इस समय कोई कहने सुनने वाला नहीं है। सो झगड़े तो होंगे ही। जिसने थाने स्थापित किये वह (विपक्षी) से मिल गया।"[1]

चीलूजी कदम ने ठाकुर सूरतसिह महुवा के बहकाने से बनेड़े के ग्रामों को वीरान कर दिया। इसकी शिकायत राजा हमीरसिह ने सूबेदार गोविन्दराव को की। उसके उत्तर मे सूबेदार ने माघ वदी ११ वि० सं० १८२७ को जो उत्तर दिया है वह मरहठों की राजनीतिक मनोवृत्ति का ज्वलंत उदाहरण है। उसने लिखा, "आपकी और हमारी मित्रता किसी से छिपी नही है। चीलूजी ने जाने अनजाने किन्ही गांवों को उजाड़ा हो तो हम उन्हें यहां से लिख रहे

१—बनेड़ा संग्रह।

हैं। आप अपनी सेना चीलूजी के पास भेज देवे देरी न करे।"[1] न तो मरहठा सूबेदार ने खेद प्रदर्शन किया। न चीलूजी के उक्त कार्य की निन्दा की, अपितु एक प्रकार मे चीलूजी के कार्य का समर्थन ही किया है।

मरहठों की सेना के आगमन का समाचार सुनकर तत्कालीन राजाओं के हृदयो मे भय का कितना सचार हो जाता था, वे क्या सोचते थे। उस मन स्थिति का दिग्दर्शन कार्तिक सुदी १४ वि० स० १८३० को राजा रणसिंह शाहपुरा द्वारा राजा हमीरसिंह को लिखे एक पत्र से होता है, वह लिखता है "(मरहठो की) सेना के इस ओर आने के समाचार प्राप्त हुवे हैं। ऐसा आपने लिखा सो ठीक है। आपकी सम्मति हो तो नगर और परगने के ग्रामों को वीरान करके कही दूर निकल जावे, किन्तु ऐसा करने पर भी उनसे छुटकारा मिलना नही है। इसलिये सारी सेना एकत्रित करके किले मे बैठना ही उचित है। जब वह निकट आवेंगे तब उन्हे समझावेगे। धन आदि देकर उन्हे टालेंगे फिर भी वह नही मानेंगे तो जैसा समय पर सूझेगा वह करेंगे। आप सैनिक एकत्रित कर मजबूती से दुर्ग मे बैठिए।'[2]

इसी प्रकार दूसरा एक पत्र चैत्र सुदी ७ वि० स० १८३१ को ठाकुर अक्षयसिंह बदनौर ने राजा हमीरसिंह को लिखा है, "बहिरजी ताकपीर ने राजनगर के किले पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया है अभी उसका मुकाम राजनगर मे ही है। आपकी और उसकी मित्रता है। आप तलाश करके लिखे कि उसका आगे किधर जाने का विचार है।"[3]

बहिरजी ताकपीर की अध्यक्षता मे सिंधिया की सेना वि० स० १८३१ मे मेवाड के ग्रामों को लूटती हुई चित्तौड तक गई थी। वहा महाराणा की सेना से युद्ध हुआ। जिसमे वह पराजित हुवा था। वैशाख सुदी १ वि० स० १८३१ को वह बनेड़ा भी आया था। ठाकुर अक्षयसिह बदनौर ने अपने उपरोक्त पत्र मे उसे राजा हमीरसिह का मित्र कहा है किन्तु बनेडा आने पर उसने मित्रता के चोले को उतारकर रख दिया और बनेडा नगर के निवासियों से तथा ग्रामो की प्रजा से ३२०१ रुपये वसूल करके चला गया।[4]

इससे पूर्व बहिरजी ताकपीर के स्वामी माधवराव सिंधिया ने राजा हमीरसिह से माघ सुदी पूर्णिमा वि० स० १८३० को ११२१७ रुपये वसूल किये थे।

मरहठों के अनिश्चित व्यवहार के कारण मेवाड के सामन्तों को उनका विश्वास नही रहा था। आश्विन वदी १० वि० स० १८३३ को रावत भीमसिंह ने राजा हमीरसिंह को लिखा कि "(मरहठों की) सेना आने का समाचार पढा, आप अपना प्रबध करके गढ के भीतर बैठें किसी का विश्वास न करे।"[5]

राजा भीमसिंह शाहपुरा ने भी आश्विन वदी ११ वि० स० १८३३ को लिखा "आप (हमीरसिंह) ने लिखा है कि मरहठो की सेना आकर तंग करती है। इसलिये दो सौ बन्दूकें भेज दीजिए। सो तो ठीक है किन्तु अभी तो कोई बनेडे पर आक्रमण करता नही है और करेगा तो बनेडा और शाहपुरा कोई दो नहीं हैं। उस समय दो सौ के बजाय चार सौ भेजेंगे। इसमे

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह।
४—बनेड़ा संग्रह। ५—बनेड़ा संग्रह।

अन्तर नहीं पड़ेगा। ग्रामों को वीरान करके मजबूती से किले मे बैठिये। दुर्ग का प्रबंध दृढ़ता पूर्वक कीजिये।"[1]

मरहठा सेनानायक मेवाड़ की राजनीति में भी हस्तक्षेप करते थे। मेवाड़ के सामन्तों को महाराणा के विरुद्ध भड़का कर उनमें वैमनस्य उत्पन्न कर देते थे। शाहपुरा राज्य मेवाड़ के अन्तर्गत था। मरहठा सेनानायक ने वहां के राजा को बहकाया कि मेवाड़ की आधीनता छोड़ दो। हम तुम्हें स्वतन्त्र कर देंगे। वह उनके बहकावे मे आगया और मेवाड़ को छोड़कर स्वतन्त्र हो गया। इसी प्रकार का प्रयत्न मरहठा सेनानायकों ने बनेड़ा राज्य के साथ भी किया। इस सम्बन्ध मे मार्गशीर्ष वदी २ वि० सं० १८३३ को रावत भीमसिंह ने राजा हमीरसिंह को लिखा कि "मरहठे ऐसा कहते है कि बनेड़ा को अलग काट दो उसके साथ (स्वतन्त्र) अलग व्यवहार करेंगे। मैंने उन्हें उत्तर दिया कि वह तो सदा से महाराणा के सम्मिलित रहे है तो उन्हे अलग कैसे करें। सो उस पर वह झगड़ा करते है। आपकी इच्छा यदि अलग होने की हो तो यहां से साह नन्दलाल को लिख देंगे कि वह बनेड़ा को अलग काट देवे, किन्तु मैं तो आपके लाभ के लिये कहता हूं।"[2]

दूरदर्शी तथा स्वामीभक्त राजा हमीरसिंह ने मेवाड़ के आधीन रहना ही उचित समझा और वह उसी के अन्तर्गत रहे। इतना ही नहीं वह पौष वि० सं० १८३३ में चित्तौड़ गये। रावत भीमसिंह से मिले और अपना निश्चय उन्हें सुनाया। रावत भीमसिंह बहुत प्रसन्न हुये।[3]

बीकानेर नरेश महाराजा गजसिंह के पुत्र कुंवर सुलतानसिंह की पुत्री से राजा हमीरसिंह का विवाह फाल्गुन वदी ८ वि० स० १८३९ को होना निश्चित हुआ था। वरात बीकानेर जाने के पश्चात् बनेड़ा दुर्ग की सुरक्षा का प्रबंध करना अनिवार्य था। क्योंकि मरहठो की सेना मेवाड़ के कई स्थानों पर पड़ी थी। उन दिनों बनेड़ा के आधीनस्थ सामन्त (भौमिये) विद्रोह कर रहे थे। ऐसे समय दुर्ग को असुरक्षित रखना उचित नही था। स्व० राजा सरदारसिंह के समय मे ऐसे ही अवसर का लाभ उठाकर बनेड़ा के एक जोवा सामन्त की सहायता से तत्कालीन शाहपुरा राज्य के राजा ने बनेड़ा दुर्ग पर अधिकार कर लिया था। इन समस्त बातों पर विचार कर राजा हमीरसिंह ने बनेड़ा दुर्ग का सुदृढ़ प्रबंध करके विवाह के लिये बीकानेर जाना उपयुक्त समझा। उन्होंने अपने अनेक मित्र राजाओं को तथा सम्बन्धी राजाओं को सैनिक तथा बन्दूकें भेजने को लिखा। उनमे से केवल दो पत्र तत्कालीन परिस्थिति का दिग्दर्शन कराने के हेतु हम प्रस्तुत करेंगे:—

१—यह पत्र माघ वदी ७ वि० सं० १८३९ का है, इसमें लिखा है, "मेरा विवाह बीकानेर होना निश्चित हुवा है। फाल्गुन मे होगा। वरात जाने पर ठिकाने की ओर ध्यान रखें। विशेष परिस्थिति निर्माण होने पर सुरक्षा का उचित प्रबन्ध करें और बन्दूकों वाले सौ विश्वास-पात्र सैनिक तथा पचीस घुड़सवार भेजें।"

२—अपनी शाहपुरा वाली मौसी स्वरूप कुंवर को लिखा कि "मैंने काकाजी को लिखा है, वह बरात बीकानेर जाने के पश्चात् बनेड़ा राज्य की रक्षा करेंगे। उनकी सहायता से ही

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह।

विवाह् की शोभा होगी। सौ बंदूको वाले सैनिक दुर्ग बनेडा की रक्षा करने के लिये तथा पचीस घुडसवार बरात मे साथ ले जाने के लिए भेजने की व्यवस्था करे।

बनेडा के आधीनस्थ अपने विश्वास पात्र निभेडा, मायल, दुदना आदि के सामन्तों को भी अधिकाधिक सैनिक शीघ्र भेजने को उन्होंने लिखा।[1]

वि० सं० १८५५ मे जब अलीबहादुर तथा अम्बाजी इगले का मुकाम मेवाड मे था, तब बराड आदि के नाम से उन्होंने मेवाड के सामन्तों से रुपया वसूली का कार्य प्रारम्भ कर दिया। राजा हमीरसिंह से भी रुपयों की माग की गई। उन्होंने रावत भीमसिंह को लिखा तब उसने सेना शिविर से अपने कर्मचारी कोठारी सीताराम तथा पंचोली बलीभद्र को लिखा कि "राजा हमीरसिंह को पहले से ही चौथ बिराड नही लगती है। यह महाराणा की सेवा करते हैं। बादशाही परगने हैं। अलीबहादुर बनेडे परगने मे है। उसको तथा अम्बाजी इगले को समझा देवे।" इतना सब कुछ होते हुए भी मरहठों को रुपये देने ही पडते थे। वि० स० १८५९ मे झाला जालिमसिंह के द्वारा तीस हजार रुपये राजा हमीरसिंह ने मरहठो को दिये थे। जिसमे से पन्द्रह हजार तो झाला जालिमसिंह ने बनेडा के सामन्तो से वसूल किये थे और पन्द्रह हजार राजा हमीरसिंह से लिये थे।[2]

श्रावण सुदी ३ वि० स० १८६० को उन्होंने अम्बाजी इगले को इक्कीस हजार रुपये दिये थे।

राजा हमीरसिंह ने अपने राज्यकाल मे चालीस हजार रुपये और एक हाथी तुकोजीराव हुलकर को तथा २६,०००० रुपये महादजी सिंधिया को तथा उसके सेनापतियों को दिये।[3]

उपरोक्त उद्धरणों से मरहठो के व्यवहार की तथा तज्जनित अराजकता की कल्पना हो सकेगी। राजा हमीरसिंह को मरहठों की शक्ति का तथा उनके व्यवहार का ज्ञान था। उन्होंने उनसे अपने सम्बन्ध मधुर बनाये रखे। उनके स्नेह भरे व्यवहार का मरहठा सेना नायको पर प्रभाव पडे बिना नही रहा। कई बार अनेक सेना-नायको ने पत्र लिखकर विश्वास दिलाया कि वह मरहठो की ओर से निश्चिन्त रहे और उनका विश्वास करे। राजा हमीरसिंह कभी स्नेह से, कभी धन से मरहठा सेना नायको को प्रसन्न करते रहते थे। कई बार मरहठा सेनापतियों को सिरोपाव दिये और उनका सत्कार भी किया।

भौमियों का विद्रोह और उनका प्रबन्ध—उस अराजकता के समय मे छोटे छोटे जागीरदार तथा भौमियो के मन मे स्वतन्त्र होने की भावना ने जन्म लिया हो तो कोई आश्चर्य नही। चिन्तनीय बात यह भी है कि मरहठे सेनानायकों को धन देने का अवसर आता, तब महाराणा अपने आधीनस्थ सामन्तों से धन वसूल करते। वह सामन्त अपने भौमियों पर उसका भार डाल देते। वर्ष मे ऐसा अवसर एकाध बार आता हो सो बात भी नहीं थी। वर्ष मे ऐसे अवसर कई बार आ जाते। तब भौमिये त्रसित होकर स्वतन्त्र होने की बात सोचते हों तो यह स्वाभाविक है। कुछ भी कारण क्यों न रहा हो, तत्कालीन प्रश्न प्रमाणित करते हैं

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह झाला जालिमसिंह के पुत्र माधवसिंह द्वारा राजा हमीरसिंह को चैत्र सुदी १० वि० सं० १८५९ को लिखा पत्र। ३—बनेडा संग्रह।

संतति:—चौहानजी उदयकुंवरी के गर्भ से माघ सुदी १० शनिवार वि० सं० १८३७ को राजकुमार भीमसिंह का जन्म हुआ। उसके पश्चात् पुत्री चन्द्रकुमारी हुई। इनका विवाह शिवपुर बड़ौदा हुआ था।

जोधपुरी कुंवरीबाई की कोख से कार्तिक बदी ७ वि० सं० १८४१ को राजकुमार मानसिंह का तथा वि० सं० १८४९ मे राजकुमार जगतसिंह का जन्म हुआ।

राणी बीकानेरी के गर्भ से राजकुमारी फतेहकुंवर का जन्म हुआ।

धार्मिक आस्था:—तीर्थयात्रा—राजा हमीरसिंह के समय मे राजस्थान में मरहठों की सेनायें स्थान स्थान पर पड़ाव डाले पड़ी थीं। भौमिये उपद्रव मचा रहे थे। ऐसे समय में अपना राज्य छोड़कर कोई भी राजा दूर जाना उचित नही समझता था। उसे यह भय रहता था कि उसकी अनुपस्थिति में उसके राज्य पर कोई आक्रमण करके अधिकार न कर ले। फिर भी राजा हमीरसिंह अपने राज्य का सुदृढ प्रबन्ध करके चैत्र सुदी ७ वि० सं० १८५१ को तीर्थ यात्रा के लिये रवाना हुवे। वह पिपलाज, टोंक, पिपलूद, नवाई, गाडरवाला, तुग, पलास, मानपुरा, नंदोई, भरतपुर होते हुवे मथुरा गये। वहां उन्होंने अपना उपनयन संस्कार कराया तथा यमुना स्नान किया। गोकुलजी गये। हाथरस, कासगंज, आकसोली होते हुए पंच गंगा को गये। वैशाख सुदी १५ को वापिस बनेड़ा आये।[1]

दान:—राजा हमीरसिंह ने अनेक ब्राह्मणों को भूमि दान दी थी। किन्तु जितने दान-पत्र मिले उनका विवरण निम्न प्रकार है:—

१) पुरोहित किशनराम, उदयराम को सूर्य ग्रहण के अवसर पर १४ बीघा भूमि दान दी।

२) देराश्री नानजी को पौष वदी ९ वि० सं० १८२५ को १५ बीघा भूमिदान दी।

३) शम्भुसुत देवकिशन को कस्बा राजपुर में श्रावण वदी ११ वि० सं० १८३६ को आठ बीघा तथा चैत्र वदी अमावस वि० सं० १८३६ को सौलह बीघा धरती दान दी।

उन्होंने निम्नांकित व्यक्तियों को भूमि और ग्राम जागीर में दिये:—

१) वि० सं० १८२९ में राणावत स्वरूपसिंह, राणावत लालसिंह तथा भांडावत जुहारसिंह को भूमि जागीर मे दी।

२) वि० सं० १८३२ में ग्राम कमालपुरा, पठाण हैदालखां और मूसेखां को जागीर में दिया।

३) वि० सं० १८३२ में अपने भाई आनन्दसिंह को ग्राम किशनपुरा जागीर में दिया।

४) कुंवर मानसिंह को ग्राम कजलोदिया तथा कुंवर जगतसिंह को गणेशपुरा ग्राम जागीर में दिये।

१—बनेड़ा संग्रह।

महाराणा की ओर से मिले जागीरी ग्राम'—महाराणा हमीरसिंह ने माघ बदी ९ वि० स० १८३० को परगना पुर के ग्राम अमरगढ तथा बालेसरा राजा हमीरसिंह को जागीर मे प्रदान किये।

महाराणा भीमसिंह ने माघ बदी १४ वि० स० १८४१ को परगना माडलगढ के ग्राम हलेड, लसाडी, लागरा की रूपाहेली, मेजा जागीर मे दिये, उसके पश्चात् श्रावण बदी ३ वि० सं० १८५८ को ग्राम खारडा जागीर मे दिया।

उन दिनों महाराणा की ओर से मिले जागीरी ग्रामो की आय के बदले महाराणा की नौकरी करनी पडती थी। राजा हमीरसिंह के समय यह प्रथा थी कि आवश्यकता पडने पर जब महाराणा बुलाते, तब वह वहा जाते और उनके आदेशो का पालन करते। नौकरी का बधन नही था। जागीर मे मिले उपरोक्त ग्रामो को स्वीकार करने का अर्थ था, महाराणा की नौकरी स्वीकार करना अतएव राजा हमीरसिंह ने इसे उचित नही समझा और उपरोक्त ग्रामो पर अपना आधिपत्य प्रस्थापित नही किया।[1]

साहित्य प्रेम—राजा हमीरसिंह कवि थे। उनकी लिखी कविताओ का कोई हस्त-लिखित सग्रह हमे नही मिला। रामस्नेही पन्थ के सस्थापक महाराज रामचरणजी बनेडा आये थे। उनका तप और तेज देखकर राजा, प्रजा, राज कर्मचारी सभी बहुत प्रभावित हुवे थे। श्रद्धा और भक्ति का स्रोत उमड पडा था। श्रद्धा और भक्ति के समर्थ प्रभाव से विमोहित होकर जो "वदना" गीत राजा हमीरसिंह के हृदय से प्रस्फुटित हुवा, वह हम नीचे दे रहे हैं। यह गीत उनकी काव्यशक्ति का परिचायक है—

भरम तिमिर भाजबे को, भानु सो प्रताप आप।
कुबुद्धि गति भजन को, भृकुटि सुधारी है॥ १॥
धर्म रीति पेखिबे कुं, निर्मल हैं दोऊ नैन।
ज्ञानदीप उदित कु, नासिका समारि है॥ २॥
सुमिरण की सिद्धताई, रसना रसशील महा।
भवसिधु तारिबे को, भुजा दडधारी है॥ ३॥
परस कलु माहि ऐसे, रामचरण, रामचरण जैसे।
कहत हमीर ताहि, वंदना हमारी है॥ ४॥

शिल्पकला—राजा हमीरसिंह ने अपने राज्यकाल मे निम्नाकित भवन आदि बनवाये—

वि० स० १८२८ मे उन्होंने बनेडा दुर्ग का विशाल प्रवेश द्वार (सिलेगढ) बनवाया और वि० सं० १८३३ तक दुर्ग के छ बुर्ज बनवाये।

वि० सं० १८३० मे शृगार बुर्ज का गोखडा बनवाया।

१—बोहरा संग्रह।

वि० सं० १८३३ में बनेड़ा दुर्ग की रक्षा के लिये रामसरोवर तालाब के पास एक उपदुर्ग बनवाया।

वि० सं० १८४० में ग्राम मूसी में गढ़ बनवाया।

वि० सं० १८४१ में हमीर निवास नामक महल बनवाया।

दुर्ग का द्वितीय खंड इन्हीं के समय मे बनना प्रारम्भ हुवा और नगर कोट बनाने का काम होता रहा।

इनकी पुत्री चन्द्रकुमारी ने, (जिनका विवाह शोपुर बड़ौदा हुवा था) रामसरोवर के बांध पर नगरबाग में अक्षय भवन के सामने चंद्र बावड़ी बनवाई।

वि० सं० १८४३ मे राजा सुरतार्णसिंह की पुत्री नाथकुमारी ने नाथसागर बनवाया।

राजा सुरतार्णसिंह की पुत्री मानकुमारी (जो नागौर के राजा बख्तासिंह को ब्याही गई थी) ने बनेड़ा में मानकुण्ड बनाया। इसका प्रारम्भ श्रावण वदी १ वि० सं० १८४७ को हुवा और प्रतिष्ठा ज्येष्ट वदी ३ वि० सं० १८५९ को हुई।

स्व० राजा सरदारसिंह की रानी अचल कुंवर नरुकी ने वि० सं० १८२६ मे श्री चारभुजाजी का मन्दिर तथा वि० सं० १८३० मे श्री श्यामबिहारीजी का मन्दिर बनवाया।

इस रानी की दासी चोखी ने श्री श्यामविहारीजी के मन्दिर के पास एक बावड़ी बनवाई।

बनेड़ा के सुप्रसिद्ध, भव्य मन्दिर ऋषभदेवजी की प्रतिष्ठा राजा हमीरसिंह के समय में वैशाख सुदी ३ वि० सं० १८४० को हुई।[1]

व्यक्तित्वः—राजा हमीरसिंह ३६ वर्ष राज्य करके ४४ वर्ष की आयु में पौष वदी ३० वि० सं० १८६१ को स्वर्गवासी हुवे। इनके जीवन चरित्र का अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि इनका राज्यकाल विकट और संघर्षमय स्थिति में व्यतीत हुआ। उस नाजुक समय में स्थिर बुद्धि और सन्तुलित राजनीति को अपना कर उन्होंने अपने राज्य की रक्षा की। उदयपुर राज्य के दो महाराणाओं का अल्पायु में स्वर्गवास हो जाने से राज्य व्यवस्था नितान्त अव्यवस्थित हो गई थी। महाराणा अरिसिंह के समय मे रत्नसिंह के विद्रोह तथा मरहठों के आक्रमणों ने उसे और भी दुर्बल बना दिया था। विश्रृंखल अव्यवस्थित राज्य तथा निर्बल स्वामी की छत्र छाया में रहकर उन्होंने अपूर्व स्वामीभक्ति का परिचय दिया। उन्होंने चतुरतापूर्वक मरहठा सेनानायकों से अपने सम्बन्ध मधुर और स्नेह भरे बनाये रखे। विशेषता यह थी कि वह उनके सामने नतमस्तक होकर नही रहे। अपना प्रभाव उनपर प्रस्थापित कर उनमें बंधुत्व की

१—यह मन्दिर जीवराज सिंघी ने वि० सं० १८२८ में बनाना प्रारम्भ किया था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र मोहनराम आदि ने इसे पूर्ण किया। जीवराज सिंघी बनेड़ा का रहने वाला था। राजा सुरताणसिंह की कन्या अजब कुमारी के साथ जब कि उनका विवाह महाराजा ईश्वरीसिंह जयपुर नरेश से हुवा था, उनके साथ भेजा गया था। वहां अपनी कार्य कुशलता से और बुद्धिमता से वह प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त हुवा था। उसने जयपुर में भी मन्दिर बनवाये।

भावना निर्माण की। मरहठो ने उदयपुर राज्य से सम्बन्ध तोडकर स्वतंत्र होने को प्रोत्साहित किया किन्तु उन्होने उदयपुर के अन्तर्गत रहना ही उपयुक्त समझा। यह उनकी स्वाभिमान भरी, स्वामीभक्ति से युक्त कुशल राजनीति का ज्वलंत उदाहरण है। वह वीर, पराक्रमी, राजनीति कुशल और स्वामीभक्त थे।

राजा भीमसिंह (द्वितीय)

जन्मः—राजा भीमसिंह का जन्म कोठारिया के राव फतेहसिंह चौहान की पुत्री उदयकुंवरी की कोख से माघ सुदी १० वि० सं० १८३७ को हुआ।

राज्यारोहण और तलवार बंधाईः—इनके पिता राजा हमीरसिंह के स्वर्गवास के पश्चात् वे पौष बदी ३० वि० सं० १८६१ को गद्दी पर बैठे तब महाराणा भीमसिंह ने शोक प्रदर्शनार्थ पौष सुदी ४ वि० सं० १८६१ को पत्र भेजकर उनको विश्वास दिलाया कि "ईश्वर की शक्ति के सम्मुख किसी का वस नही चलता है। अधिक चिन्ता न करें। उदयपुर राज्य की ओर से बनेड़ा राज्य को पूर्व मे जो वचन दिया गया है। उसे हम निभावेंगे, आप विश्वास रखें।"[1]

अपने स्वामी की ओर से प्रोत्साहन तथा विश्वास पाकर राजा भीमसिंह बहुत प्रसन्न हुये और उन्होने माघ सुदी ५ वि० सं० १८६१ को अपना राज्यारोहण समारम्भ सानन्द सम्पन्न किया।[2]

महाराणा ने वैशाख सुदी ९ वि० सं० १८६३ को तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न करने के लिये अपने पुरोहित रामराय को बनेड़ा भेजा और उसके साथ सुनहरी तलवार, सिरोपाव, आभूपण, मोतियों की कंठी, घोड़ा तथा हाथी उपहार मे भेजे।[3]

राजकार्य का प्रारम्भः—इनके राज्यारोहण के समय दिल्ली मे वादशाह शाहआलम दूसरा था। उसकी मृत्यु वि० सं० १८६३ में होने पर बादशाह अकवर (दूसरा) दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। यह वादशाह मुगल साम्राज्य का अन्तिम बादशाह था।

पूना मे मरहठा शक्ति का सूत्रधार पेशवा बाजीराव द्वितीय था। यह भी मरहठा राज्य का अन्तिम पेशवा था।

यहां यह लिखना आवश्यक है कि राजस्थान में उन दिनों एक नवीन आतंककारी शक्ति का उदय हुआ, वह है पिंडारी तथा उनका प्रमुख अमीरखां। राजस्थान की अराजक परिस्थिति से लाभ उठाकर अमीरखां ने जो आतक निर्माण किया, जो अत्याचार किये, वह अकथनीय हैं। युद्ध का क्रीड़ास्थल बने राजस्थान की पवित्र भूमि और भी अधिक रक्त रंजित हो गई। प्रजा का जीवन अनिश्चित हो गया। खेतीबाड़ी रुक गई। व्यापार ठप्प हो गया। जिधर देखो उधर लूटमार मची हुई थी। शान्ति और सुरक्षा का नाम निशान नही रहा।

उदयपुर मे उस समय महाराणा भीमसिंह थे। वहां के राजनीतिक वातावरण पर दौलतराव सिन्धिया, जसवन्तराव हुलकर तथा पिन्डारियों का प्रमुख अमीरखां का प्रभाव था। वह तीनों मिलकर मेवाड़ राज्य को, वहां के सामन्तों को लूटने मे व्यस्त थे।

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह।

ऐसी संघर्षमयी परिस्थिति में राजा भीमसिंह ने राजकार्य प्रारम्भ किया। उन दिनो उनके भाई जगतसिंह मरहठो की 'ओल' मे थे। राजा हमीरसिंह के समय ३५ हजार रुपये न दे सकने के कारण उनको 'ओल' मे रखा गया था। राजा हमीरसिंह ने मरहठा सेनानायक को लिखा था कि "वह जगतसिंह को छोड देवे। शीघ्र ही रुपयों का प्रबंध करके भेज देवेंगे।" इस पत्र का उत्तर मरहठा सेनानायक ने उनकी मृत्यु के पश्चात् चैत्र सुदी १० वि० स० १८६२ को दिया कि "जगतसिंह को तभी छोडा जा सकता है जब कि हमारे पेंतीस हजार रुपये ब्याज और कसर सहित आ जावेंगे।"[1]

इसके पश्चात् वि० स० १८६३ मे जसवन्तराव को १२४०) रुपये देकर राजा भीमसिंह ने अपने भाई को ओल से मुक्त कराया।[2]

वि० स० १८६२ मे दौलतराव सिंधिया और उसका सेनापति अम्बाजी इगले मेवाड मे आये थे। दौलतराव सिंधिया का मुकाम ज्येष्ठ वदी १ को रायला ग्राम मे था। उन दिनों बनेडा से छोटे राजकुमार को उदयपुर भेजना था, किन्तु दौलतराव सिन्धिया का मुकाम होने से ज्येष्ठ सुदी १० वि० स० १८६२ को बनेडा से साह नन्दराम को लिखा कि "पटेल (दौलतराव) का मुकाम यहा से उठ जाने पर छोटे राजकुमार को उदयपुर भेजेंगे।[3]

इसी रायला मुकाम से अम्बाजी ने बनेडा राज्य का ग्राम छोटी लाम्बिया पर अधिकार कर लिया। इस पर राजा भीमसिंह ने आपत्ति की तो उसने २१८ रुपये लेकर वहा से अपना आधिपत्य हटा लिया और श्रावण वदी १ वि० सं० १८६२ को राजा भीमसिंह को लिखा कि "छोटी लाम्बियां हमने फिर आपको दे दिया है। उस पर अपना अधिकार करले। यदि राठौड टन्टा करेंगे तो उनका प्रबंध हम करेंगे।"[4]

इसी समय वि० सं० १८६२ मे यशवन्तराव हुलकर भी मेवाड मे आया था। वह बनेडा भी आया था। उन दिनों बनेडा के राजकीय बाग मे केवडे के फूल बहुत होते थे। अपने बनेडा मुकाम के दिन उसने उस बाग मे केवडे के फूल मगवाये थे।[5]

उन दिनो भारत मे एक विदेशीय नवीन शक्ति का उदय हो रहा था। वह शक्ति थी, अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सैनिक शक्ति। जिसका विकास शनै शनै भारत मे स्थान, स्थान पर हो रहा था। भारत के कई प्रान्त उसके अधिकार मे आ चुके थे। अंग्रेजो ने मरहठों से उत्तरी भारत तथा नर्मदा के दक्षिण का समस्त प्रदेश छीन लिया था। अंग्रेजो की बढती हुई शक्ति को किस प्रकार रोका जाव ? इस पर विचार विनिमय करने के हेतु यशवन्तराव हुलकर, दौलतराव सिंधिया से मिलने मेवाड में आया था। बदनौर मुकाम पर दोनों मिले। दोनों ने निर्णय किया कि "अपना कुटुम्ब तथा सामान मेवाड के किलो मे रखकर अंग्रेजो से युद्ध करना चाहिये" किन्तु अम्बाजी इगले, जो महाराणा से द्वेष रखता था तथा सिंधिया का सेनापति होने के नाते उसका प्रभाव भी था, उसने सम्मिति दी कि "प्रथम मेवाड के राज्य को आप दोनो आपस मे बाट लेवें।"

१—१ से ४ तक बनेडा संग्रह। ५—बनेडा संग्रह।

रावत संग्रामसिंह शक्तावत और कृष्णदास पंचोली तो हुलकर के पास तथा रावत सरदारसिंह चूंडावत सिंधिया के पास उदयपुर राज्य के प्रतिनिधि थे। शक्तावत तथा चूंडावत दोनों मे शत्रुता होते हुये भी अपने स्वामी को उक्त विपत्ति से बचाने के लिये एक हो गये। उन्होंने उदयपुर की स्थिति का हृदयद्रावक वर्णन कर उन दोनो के हृदयो मे महाराणा के प्रति सहानुभूति निर्माण कर दी, तब सिंधिया और हुलकर ने उन्हे महाराणा की सहायता करने का वचन दिया किन्तु उसी समय उन्हे मालूम हुआ कि महाराणा का एक दूत भैरवबक्ष लार्ड लेक के पास अंग्रेजी सेना को बुलाने गया है। इस पर दोनों महाराणा से अप्रसन्न हो गये। सिंधिया ने महाराणा से सदाशिवराव द्वारा १६ लाख रुपये वसूल किये।[1]

उपरोक्त घटना के सम्बन्ध मे साह वर्धमानने कार्तिक वदी अमावस वि० सं० १८६२ को राजा भीमसिंह को लिखा कि "सदाशिवराव को ओल मे दिया है। रावत सरदारसिंह बातचीत कर रहे हैं। इस समय राज्य में गरीबी है इसलिये आप कुछ रुपये भेज कर सहायता करें।"

इस पत्र से ज्ञात होता है कि उन समय १६ लाख रुपये महाराणा के कोष मे नही होंगे। इन रुपयो के देने की बातचीत सदाशिवराव द्वारा हुई थी अतएव जब तक सम्पूर्ण रुपयों का प्रबंध नही हुआ होगा, तब तक सदाशिवराव रुपयो की एवज मे सिंधिया के पास रहे होंगे।[2]

महाराणा भीमसिंह की पुत्री कृष्णाकुमारी की सगाई जोधपुर नरेश महाराजा भीमसिंह से हुई थी। वि० स० १८६० में उसका स्वर्गवास हो गया तब कृष्णाकुमारी की सगाई जयपुर नरेश महाराजा जगतसिंह से करदी गई। वि० सं० १८६२ मे जब दौलतराव सिंधिया उदयपुर आया तब उसने महाराणा से कहा कि "जयपुर का वकील जो विवाह की बातचीत करने आया है उसे उदयपुर से निकाल दो" दौलतराव सिंधिया और महाराजा जगतसिंह में गहरी शत्रुता थी। महाराणा ने उसका कहना नही माना, तब उसने महाराणा पर आक्रमण कर दिया। युद्ध आरम्भ हो गया। बाध्य होकर महाराणा को उसका कहना मानना पड़ा।

उन्ही दिनों पोकरण (जोधपुर राज्य) के ठाकुर सवाईसिंह की पौत्री का विवाह भी महाराजा जगतसिंह से होने वाला था। यह विवाह जयपुर मे ही करना निश्चित हुवा था। जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह ने ठाकुर सवाईसिंह को लिखा कि "विवाह पोकरण में ही होना चाहिये। जयपुर मे विवाह होने से राठौड़ों की मानहानि होगी। इस पर सवाईसिंह ने कहा कि "मेरा भाई जयपुर मे रहता है और वह गीजगढ़ जयपुर का जागीरदार भी है। इसमे कोई राठौडों की मानहानि नही है। मानहानि तो इसमे है कि महाराणा भीमसिंह की पुत्री कृष्णाकुमारी का सम्बन्ध पहले महाराजा भीमसिंह से हुआ था। अब वह जयपुर महाराजा जगतसिंह से ब्याही जाने वाली है। इसमे वास्तव मे राठोड़ों की मानहानि है।"[3]

इस पर महाराजा मानसिंह चिढ गया और उसने इस सम्बन्ध मे महाराणा को लिखा। महाराणा ने इस पर किन्चित मात्र ध्यान नही दिया और टीका जयपुर भेज दिया। महाराजा

१—उदयपुर राज्य का इतिहास। २—बनेड़ा संग्रह। ३—उदयपुर राज्य का इतिहास।

मानसिंह और भी चिढ गया। माघ वदी अमावस वि० स० १८६२ को वह सेना लेकर मेडते पहुँचा। जसवन्तराव हूलकर को उसने अपनी सहायनार्थ बुलाया। अपने सम्बन्धि तथा मित्रों को सेना भेजने को लिखा। जोधपुर राज्य के मन्त्री सिंघवी इन्द्रराज ने फाल्गुन वदी ७ वि० सं० १८६२ को सेना भेजने के लिये राजा भीमसिंह को लिखा उसने लिखा "महाराजा (मानसिंह) का मुकाम तो अलणियावास है और मेरा मुकाम घनोप है। आप शीघ्र उत्तम सेना अपने भाई भतीजों के साथ भेज देवे।"[1]

बनेडा राज्य और जोधपुर राज्य मे वंशानुगत वैवाहिक सम्बन्ध थे किन्तु उन्हे सैनिक सहायता देना एक प्रकार से महाराणा के विरुद्ध सेना भेजना था। उसी प्रकार इस विवाह मे जयपुर नरेश का भी प्रमुख सम्बन्ध था। जयपुर राज्य मे भी बनेडा राज्य के परम्परागत स्नेह भरे तथा वैवाहिक सम्बन्ध थे। ऐसी स्थिति मे राजा भीमसिंह सेना कैसे भेज सकते थे ? वह तटस्थ रहे।

वैशाख वि० सं० १८६३ मे राजा भीमसिंह उदयपुर गये। वहा की परिस्थिति का अध्ययन कर बनेडा राज्य के कामदार साह नन्दराम ढाबरिया को आषाढ वदी १२ वि० सं० १८६३ को लिखा कि "चूडावत सरदारों को बुलाया है। कुरावड मे रावत जवानसिंह आ गये हैं और भी सामन्त आने वाले हैं। इस समय राज्य (उदयपुर) मे धन की कमी है। लगता है कि अभी जयपुर महाराजा का विवाह कृष्णाकुमारी से नही होगा।"[2]

राजा भीमसिंह उदयपुर से श्रावण बदी ६ वि० सं० १८६३ को बनेडा आ गये।

बनेडा आने पर उन्हें ज्ञात हुवा कि मरहठा सेनानायक बनेडा राज्य मे यत्रतत्र पडाव डाले पडे हैं। जसवन्तराव हुलकर ने रुपयों की माग की है। उन दिनों बनेडा राज्य की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी। राजा भीमसिंह ने उसे लिखा "परगना नितान्त ऊजाड हो गया है। नादारी बहुत है। मैं तो केवल पन्द्रह हजार रुपये दे सकूगा।"

मरहठा सेनानायकों ने जब अधिक तग करना प्रारम्भ किया तब उन्होंने जोधपुर नरेश को इस सम्बन्ध मे प्रबंध करने को लिखा। वहा से माघ सुदी १४ वि० स० १८६४ को कल्याणमल ने लिखा कि "सर्जेराव और हीरासिंह को यहा से लिख दिया गया है। अब वह आपके यहा उपद्रव नही करेंगे।"

इधर मेवाड राज्य से मरहठों के सम्बन्ध विगडते ही जा रहे थे। लकवादादा जो मेवाड का सूबेदार बनाया गया था, उसका प्रभाव कम हो गया था और अम्बाजी इंगले का प्रभाव फिर बढ गया था। वह महाराणा का कट्टर शत्रु था। महाराणा ने पौष वदी १ वि० सं० १८६५ को राजा भीमसिंह को लिखा कि "अम्बाजीराव तथा सर्जेराव का विश्वास लेशमात्र भी न करें। उनका मुकाम कांकरोली मे होगा। आप अपने समस्त सामन्तों तथा सैनिकों सहित यहां आ जावें। यह समय परीक्षा का है। जो सामन्त हमें स्वामी समझकर आवेगा वही हमारा है। ऐसा समझा जावेगा।"[3]

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह।

राजा भीमसिह उदयपुर गये। कुछ दिन रह कर बनेडा लौट आये।

वि० सं० १८६६ मे मेवाड़ मे अमीरखां की हलचलें बढ़ गई थी। अब वह प्रमुख रूप से मेवाड़ की राजनीति मे भाग लेने लगा था, राजस्थान के राजा पारस्परिक झगड़ों में जिस प्रकार अब तक मरहठों की सहायता लेते थे। उसी प्रकार वह अमीरखां की सहायता लेने लगे। जिससे उसका साहस, प्रभाव और बल और भी बढ गया। वैशाख बदी वि० सं० १८६६ मे वह मेवाड़ मे आया। उसके साथ एक बड़ी सेना थी। उसने महाराणा को धमकी दी कि ग्यारह लाख रुपये दीजिये, नहीं तो मैं एकलिंगजी के मन्दिर को तोड दूंगा। रुपये नही दिये जा सके। महाराणा के सेनापतियों ने कुछ समय तक उससे युद्ध किया, किन्तु वह हार गये। अपने दामाद जमशेदखां को मेवाड से रुपये वसूल करने को रखकर अमीरखां चला गया। जमशेदखां ने बहुत ही क्रूरता पूर्वक मेवाड के सामन्तो से रुपये वसूल किये उसने बनेडा राज्य से भी सत्रह हजार रुपये लिये।[1]

मेवाड़ राज्य के इतिहास मे वि० स० १८६७ का वर्ष अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण प्रमाणित हुआ। मरहठा सेनापति बापू सिंधियां तथा जमशेदखा ने मेवाड़ राज्य की आय अपने आधीन कर ली। जिससे स्थिति और भी अधिक बिगड़ गई। इसी वर्ष राजकुमारी कृष्णाकुमारी के विवाह की घटना ने फिर जोर पकड़ा। मरहठों के और अमीरखां के आतंक से महाराणा भीमसिह अत्यन्त धनहीन तथा श्रीहीन हो गये। कोई ऐसा सामन्त अथवा प्रधान सचिव नही था, जो उस विकट परिस्थिति को अपनी बुद्धि और बल से सम्भालता। राजकीय कोष मे धन नहीं रहा था। सैनिकों को समय पर वेतन नही मिलने से वह भी बीच-बीच मे उपद्रव कर देते थे। ऐसे विकट समय मे महाराणा का धीरज जाता रहा। वह किंकर्तव्यविमूढ हो गये। जयपुर नरेश महाराजा जगतसिह तथा जोधपुर नरेश महाराजा मानसिह दोनों मे कृष्णाकुमारी को लेकर विद्वेष बढ गया था। वह एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे थे। इस नाटक का सूत्रधार अमीरखां था। उस हृदयहीन ने महाराजा मानसिंह से कहा कि "जब तक कृष्णा-कुमारी जीवित है। यह झगडा समाप्त नही होगा। उसे मरवा डालना ही उचित है।"

महाराजा मानसिंह ने उचित अनुचित का किंचित मात्र विचार न करके अमीरखां को उक्त कार्य सम्पन्न करने के लिये उदयपुर भेज दिया।[2] अमीरखां जब उदयपुर पहुँचा तब महाराणा ने राजा भीमसिह को उदयपुर बुलवाया किन्तु वह उस समय नही जा सके।[3]

अमीरखा के पास उन दिनों उदयपुर राज्य की ओर से वकील चूंडावत अजीतसिंह रहता था, उसके द्वारा अमीरखां ने महाराणा के पास सन्देश भिजवाया कि "आप कृष्णा-कुमारी का विवाह महाराजा मानसिह के साथ करदे अथवा उसे मरवा डालें। अन्यथा मै आपके राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर दूंगा।"

किंकर्तव्यविमूढ महाराणा स्वयम् कोई सुयोग्य निर्णय नही कर सके। धन का अभाव, सैनिक बल का अभाव, सुयोग्य मित्र और सामन्त का अभाव, इन सभी अभावों ने महाराणा को अमीरखां का मानवता विहीन कहना मानने को बाध्य कर दिया। परिणामस्वरूप

१—बनेडा संग्रह। २—उ० रा० इ०। ३—बनेडा संग्रह।

कृष्णाकुमारी को विष दिया गया। तब उसकी माता महाराणी चावडी हृदय विदारक विलाप करने लगी। सुकुमारी, सयानी राजकुमारी कृष्णाकुमारी ने विहसकर मा से कहा "मा, तुम रोती क्यो हो ? आज का दिन मेरे लिये परम सौभाग्य का दिन है। मै अपने पूज्य पिताश्री की रक्षा के लिये, प्राण प्रिय मातृभूमि मेवाड के लिये जीवनोत्सर्ग कर रही हूँ। मैं राजपूत कन्या हूँ। मेरा कर्तव्य, मेरा गौरव इसी मे है कि माता पिता, स्वदेश और धर्म के लिये अपने प्राणों की बलि दे दू। ऐसे शुभ अवसर पर मेरी मा, तुम रोती हो। मा, मुझे आशीर्वाद दो कि मेरा यह बलिदान प्रिय देश मेवाड की रक्षा करने मे समर्थ हो सके।" इतना कहकर उसने विष का प्याला होठो से लगा लिया और परम पिता परमात्मा का स्मरण कर पी लिया। कृष्णाकुमारी की जीवन लीला समाप्त हो गई। पवित्र मेवाड राज्य के इस करुण तथा अमानुषिक दृश्य पर श्रावण बदी ५ वि० सं १८६७ को सदा के लिये काली यवनिका गिर गई।[1]

महाराणा ने राजा भीमसिंह को अमीरखा के उदयपुर आने के समय बुलाया था। किन्तु वह नही आ पाये। उन्होंने कार्तिक वदी ४ वि० सं० १८६७ को राणी गुलाबकुंवरी उदयपुर को पत्र लिख कर क्षमा याचना की, यह पत्र राजा भीमसिंह की परिस्थिति तथा मनस्थिति पर प्रकाश डालता है। वह लिखते हैं। "नवाब अमीरखा ने आकर बनेडा के खेतों मे मुकाम किया है। उससे लडने का विचार किया किन्तु उसका जोर बहुत है तब उसे धन देने का विचार किया। उसने बहुत रुपये मागे मेरी शक्ति से बाहर थे। परगने मे तो एक पैसा भी वसूल होने का नही था। क्योंकि स्यालू और उन्हालू की दोनो फसले खराब हो गई ह। पहले दौलतराव सिंधिया आये। उनकी सेना ने समस्त ग्रामों की फसले रौंद डाली। अब यह (अमीरखा) आ पडा है। भगवान बचायेगा तभी बचेंगे। वही पार पाडने वाला है। मुझे उदयपुर बुलाया था। सेनाओ के आवागमन तथा उपरोक्त कारणों से मैं नही आ पाया। क्षमा प्रदान करे। राजपुर के सौलह हजार रुपये दिये। और भी चार पाच हजार देने पडेंगे। चौबीस हजार तक सख्या पहुँच जावेगी।"[2]

उपरोक्त क्षमा प्रार्थना करने पर भी मार्गशीर्ष वदी ७ वि० स० १८६७ को महाराणी बडी राठौडजी ने उनको लिखा, "अमीरखा आया तब आपको बुलाया था। आप नही आये। इससे महाराणा आपसे अप्रसन्न हो गये हैं।"

राजा भीमसिंह ने जानबूझकर महाराणा के आदेश की अवहेलना की हो ऐसी बात नही थी। वह चाहकर भी जा नही सकते थे। वह स्वयम् अमीरखा के सैनिक घेरे मे फस गये थे। कैसे जा सकते थे। अपनी वास्तविक परिस्थिति उन्होंने महाराणा के सम्मुख रखी। महाराणा तत्कालीन वातावरण से अवगत थे। राजा भीमसिंह संकट भरी स्थिति के कारण नही आ सके। ऐसा उनको विश्वास हो गया और उन्होंने उनको श्रावण सुदी ९ वि० स० १८६८ को उदयपुर बुलाया। इस प्रकार महाराणा की अप्रसन्नता दूर हो गई।[3]

अमीरखा और उसके दामाद जमशेदखां ने मेवाड मे जो अत्याचार किये, वह अकथनीय हैं। मेवाड मे नियुक्त मरहठों का सेनापति बापूजी सिंधिया भी उनमे मिला हुआ था। उन

१—वीर विनोद, उ० रा० इ०। २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह।

दिनों मरहठों मे अधिक अमीरखां तथा जमशेदखा का आतंक सर्वोपरि था। मेवाड़ के राजाओं से वार-वार रुपये वसूल करने पर भी उनका पेट कभी नही भरा। वह तो अपनी कम्पनी समझकर रुपये वसूल करते थे। बनेड़ा राज्य के प्रति भी उनका यही वरताव रहा। राजा भीमसिंह नितान्त दुखी हो गये। उन्होंने उनके आतंक से छुटकारा पाने के लिये जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह को तथा उनके मन्त्री सिंघवी इन्द्रराज को लिखा कि "वह अमीरखां को समझा देवें।" महाराजा मानसिंह ने भाद्रपद वदी १२ वि सं० १८६९ को राजा भीमसिंह को लिखा कि "नवाव अमीरखां के उपद्रव के सम्बन्ध मे लिखा, सो नवाव अमीरखा को हमने भली भांति समझा दिया है। सो अब वह उपद्रव नहीं करेगा।"[1]

इसी प्रकार सिंघवी इन्द्रराज ने भी भाद्रपद वदी १२ वि० सं० १८६९ को लिखा कि "नवाव को समक्ष मे समझा दिया है, अब वह भविष्य में उपद्रव नही करेगा। आप भी उसका सम्मान करते रहे।"[2]

नवाव जमशेदखां वि० सं० १८७० मे फिर उदयपुर आया और महाराणा से फिर उसने रुपयों की मांग की। कोष मे एक भी पैसा नही था। जमशेदखां ने प्रजा पर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। उसने राजा भीमसिंह को सेना शिविर मे वैशाख वदी ११ वि० सं० १८७० को लिखा कि "उदयपुर दरवार में आइये। एक आवश्यक काम है, किसी प्रकार की शंका न करें। मैं वचन देता हूँ।"[3]

ज्येष्ठ वदी ९ वि० सं० १८७० को महाराणा ने भी पत्र भेजकर राजा भीमसिंह को बुलाया और लिखा कि "पत्र के देखते ही आ जाइये। एक क्षण का भी विलम्ब न करे।"[4]

राजा भीमसिंह उदयपुर आये। उन्होंने देखा राजकोष खाली है। जमशेदखां रुपयो की मांग कर रहा है। जमशेदखां और मरहठे एक होने से उनकी शक्ति प्रवल थी। तब सर्वानुमत से यह निर्णय किया गया कि "मेवाड़ के सामन्तों से रुपये वसूल करके जमशेदखा को दिये जावें। जमशेदखां साथ जावे। इस समय मेवाड़ राज्य के बहुत से सामन्त और उनकी सेना उदयपुर मे एकत्रित हो गई थी। जमशेदखां ने स्वीकार कर लिया। महाराणा स्वयम् अपने दोनों राजकुमारों के साथ सेना लेकर उसके साथ चित्तौड़ तक गये। वहुत सा रुपया वसूल हो चुका था। थोड़ा रुपया वाकी रहा था। इसलिये वडे राजकुमार अमरसिंह को तो चित्तौड़ के प्रवन्ध के लिए वहां रखा। छोटे राजकुमार जवानसिंह को उसके साथ भेजकर स्वयम् उदयपुर लौट आये।[5]

राजा भीमसिंह बनेडा आये तो उन्हें वापूजी सिंधिया का चैत्र सुदी १ वि० स० १८७१ का लिखा पत्र मिला कि "आपकी ओर से भरती के रुपये अभी तक नहीं आये। यह वात आपको शोभा नही देती। इस पत्र के देखते ही रुपये भेज दीजिये वरना सेना भेजी जावेगी।"[6]

यह पत्र इस वात का साक्षी है कि मरहठा सेनानायक किस प्रकार मित्रता को भूलकर रुपया वसूली का तकाजा करते थे और धमकी देते थे। वि० सं० १८७० मे जमशेदखां ने

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह।
४—बनेड़ा संग्रह। ५—वीर-विनोद। ६—बनेड़ा संग्रह।

मेवाड राज्य से और वहा के सामन्तो से रुपये वसूल किये ही थे कि वि० स० १८७१ मे नवाब जमशेदखा, नवाब दिलेरखा, शाहजादा खुदादादख, बापू सिंधिया और हिम्मतबहादुर फिर मेवाड मे आ धमके और महाराणा से रुपये मागने लगे।[1]

इस सम्बन्ध मे आश्विन सुदी १३ वि० स० १८७१ को महाराणी बडी राठौडजी ने उदयपुर मे राजा भीमसिंह को लिखा कि "यहा सेनाओ का दबाव बहुत पड रहा है। हिम्मत बहादुरखा का मुकाम चम्पा बाग मे है। नवाब जमशेदखा भी आ गया है। रिसालदार ने धरना दे रखा है। बडी पोल बन्द है। बहुत उपद्रव हो रहा है। ईश्वर ही रक्षक है।"

इस पत्र की ध्वनि अत्यन्त करुणामयी है। उसमे असहाय मानव का करुण क्रन्दन है। कितनी दयनीय अवस्था हो गई थी, उन दिनो मेवाड राज्य की। सभी उसे लूटना चाहते थे। निगल जाना चाहते थे। जमशेदखा आदि को तो साह सतीदास और जयचन्द ने कुछ रुपया देकर टाला किन्तु रिसालदार के उपद्रव ने उग्ररूप धारण किया। बात यह थी कि उन दिनों महाराणा ने पाच सौ पठाण सिपाही नौकर रखे थे। उन्हे समय पर वेतन नही मिला, तो उन्होंने धरना दिया। तब रावत सरदारसिंह ने उन्हे समझाया कि जब तक रुपया नही दिया जायगा, मै तुम्हारी हवालात मे रहूँगा।" इस धरने के सम्बन्ध मे आश्विन सुदी १५ वि० स० १८७१ को जोरावरसिंह ने उदयपुर मे लिखा कि "श्री दीवाणजी ने ४०० पठाण नौकर रखे थे। जब तक दीवाणजी यहा नही थे, तब तक साह जयचन्द ने उन्हे किसी प्रकार निभाया। महाराणा के आने के पचीस दिन पश्चात् रिसालदार महम्मदखा, मिरजा रुस्तमबेग ने पन्द्रह दिन तो साह जयचन्द के यहा धरना दिया। फिर रुपयो की तडजोड करके दस हजार रुपये उन्हे दिये। नवाब से सलाह हुई। रावत सरदारसिंहजी सखाराम बापू को लाये। सबको लेकर महाराणा के पास गये। नवाब तो सेना मे गया, सखाराम बापू और साहजी, रावतजी की हवेली मे हैं। रावत धीरतसिंह, सरदारसिंह, नवाब सब धर्म कर्म से एक हुवे हैं। उसके पश्चात् रावत सरदारसिंह ने धरना वालो से बातचीत की और शेष रुपयो के लिए उनकी ओल मे रहे।"[2]

अनन्तर पठानो का रुपया साह सतीदास तथा जयचन्द ने दे दिया और रावत सरदारसिंह को अपने संरक्षण मे ले लिया। रावत सरदारसिंह ने पहले साह सतीदास के भाई सोमचन्द को मार डाला था। अतएव साह सतीदास और जयचन्द ने अहाड नदी के किनारे ले जाकर उसे मार डाला और अपने भाई की मृत्यु का बदला लिया।[3]

ज्येष्ठ सुदी १० तथा १२ वि० सं० १८७२ को महाराणा ने राजा भीमसिंह को लिखा कि "हम कोटा जा रहे हैं। आप स्वयम् अपनी सेना तथा सौ बन्दूके लेकर उदयपुर आइये। यहा के महल तथा रनिवास की सुरक्षा का भार आप पर है।"[4]

राजा भीमसिंह उदयपुर पहुचे। उन्हे महलो की रक्षा का भार सौंपकर महाराणा चित्तौड, बेगु, भैसरोड होते हुए कोटा पहुँचे। वहा उन्होंने महाराव उम्मेदसिंह की कन्या के

१—वीर विनोद। २—बनेडा संग्रह। ३—वीर विनोद। ४—बनेडा संग्रह।

साथ अपना तथा महाराव के पुत्र विष्णुसिंह की पुत्री के साथ राजकुमार अमरसिंह का विवाह किया। इन्द्रगढ के जागीरदार संग्रामसिंह की पुत्री के साथ राजकुमार जवानसिंह का विवाह किया और उदयपुर लौट आये।"[1] उनके उदयपुर आते ही राजा भीमसिंह वनेडा आ गये।

मरहठों का उत्थान और पतन तथा एक महान् परिवर्तनः—वि० स० १७६४ मे सम्राट् औरङ्गजेव की मृत्यु होने पर शनै शनैः मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। प्रादेशिक अखण्डता टूट गई और सैनिक प्रवलता नष्ट हो गई। मुगल सम्राट् के शक्तिहीन तथा प्रभावहीन होते ही मरहठो की शक्ति वढ़ी। उन्हें सफलता मिलती गई। उन दिनों मरहठों की सैनिक प्रवलता सर्वश्रेष्ठ थी। समस्त भारत पर उनकी धाक और प्रभाव छा गया था। वास्तव में मरहठों का उत्यान मुगल सम्राट् औरङ्गजेव की धार्मिक कट्टरता तथा दूसरे धर्मो के प्रति असाधारण असहिष्णुता के विरूद्ध प्रतिक्रिया थी।

पुण्यभूमि भारत के धर्म और संस्कृति पर वह एक महान् सकट था। महान् शिवाजी ने सोचा कि जवतक भारत के राज्य सूत्र किसी भारतीय के हाथों में नहीं आवेगे, धर्म और सस्कृति की रक्षा असम्भव है। स्वराज्य की स्थापना परमावश्यक है। वह यह भी जानते थे कि मुगल सम्राट् की सैनिक प्रवलता असीम है और सैनिक प्रवलता का विनाश सैनिक प्रवलता के विना असम्भव है। स्वदेश की स्वतंत्रता की रक्षा भी सैनिक शक्ति पर ही निर्भर करती है। इस सिद्धान्त को सामने रख कर उन्होने सैनिक प्रवलता को प्राथमिकता दी और उन्हें सफलता भी मिली। स्वराज्य की स्थापना हो गई। ज्यों ज्यों स्वराज्य की सीमा बढ़ती गई वह सैनिक शक्ति वढ़ाते रहे। जन जागृति भी इसी तत्व को लेकर पनपी। फलस्वरूप महाराष्ट्र मे जहां स्वराज्य का श्रीगणेश हुआ था, सैनिकीकरण की योजना को प्रोत्साहन मिला। दिन प्रतिदिन सैनिक शक्ति उन्नत होती गई। यही कारण है कि महान् शिवाजी के स्वर्गवास के पश्चात् भी मरहठा सैनिक सम्राट् औरंगजेव से लोहा लेते रहे। भारत की स्वतंत्रता के लिये और धर्म तथा सस्कृति की रक्षा के लिये लड़ते रहे। सम्राट् औरंगजेव की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य का पतन हो जाने पर मरहठों को उसका भय नही रहा। तव सैनिकीकरण की योजना का जो अवश्यंभावी परिणाम होता है वही हुआ। सैनिकीकरण की योजना के मूल में हिंसा के वीज रहते है। जिनमे से युद्ध के अंकुर फूटते है। स्वतंत्रता, स्वदेशरक्षा आदि उत्तम तत्वों की प्राप्ति के लिये जव सैनिकीकरण की योजना कार्यान्वित होती है, तव वह क्रमवद्ध, अनुशासित तथा सन्तुलित रहती है। किन्तु लक्ष्य प्राप्ति के पश्चात् यदि उसे सन्तुलित और अनुशासित नही रखा गया तो उसके परिणाम भयंकर होते हैं। मानवता की रक्षा के वदले वह उसकी भक्षक वन जाती है।

महान् शिवाजी का पुनीत लक्ष्य-स्वराज्य स्थापना का लक्ष्य-पेशवा वाजीराव (प्रथम) तक तो प्रतिपादित तथा कार्यान्वित होता रहा किन्तु उसके पश्चात् उस पवित्र लक्ष्य को धीरे धीरे भुला दिया गया। मरहठा सेनानायक मरहठा राज्य विस्तार के लिये अपनी सैनिक शक्ति का उपयोग करने लगे। जव तक मरहठा सेनानायकों पर पेशवा का अंकुश रहा तव तक तो

१—वीर-विनोद।

वह कुछ सन्तुलित रहे किन्तु पेशवा के मन्त्री नाना फडनवीस की मृत्यु के पश्चात् तो उत्तरीय मरहठा सेनापति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो गये। सिंधिया और हुलकर जो मरहठा राज्य के केवल सेनापति थे, वह स्वयं को "श्री महाराजाधिराज महाराज" लिखने लगे। बनेडा राज्य के इतिहास संग्रह मे उनके अनेक पत्र संग्रहीत हैं। उनके देखने मे ज्ञात होता है कि सिंधिया वि० सं० १८४६ तक तो "श्री सुबेदारजी माधवराव सिन्धे' लिखता रहा किन्तु आषाढ़ बदी ८ वि० स० १८४७ को जो पत्र राजा हमीरसिंह को लिखा है। उसमे उसने 'श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा आलीजाह सूबेदारजी श्री माधौरावजी" इन विरुदावली के साथ स्वयं को सम्बोधित किया है। हुलकर ने अवश्य ही कुछ दिन पश्चात् स्वयं को महाराज घोषित किया। वि० सं० १८४६ मे वह 'राव तुकाजी हुलकर' लिखता था। किन्तु उसके पश्चात् जो उसका पत्र बनेडा संग्रह मे है, वह श्रावण बदी ६ वि० सं० १८६२ का है। उसमे जसवन्तराव हुलकर ने अपने विरुद "श्री महाराजाधिराज राज राजेश्वर सूबेदार जसवन्तराव हुलकर आलीजाह बहादुर" लिखे हैं।

इस प्रकार इन सेनापतियो के राजा बनते ही स्वराज्य और स्वतन्त्रता के पुनीत लक्ष्य को छोड़कर स्वयं का राज्य विकसित करने की तृष्णा तथा अपने राज्य को सम्पन्न करने की धन लिप्सा उनके मन मे उत्पन्न हुई और वह अपने ही देश बन्धुओ पर आक्रमण करने लगे। अपने उद्देश्य सिद्धि के लिए उन्होंने राजस्थान को अपना लक्ष्य बनाया। यहा इन्हे सफलता मिलती चली गई। जो राजस्थान सदा से वीर भूमि रहा है, उसकी शक्ति कहां विलीन हो गई थी। इस पर विचार करना आवश्यक है।

मानव मे दो प्रकार की शक्तियां निवास करती हैं, एक आत्मिकशक्ति दूसरी शारीरिक शक्ति। यह दोनों शक्तिया मिल कर ही मानव के पराक्रम को चिरस्थायी बनाती है। राजस्थान के यह दिन महान् दुर्भाग्य के दिन थे, जिन दिनों एक एक कर यहां के नरेशों ने मुगलो का आधिपत्य स्वीकार कर उनके मनसबदार बन गये। उन्ही दिनों उन्होंने अपनी आत्मिक शक्ति को तिलांजली देदी। अब उनके पास केवल शारीरिक शक्ति शेष थी। उस शक्ति के बल पर उन्होंने दुर्दमनीय युद्ध करके मुगल साम्राज्य की सीमा को काबुल कन्धार तक पहुंचा दिया। किन्तु वह शक्ति मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही नष्ट हो गई। क्योंकि वह मनसबदार थे, और मनसबदारी नियमों के अन्तर्गत जो सेना उनके पास रहती थी उस पर मुगल साम्राज्य का आधिपत्य रहता था। एक प्रकार से उनके अधिकार मे रहने वाली सेना मुगल साम्राज्य की सेना थी। जिसके व्यय के लिये वतन स्वरूप मुगल साम्राज्य की ओर से प्रादेशिक जागीरें मिली हुई थीं। यह जागीरें मनसब के कम, अधिक होने पर घटती बढ़ती रहती थी। जब मुगल साम्राज्य नष्ट हो गया तब मनसबदारी जागीरें नष्ट हो गई और उनके साथ सेना भी विघटित हो गई। सदा युद्धों मे मग्न रहने म किसी राजा को अपने राज्य के विकास की ओर ध्यान देने का अवसर ही नही मिला था। जब मनसबदारी नहीं रही तब वह नियमित रूप से अपने राज्यों मे रहने लगे। उनमे भी राज्यविस्तार की भावना ने जोर पकड़ा और वह इस दिशा मे प्रयत्न करने लगे। छोटी छोटी बातों को लेकर आपस मे झगड़ने लगे। परिणाम स्वरूप वैमनस्य बढने लगा। विजय की अभिलाषा से प्रेरित होकर वह मरहठों की सेना की

सहायता लेने लगे। जिससे राजस्थान में मरहठों की शक्ति बढ़ती ही गई। राजस्थान के नरेशों ने उनको राजस्थान से बाहर निकालने का एक दो बार प्रयत्न भी किया किन्तु मरहठों की नवसैनिक शक्ति से वह लोहा नही ले सके। राजपूतों की इस दुर्बलता से मरहठों के सेनानायकों ने बहुत लाभ उठाया। कभी तो यहां के नरेश उन्हें सहायतार्थ बुलाते, कभी वह स्वयं ही सेना लेकर आजाते और धन वसूल करते। राजस्थान के नरेश आपसी कलह, वैमनस्य और स्वार्थ के कारण उनके विरुद्ध कोई सामूहिक मोर्चा भी नही बना पाये। मरहठों की अराजकता का सम्बल पाकर पिन्डारियो ने भी यहां ताण्डव नृत्य किया और राजस्थान को हृदय खोलकर लूटा। श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने उदयपुर राज्य के इतिहास मे तत्कालीन मेवाड़ की स्थिति के सम्बन्ध मे लिखा है, "मरहठों और पिन्डारियों की लूट खसोट और जोर जुल्म से जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, मेवाड की दशा, जो पहले से ही गिरी हुई थी, इस समय ऐसी बिगड़ गई कि महाराणा का खजाना बिलकुल खाली हो गया। रहे सहे जेवर भी बिक गये। देश ऊजड़ हो गया। इन लुटेरो ने केवल महाराणा की ही नहीं किन्तु मेवाड़ के सरदारों, जागीरदारों और रही सही प्रजा की भी दुर्दशा कर डाली। उनकी लूट खसोट से मेवाड़ बिलकुल कंगाल हो गया। मरहठे जिस इलाके में ठहरते उसे लूटते, तबाह कर देते, जहां जाते वहां गांवों में आग लगा देते तथा लहलहाती हुई खेती नष्ट कर देते थे। जिस स्थान में वे चौबीस घण्टे भी ठहर जाते वह पहले कैसा ही सम्पन्न और सुहावना क्यों न रहा हो, ऊजाड़ हो जाता था। वि० सं० १८६३ में कप्तान टॉड सिंधिया की सेना में रहने वाले राजदूत के साथ पहले पहल मेवाड़ में आया। उस समय मेवाड़ की दशा कुछ अच्छी थी, पर जब वह वि० सं० १८७४ में वहां दुबारा आया तब उसने भीलवाड़े को जो पहले एक सरसब्ज कस्बा था तथा मेवाड़ में व्यापार का केन्द्र था और जहां छः हजार घरों की आबादी थी बिलकुल ऊजाड़ पाया। उस समय की मेवाड़ की आंखों देखी दुर्दशा का वर्णन करते हुवे कर्नल टॉड ने लिखा है, "जहाजपुर होते हुवे कुम्भलमेर जाते हुवे मुझे एक सौ चालीस मील में दो कस्बों के सिवा और कहीं मनुष्य के पैरों के चिन्ह तक दिखाई नही दिये। जगह जगह बबूल के पेड़ खड़े थे। रास्तों पर घास ऊग रही थी। ऊजड़ गांवों मे चीते, सूवर आदि वन्य पशुओं ने अपने रहने के स्थान बना रखे थे। उदयपुर में जहां पहले पचास हजार घर आबाद थे, अब केवल तीन हजार रह गये थे। महाराणा का केवल उदयपुर, चित्तौड़ तथा मांडलगढ़ पर अधिकार रह गया था। सेना रखने के लिये उसके राज्य की आय काफी नही थी। इस राज्य की आर्थिक दशा ऐसी थी कि महाराणा को अपने खर्च के लिये कोटा के जालिमसिंह झाला से रुपये उधार लेने पड़ते थे। रुपये का सात सेर गेहूँ मिलता था, जब कि मेवाड़ के बाहर इक्कीस सेर। महाराणा के साथ पचास हजार सवार भी नहीं रहते थे। कोठारिया का सरदार, जिसकी जागीर की सालाना आमदनी पहले पचास हजार थी अब एक भी घोड़ा नही रख सकता था।"

जैत्रसिंह के समय से लगाकर महाराणा राजसिंह तक (लगभग चार सौ पचास वर्ष) मेवाड़ के राजाओं ने मुसलमानों के साथ अनेकों लड़ाइयां लड़ी। तो भी मेवाड़ का बल क्षीण नही हुआ, परन्तु मरहठों ने साठ वर्षो मे ही ऐसी दुर्दशा कर दी कि अंग्रेजी सरकार से संधि न होती तो सारा मेवाड़ उनके राज्य में मिल जाता।"

उपरोक्त उद्धरण मे अतिशयोक्ति नही है। वास्तव मे मरहठों और पिन्डारियो ने मेवाड की ऐसी ही दुर्दशा कर दी थी। बनेडा राज्य भी इससे अछूना नही रहा। मरहठों और पिन्डारियों ने उसकी शक्ति से अधिक धन वसूल किया। सेना के आवागमन तथा भय से समस्त बनेडा राज्य ही ऊजड हो गया था। ऐसे कितने ही तत्कालीन पत्र हैं, जो उस समय की अवस्था का तंतोतत् वर्णन करते हैं। आश्विन वदी २ वि० स० १८६७ का एक पत्र जो राजा भीमसिंह ने सेठ बालाराम को लिखा है वस्तुत करुणाजनक है। इन पत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बनेडा राज्य के आर्थिक सकट का कारण मरहठों और पिन्डारियों की लूट ही है।

राजस्थान मे ही नही, समस्त भारत मे इसी प्रकार अराजकता का साम्राज्य था। पारस्परिक मनोमालिन्य से, आपसी वैमनस्य से तथा तज्जनित युद्ध से समस्त भारत आक्रान्त हो गया था। इसके मूल कारणो पर जब हम विचार करते हैं तो उसका एक ही प्रमुख कारण ज्ञात होता है। शेष कारण तो उसके उपकरण मात्र हैं। वह कारण है 'आसेतु हिमाचल' एक राष्ट्रीयता की भावना का अभाव। इस अभाव ने ही भारत के प्रान्तों को राज्यों मे विभाजित कर पारस्परिक कलह को जन्म दिया। इसी अभाव ने ही सहअस्तित्व की भावना को नष्ट कर दिया। इसी अभाव ने आपसी शत्रुता निर्माण कर राष्ट्रीय बन्धुत्व को पनपने नही दिया और इसी अभाव ने भारत मे विदेशी शक्तियो को आमन्त्रित किया और उसे फलने फूलने का अवसर दिया।

अंग्रेज अथवा दूसरे यूरोपीय देशों के व्यापारी जो यहा तीन सौ वर्ष पूर्व केवल व्यापार के लिये आये थे। धीरे धीरे भारत की स्थिति से परिचित होने गये। उन्होंने मुगल साम्राज्य का वैभव देखा, उसका पतन देखा। मरहठों का उत्थान देखा और उनके पतन का श्रीगणेश भी देखा। वास्तव मे अंग्रेजो का प्रारम्भिक लक्ष्य केवल व्यापार करने का ही था। किन्तु जब मरहठो के आक्रमणों के कारण समस्त देश मे अराजकता फैल गई और जन जीवन अस्त व्यस्त हो गया और व्यापार भी ठप्प हो गया, तब अपनी सुरक्षा के लिये अंग्रेजों ने जो सेना रखी थी, उसमे इस समय उन्होंने वृद्धि की और नई सैनिक प्रणाली मे उसे शिक्षित किया। तत्कालीन भारतीय नरेशों ने आपसी झगडों मे सहायता करने के हेतु अंग्रेजों की सैनिक शक्ति को आह्वान किया। उस समय मरहठों की सैनिक शक्ति समस्त भारत मे बलवती समझी जाती थी। किन्तु जैसे ही पेशवा की शक्ति नष्ट हुई, वह शक्ति विभाजित हो गई अंग्रेजों ने उस विभाजित शक्ति को एक-एक कर चुनौती दी और उसे पूर्ण रूप से पराजित कर दिया। उनके पराजित होते ही मेवाड पर से उनका प्रभाव ऐसे ही हट गया जैसे सूर्य के अस्ताचल की ओट होते ही उसकी किरणें, और प्रकाश लुप्त हो जाता है।

मेवाड पर से मरहठों का आतक हटते ही महाराणा ने ठाकुर अजीतसिंह को अपने पूरे अधिकार देकर मि० चार्ल्स थियोफिलस मेटकाफ, जिसे सधि करने के पूरे अधिकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से दिये गये थे, उसके पास भेजा। महाराणा और ईस्ट इण्डिया कम्पनी मे यह सधि पौष सुदी ७ वि० स० १८७४ को हुई।[1]

१—उ० रा० इ०।

. संधि के होने ही फरवरी वि० सं० १८७४ में कर्नल टॉड अंग्रेजी सरकार की ओर से पहला एजेन्ट बनकर उदयपुर आया। जहां उसका धूम धाम से स्वागत किया गया।[1]

इसके कुछ दिन पश्चात् महाराणा ने सब सामन्तों को बुला कर एक दरबार किया। जिसमे राजा भीमसिंह भी सम्मिलित हुए थे। भरे दरबार मे कर्नल टॉड ने महाराणा से पूछा कि "इन सामन्तों मे आपके विरोधी कौन कौन है?"

महाराणा ने उदारतापूर्वक कहा "इनके भूतकाल के सब अपराध मैंने क्षमा कर दिये हैं। भविष्य मे यदि कोई अपराध करेगा तो उसकी सूचना आपको दी जावेगी।"

कर्नल टॉड ने आते ही मेवाड़ राज्य की उन्नति के लिये प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। प्राचीन, पवित्र उदयपुर राज्य के प्रति कर्नल टॉड के मन में बड़ी श्रद्धा थी। महाराणा के प्रति निर्मल प्रेम था। उदयपुर राज्य की रक्षा, उसका विकास तथा उसे सम्पन्न करने में उसने कोई कसर उठा नही रखी। वि० सं० १८७४ का वर्ष उदयपुर राज्य के लिये वरदान के रूप में आया। उदयपुर राज्य की स्थिति दृढ होते ही, अखिल मेवाड़ में शान्ति प्रस्थापित हो गई। सामन्तों ने, जागीरदारों ने तथा समस्त जनता ने स्वस्ति की सास ली। खेती वाड़ी होने लगी। व्यापार होने लगा। धार्मिक त्यौहार मनाये जाने लगे।

बनेड़ा राज्य भी मरहठों के आतंक से मुक्ति चाहता था। मरहठों की हार और अंग्रेजो की विजय से राजनीतिक परिवर्तन के प्रति सभी उत्सुक हो उठे थे। मेवाड के सभी सामन्त परिवर्तन के इच्छुक थे। यह समाचार सभी को ज्ञात हो गया था कि अंग्रेजों से संधि की बातचीत चल रही है। तब सभी सामन्तों के मन में कुतूहल निर्माण होना स्वाभाविक था। इसी कुतुहलवश राजा भीमसिंह ने पौष सुदी ९ वि० सं० १८७४ को रावत रघुनाथसिंह को लिख कर इस सम्बन्ध मे पूछा कि 'ठाकुर अजीतसिंह के समाचार किस प्रकार के है। अंग्रेजों से किस धरातल पर संधि की बातचीत चल रही है।"[2]

कर्नल टॉड ने मेवाड़ के सामन्त तथा महाराणा के बीच कटुता न रहे और भविष्य में किसी प्रकार के झगड़े उत्पन्न न हों इस दृष्टिकोण से एक कौलनामा तैयार किया। तारीख ४ मई वि० सं० १८७५ को इस कौलनामे पर विचार विनिमय किया गया। बहुत से सामन्तों ने इस पर आपत्तियां प्रस्तुत की। पन्द्रह घन्टे तक वादविवाद चलने के पश्चात् सबसे प्रथम बेगुं के सामन्त ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। उसके पश्चात् १६ सामन्तों ने हस्ताक्षर किये।[3] इस कौलनामे पर राजा भीमसिंह ने भी हस्ताक्षर किये थे।

बनेड़ा राज्य के इतिहास सग्रह मे आषाढ़ सुदी ११ वि० सं० १८७५ का कर्नल टॉड द्वारा लिखा एक पत्र संग्रहीत है। उस पर कर्नल टॉड के अंग्रेजी लीपि मे हस्ताक्षर है। इस पत्र की भाषा मेवाडी और लीपि हिन्दी है। रीति वही है, जो एक राजा दूसरे राजा को पत्र लिखते समय व्यवहृत करता था।

मार्गशीर्ष सुदी ११ वि० सं० १८७५ को कर्नल टॉड बनेड़ा नगर में आया, राजा भीमसिंह ने उसका भव्य स्वागत किया। टॉड ने उनको एक जोड़ी पिस्तौल और दुर्बीन

१—उ० रा० इ०। २—बनेड़ा संग्रह। ३—उ० रा० इ०।

दी।[1] इस भेट का विस्तृत वर्णन टॉड ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान' के प्रथम भाग के पृष्ठ ८२९ से ८३० तक किया है। जिसमे ज्ञात होता है कि उन दोनों मे हार्दिक मित्रता थी, आपस मे प्रेम पूर्ण व्यवहार था और वे दोनों एक दूसरे को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उसने लिखा है कि "बनेडा का किला मेवाड राज्य के समस्त प्रभावशाली किलो मे एक है और यहा के राजा समस्त सामन्तों मे प्रथम हैं। उनकी 'राजा' की पदवी नाम मात्र की ही नही है, वरन् एक राजा के समस्त लवाजमों से वह सुशोभित हैं। उदयपुर के महाराणा के वह निकटतम सम्बन्धि हैं।

मेरे मित्र राजा भीमसिंह ने बनेडा से दो मील आकर मेरी अगवानी की। वे मुझे महलों मे ले गये। मैं वहा तीन घन्टे रहा। इस अवधि मे मुझे मेवाड राज्य के अधीनस्थ राज्यों की व्यवस्था तथा राजा का रहन सहन देखने का सुअवसर मिला। राजा राजसी ठाट बाट मे रहते हैं और सुसभ्य हैं। उन्होंने खुले मन से तथा किंचित मात्र भेदभाव न रखते हुवे मुझसे बातचीत की। उनको शाही मरातिब, लवाजमा तथा सम्मान मिला है।

राजा ने मुझे गोखडे मे मखमली गद्दे पर बिठाया। उसके सामने के सभा भवन मे बनेडा राज्य के सामन्तगण बैठे थे। वे मुझसे एक भाई के समान घरेलू तथा राजकीय विषयों पर वार्तालाप करते रहे और मेरी राय पूछते रहे।

मेरे विदा होते समय उन्होंने मुझे उपहार देने चाहे, मैंने उन्हें स्वीकार तो किया किन्तु हमारी राजकीय नीति के अन्तर्गत उन्हे साथ ले जाना स्वीकार नही किया।

माननीय लार्ड विशप जब बनेडा आये थे, तब उनका भी राजा ने उत्तम स्वागत किया था। वह मुझे मेरे खेमे तक पहुँचाने आये। मैंने उन्हे एक जोडा पिस्तौल तथा एक दुर्बीन भेंट की। जिससे वह आसपास के प्रदेश को किले पर से ही देख सकें। मिलन के समय हम दोनों को जितना आनन्द और सन्तोष मिला, उतना ही विदा के समय हम दोनो ने दुख का अनुभव किया।"

दौलतराव सिंधिया ने आषाढ वदी ७ वि० सं० १८७५ की संधि के पालन मे अजमेर का प्रदेश अंग्रेजों को सौंप दिया। इसी वर्ष अंग्रेजों ने इस प्रदेश की रक्षा के लिये नसीराबाद में सैनिक छावनी स्थापित की। उन्हीं दिनों मेरवाडे के मेरों ने उपद्रव करना प्रारम्भ कर दिया। कर्नल टॉड ने महाराणा की सम्मति से कार्तिक वि० सं० १८७५ मे ठाकुर सालिमसिंह रूपाहली के नेतृत्व मे मेरों का दमन करने के लिये सेना भेजी। इस सेना मे बनेडा राज्य की सेना भी सम्मिलित हुई और उसने युद्ध मे भाग लिया।[1] मेर पराजित हुवे 'ठाकुर सालिमसिंह ने समस्त स्थानों पर अपने थाने स्थापित कर लिये' जिसमें मेरों का मार्ग ही बन्द हो गया। किन्तु वह मारवाड की ओर से आकर आक्रमण करने लगे। कर्नल टॉड मार्गशीर्ष वि० सं० १८७६ मे जोधपुर गया और जोधपुर राज्य द्वारा वहां भी थाने कायम करवा दिये। इस प्रकार चारों ओर से नाकेबन्दी की जाने पर सभी सामन्त अपने अपने ठिकानों मे चले गये।

१—बनेडा संग्रह। २—ठ० रा० इ०।

उनके जाते ही मेरों ने फिर उपद्रव प्रारम्भ कर दिया। कर्नल टॉड ने ठाकुर सालिमसिंह को फिर उनका प्रबन्ध करने को भेजा और मार्गशीर्ष बदी ७ वि० सं० १८७७ को राजा भीमसिंह को सेना भेजने को लिखा।[१] राजा भीमसिंह ने सेना भेजी। इस युद्ध मे मेरों की फिर पराजय हुई और मेरों का उपद्रव सदा के लिये बन्द हो गया।

उदयपुर के महाराजकुमार जवानसिंह का विवाह रीवां राज्य के राजा विश्वनाथसिंह की पुत्री से होना निश्चित हुवा था। बरात की सुरक्षा के लिये अपनी सेना सहित पांच मुकाम तक साथ जाने को कर्नल टॉड ने राजा भीमसिंह को ज्येष्ठ बदी ५ वि० सं० १८७९ को लिखा। यह विवाह आषाढ़ सुदी १३ वि० सं० १८७९ को रीवां मे सम्पन्न हुआ।

मेरवाड़े का प्रदेश उन दिनों तीन भागों में विभाजित था। उसका कुछ भाग मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत था, कुछ जोधपुर के अन्तर्गत तथा कुछ भाग अंग्रेजी सरकार के अन्तर्गत था। उसकी राजनीतिक महत्ता को ध्यान में रखते हुये समस्त मेरवाड़ा प्रदेश अंग्रेजी सरकार के अधिकार मे लेने के विचार से जनरल आक्टरलोनी उदयपुर आया। तब महाराणा ने चैत्र बदी ४ वि० सं० १८८० को राजा भीमसिंह को उदयपुर आने के लिये लिखा।[२] वह उदयपुर गये। वहां आक्टरलोनी ने अपना प्रस्ताव महाराणा के सम्मुख रखा। महाराणा ने इसे स्वीकार नही किया, किन्तु फिर भी आक्टरलोनी ने मेरवाड़े के समस्त प्रदेश पर अंग्रेजी सत्ता का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। इस पर बहुत दिनों तक महाराणा आपत्ति करते रहे किन्तु मेवाड़ का वह प्रदेश फिर बहुत वर्षों तक मेवाड़ के अधिकार में नहीं आया।[३]

देवीसिंह पुरविया नामक एक व्यक्ति ने अंग्रेजी प्रदेश मे कोई गम्भीर अपराध किया था और वह बनेड़ा राज्य की शरण में आकर रहने लगा था। राजा भीमसिंह ने उसको अपने संरक्षण मे लेकर उसको क्षमा करने के लिये अंग्रेजी सरकार से लिखा पढ़ी की। अन्त में कप्तान वाक ने द्वि० आश्वीन सुदी ८ वि० सं० १८७९ को राजा भीमसिंह को लिखा कि "देवीसिंह पुरविया के पकड़ने की अब कोई आवश्यकता नही। उसे आप अपने राज्य में रख सकते हैं।"

उदयपुर राज्य को बनेड़ा राज्य की ओर से ५००१ रु० छटुंद देना निश्चित हुआ। फाल्गुन सुदी ३ वि० सं० १८७९ को राजा भीमसिंह ने इसे स्वीकार करके लिखतम लिखदी।[४]

वि० सं० १८८० में कर्नल टाड ने बनेड़ा राज्य की भूमि के विवरण का एक नक्शा बनवाया था। जिसमें राज्य के प्रत्येक गांव मे कितने बीघा भूमि है, उसमें खालसे की कितनी, जागीर की कितनी, माफी की कितनी, यह भी लिखा गया था। पड़त भूमि, पीवत की भूमि भी उसमें बतलाई गई थी। कुंवे चालू कितने, पड़त कितने, बावड़ियां चालू कितनी, पड़त कितनी, हल कितने, बैल कितने, आदि सभी बातों का समावेश किया गया था। वह नक्शा आज भी बनेड़ा संग्रह में सुरक्षित है।[५]

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—उ० रा० इ०।
४—बनेड़ा संग्रह। ५—बनेड़ा संग्रह।

मार्गशीर्ष सुदी ३ वि० स० १८८१ को कर्नल टाड ने महाराणा की ओर से जनता के नाम एक इश्तहार निकालकर खेती की उपज के आयात निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया। इस प्रतिबन्ध के पालन मे सरकार की अनुमति के बिना न तो अनाज मेवाड के बाहर भेजा जा सकता था, न मंगाया जा सकता था। इस नियम के पालन के लिये इश्तहार की एक प्रतिलिपि भेजकर बनेडा राज्य को भी कर्नल टाड ने आदेश भेजे थे और उपज का एक नक्शा भी मगवाया था।[1]

वि० स० १८८० मे महाराणा ने समस्त सामन्तो से रुपया वसूल किया। उस समय राजा भीमसिंह उदयपुर मे ही थे। उन्होंने कुंवर उदयसिंह को वहा की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते हुये लिखा "यहा का स्वरूप जैसा है, वैसा ही है। सामन्तों पर महाराणा की दृष्टि करडी है। बनेडा राज्य पर ७१०० रु० लगाये गये हैं। एक पैसा भी कम नही लेवेंगे।"[2]

वि० स० १८७९ मे बनेडा राज्य पर छटुंद की रकम ५००१ रु० लगाई गई थी किन्तु फिर मार्गशीर्ष सुदी १० वि० सं० १८८१ को उसे बढाकर ६००० करदी गई। जिसे राजा भीमसिंह ने स्वीकार किया।[3]

भौमियों का उपद्रव —राजा हमीरसिंह के समय मे जोधा ठाकुरों ने उपद्रव करना प्रारम्भ किया था, जिसे उन्होंने सैनिक दबाव से तथा आपसी समझौता द्वारा शान्त कर दिया था। राजा भीमसिंह के समय मे कानावत भौमियों ने उपद्रव करना प्रारम्भ किया। उन्होंने उनको समझाने के लिये झाला जालिमसिंह को लिखा। तब उसके पुत्र झाला माधवसिंह ने माघ सुदी ३ वि० सं० १८६१ को लिखा कि "शाहपुरा के राजा के द्वारा कानावतों को समझाने के लिये आपने लिखा है किन्तु शाहपुरा का राजा स्वयम् कानावतों के उपद्रव से परेशान है। इसलिये उसको लिखकर कोई लाभ नही।[4]

कानावतों ने जब अधिक उपद्रव किया तब राजा भीमसिंह ने उनकी शिकायत महाराणा से की। महाराणा ने वैशाख वदी २ वि० स० १८६२ को लिखा कि "कानावतों को समझाने के लिये शाहपुरा के राजा को लिखा है। वह उनका प्रबन्ध करेगा।"[5]

कानावतों के उपद्रव के सम्बन्ध मे देवगढ से राजा अजीतसिंह ने ज्येष्ठ सुदी ६ वि० सं० १८६२ को लिखा कि "कानावतो को पहले आप समझाइये, वह समझे तो ठीक है, वरन् सैना भेजकर उनका प्रबन्ध कीजिये और किश्त की रकम वसूल करिये।"[6]

कानावतों को समझाने का प्रत्येक प्रयत्न विफल हुआ। तब राजा भीमसिंह ने रावत अजीतसिंह को उनका प्रबन्ध करने को लिखा। वैसे सैनिक भेजकर वह उनका प्रबन्ध कर सकते थे, किन्तु उसमे प्राणहानि की सम्भावना थी। आषाढ सुदी १३ वि० स० १८६२ को रावत अजीतसिंह ने लिखा कि "कानावतों का प्रबन्ध करने के लिये आपने लिखा तो यहा से राजा अमरसिंह, कानावत ईश्वरीसिंह, दुर्गासिंह को पत्र लिख दिये गये हैं। यदि वह वही

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह।
४—बनेडा संग्रह। ५—बनेडा संग्रह। ६—बनेडा संग्रह।

समझ गये तो ठीक है, नहीं तो उन्हें यहां लेते आइये। यहां उनको समझाकर प्रबन्ध कर दिया जावेगा।"[1]

इसके पश्चात् कानावतों का उपद्रव बन्द हो गया और वह शान्ति से रहने लगे।

जब शाहपुरा के राजा ने बनेड़ा राज्य में खींचातानी प्रारम्भ की तब राजा भीमसिंह ने उसका प्रबन्ध करने को मरहठा सेनापति बापूजी सिंधिया को लिखा। उसने वैशाख वदी १ वि० सं० १८७२ को लिखा कि "हमने महिपतराव को लिख दिया है। वह प्रबंध करेंगे। हमने शाहपुरा के राजा को भी लिखा है। वह अब आपके ग्रामों में उपद्रव नहीं करेगा। तिसपर भी यदि वह नहीं मानेगा तो अजमेर के अधिकारी को लिखकर उसका प्रबंध करेंगे। आप निश्चिन्त रहें। हम आपके राज्य का सुधार चाहते हैं।"[2]

वि० सं० १८७४ में अंग्रेजों की सत्ता मेवाड़ में स्थापित हो गई थी। उन दिनों ग्राम डाबला के सामन्त ने विद्रोह कर दिया था। तब राजा भीमसिंह ने कर्नल टाड को इस सम्बन्ध में लिखा, उसने आषाढ़ सुदी ११ वि० सं० १८७५ को लिखा कि "यथा समय हम उसका प्रबन्ध करेंगे।" किन्तु प्रबंध नहीं हुआ। राजा भीमसिंह ने फिर उसकी शिकायत की। तब कर्नल टाड ने चैत्र वदी ९ वि० सं० १८७६ को लिखा कि "जब आप यहां आओगे तब डाबला के सामन्त को भी बुला लेवेंगे और दोनों की बात सुनकर निर्णय करेंगे।"[3] कर्नल टाड ने राजा भीमसिंह के पक्ष में निर्णय दिया।

इस सम्बन्ध में महाराणा ने आश्वीन सुदी १५ वि० सं० १८७६ को राजा भीमसिंह को लिखा कि "आपके परगने के भौमियों ने आपके ग्रामों की जो भूमि दबा ली थी, वह आपने वापिस ले ली, यह ठीक किया। कर्नल टाड ने आपको जो अधिकार दिया है, वह मेरी ही आज्ञा से दिया है।"[4]

श्रावण सुदी २ वि० सं० १८८२ को कर्नल कॉब ने भी राजा भीमसिंह को आदेश दिया कि "आप अपने भौमियों से जिस प्रकार छटुंद की रकम लेते आये हैं, उसी प्रकार लेते रहें।"

इस प्रकार राजा भीमसिंह के समय में भौमियों का उपद्रव शान्त हुआ।

विदेशी प्रवासी:—रीजनल्ड हेवर डी० डी० लार्ड विशप आफ कलकत्ता ने उत्तर भारत के प्रान्तों की यात्रा वि० सं० १८८२ में की थी। यात्रा का वर्णन तीन भागों में प्रकाशित हुआ है। दूसरे भाग के पृष्ठ ४५१ पर उनकी बनेड़ा यात्रा का वर्णन है। उसका संक्षिप्त वर्णन नीचे लिखा जाता है:—

तारीख १८ फरवरी को डाबला से बनेड़ा के लिये रवाना हुवा। बनेड़ा यहां से सोलह मील था। बनेड़ा और डाबले के बीच का जंगल नगा नहीं था। वृक्ष, छोटी झाड़ियों से अच्छे थे। बनेड़ा कोट से घिरा हुआ नगर है। बागों और खेतों के बीच में बसा हुआ है। वह एक रमणीक नगर है। एक पहाड़ी पर बहुत सुन्दर दुर्ग बना हुआ है। जो कार्नरोवन के किले से कुछ बड़ा है। दुर्ग की स्थिति उत्तम है और उसमें राजा निवास करते हैं। वे मुझसे मिलने

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह। ४—बनेड़ा संग्रह।

आये। उनके साथ कुछ सामन्त थे। उनकी वेशभूषा सुन्दर थी। चमकती हुई जरी के पल्लू की उनकी पगडिया थी। पीछे ढाल लटक रही थी और कमर मे सुन्दर तलवार और कटार लगी हुई थी। राजा के घोडे के साथ दो सईन थे। जो साफ सुथरे कपडे पहने हुये थे। चोपदार और सूरजमुखी तथा झन्डे उठाने वाले नौकरो की वेशभूषा पुरानी थी और उनकी छडी भी एक चौदह वर्ष का वस्त्रहीन लडका लिये जा रहा था। राजा साहब वृद्ध आदमी थे। उनके बहुत से दात गिर गये थे। राजा के लाल नेत्र और उदास चेहरा यह बतलाता था कि वह अफीम खाते हैं। उनकी बात समझना मेरे लिए कठिन था।

हम पहली ही भेट मे एक दूसरे के गले मिलना चाहते थे किन्तु हमारे घोडों ने विद्रोह कर दिया और अलग अलग हो गये, जिससे हम दोनों केवल हाथ ही मिला सके। मेरे घोडे "काबुल" ने ऐसा प्रदर्शन किया, मानो वह राजा के घोडे के चिथडे कर डालना चाहता हो। जब दोनों के घोडे शान्त हुये, तब हम आगे बढे और बातचीत करने लगे। इस प्रान्त मे यह रिवाज है कि जब महान् व्यक्ति एक दूसरे से बातचीत करते है, तो एक विश्वासनीय दुभाषिया का प्रयोग करते हैं, और हमने डाक के जमादार का उपयोग किया। उसकी हिन्दुस्तानी मैं ठीक समझता था। राजा का उच्चारण अस्पष्ट था। दुभाषिये का प्रयोग हास्यमय रहा। मैंने कहा "राजा साहब से कहो कि मुझे आपसे मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई और वे स्वस्थ होंगे।"

दुभाषिये ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया "लार्ड साहब आपसे मिलकर प्रसन्न हुये और आपका स्वास्थ्य ठीक है।"

राजा साहब ने कहा कि "लार्ड साहब से कहो कि मेरा स्वास्थ्य ठीक है और उनके पधारने से मुझे प्रसन्नता हुई और मै समझता हू कि वह अच्छे हैं।"

दुभाषिये ने इसका अनुवाद यों किया "हुजूर को मिलकर प्रसन्नता हुई और बहुत खुशी है।"

इस प्रकार आपस मे बहुत से विषयो पर बातचीत करते हुये हम बंगले मे पहुँचे जो शहर से थोडी दूर है। वह एक सुन्दर वाटिका के मध्य मे बना हुआ है और वृक्षो से घिरा है। मार्ग मे हम एक सुन्दर तालाब के पास से निकले, उसका क्षेत्रफल एक सौ पचास एकड होगा। तालाब नितान्त सूखा था। राजा साहब ने कहा "इतना ही बडा एक और तालाब नगर के दूसरी ओर बना हुआ है।" मार्ग मे हमे सफेद फूलों वाले अफीम के खेत मिले थे। हमने सोचा यह अफीम का क्षेत्र है। बंगला अच्छे मनोहर स्थान पर था। जहा से किले का दृश्य बहुत सुहावना दीखता था। बगले पर पहुँचकर हम दोनो घोडो पर से उतर पडे और प्रेम भाव से एक दूसरे के गले मिले। मै राजा साहब को अन्दर ले गया और अपनी दाहिनी ओर बैठाया। साधारण वार्तालाप हुआ और वह विदा लेकर चले गये।

कुछ समय पश्चात् राजा साहब ने मिठाई की "डाली" भेजी जिसे मैंने नौकरों और सिपाहियों को वितरण कर दिया।

बगला कुछ वीरान सा लगा। सुरक्षा की दृष्टि से मैंने मच्छरदानी लगवाई, क्योंकि ऐसे वीरान बगलों मे बिच्छुओं का छत से गिरने का भय रहता है।

संध्या समय हम लोग समीप के एक पहाड़ पर गये। वहां से हमने दुर्ग और नगर का दृश्य देखा। हमें बताया गया कि कोटेवाले जालिमसिंह ने जिस पहाड़ पर हम खड़े थे, वहां से गोलावारी की थी। उस स्थान के अतिरिक्त और कहीं से दुर्ग पर गोलावारी नहीं हो सकती है। अमीरखां ने भी दुर्ग को छोड़कर आसपास के प्रदेशों मे लूट मार की थी।

यह दुर्ग यूरोपियन सेना के समक्ष भी पराक्रम का स्थान है। जब तक इस पर गोलावारी नही होगी, उस पर अधिकार होना असम्भव है और समीप मे गोलावारी के लिये स्थान नही है। जमीन चट्टानी होने से ट्रेन्च (सुरंगें) भी नही खोदी जा सकती। केवल गोलावारी से ही यह दुर्ग अधिकार मे लाया जा सकता है।

शहर के चारों ओर खजूर के वृक्ष थे। समस्त दृश्य रोमांचकारी था। कुछ दूरी पर वीरान कबरें और मसजिदें थी।

ता० १९ फरवरी को हम बनेड़े से भीलवाड़े के लिये रवाना हुवे।[1]

विवाह:—ज्येष्ठ कृष्ण ११ वि० सं० १८४१ को ईडर नरेश राजा शिवसिंह की पुत्री अक्षयकुंवर से महाराणा भीमसिंह का विवाह हुआ था। राजा शिवसिंह के तथा उनके पुत्र भवानीसिंह के और भी विवाह योग्य कन्यायें थीं। उन कन्याओं के विवाह की चिन्ता से प्रेरित होकर वि० सं० १८५० में राजा शिवसिंह ने महाराणा से उक्त कन्याओं के विवाह की व्यवस्था करने को निवेदन किया। महाराणा ने तीनों कन्याओं से विवाह करने का विचार किया किन्तु तीन कन्याओं से एक साथ विवाह करना अशुभ समझा जाता है, ऐसा लोगों के निवेदन करने पर राजकुमार भीमसिंह जो वहां उपस्थित थे, उनको महाराणा ने आज्ञा दी कि "भाई आप एक कन्या से विवाह करें।"

राजकुमार भीमसिंह ने निवेदन किया कि "मेरे पिता की सम्मति मंगाने की कृपा करें, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।"

महाराणा ने निजी पत्र लिखकर एक सवार को बनेड़ा भेजा। राजा हमीरसिंह ने प्रसन्नता पूर्वक इस सम्बंध को स्वीकार किया। इसके पश्चात् राजकुमार भीमसिंह, महाराणा के साथ विवाह करने के लिये ईडर गये। वहां फाल्गुन १८५० मे दो पुत्रियों के साथ महाराणा भीमसिंह का तथा एक पुत्री से राजकुमार भीमसिंह का विवाह सम्पन्न हुआ।

इनकी दूसरी राणी मेरतणी बदनौर के ठाकुर तेजसिंह की पुत्री गजसिंह की पौत्री थी। वह विवाह फाल्गुन वदी १ वि० सं० १८६२ को हुआ।

तीसरी राणी भट्यानी मोई के अभयसिंह की पुत्री, अर्जुनसिंह की पौत्री थी।

संन्तान:—राणी ईडरेची के गर्भ से फाल्गुन सुदी १० वि० सं० १८५३ को राजकुमार उदयसिंह का जन्म हुआ। इनके पश्चात् राजकुमार अजीतसिंह का जन्म हुआ।

१—लार्ड बिशप का यह यात्रा वर्णन "भारत के उत्तर प्रान्तों की यात्राओं का वर्णन" नाम से ३ भागों में प्रकाशित हुआ है। यह पुस्तक बनेड़ा के पुस्तकालय में है।

राणी मेरतनी के गर्भ से राजकुमार दौलतसिंह, राजकुमार गुलाबसिंह तथा राजकुमार जोरावरसिंह का जन्म हुआ। पुत्री प्रतापदेवी हुई। जिसका विवाह झाबुआ के स्वामी राजा रत्नसिंह के साथ हुआ।

राणी भटयाणी के गर्भ से राजकुमार बख्तावरसिंह हुवे तथा पुत्री मेहतावकुवर का जन्म हुआ। इनका विवाह कोटा के महाराव रामसिंह के साथ हुआ।

सम्बन्धियों के विवाह आदि—स्वर्गीय राजा रायसिंह के पुत्र किशोरसिंह की पुत्री का विवाह जयपुर नरेश सवाई जगतसिंह के साथ फाल्गुन सुदी ३ वि० सं० १८६२ को हुआ। किशोरसिंह की मृत्यु होने पर महाराजा जगतसिंह वैशाख सुदी १ वि० स० १८६८ को शोक प्रदर्शनार्थ उनके घर गये थे। किशोरसिंह की उक्त पुत्री की मृत्यु माघ सुदी १ वि० सं० १८८३ को हुई।[1]

द्वि० कुनर अजीतसिंह का विवाह अजमेर परगने के ग्राम बाघसुरी मे आषाढ बदी ८ वि० स० १८७८ को हुआ।

साहित्यिक कार्य—स्वर्गीय राजा सरदारसिंह कवि और सगीतज्ञ थे। उन्होंने "स्वर तरग" नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह उनके जीवन चरित्र मे लिखा गया है। इस काव्य ग्रन्थ को उन दिनो बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। वि० सं० १८७९ मे महाराजा मानसिंह जोधपुर ने उसकी एक प्रतिलिपि भेजने को राजा भीमसिंह को लिखा। उन्होंने उसकी प्रतिलिपि करा कर तिवारी सूर्यमल के साथ जोधपुर भेजी। जोधपुर से मार्गशीर्ष सुदी ४ वि० सं० मे १८७९ को उसकी पहुच की सूचना देकर जोधपुर नरेश ने गोरवार्थ किनखाब का एक दुशाला, एक थान कपडा व एक रुमाल भेजा।[2]

दान और जागीरः—

दान—उन्होंने निम्नाकित भूमि दान दी —

१-महन्त पोखरदास को कस्बा राजपुर मे बारह बीघा भूमि तथा ग्राम नाणु दिया मे छ बीघा भूमि दान दी।

२-ब्राह्मण गगाराम को कस्बा राजपुर मे एक चडस भूमि दान दी।

३-श्री एकलिंगजी को ५० बीघा भूमि ग्राम बडी लाम्बिया मे दान दी।

४-महन्त पोखरदास को ग्राम कमालपुरा मे ५ बीघा भूमि दान दी।

५-स्वामी केवलदास को ग्राम बेसकलाई मे ५ बीघा भूमि दान दी।

६-ब्राह्मण टेकचन्द को बडी लाम्बिया मे ५ बीघा भूमि दान दी।

७-संन्यासी जीवनपुरी उम्मेदपुरी को ग्राम सरसडी मुन्डेता मे भूमि दान दी।

निम्नाकित जागीरे उन्होंने दी —

१-राणावत उणीसिंह को ग्राम उदल्यावास मे ५१ बीघा भूमि जागीर मे दी।

२-कुवर बख्तावरसिंह को ग्राम बरण जागीर मे दिया।

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा सग्रह।

३–कुंवर उदयसिंह को कुंवरपदे के व्यय के लिये ग्राम मूमी जागीर में दिया।
४–भगिनि चन्द्रकंवरी को कस्बा राजपुर मे एक चड़स भूमि जागीर में दी।
५–कुंवर दौलतसिंह को कालफांस ग्राम जागीर मे दिया।
६–भाई गुमानसिंह को ग्राम कजलोदिया दिया।
७–कायमखानी कामुखां को ग्राम वेसकलाई तथा ग्राम सरदारपुरा जागीर मे दिया।

शिल्पकला:—इनके समय में वि० सं० १८६१ में चांदपोल द्वार के पास नगरकोट की चुनाई का काम हुआ। दुर्ग की दूसरी मंजिल पर भवन बनाने का कार्य चलता रहा। भीमविलास महल बनाया।

वि० सं० १८६५ में ग्राम मूसी मे गढ़ की खाई की खुदाई का काम होकर कमरकोट की चुनाई की गई।

वि० सं० १८६५ में बडारण मथरादासी ने श्री नरसिंहजी का मन्दिर बनवाया।

वि० सं० १८७५ मे तालाव मंडोवर टूट गया। उसकी मरम्मत पुरविया देवीसिंह ने कराई। पहले इससे सिंचाई होती थी। उसके निवेदन करने पर राजा भीमसिंह ने इसे धर्मतालाव कर दिया तथा शिलालेख लगवाया।

इसी देवीसिंह ने द्वितीय चैत्र सुदी ९ वि० सं० १८७३ को राजा भीमसिंह की स्वीकृति प्राप्त कर नगर राजपुर (बनेड़ा) मे श्री चतुर्भुजजी के मन्दिर के सामने के कुण्ड को पक्का बनवाया।

खनिज पदार्थ:—वि० सं० १८८० में तांवड़ा नामक नग, जो लाल रङ्ग का होता था निकलता था।

विविध घटनायें:—वैशाख वदी ५ वि० सं० १८८५ को महाराजा रतनसिंह बीकानेर नरेश के राजतिलक के अवसर पर बनेड़ा राज्य से हाथी, घोड़ा और सिरोपाव भेजा गया।

महाराणा भीमसिंह का स्वर्गवास चैत्र सुदी १४ वि० सं० १८८५ को हो गया तथा मेवाड़ राज्य के सिंहासन पर महाराणा जवानसिंह वैठे।

व्यक्तित्व:—राजा भीमसिंह का स्वर्गवास ४९ वर्ष की आयु में ज्येष्ठ वदी ८ वि० सं० १८८६ को हो गया। इनके साथ इनकी राणी भटयानी सती हुई।

इन्होंने अपने २५ वर्ष के राज्यकाल मे मरहठो की तथा पिन्डारियों की अराजकता में अत्यन्त संकट सहे। उनको बार बार धन देते रहने से आर्थिक कठिनाई बढ़ गई। राज्य के ग्राम ऊजड़ हो जाने से लगान वसूल नही हो पाता था। इतना सब होने पर भी उन्होने अपूर्व सहिष्णुता, अटूट धैर्य और अचल गम्भीरता से शासन किया। वह प्रजा प्रिय और चतुर शासक थे।

राजा उदयसिंह

जन्म—राजा उदयसिंह का जन्म फाल्गुन सुदी १० वि० सं० १८५३ को हुआ।

राज्याभिषेक और राज्य कार्य में प्रवेश—राजा भीमसिंह के स्वर्गवास के समय राजकुमार उदयसिंह महाराणा के पास उदयपुर में थे। महाराणा भीमसिंह तथा महाराणा जवानसिंह का इन पर विशेष स्नेह होने से वह अधिक समय उदयपुर में ही रहते थे। पिता की मृत्यु के पांचवें दिन वह बनेड़ा आये और उनका क्रियाकर्म किया।

महाराणा भीमसिंह ने कार्तिक सुदी ४ वि० सं० १८८४ को जब राजा उदयसिंह कुंवर पद में थे, उदयपुर की राजसभा में प्रवेश करने समय छड़ीदार की ओर से "मुजरा" बोलने का बहुमान उनको प्रदान किया।[1]

महाराणा ने आषाढ़ वदी २ वि० सं० १८८६ को पत्र भेजकर राजा भीमसिंह के स्वर्गवास पर खेद प्रकट किया और धैर्य रखने को लिखा।[2]

इनका राज्याभिषेक ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा वि० सं० १८८६ को हुआ। राजतिलक के समय इनकी आयु ३३ वर्ष की थी।

महाराणा ने चैत्र वदी ७ वि० सं० १८८७ को वंश परम्परानुगत चली आ रही रीति के अनुसार सुनहरी मूठ की तलवार, सिरोपाव, मोतियों की कंठी, आभूषण घोड़ा और हाथी अपने कर्मचारी के साथ उपहार में भेजे और उदयपुर आने के लिये लिखा। राजा उदयसिंह ने भी नेगचार के रुपये पांच हजार महाराणा की सेवा में भेजे।[3]

उदयपुर में उस समय महाराणा जवानसिंह थे। मरहठों का आधिपत्य राजस्थान से उठ गया था। पूना के पेशवा को तथा दिल्ली के बादशाह को पेंशन हो गई थी और साम्राज्य के शासन सूत्र ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा अंग्रेजों के हाथों में आ गये थे। भारत के गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिंग थे और राजस्थान का पोलिटिकल एजेन्ट स्पीअर साहब था।

अंग्रेज शासकों ने राजस्थान में आते ही वहां के राजाओं से सहयोग किया और उनके माध्यम द्वारा वहां की जनता की सुरक्षा का विशेष रूप से ध्यान रखा। समस्त राजस्थान में जो अराजकता फैली हुई थी और जिसके कारण जनता में भय और आतंक छाया हुआ था, उसको मिटाने के लिये अंग्रेज शासकों ने भरसक प्रयत्न किये। उन्होंने समय-समय पर इश्तहार आदि निकालकर जनता में विश्वास उत्पन्न किया। धीरे धीरे जनता आश्वस्त हुई। उजड़े हुये गांव तथा नगर बसने लगे। व्यापार सुचारु रूप से चलने लगा। व्यापार के लिये आवश्यक आज्ञा की प्रथा प्रारम्भ की गई। राज्यों से आइन के ठेके दिये जाने लगे। बनेड़ा राज्य भी सुधार की ओर उन्मुख हुआ। राजा उदयसिंह ने भी अंग्रेजों द्वारा प्रचलित की गई सुधार

१—बस्ता ६८८। २—बस्ता ६८८। ३—बस्ता ६८८।

प्रथाओं को अपनाया। व्यापार के आढ़त के ठेके दिये जाने लगे जिससे व्यापारियों के साथ राज्य को भी लाभ होने लगा। ज्येष्ठ वदी ७ वि० सं० १८६० को राजा उदयसिंह ने दो वर्ष के लिये कस्बा राजपुरवनेड़ा की आढ़त का ठेका हुक्मचन्द पानगडया, साह एकलिंगदास, राठी नरसिंहदास, राठी गोपालदास को ५४०१ रुपयों मे दिया था।[1]

इस प्रकार अंग्रेज शासकों ने व्यापार आदि के प्रवंध की व्यवस्था कर आवागमन के मार्गों को सुरक्षित करने की ओर ध्यान दिया। उन्होंने यह व्यवस्था की कि जिस राजा के राज्य में चोरी, लूट खसोट, वटमारी अथवा हत्या हो उसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वहां के राजा का होगा। उसे या तो अपने राज्य से अपराधियों को पकड़कर देना होगा अथवा चोरी गये माल की कीमत देनी होगी। आश्वीन सुदी ५ वि० सं० १८८७ को लिखे मेजर कॉफ के एक पत्र के पढ़ने से ज्ञात होता है कि वुचर नामक एक अंग्रेज वनेड़ा की सीमा मे मारा गया था। उसके मारनेवालों को पकड़ कर देने के लिये तथा उसकी कमर में वंधे १६०) रुपये जो चोरी गये थे भेजने के लिये राजा उदयसिंह को लिखा गया था।[2]

जहां तक जनता की सुरक्षा और शान्ति का सम्वंध था, अंग्रेज शासक जागरुक रहते थे, किन्तु किसी भी राज्य की आन्तरिक राज व्यवस्था अथवा प्रवंध मे हस्तक्षेप नही करते थे। राजा का अधिकार अक्षण्ण था। महाराणा जवानसिंह के प्रारम्भिक समय मे मेहता रामसिंह मेवाड़ का प्रधान था। उसके समय मे अंग्रेजी सरकार के खिराज के सात लाख रुपये मेवाड़ राज्य पर बाकी रह गये तथा आय से अधिक व्यय होने लगा। महाराणा को इसकी शिकायत की गई। उन्होंने उसको प्रधान पद से हटाने का तथा मेहता शेरसिंह को प्रधान बनाने का विचार किया। मेजर कॉफ की रामसिंह पर कृपा थी। जव रामसिंह ने सुना कि वह प्रधान पद हटाया जा रहा है, तव उसने मेजर कॉफ को इस संवंध में सूचित किया। मेजर कॉफ ने उस समय उसकी सहायता की। खिराज के दो लाख रुपये माफ़ किये तथा रामसिंह ने किसी प्रकार पांच लाख रुपये एकत्रित कर खिराज की रकम दे दी। किन्तु जब कॉफ साहव इंग्लैन्ड जाने लगा, तव रामसिंह का जोर घट गया। उसने फिर मेजर कॉफ को इस संवंध में लिखकर महाराणा को समझाने को लिखा। मेजर कॉफ चाहता तो अपने साथी अंग्रेज अधिकारियों द्वारा महाराणा पर दवाव डालकर रामसिंह को प्रधान वनाये रखने की कार्यवाही करता किन्तु उसने महाराणा से केवल उसकी सिफारिश ही की। महाराणा के अधिकारों में हस्तक्षेप करने का कोई प्रयत्न नही किया। अन्ततोगत्वा मेहता रामसिंह हटाया गया और मेहता शेरसिंह को प्रधान बनाया गया। यह घटना वि० सं० १८८८ के वैशाख की है।[3]

लार्ड विलियम वेन्टिग का अजमेर आना:—भारत के गवर्नर जनरल लार्ड विलियम वेन्टिग अजमेर आने वाले थे। उन्होंने महाराणा को अजमेर के पोलिटिकल एजेन्ट द्वारा भेंट के लिये निमंत्रित किया। महाराणा असमंजस मे पड़ गये। मेवाड़ राज्य के महाराणा इससे पूर्व तक कभी भी मुस्लिम साम्राज्य के समय में शाही दरवार में नही गये थे। इस ओर संकेत करते हुये सामन्तों ने कहा "ऐसी स्थिति में गवर्नर जनरल से मिलने जाना कैसे योग्य कहा जायगा ?"

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—वीर विनोद।

इस पर पोलिटिकल ऐजन्ट स्पिअर ने चतुरतापूर्वक कहा, "मुस्लिम बादशाह आपके शत्रु थे। अंग्रेज आपके मित्र हैं। मुस्लिम बादशाह के सम्मुख राजाओं को नौकर की भाति खड़ा रहना पड़ता था। यहा यह बात नही है। एक मित्र के रूप मे आप गवर्नर जनरल से भेट करेंगे, अतएव आपका अजमेर जाना सब प्रकार श्रेयस्कर और लाभकारी होगा।"

महाराणा पर उक्त भाषण का प्रभाव पड़ा और उन्होंने सामन्तो से कहा कि "मरहठो के आतक से मेवाड को अंग्रेजों ने छुडाया। इसलिये वह हमारे मित्र है। दूसरे शाहपुरा के फूलिया जिले पर से जब्ती उठवानी है। तीसरे हमे अपने पिताओ का श्राद्ध करने गयाजी जाना है। यह सब अंग्रेजो की सहायता के बिना नही हो सकेगा, अतएव गवर्नर जनरल की भेट करने हम अवश्य जावेगे।"[1]

इस निश्चय के अनुसार माघ कृष्ण ५ वि० स० १८८८ को वह उदयपुर से चले उनके साथ दस हजार सैनिक थे। माघ वदी १२ को मार्ग मे मुकाम करते हुवे भीलवाडा जाकर ठहरे। माघ वदी १३ को बनेडा मुकाम था। अतएव राजा उदयसिंह उनकी अगवानी को भीलवाडा गये और बहुत सम्मान पूर्वक उन्हे बनेडा ले आये और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक दुर्ग मे ले गये। राजसी ठाटबाट से भोजन का प्रबध किया। उनके साथ के सामन्तों को उपहार आदि दिये। महाराणा बहुत आनन्दित हुये। एक रात विश्राम किया। दूसरे दिन उन्होंने अजमेर के लिये प्रस्थान किया।[2]

महाराणा माघ सुदी २ को अजमेर पहुंचे। गवर्नर जनरल के आदेश से आठ अंग्रेज अधिकारी उनकी अगवानी को आये। बहुत सम्मानपूर्वक उन्हे उनके शिविर मे पहुंचाया गया।

माघ सुदी ४ वि० स० १८८८ को महाराणा ने गवर्नर जनरल से भेंट की। उनका कहना मानकर गवर्नर ने फूलिया पर से जब्ती उठाली तथा गया जाने के समय सहायता देने का वचन दिया। महाराणा फाल्गुन वदी १२ को उदयपुर लौट आये।

अंग्रेज अधिकारियों से मित्रता—राजा उदयसिंह के स्नेह भरे व्यवहार से तत्कालीन अंग्रेज अधिकारी उनसे बहुत प्रसन्न रहे। वह उनकी सहायता करने को प्रतिक्षण तत्पर रहते थे। मेजर कॉफ की उन पर विशेष कृपा थी। जनवरी सन् १८३१ (वि० सं० १८८८) मे जब वह भारत के कार्य भार से मुक्त होकर इंग्लैन्ड जाने लगा, तब उसने राजा उदयसिंह को ता० १७ जनवरी सन् १८३१ को एक पत्र लिखा। इस पत्र मे मित्रता से अधिक बन्धुत्व की भावना है। उसने लिखा है, "उनके व्यवहार मे सत्यता है जैसी कि उनके पिता राजा भीमसिंह मे थी।"

उसने मेवाड के प्रबंध पर आने वाले अंग्रेज अधिकारियों से राजा उदयसिंह की सहायता करते रहने का इस पत्र मे उल्लेख किया है तथा महाराणा से भी निवेदन किया है कि "भोमियों का प्रबध करने मे महाराणा इनकी सहायता करते रहें तथा सेवा (चाकरी) के सम्बध मे इन्हे अधिक से अधिक सुविधायें देते रहे।"[1]

१—वीर विनोद। २—बनेड़ा संग्रह। १—बनेड़ा संग्रह।

महाराणा का अपनत्व:—महाराणा जवानसिंह का व्यवहार इनके साथ अत्यन्त स्नेह भरा था। ऐसे अनेकों पत्र हैं, जिनमे महाराणा का प्रेम प्रकट होता है। जब भी कोई काम आ पड़ता अथवा संकट आ जाता महाराणा इन्हें बुलाते। आषाढ वदी ११ वि० सं० १८८९ को उन्होने राजा उदयसिंह को लिखा "आप स्वयं, अपनी सेना सहित रामपुरा आजाइये। एक क्षण का भी विलम्ब न करें।"

उसी प्रकार श्रावण सुदी १० वि० सं० १८९० को फिर महाराणा ने आदेश दिया कि "अपनी अच्छी सेना शीघ्र जहाजपुर भेज दीजिये।"

राजा उदयसिंह ने दोनों आदेशों का पालन किया।

भौमियों का उपद्रव:—इनके समय मे भी भौमियों का उपद्रव होना ही रहा किन्तु उन्होने अपनी चतुरता और सामर्थ्य से उनका प्रबंध करके राज्य मे शान्ति प्रस्थापित की।

राजा उदयसिंह की न्यायप्रियता पर महाराणा का अडिग विश्वास था। भौमियो के उपद्रव के सम्बन्ध मे उन्होंने माघ सुदी ४ वि० सं० १८८९ को लिखा कि "जोधा के उपद्रव के सम्बन्ध मे लिखा सो उसकी हरामखोरी है। आप वह ग्राम जिसे चाहे दे सकते है। आपका अधिकार अक्षुण्ण है। जोधा यहां शिकायत करेगा तो हम उसे नही सुनेंगे।"

विवाह:—उन दिनों राजाओं में बहु विवाह की प्रथा का अत्यधिक प्रचलन था। राजा उदयसिंह ने इस प्रथा का सर्वथा त्याग किया और अपने जीवन में एक ही विवाह करके एक पत्नीव्रत का आदर्श उपस्थित किया। इनकी राणी झाली गोगुन्दा के स्वामी चित्रसिंह की पुत्री थी। यह विवाह उनके कुंवर पदे मे हुआ था।

सन्तति:—राणी झाली की कोख से राजकुमार संग्रामसिंह तथा राजकुमारी आनन्द कुमारी का जन्म हुआ। आनन्दकुमारी का विवाह राघौगढ़ राज्य के स्वामी जयमण्डलसिंह से, जब वह कुंवर पदे में थे तब हुआ था।

तीर्थयात्रा:—यह दो वार वाराणसी (काशी) गये। प्रथम वार कुंवरपदे के समय कार्तिक वदी १३ वि० स० १८७६ को गये। दूसरी वार बनेड़ा के स्वामी होने पर मार्गशीर्ष सुदी ४ वि० सं० १८८८ को गये।

दान:—राजा उदयसिंह ने निम्नांकित भूमि दान दी:—

१. गुसांई गिरधरपुरी, सेवापुरी, नानकपुरी को ग्राम सरसडी मे भूमि दान दी।
२. ब्राह्मण रामवक्ष श्रीचन्द को ग्राम सुलतानपुरा मे भूमिदान दी।
३. किशनावत चतुरभुज को ग्राम लूलास में ३२ बीघा भूमि दान दी।
४. बावा पोखरदास को ३ बीघा भूमि राजपुर मे और १० बीघा भूमि नागुंदिया मे दान दी।

५. भंडारी धीरतसिंह को १०१ बीघा भूमि दान दी।

जागीर:—राजा उदयसिंह ने निम्नांकित जागीरें दी।

१. भाई अजीतसिंह को ग्राम तसवारिया दिया।

२ भाई गुलाबसिंह को ग्राम सूरजपुरा दिया।
३ भाई जोरावरसिंह को ग्राम जोरावरपुरा दिया।
४ राजावत महतावसिंह को ग्राम हाथीपुरा दिया।
५ कायमखानी बुडखा को ग्राम भीमपुरा दिया।
६ बारहठ मेहताबसिंह को ग्राम गीडिया दिया।
७ कायमखानी कासुखा को ग्राम नाणु दिया और ग्राम बेसकलाई जागीर मे दिया।

शिल्पकला —राजा उदयसिंह के समय मे निम्नांकित भवन आदि बनाये गये —

१ ग्राम मूसी मे एक तालाव बनवाया।
२ किले मे एक काच महल तथा शृंगार बुर्ज बनवाया।
३ नगरकोट इनके समय मे भी बनाया जाता रहा।

सम्बन्धियों के विवाह —इनके भाई दौलतसिंह की पुत्री का विवाह वि० सं० १८८७ मे जयपुर नरेश से हुआ था।

स्वर्गवास और राणी का सती होना —राजा उदयसिंह का स्वर्गवास आश्वीन वदी १ वि० सं० १८९२ को हुआ। मृत्यु के समय इनकी आयु ३६ वर्ष ६ मास की थी। इन्होंने केवल पाच वर्ष ही राज्य किया।

जिस समय इनका स्वर्गवास हुआ, इनकी पतिव्रता राणी झाली अपने पीहर गोगूदा मे थी। पति की मृत्यु का समाचार पाते ही वह आश्वीन वदी ८ को बनेडा आ गई। श्मशान के पास आते ही उनके हृदय सागर मे पतिप्रेम का ज्वार उठा और आत्मा मे सती भाव जागृत हो गया। वह वहीं रुक गई। साथ के कर्मचारियो ने आगे चलने को कहा तो कम्पित स्वर और गद्गद कण्ठ से उन्होंने कहा "मेरे जीवन सर्वस्व, मेरे प्राणधार पति दुर्ग से इस स्थान पर आकर पचतत्व मे विलीन हो गये हैं, तब मै इस स्थान से आगे नही जा सकूंगी।"

उनके आगमन तथा उपरोक्त निश्चय की सूचना जब दुर्ग मे पहुची तब सम्बन्धिगण श्मशान मे उपस्थित हुए और महासती से निवेदन किया कि "वह एक बार दुर्ग मे चलकर अपने पुत्र और पुत्री का मुखावलोकन तो कर ले।"

इस पर महासती ने कहा "उनका जीवन मगलमय होगा। भगवान उनकी सारी मनोकामनाएं पूरी करेगा। मेरे पतिदेव दुर्ग से चले आये हैं। अब मेरा वहां जाना उचित नही है। जिस पथ से चलकर दुर्ग से यहां तक वह आये। अब उस पथ पर चलकर दुर्ग मे जाना मेरे लिये नितान्त असम्भव है। अब तो यहा से मेरे पतिदेव जहा गये हैं, वही मुझे जाना है। मेरा अब वही मार्ग है।"

महाराणी का ऐसा दृढ़ निश्चय देख सम्बन्धिगणों ने सती के शृंगार का समस्त साज सामान वहीं मगा लिया। महासती ने सती के अनुरूप शृंगार किया और निम्नांकित भेंट मन्दिरों को समर्पित की —

१ श्री नाथजी को एक हथिनि।
२. श्री चारभुजाजी को एक घोडा।

३. श्री एकलिंगजी को एक घोड़ी।
४. श्री चतुर्भुजनाथ को एक घोड़ा।
५. जगन्नाथरायजी उदयपुर को एक घोड़ा।

इसके पश्चात् पद्मिनी नामक घोड़ी पर बैठकर श्मशान की परिक्रमा की और अर्धरात्री के समय वह महासती चितापर आरूढ़ हो गई और अपने पति की अनुगामिनी होकर स्वर्ग-सिधार गई।

व्यक्तित्व:—राजा उदयसिंह एक पत्नीव्रती, मितभाषी तथा व्यवहार कुशल थे। अपने स्नेहप्रधान तथा विनम्र स्वभाव के कारण महाराणा इनसे प्रसन्न रहे। इनके युवराजत्व काल में महाराणा ने इनको माण्डल ग्राम में भोम प्रदान की थी, जिसे उन्होंने महाराणा की विशेष कृपा समझकर स्वीकार कर लिया था, किन्तु बनेड़ा के सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने उसका आधिपत्य छोड़ दिया था।

अंग्रेज अधिकारी भी इनसे प्रसन्न रहे और इनकी सहायता करने में अपना गौरव समझते रहे।

राजा संग्रामसिंह

जन्म'—राजा संग्रामसिंह का जन्म ज्येष्ठ कृष्ण ४ वि० सं० १८७८ को हुआ।

राज्यारोहन.—पिता के स्वर्गवास के समय उनकी आयु केवल पन्द्रह वर्ष की थी। इनके मातामह राजा चित्रसिंह (छत्रसाल) ने गोगूदा से आश्वीन सुदी २ वि० स० १८६२ को पत्र लिखकर शोक प्रदर्शन किया और इनके मामा कुंवर लालसिंह ने गोगूदा से आश्विन सुदी १० वि० स० १८९२ को पत्र लिखकर उपदेश दिया कि "अपने पिता (राजा उदयसिंह) के समय के वयोवृद्ध तथा अनुभवी राज कर्मचारियों को अपनावे और उनके अधिकार मे जो राजकार्य हो, वह उन्ही के पास रखें। उनकी अनुभवभरी सम्मति से राज्य प्रबंध करे। हर एक व्यक्ति से मित्रता करने से तथा उनकी चाटुकारिता के वश हो जाने से राज्य प्रबन्ध मे और स्वयम् के प्रभाव मे हीनता आने की सम्भावना रहती है। इधर ध्यान रखें। उसी प्रकार राज्य की अमोल और कीमती वस्तुओं पर दृष्टि रखें। अपने शरीर की रक्षा का तथा राज्य की रक्षा का ध्यान रखे।"

इसी प्रकार का एक पत्र उस (लालसिंह) ने बनेडा राज्य के तत्कालीन प्रधान मोडी राम पचोली को उसी दिन लिखा कि "राजा संग्रामसिंह बालक हैं। उनकी और उसके राज्य की सुरक्षा का उत्तरदायित्व आप पर है। यह समय आपकी राजभक्ति का है। अतएव आप तथा दूसरे राज कर्मचारी लगनपूर्वक राज्य की सेवा करे।"[1]

महाराणा जवानसिंह ने कार्तिक बदी ९ वि० स० १८९२ को पत्र भेजकर शोक प्रदर्शन किया तथा विश्वास दिया कि "परम्परागत चली आ रही रीति के अनुसार बनेडा राज्य से व्यवहार होगा। आप निश्चिन्त रहे। यहा से शीघ्र ही तलवार लेकर राज कर्मचारी बनेडा भेजा जा रहा है।"[2]

महाराणा ने शीघ्र ही सुनहरी तलवार, आभूषण, मोतियो की कंठी, हाथी, घोडा आदि उपहार भेजे।

इसके पश्चात् उन्होंने वैशाख सुदी ४ वि० स० १८९३ को अपना राज्याभिषेकोत्सव सम्पन्न किया। इसी वर्ष वि० सं० १८९३ मे मेवाड प्रान्त की एजन्सी नीमच मे स्थापित हुई और कर्नल स्पीअर्स पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त हुआ। महाराणा जवानसिंह का स्वर्गवास भाद्रपद सुदी १० वि० सं० १८९५ को होने पर महाराणा सरदारसिंह भाद्रपद सुदी १५ वि० सं० १८९५ को मेवाड के सिंहासन पर बैठे। उन्होंने कुछ दिन पश्चात् मेहता शेरसिंह को हटाकर मेहता रामसिंह को मेवाड राज्य का प्रधान बनाया।[3]

महाराणा सामन्त सम्बन्ध —महाराणा भीमसिंह के समय से ही सामन्तो से विवाद चला आ रहा था। उस समय कर्नल कॉब ने विवाद का अन्त करने के लिये एक कौलनामा

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह। ३—उ० रा० इ०।

बनाया था। उसे न तो सामन्तों ने माना था, न महाराणा ने स्वीकार किया था। महाराणा सरदारसिंह के समय में उक्त विवाद ने उग्ररूप धारण किया। तब महाराणा ने सोचा कि यदि वह कौलनामा द्वारा पोलिटिकल एजेन्ट की मारफ़त के साथ स्वीकृत हो जावे तो यह विवाद मिट सकता है। कौलनामा नीचे लिखे अनुसार बनाया गया।

१—छटुन्द (खिराज) वास्तविक आय के छटे भाग की दर से लगाई और समान रूप से छः मास की किश्त से दी जावेगी, उसके अतिरिक्त न तो और कुछ लिया जावेगा, न कोई अनियंत्रित दण्ड लिया जावेगा।

२—अपनी बारी आने पर प्रत्येक सामन्त को सनद के अनुसार जितनी सेना रखनी चाहिये, उसकी आधी सेना सहित प्रतिवर्ष तीन महिने तक महाराणा की सेवा करनी पड़ेगी। अवधि पूरी होते ही महाराणा सामन्तों को अपनी जागीर में जाने की आज्ञा देंगे।

३—मेवाड में सफर करते समय विदेशी व्यापारी आदि किसी गांव में ठहरेंगे तो उसकी सूचना उसके स्वामी या अधिकारियों को देंगे। जो उनके माल और सामान के प्रति उत्तरदायी होंगे। जो व्यापारी सूचना न देकर गांव से दूर ठहरेंगे, उनकी हिफ़ाजत के लिये वे उत्तरदायी नही होंगे।

४—खालसे की रीति के अनुसार सामन्त आदि अपनी प्रजा से पैदावार की आधी आय लिया करें। यदि इसमें आपत्ति हो तो दस्तूर के अनुसार जनता तिहाई आय तथा "बराड़" दिया करे।[1]

५—हम अपने कामदारों, पटेलो आदि का हिसाब न्यायपूर्वक करेंगे।

६—उचित कारण के बिना कोई गांव कुर्क नही किया जावेगा।

७—यदि कोई सरदार अपराध करेगा तो उसे अपराध के अनुसार दण्ड दिया जावेगा।

८—वि० सं० १८२२ से पहले दी हुई सारी भोम[2] जायज समझी जावेगी।

९—घौस[3], रोजीना[4]; दस्तक[5] इत्यादि किसी सरदार पर जिले की कचहरियों से जारी न किये जावेंगे। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे प्रधान द्वारा जारी हो सकेंगे।

१०—शरणा नियमानुसार पाला जावेगा, परन्तु कातिलों के लिये नही।[6]

१—बराड़:—अनेक प्रकार के करों का सामुहिक शब्द है, जैसे गनीमका बराड़, युद्ध विषयक बराड़, न्योता बराड़ आदि।

२—भोम से तात्पर्य वंश परम्परागत भूमि से है। इस पर कर नहीं लिया जाता। गांव की रक्षा करने का काम उनकी ओर था।

३—किसी सामन्त की ओर राज्य की रकम बाकी रहने पर जो सवार आदि भेजे जाते हैं उसे घौस कहते हैं, उनका खर्च व वेतन सामन्त को देना पड़ता है।

४, ५—यह भी एक प्रकार की घौंस ही है।

६—कुछ सामन्तों (सलूम्बर, कोठारिया) को यह अधिकार प्राप्त था कि कोई अपराधी उनके यहां शरण लेता तो वे उसकी रक्षा करते और उसको राज्य को नहीं देते थे। इसे 'शरणा' कहते हैं।

उपरोक्त कौलनामे से महाराणा सरदारसिंह की उद्देश्य की पूर्ति नही होती थी, अतएव उपरोक्त कौलनामे मे अपने लाभ की पाच धारायें और बढाने का उन्होंने आग्रह किया। वे निम्न प्रकार हैं —

१—पहले[1] (ई० स० १८१८) के कौलनामे की आठवी धारा मे लिखा है कि कोई सामन्त अपनी प्रजा पर जोर जुल्म नही करेगा तथा नये दण्ड बराड आदि जो उपद्रव के समय मे लगाये गये थे, लिया जाना बंद कर दिये जावेंगे। सामन्तों ने कौलनामे का पालन न करते हुये प्रजा पर अत्याचार किया जिससे प्रजा मेवाड छोडकर चली गई। अतएव स्थिर हुआ कि वे भविष्य मे ऐसा व्यवहार करें जिससे प्रजा फिर आबाद हो। उनके पट्टो की आय बढ़े और देश की उन्नति हो।

२—प्रत्येक सरदार के अपनी सेना के साथ प्रतिवर्ष तीन मास तक दरबार की सेवा मे उपस्थित रहने की जो प्रथा चली आ रही है, वह चालू रहेगी। सेवा अवधि समाप्त होने पर कोई सामन्त उदयपुर मे नही रोका जावेगा। क्योकि ऐसा करने से सामन्तों को अनावश्यक व्यय और कष्ट उठाना पडता है। यह दरबार की इच्छा पर निर्भर है कि वे किसी सामन्त की हाजरी को माफ कर दें, पर जब तक इस प्रकार माफ किये हुवे सरदार के हाजिर रहने की अवधि पूरी नही हो जावेगी तब तक वे उसके स्थान पर और किसी सरदार को नही रखेंगे। सामन्तों को अपनी पूरी सेना रखनी पडेगी, यदि वे नियत संख्या से कम रखेंगे, तो महाराणा उनसे अप्रसन्न होंगे।

३—विदेशी शत्रुओ से मेवाड की रक्षा के लिये दरबार की खालसा जमीन की आय मे से रुपये पीछे छ आने अंग्रेजी सरकार को खिराज के देने पडते हैं। जिसके लिये सामन्तों से कुछ नही लिया जाता। विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा के लिये ही सरकारी खिराज दिया जाता है, क्योंकि सामन्तों की सेना इस कार्य के लिये पर्याप्त नही है। अंग्रेजी सरकार की इस सहायता से सामन्तों का बडा लाभ है। पहले दखनियो (मरहठो) को जिनसे देश की बडी हानि होती थी, चौथ दी जाती थी। अब वह बुराई दूर हो गई है। सामन्त जितनी सेना देनी है, उसकी आधी देते हैं। जो नौकरी के लिये सर्वथा अयोग्य है। जिस प्रकार दरबार अपनी खालसा भूमि की आय मे से अंग्रेजी सरकार को खिराज देते हैं, उसी प्रकार सामन्तों को भी चाहिये कि वे अपने ठिकानों की आय मे से दरबार को कर दिया करे। किन्तु यह जानकर कि उन्हें अपने सम्बन्धियो तथा सेवकों के निर्वाह लिये भारी खर्च उठाना पडता है, इस कारण उनके लिये ऐसी माग पूरी करना कठिन है। महाराणा ने यह उचित समझा है कि खालसे की भूमि मे से खिराज दिया जावे और सामन्तों से कुछ न मांगा जावे। महाराणा ने यह तजवीज की है कि रेख या स्थिर की हुई आय के अनुसार सामन्तो की सेना से जो सेवा ली जाती है, वह आधी कर दी जावे शेष आधी के बदले उनसे प्रति रुपया (रेख) दो आने साडे सात पाई की दर से छटूंद ली जावे और राज्य की सेना के लिये इस रकम से सेना भरती की जावे। सरदारो को यह न समझना चाहिये कि यह धन उनसे अंग्रेजी सरकार का खिराज अ-

---

१—यह कौलनामा वि० सं० १८७५ में कर्नल टॉड ने तैयार किया था।

करने को ली जावेगी क्योंकि इसका कोई हिस्सा फौज खर्च के सिवा और किसी काम में न लगाया जावेगा। पूरी जमीयत के साथ बारह महिने सेवा करने में सरदारों को बड़ा खर्च और तकलीफ उठानी पड़ती थी। अब ऐसी सेवा से छुटकारा मिल जाने पर उनके लिये छटुंद देना कठिन न होगा। आवश्यकता पड़ने पर यदि दरबार पूरी फौज तलब करेंगे और मेवाड़ की सीमा के बाहर उसे नौकरी पर भेजेंगे तो जो सरदार सेना देंगे उनकी छटुंद की रकम माफ कर दी जावेगी।

४—महाराणा इकरार करते हैं कि बिना कारण किसी सरदार के गांव जब्त न करेंगे और उन्हे दूसरों को न देंगे।

५—छटुन्द देने में कई सरदार जानबूझ कर देर करते हैं; जिससे दरबार को लाचार होकर राज्य की रकम वसूल करने के लिये उनके ठिकानों पर सवार तथा पैदल के दस्तक भेजने पड़ते हैं। इससे सरदारों को सैंकडो रुपयों की हानि उठानी पड़ती है और दरबार को भी कोई लाभ नही होता इसलिए महाराणा ने निश्चय किया है कि सब सरदारों के वकील बुलाये जावें और प्रधान के साथ मिलकर वे पांच साल के लिये दो किश्तों से छटुन्द दिये जाने का बन्दोबस्त करे, ऐसा करने से रोजीना या दस्तक भेजने की आवश्यकता न होगी। यदि कोई सरदार नियत समय से दस दिन पीछे तक छटुन्द न दे सकेगा तो चढ़ी हुई छटुन्द के अनुसार उसकी भूमि तथा गांव जब्त कर लिये जावेंगे और वे उसे लौटाये नही जावेंगे।

"छटुन्द की पहली किश्त मार्गशीर्ष सुदी १५ और दूसरी ज्येष्ठ सुदी १५ को अदा की जावेगी।"

इस कौलनामे पर माघ वदी १३ वि० सं० १८९६ को महाराणा तथा उपस्थित आठ सामन्तों ने हस्ताक्षर किये तथा साक्षी के रूप मे पोलिटिकल एजन्ट मेजर रॉबिन्सन ने हस्ताक्षर किये किन्तु इस कौलनामे का पालन भी न तो सामन्तों की ओर से हुआ, न महाराणा ही इसको कार्यान्वित कर सके।

इसी वर्ष वि० सं० १८९६ मे भोमट के भीलों और ग्रासियों ने उपद्रव मचाया। उन्होंने महाराणा के थानों पर आक्रमण कर १५० सैनिकों को मार डाला। इस दुर्घटना की सूचना पाकर महाराणा ने पोलिटिकल एजेन्ट रॉबिन्सन को उसके दमन के लिये अंग्रेजी सेना भेजने को लिखा तथा उन्होंने अपने सामन्तों को भी सेना भेजने के लिये आदेश भेजे। श्रावण सुदी ११ वि० सं० १८९६ को मेहता रामसिंह ने राजा संग्रामसिंह को पराक्रमी सैनिकों सहित उदयपुर आने को लिखा तथा महाराणा ने श्रावण सुदी १० वि० सं० १८९६ को आदेश भेजकर लिखा कि २५ सवार और ५० पैदल शीघ्र जहाजपुर भेज दीजिये।[1]

कौलनामे की शर्ते स्वीकार हों, चाहे न हों, राजा संग्रामसिंह नियम के अनुसार अपने स्वामी की आज्ञा के पालन में आश्वीन वदी ६ वि० स० १८९६ को उदयपुर गये और आश्वीन वदी अमावस को वापिस बनेड़ा आ गये।[2]

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह।

महाराणा को अंग्रेजों से सहायता नहीं मिली। तब उन्होंने सोचा कि उदयपुर मे भीलों की एक सेना बनाई जावे और आवश्यकता पड़ने पर खेरवाड़े पर भेजी जावे। कर्नल सदरलैण्ड, कर्नल राबिन्सन तथा महीकाठा के पोलिटिकल एजेन्ट की सम्मति से वि० स० १८९७ के माघ मे भीलो की सेना सघटित किये जाने का कार्य प्रारम्भ हुवा।[1]

कौलनामे के सम्बन्ध मे मतभेद होते हुये भी राजा सग्रामसिंह अपने स्वामी महाराणा के प्रति कर्तव्य निभाते रहे। महाराणा का एक विवाह महाराजा रत्नसिंह बीकानेर की पुत्री के साथ आश्वीन सुदी ९ वि० स० १८९७ को हुआ था। वहा से जब वह उदयपुर आने को निकले, तब बनेडा राज्य के ग्राम मेघरास मे कार्तिक सुदी १५ को उनका मुकाम हुआ। राजा सग्रामसिंह भी उक्त ग्राम मे पहुंचे। अपने स्वामी का यथायोग्य स्वागत तथा आदर सत्कार कर नौछावर आदि रीति उत्साहपूर्वक सम्पन्न की। महाराणा के वहा से जाने पर वह अजमेर गये। वहा वह अंग्रेज अधिकारियो से मिलकर उनकी मित्रता और सहानुभूति प्राप्त करना चाहते थे, किन्तु इस कार्य मे उन्हे जितनी सफलता चाहिये उतनी नही मिली, तब उन्होंने बीकानेर नरेश को लिखा कि "वह बनेड़ा राज्य के प्रति सहानुभूति रखने के लिये अंग्रेज अधिकारियो से निवेदन करे।" बीकानेर नरेश ने महाराव हिन्दूमल द्वारा तत्कालीन प्रमुख अंग्रेज अधिकारी को माघ बदी १८ वि० सं० १८९७ को लिखा कि "राजा सग्रामसिंह महाराजा दलेलसिंह की पुत्री के साथ विवाह करने बीकानेर आये है। वह बनेडा वापिस जा रहे हैं। वह आपसे भेंट करने आवेंगे, आप इनसे सम्मानपूर्वक भेंट करे और सहानुभूति रखें। यह महाराणा के निकटतम सम्बन्धि हैं।"[2]

महाराणा सरदारसिंह बीमार हुवे और जब किसी प्रकार भी बीमारी नही मिटी तब उन्होंने तीर्थ स्थान मे रहकर अपनी शेष आयु बिताने का विचार किया तथा राजा सग्रामसिंह को वैशाख कृष्ण ८ वि० सं० १८९९ को लिखा कि "आषाढ बदी अमावस को सूर्य पर्व पर मैं सोरमजी जाना चाहता हू। आप सेना लेकर उदयपुर आ जावे।" राजा सग्रामसिंह ने इस आज्ञा का भी पालन किया।"[3]

ज्येष्ठ बदी १० वि० स० १८९९ मे महाराणा वृन्दावन जाने के लिये निकले किन्तु मार्ग मे ही उनकी बीमारी अधिक बढ़ गई तब उनके साथ के सामन्त उन्हे उदयपुर ले आये। अन्त मे आषाढ़ सुदी ७ वि० सं० १८९९ को उनका स्वर्गवास हो गया और आषाढ सुदी ८ को महाराणा स्वरूपसिंह मेवाड राज्य के सिंहासन पर बैठे। यह महाराणा चाहते थे कि मेवाड राज्य की आर्थिक दशा, जो विगत कई वर्षों मे विशृंखल हो रही है उसे सूत्रबद्ध किया जावे। उन्होंने मेहता रामसिंह को आय व्यय का हिसाब बताने को कहा, किन्तु वह उनके आदेश की अवहेलना करता रहा। अन्त मे उन्होंने फाल्गुन बदी १ वि० स० १९०१ को उसे प्रधान पद से अलग कर मेहता शेरसिंह को फिर प्रधान बनाया। महाराणा यह भी चाहते थे कि सामन्तों के छटुद, चाकरी, नजराना आदि के सम्बन्ध मे जो विवाद कई वर्षों से चल रहा है, उनका निर्णय कर दिया जावे। उन्होंने कर्नल राबिन्सन को एक नया कौलनामा

१—उ० रा० इ०। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह।

वनाने को कहा। उसने माघ सुदी २ वि० सं० १९०१ को सामन्तों की सम्मति से निम्न कौल-नामा तैयार किया।

१—पहले कौलनामे की सब शर्तें बहाल रहेंगी। प्रति वर्ष दशहरे से दस दिन पहले सब सरदार उपस्थित होंगे। सरदारों की जमीयतों का निरीक्षण करने के पश्चात् दरबार जिस सरदार से चाहें उससे तीन महिने तक नौकरी लेंगे। वे (महाराणा) सरदारों के नाम और नौकरी की मियाद साफ साफ बतलावेंगे और उन्हें अपने घर जाने की आज्ञा देंगे। नौकरी करने मे सरदारों की जमीयतें कोई बहाना नही करेंगी। यदि वे नियत समय पर उपस्थित नहीं होंगी या असावधान अथवा सख्या मे कमी पाई जावेगी तो जिन सरदारों की वे होंगी उन्हें श्री दरबार को उनके बदले नकद रुपये देने होंगे।

२—पहले कौलनामे की शर्त के अनुसार सरदार बराबर नियत समय पर (छोड़ी हुई) आधी जमीयत के बदले, जो उन्हें रखनी पड़ती थी। रुपये पीछे दो आने साढ़े सात पाई की दर से छटुंद देंगे।

३—अपने अपने पट्टों मे सरदारों को चोरी डकैती रोकने की भरसक कोशिश करनी होगी। बाहरी राज्यों के चोरों, बागियों या लुटेरों को वह आश्रय न देंगे। परन्तु ऐसे सब अपराधियो को, जो उनके इलाकों मे जाने की कोशिश करें वे गिरफ्तार करेंगे और उन्हे दरबार (महाराणा) की सम्मति से जो व्यवस्था जयपुर एवम् जोधपुर राज्यों ने स्वीकार की है उसके अनुसार जिस राज्य की वे प्रजा हों, उसे लूटे हुये माल सहित जो उनके पास मिले, सौंप देंगे।

४—सरदारो की प्रार्थना पर दरबार ने यह स्वीकार किया है कि सरहद्दी या दूसरे मामलों के विषय मे, उनमे जब कभी कोई झगड़ा उठे तब जहां झगड़ा हो, वहां पंचायत इकट्ठी होगी। जिसमे सरदारों के तो चार और दरबार का एक व्यक्ति रहेगा। उनका कर्तव्य होगा कि वे झगड़े की जांच पड़ताल कर उसका पक्षपात रहित तथा न्यायपूर्वक निर्णय करें और दोनों पक्षवालों को उनका निर्णय मानना होगा।

५—दोनों पक्षवालों की मर्जी और खुशी से यह कौलनामा तैयार हुआ है और दोनों पक्षवाले इसका पालन करेंगे। कौलनामे और महाराणा जवानसिंह की रीति के अनुसार सब सरदार प्रसन्नतापूर्वक छटुंद देते और नौकरी करते रहेंगे। सरदारों से कोई असावधानी होगी या इस कौलनामे की शर्तों के विरुद्ध वे कोई आचरण करेंगे, तो दरबार उन पर अप्रसन्न होंगे। जैसा कि प्रथम कौलनामे मे लिखा है।"

इस कौलनामे पर दरबार की आज्ञा से मेहता शेरसिंह ने और सरदारों मे से रावत नाहरसिंह (देवगढ़) रावत पृथ्वीसिंह (आमेट) महाराज हमीरसिंह (भीडर) तथा राव दुलहसिंह (आसीन्द) ने हस्ताक्षर किये।[1]

उपरोक्त कौलनामा भी कार्यान्वित नही हो सका। सामन्तों ने उसका पालन नही किया। महाराणा भी इस कौलनामे की शर्तों के अनुसार सामन्तों से सेवा न ले सके। राजा

१—उ० रा० इ०।

संग्रामसिंह ने इस कौलनामे की शर्तों को परम्परागत रीति पर तथा सम्मान पर आघात समझा और उनका पालन करना स्वीकार नही किया।

उक्त कौलनामे के अनुसार बनेडा राज्य की छटूंद आठ हजार से बढकर बारह हजार हो गई। तब राजा सग्रामसिंह ने वैशाख सुदी १३ वि० सं० १९०२ को उक्त छटूंद कम करने को महाराणा की सेवा मे निवेदन किया।[1] इस पत्र मे उन्होंने अपनी आर्थिक अवस्था का भी दिग्दर्शन किया। किन्तु इसपर उदयपुर मे किसी ने ध्यान नही दिया और कौलनामे का पालन करने को उन्हे लिखा।

कर्नल रॉबिन्सन ने भी फाल्गुन वदी अमावस को राजा सग्रामसिंह को लिखा कि "कौलनामा सामन्तों के हित मे है। आप उसका पालन करे।"[2]

चैत्र सुदी २ वि० स० १९०४ को उन्होंने महाराणा की सेवा मे निवेदन किया कि "कौलनामा अवश्य तैयार हुआ किन्तु स्वामी की ओर से उसका पालन करने के लिये आज्ञा प्राप्त नही हुई थी। इसलिये उसका पालन नही हो सका। स्वामी की आज्ञा के पालन मे कौल नामे की शर्तों के अनुसार छटून्द देगे और सेवा करेंगे।"[3]

इस पत्र की एक प्रतिलिपि उन्होने कर्नल रॉबिन्सन की ओर उनके पत्र के उत्तर मे भेजकर कौलनामे की शर्तों का पालन करने की सूचना दी।[4]

इतना ही नही वह स्वयम् कार्तिक वदी २ को उदयपुर गये। महाराणा उनसे प्रसन्न रहे। फाल्गुन वदी अमावस को उदयपुर से वापिस आने पर उन्होंने बीकानेर नरेश महाराजा रत्नसिंह को महाराणा के प्रसन्न होने की सूचना दी। जिस पर बीकानेर नरेश ने भाद्रपद वदी ७ वि० सं० १९०४ को पत्र लिखकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।[5]

महाराणा ने हर्षित होकर वैशाख सुदी ४ वि० स० १९०६ को भवन (हवेली) तक पहुँचाने जाने का बहुमान, जो कुछ समय से बन्द हो गया था, राजा सग्रामसिंह को पुन प्रदान किया।[6]

इस प्रकार उनके और महाराणा के सम्बन्धों मे सुधार हुआ। महाराणा ने आश्विन सुदी १३ वि० स० १९०६ को स्वयम् पत्र भेज कर राजा सग्रामसिंह को लिखा कि "जहाजपुर के हरामखोरों को सजा देनी है तथा बूंदी राज्य से सीमा झगडा है सो अच्छी लडाकू सेना मेहता जालिमसिंह के पास भेज दीजिये।" आदेश पाते ही उन्होंने अपनी सेना कार्तिक वदी ४ को जहाजपुर भेज दी।[7]

वि० स० १९०७ मे फिर बूंदीवालो ने मेवाड की सीमा पर आकर झगडा किया, तब महाराणा ने श्रावण सुदी १ वि० सं० १९०७ और मेहता शेरसिंह ने श्रावण सुदी २ को राजा संग्रामसिंह को लिखा कि "बूंदी वालो ने सीमा पर आकर झगडा किया है। दोनो ओर के व्यक्ति हताहत हुये हैं, आप तत्काल अपनी सेना जहाजपुर भेज दीजिये।" राजा संग्रामसिंह

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह। ४—बनेडा संग्रह।
५—बनेडा संग्रह। ६—बनेडा संग्रह। ७—बनेडा संग्रह।

ने भाद्रपद बदि ३ वि० सं० १९०७ को अपनी सेना जहाजपुर भेजकर उक्त दोनों आदेशों का पालन किया।[1]

आश्विन सुदि १ वि० सं० १९०७ को उन्होंने कौलनामे की शर्तों को समझकर एक लिखतम महाराणा को लिख दी, जिसके अनुसार छटूंद की रकम ८०६७ रुपये देना उन्होंने स्वीकार किया।[2]

वि० सं० १९०७ मे राजा संग्रामसिंह बीमार हुये और उन्हें महाराणा ने उदयपुर बुलाया। अशक्तता तथा बीमारी के कारण उन्होंने उदयपुर जाने मे असमर्थता प्रकट की। तब मेहता शेरसिंह ने मार्गशीर्ष सुदी ११ वि० सं० १९०७ को कठोरतापूर्वक लिखा कि "आप बीमार हैं तो म्याना (पालकी) मे बैठकर आइये।" महाराणा ने भी पोष वदी ३ को लिखा कि "मेरे जन्म दिवस के उत्सव के अवसर पर अवश्य आइये।[3]

वह अपनी बीमारी के कारण ही उदयपुर नहीं जासके थे, और इसी कारण को लेकर फिर उन पर महाराणा की अवकृपा हो गई। स्वामीभक्त होने के नाते उन्होंने कौलनामे के पालन में छटूंद देना भले ही स्वीकार कर लिया हो किन्तु उसे वह हृदय से नही चाहते थे। उनका मामा कुंवर लालसिंह गोगून्दा विशेष रूप से कौलनामे के विरुद्ध था। वि० सं० १९०१ मे बने जिस कौलनामे पर जिन चार सामन्तों ने हस्ताक्षर किये थे, वह भी उसे नहीं चाहते थे।

इस कारण सामन्त उसके पालन में उदासीन रहे। सामन्तों के इस प्रतिकूल व्यवहार से महाराणा ने क्रोधित होकर पोलिटिकल एजेन्ट से उनकी शिकायत की। उसने इस सम्बन्ध में सामन्तों से पूछताछ की तो सभी सामन्तों ने महाराणा के कठोर तथा अनुचित व्यवहार की ओर संकेत करते हुवे निवेदन किया कि "कौलनामे के अनुसार जितने समय तक नौकरी लेने का नियम है, उससे अधिक हमसे नौकरी ली जाती है। छोटी छोटी बातों को लेकर हम पर दण्ड किया जाता है। हमारे पट्टों के अन्दरुनी प्रबन्ध में हस्तक्षेप किया जाता है। जो इससे पूर्व किसी महाराणा के समय मे नही हुआ।[4]

अंग्रेजी सरकार ने इसकी जांच की तो प्रकट हुआ कि सामन्तों के लिखने में सत्यता है। महाराणा ने उनकी भूमि पर ही आधिपत्य नहीं किया है वरन् उनके पट्टों के ग्राम भी आबाद कर लिये हैं।

महाराणा ने भी अंग्रेजी सरकार से सामन्तों की शिकायत करते हुवे लिखा कि "सामन्त लोग मेरे आदेशो का पालन नही करते है और मेवाड़ राज्य के प्रति विद्रोह की भावना रखते है।"

यह उन्होंने इसलिए लिखा कि नियमित रूप से छटून्द न देने तथा चाकरी न करने के कारण महाराणा ने सलुम्बर और देवगढ़ ठिकाने के कुछ गांव जब्त कर लिये थे किन्तु कार्तिक बदी ८ वि० सं० १९०८ को उक्त ठिकानों के सामन्तों ने अपने जब्त किये हुये ग्रामों पर से महाराणा के सैनिकों को भगा दिया था और वह गांव फिर अपने आधिपत्य में ले लिये थे।

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह। ४—बनेड़ा संग्रह।

दोनों ओर की जानकारी लेने पर भी पोलिटिकल एजेंट, सामन्त और महाराणा के बीच सामजस्य प्रस्थापित नही कर सका, न कोई कठोर आदेश ही दे सका। इसका एक मात्र कारण यह था कि अंग्रेज सरकार की उन दिनो यह नीति थी कि किसी भी राजा के अन्दरूनी विषयों मे हस्तक्षेप न किया जावे। इस नीति को अपनाते हुये पोलिटिकल एजेन्ट ने दोनों को आपस मे समझौता कर लेने की सम्मति दी।

समझौते के हेतु उपयुक्त वातावरण निर्माण करने के लिये सामन्तों ने यह सोचा कि प्रथम समस्त सामन्त अथवा उनके प्रतिनिधि भीडर एकत्रित होवें। वहा से सलुम्बर जावे। वहा एक मत होकर किसी निश्चय पर पहुँचा जावे और सर्वानुमत से प्रस्ताव बनाकर महाराणा से निवेदन करे। यदि महाराणा उक्त प्रस्ताव को अस्वीकार कर देवें तो फिर अंग्रेजी सरकार से निवेदन किया जावे। इस कार्यवाही की सूचना गोगून्दा से कुवर लालसिह ने आषाढ बदी १ वि० सं० १९०८ को देकर राजा संग्रामसिह को लिखा कि "आप अपना प्रतिनिधि अवश्य भीडर भेज देवें।"[1]

जब कोई कर्मचारी बनेडा से भीडर नही गया। तब आषाढ सुदी ६ वि० स० १९०८ को भीडर से लक्ष्मणसिह ने चेतावनी देते हुये लिखा कि "आपकी ओर से आने वाले कर्मचारी की प्रतीक्षा की जा रही है यदि हम समय पर जागृत नही हुवे तो अपने प्रदेश नही रख सकेंगे। सब ठिकानों के प्रतिनिधि रुके हुये हैं। अपना कर्मचारी शीघ्र भेजे।"[2]

राजा संग्रामसिह ने अपनी ओर से देवराज नामक प्रतिनिधि को भीडर भेजा और एक विस्तार पूर्वक पत्र भी सलुम्बर भेजा।[3]

इसी समय पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल रॉबिन्सन का स्थानान्तर होकर उसके स्थान पर सर लारेन्स नियुक्त होकर आया। जिसकी सूचना महाराणा तथा मेहता शेरसिह ने चैत्र सुदी ४ तथा ६ वि० स० १९०९ को राजा संग्रामसिह को देकर लिखा कि "आपको सारी बातों की जानकारी है ही, अब रेजीडेन्ट के पद पर सर हेनरी लारेन्स आये हैं। वह बहुत उदार और दूरदर्शी हैं। राज्यों की उन्नति चाहने वाले हैं। इसलिये दरबार चाहते हैं कि सामन्तो के ग्रामों मे चोरी, डकैती न हो, जनता की सुरक्षा का प्रबन्ध हो, यदि ऐसा नही होगा तो बिगाड होगा। उसी प्रकार छटून्द चाकरी आदि उचित देनी होगी, अभी अपने हाथ मे है। इसलिए साहब की सेवा मे लिख दीजिये कि छटून्द चाकरी आदि सब हमे स्वीकार है। यदि इस प्रकार आप लिख कर नही देवेंगे तो सदर मे रिपोर्ट जाने पर कोई आपत्ति नही सुनी जावेगी। इसलिए आपको ताकीद की गई है। कौलनामा दोनो पक्षों को लाभदायक है। दरबार चाहते हैं सब नियमानुसार हो, फिर दरबार को अधिकार होगा कि वह माफ करें।[4]

बिना सोचे विचारे सब स्वीकार कर लेने के लिये एक प्रकार मे यह महाराणा का आदेश ही था। इस प्रकार के आदेश सभी सामन्तों की ओर भेजे गये थे। इस सम्बन्ध मे

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह।
४—बनेडा संग्रह।

देवगढ़ के रावत रणजीतसिंह ने वैशाख वदी १ वि० सं० १९०९ को लिखा कि—"ऐसे आदेश सब दूर भेजे गये हैं आप इसका उत्तर सोच समझकर दीजिये।"

राजा संग्रामसिंह को इस आदेश में सामन्तों के अधिकारों के प्रति उपेक्षा प्रतीत हुई। उन्होंने चैत्र सुदी १२ वि० स० १९०९ को स्पष्ट और स्वाभिमान-पूर्वक महाराणा की सेवा मे निवेदन किया कि "श्रीमान का आदेश चैत्र सुदी ९ को मिला।" श्रीमान ने लिखा है कि "आपको सारी बातों की जानकारी है ही" सेवक को इसका अर्थ समझ में नही आया कि कौनसी वह बातें हैं जिनकी जानकारी मुझे है। कृपया उन वातों का विवरण भेजिये। श्रीमान रेजीडेन्ट साहब की प्रशंसा मे जो लिखा है उससे मुझे भी हर्ष हुआ है कि ऐसे उदार और दूरदर्शी अधिकारी आये हैं, तो अवश्य हम लोगों का भला होगा। चोरी, धाडे का प्रवंध नहीं होगा तो बिगाड़ होगा। ऐसा भी श्रीमान ने लिखा है। इसका प्रवंध तो श्रीमान को ही करना है, क्योंकि डाके डालनेवाले और चोरी करनेवाले खालसे के ही व्यक्ति है। इनका प्रवंध होने पर चोरी, धाड़े सब बंद हो जावेंगे। छटून्द चाकरी की बात अभी हाथ मे ही है, इसका क्या अर्थ है? कृपया स्पष्टीकरण भेजिये। इनका प्रवन्ध तो कौलनामे में ही हो गया है। श्रीमान ने यह भी लिखा है कि सदर मे रिपोर्ट जाने पर और उसका उत्तर आने पर आपत्ति करोगे तो फिर हमारे हाथ में कुछ न रहेगा।" श्रीमान की सेवा में मेरी विनम्र प्रार्थना है कि अपने अधिकार दूसरों के हाथों मे देना स्वदेश का अहित करना है। श्री जी हुजूर हमें ईश्वर तुल्य हैं। परम्परागत छटून्द चाकरी हमसे लेवें और हमारी रोटी हमें प्रदान करें। जिससे हम सब सेवा में उपस्थित रहें और हम कुछ नहीं चाहते। दशहरे पर समस्त सामन्तों को चले आ रहे नियमानुसार बुलावेंगे तो सेवा मे उपस्थित होंगे। अन्त मे मेरा यही निवेदन है कि हम सब सरदारों को उदारतापूर्वक अपनाकर हृदय से लगावें।"[२]

यह पत्र राजनीतिक दृष्टि से बहुत महत्व का है। राजा संग्रामसिंह ने तत्कालीन सामन्तों की मनोवृति और महाराणा की प्रवृति को देख और परख कर नम्रतापूर्वक किन्तु निर्भीक होकर जो सम्मति दी है, वह प्रशंसा के योग्य है।

सर हेनरी लारेन्स ने आते ही मेवाड़ की जानकारी लेने के लिये दौरा किया। वह फाल्गुन सुदी ६ वि० सं० १९०९ को उदयपुर आया। महाराणा से सामन्तों के विद्रोह भरे व्यवहार के सम्बन्ध मे वार्तालाप हुआ। तव लारेन्स ने कहा कि "आप मेवाड़राज्य के अधिपति हैं। आप जैसा चाहे प्रवंध करें। आपसी विवाद में हम हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे। सर लारेन्स फाल्गुन सुदी १३ को बनेड़ा भी आया। राजा संग्रामसिंह ने उसका बहुत सम्मानपूर्वक आदरातिथ्य किया। बातचीत के मध्य मे महाराणा के व्यवहार का प्रसंग आया तो लारेन्स ने कहा कि "आपसी झगड़ों में लाभ नहीं होता। सम्भव है जिस प्रकार राज्य करौली में अंग्रेजों की ओर से प्रवंध किया गया है। उसी प्रकार यहां भी करना पड़े। परिणाम स्वरूप दोनों को हानि उठानी पड़ेगी। आपस मे समझौता कर लीजिये।"

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह।

राजा सग्रामसिह ने कहा कि "वह स्वामी हैं, मानते नही हैं। श्री एकलिगजी करेंगे वही होगा और कोई उपाय नही है।"

इस पर लारेन्स ने कहा कि "आप निश्चिन्त रहे। सब कुछ अच्छा ही होगा।"

राजा सग्रामसिह ने वैशाख बदी २ वि० स० १९१० (राजकीय १९०९) को सलुम्बर के रावत केसरीसिंह को इस भेंट की सूचना दी।[1]

वैशाख बदी १४ वि० स० १९१० (राजकीय १९०९) को महाराणा ने उनके पत्र के उत्तर मे अन्तिम निर्णय दिया कि "कौलनामे पर अमल कीजिये अथवा आपस मे समझौता कर लीजिये तो ठीक है, वरन साहब लोग तो समझा ही देवेगे।"

इस प्रकार महाराणा और सामन्तो का विवाद बढता ही गया। सामन्तो ने झुकना स्वीकार नही किया और एक वर्ष पूर्व से ही एक सामूहिक मोर्चा बनाना प्रारम्भ कर दिया तथा कौलनामे पर पूर्ण विचार करके ही पालन करने के लिये आपस मे पत्र व्यवहार किया। श्रावण वदी १ वि० स० १६०९ को समस्त सामन्त स्वयम् अथवा उनके प्रतिनिधि सलुम्बर एकत्रित हुये। राजा संग्रामसिंह भी सलुम्बर गये। तीन दिन तक विचार विनिमय होता रहा। अन्त मे श्रावण बदी १२ वि० स० १९०९ को सर्वसम्मति से निम्नाकित कलमे स्वीकार की गई।

१—महाराणा की ओर से सामन्तों के साथ जो कटु व्यवहार हुआ है उसको लक्ष करके हम सब 'एक' हुये हैं। हमको हमारी रोटी बचाना है। इन कलमो के लिखे जाने के पश्चात् जो सामन्त इसका पालन नही करेगा, उसका हुक्का पानी बन्द कर दिया जावेगा और उसके साथ विवाह आदि सम्बन्ध नही होंगे।

२—अंग्रेजो की कचहरियों मे अथवा मसूदी, चपरासी और हरकारो के निमित्त जो खर्च होगा, उसके लिए उपज की आय पर प्रतिशत डेढ रुपया सबको देना होगा। यह रुपया साहूकार के यहा जमा रहेगा। उसका हिसाब प्रत्येक वर्ष मार्गशीर्ष मे समस्त सामन्त एकत्रित होकर समझेगे। यदि रुपया खर्च से अधिक जमा होगा तो जमा रहेगा। जमा से अधिक खर्च होगा तो नियमानुसार सबको देना होगा।

३—जो कुछ काम करेंगे पचो की राय से करेंगे।

४—आठ ठिकानो के सामन्त धर्म कर्म से सम्मिलित हुए हैं। उसी प्रकार चार ठिकाने भी सम्मिलित होगे। बाराही ठिकाने एक हो गये हैं, जो बदलेगे नही।

५—किसी सामन्त के मन मे कोई सन्देह निर्माण होगा तो उसे स्पष्ट रूप से कह देना होगा, जिससे वह उत्पन्न होते ही समाप्त हो जावे और भविष्य मे उसका बुरा असर न होने पावे। तिसपर भी कोई सामन्त अपनी मन की शका यथा समय प्रकट नही करेगा तो फिर वह उसे मन मे ही रखे, कभी भी प्रकट न करें।

६—सामन्तो मे आपस मे वैमनस्य उत्पन्न हो जावे तो, उसको दूर करने का यह उपाय

१—बनेड़ा संग्रह।

होगा कि ठिकाने के पंच दोनों ओर की आपत्तियां सुनकर किसी के भी प्रभाव में आये बिना आपस मे समझौता करा देवेंगे। जो सामन्त उसे नही मानेगा उसे सब सामन्त उपालम्भ देंगे।

७—एक साहूकारी दूकान सब सामन्त मिलकर खोलेगे। उसकी आय मे कुछ निधि एकत्रित की जाकर पूंजी कायम की जावेगी। यह दूकान पंचों के नाम की होगी। प्रतिवर्ष इसके आय-व्यय की जांच पंच अथवा उसके प्रतिनिधि करेंगे। किसी ठिकाने को आवश्यकता पड़ने पर प्रतिशत बारह आना व्याज की दर पर ऋण दिया जावेगा। उसकी अंशिवाएं निश्चित की जावेंगी जो जमा होती रहेंगी। इससे सबको सुविधा होगी और रुपया मिलने में असुविधा और विलम्ब नहीं होगा।

८—किसी ठिकाने पर कोई संकट आवेगा तो समस्त सामन्त हार्दिक रूप से एकत्रित होकर पूर्ण शक्ति से उसकी सहायता करेंगे और उसके संकट को दूर करेंगे अथवा उसका काम सफल बनावेंगे किन्तु इस कार्य मे उनको कही बाहर आने जाने का प्रसंग आवेगा तो भोजनादि का व्यय स्वयम् उठावेगे।

९—हम सब ठिकानों के सामन्त एक हैं। इनके अतिरिक्त जो भी सामन्त हमसे सहायता चाहेगा। हम उसे भी सहायता देंगे किन्तु उसे पंचों को कुछ रकम देनी होगी। यह रकम काम की महत्ता देखकर निश्चित की जावेगी। यदि वह काम सफल हो जाने पर धन नहीं देगा तो उसे ऐसी सजा दी जावेगी जो उसे जीवन भर याद रहेगी। फिर वह भाई ही क्यो न हो।

१०—न्याय और सत्य काम के लिये ही प्रयत्न किया जावेगा। अन्याय अथवा असत्य के लिये नहीं।

११—साधु, योगी, संन्यासी आदि की सहायता की जावेगी।

१२—सामन्तों के जो भाई और कुटुम्बी जन है वह अपने पाटवी (प्रमुख) से पूछे बिना न तो किसी को दत्तक (गोद) ले सकेंगे, न विवाह सम्बन्ध कर सकेगे। इसके विरुद्ध व्यवहार होने पर पंच उसे उपालम्भ देंगे।

अन्त में लिखा है कि यह कलमें सर्व सम्मति से लिखी गई हैं। श्री एकलिंगजी की आण तथा इष्टदेव की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करते हैं कि इनका पालन करेंगे और उन्हें निभावेंगे।[1]

सामन्तों के संघटन की भनक महाराणा के कानों पर भी पड़ी थी। महाराणा चिन्तित हुवे। उन्होंने उस संघटन को स्थायी होने से पूर्व ही नष्ट करने का विचार किया। देवगढ़ और सलुम्बर के सामन्तो ने उनके जब्त किये हुवे ग्रामो से महाराणा के सैनिकों को भगा देने से महाराणा उनसे अप्रसन्न थे। उन्होने सामन्तों मे फूट डालने के विचार से भींडर, आमेट, बदनावर आदि ठिकाने के सामन्तों को देवगढ़ और सलुम्बर का साथ छोड़ देने को कहा, किन्तु सामन्तों ने उक्त कलमबन्दी के पालन में महाराणा का कहना नही माना। तब उन्होंने सेना के बल पर सामन्तों को आधीन करने का विचार किया। महाराणा की ओर से बनेड़े पर भी सेना भेजी

१—बनेड़ा संग्रह।

जाने का समाचार पाकर राजा संग्रामसिंह चिन्तित हुये। वह बनेड़ा राज्य की रक्षा के लिये कटिबद्ध हुवे। उन्होंने कार्तिक सुदी ५ वि० सं० १९०९ को महाराव कोटा को लिखा "इधर महाराणा से छटून्द और चाकरी पर से हमारा झगड़ा हुआ है। सदा से जो रीतिनीति चली आरही है उसके विरुद्ध वह हमसे छटून्द और चाकरी लेना चाहते हैं। मैंने इसे स्वीकार नहीं किया तो अप्रसन्न हो गये हैं। ऐसा सुना गया है कि आरज्या को खाली कराने लिये सेना भेजी है। उसे खाली कराकर वह सेना सीधी बनेड़े पर आवेगी। अतएव आप शीघ्र सेना भेजकर मेरी सहायता करें।"[1]

कार्तिक सुदी ८ को उन्होंने बीकानेर नरेश को भी दो तोपों सहित सेना भेजने को लिखा।[2]

इस प्रकार के पत्र उन्होंने अपने सभी सम्बन्धी तथा मित्रों को लिखे। कार्तिक बदी ८ वि० सं० १९०९ को महाराव मेहता हरिसिंह जो अंग्रेज कार्यालय अजमेर में काम करता था उसके द्वारा अंग्रेज अधिकारी को सहायता करने को निवेदन किया।[3]

झाबुआ नरेश ने मार्गशीर्ष बदी ४ वि० सं० १९०९ को सहानुभूति प्रकट कर लिखा, "जब आप लिखेंगे, हम अपनी सेना भेजकर आपकी सहायता करेंगे।"[4]

बीकानेर नरेश ने मार्गशीर्ष सुदी १ वि० स० १९०९ को लिखा कि "दारू, सीसा, तोपें भेजना अंग्रेजों के राज्य काल में एक राज्य से दूसरे राज्य में नहीं जा सकते, आप अजमेर में बड़े साहब और महाराव मेहता हरिसिंह को लिखें।"[5]

राजा संग्रामसिंह ने पौष बदी ६ वि० स० १९०९ को कर्नल लारेन्स को लिखा कि हम तो परम्परा से चले आ रहे हमारे अधिकार चाहते हैं। हमें और कुछ नहीं चाहिये। महाराणा तो हमको मेवाड़ से निकाल देना चाहते हैं। आप इन्साफ करें।[6]

पौष बदी १३ वि० स० १९०९ को रावत रणजीतसिंह देवगढ़ ने लिखा कि "अपना प्रतिनिधि उदयपुर भेजो।"[7]

राजा संग्रामसिंह ने रावत सलुम्बर को फाल्गुन बदी ६ वि० स० १९०९ को लिखा कि साहब बहादुर को हमने निवेदन भेजा है। अभी कुछ दिन प्रतीक्षा करनी चाहिये। महाराणा समझ जावेंगे तो ठीक है। नहीं तो अंग्रेजों से न्याय करावेंगे।[8]

चैत्र बदी ११ वि० सं० १९१० को कर्नल लारेन्स ने राजा संग्रामसिंह को लिखा कि "महाराणा और सामन्तों के आपसी सम्बन्धों का निर्णय किया जाना है। महाराणा अपनी ओर से साधिकार दो सामन्त भेजेंगे। आप भी पूर्ण अधिकार देकर अपना प्रतिनिधि भेजें।"

अजमेर में सब सामन्त अथवा उनके प्रतिनिधि एकत्रित हुवे। राजा संग्रामसिंह भी वहां गये। उन्होंने कर्नल लारेन्स के सामने अपना वही मन्तव्य रखा कि हम सब सामन्त परम्परा

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह।
४—बनेड़ा संग्रह। ५—बनेड़ा संग्रह। ६—बनेड़ा संग्रह।
७—बनेड़ा संग्रह। ८—बनेड़ा संग्रह।

गत रीति नीति के अनुसार अपने अधिकार सुरक्षित रखना चाहते है।" और इसी पृष्ठ भूमि को लेकर उन्होंने आषाढ़ बदी १२ वि० सं० १९१० को लिख दिया कि "दस्तूर कदीम माफिक हमारा अधिकार कायम रखते हुये साहब बहादुर जो निर्णय करेंगे। वह हम सबको स्वीकार होगा। इससे हम बदलेंगे नही।"

इस इकरारनामे पर निम्नांकित सामन्तों ने हस्ताक्षर किये:—

१—रावत केसरीसिंह (सलुम्बर)। २—रावत पृथ्वीसिंह (आमेट), ३—कुंवर लालसिंह (गोगून्दा), ४—रावत उम्मेदसिंह (कानोड), ५—राजा संग्रामसिंह (बनेड़ा)।

इस इकरारनामे के लिखे जाने से कुछ समय के लिये सामन्त और महाराणा का विवाद मिट गया।

विविध घटनाएं:—१-महाराणा स्वरूपसिंह के राज्यारोहण समारम्भ के समय उदयपुर में दरबार हुआ था। उसमें सभी सामन्त उपस्थित थे। दरबार मे प्रथम स्थान बनेड़ा नरेश का था, उसके पश्चात् शाहपुरा नरेश का था। प्रथा यह थी कि महाराणा, सामन्तों को जब पान प्रदान करते थे, तब पान पाने का प्रथम मान बनेड़ा नरेश का होता था। जिस समय की यह घटना है उस समय शाहपुरा नरेश वृद्ध थे और बनेड़ा नरेश राजा संग्रामसिंह युवा थे। महाराणा को उपरोक्त प्रथा का ज्ञान न था। उन्होंने शाहपुरा नरेश को वृद्ध देखकर पहले उन्हें पान दिया। उन्होने पान लेकर "नजर" की। महाराणा ने "नजर" करने का कारण पूछा। इस पर शाहपुरा नरेश ने कहा "आज मुझे श्रीमान् ने पान पाने का प्रथम मान प्रदान किया है। इसलिये यह "नजर' की गई है।"

इसके पश्चात् बनेड़ा राज्य के पुराने कर्मचारियों ने महाराणा से निवेदन किया कि "पान पाने का प्रथम अधिकार बनेड़ा नरेश का है।"

तब महाराणा ने भूल स्वीकार करके निर्णय दिया कि "भविष्य में बनेड़ा नरेश को दाहिने हाथ से तथा शाहपुरा नरेश को बाएं हाथ से "बीडा" (पान) एक साथ देते जावेंगे। शेष मर्यादायें जैसी चली आ रही हैं, वैसी ही रहेगी" माघ सुदी ४ वि० सं० १८९९ को महाराणा ने पत्र भेजकर उपरोक्त प्रथा को स्थायी रूप दिया।

२—राजा संग्रामसिंह के समय में इन्दौर राज्य का स्वामी तुकोजीराव हुलकर था। उसने किसी कारणवश गुप्त रूप से उत्तर भारत की यात्रा की थी।[1] यात्रा करते हुवे तुकोजीराव बनेड़ा भी आया था। जिस समय वह बनेड़ा आया, तब दोपहर का समय था। आबादी के बाहर एक कुण्ड के भीतर उसने मुकाम किया। इस पुस्तक मे बनेड़ा के सम्बन्ध में जो विवरण है उसका संक्षेप मे वर्णन किया जाता है:—

"बनेड़ा का स्वामी संग्रामसिंह है। उसकी जागीर मे छप्पन ग्राम है। एक लाख रुपये की जागीर है। उदयपुर के महाराणा साहब बहादुर की ओर से जागीर पाता है। सौ सवारों से नौकरी चाकरी मे हाजिर रहता है। सवार हमेशा उदयपुर रहते हैं। नियत समय पर राजा उदयपुर जाता है।

१—यह पुस्तक फारसी भाषा में प्रकाशित हुई है।

हमारे आने के थोडी देर पश्चात् राज्य के कुछ सिपाही आये और पूछताछ करके चले गये। फिर एक जमादार आया। वह बहुत बूढा था। उसने आते ही पूछा "कौन हो ? कहा जाते हो ? यहा क्यों आये हो ?"

तुकोजीराव के नौकरो ने कहा "लारेन्स साहब बहादुर के नौकर हैं। देहली की तरफ से आये हैं। नीमच को जाते हैं।" बूढे को यकीन नही आया। उसे तुकोजीराव के होने की शंका थी। उसने तुकोजीराव को लक्ष करके कहा "महाराजा हुलकर साहब बहादुर अपने राज्य से कही चले गये हैं। इसकी जानकारी तुमको है ?"

तुकोजीराव के मुन्शी उम्मेदसिंह ने कहा, "क्या हुलकर कोई राजा है ? कहा रहता है ? बडा अफसोस है कि हम उसे नही जानते।"

वृद्ध जमादार ने कहा "हुलकर रिआसत बडी है। राजधानी इन्दौर है। मै बीस बरस पहले इन्दौर गया था। वहा का ठाट बाट बडा है। हजारो जरोर सिपाही तलवार मारने वाले रिआसत मे हैं। अगर यह राजा और उदयपुर का राणा एक हो जावे तो हिन्दू का राज हो जावे। फिर कौन है जो इनका मुकाबला करे। सुना गया है कि उस राजा को कोई मुन्शी बहकाकर कलकत्ते की ओर ले गया है। उसको डेढ महिने का समय हुआ है।"

तुकोजीराव यह सुनकर हमी नही रोक सके। बडे जोर से हसकर उसे टाल दिया। दोपहर को राजा सग्रामसिंह शिकार खेलकर वापिस लौट रहे थे। तुकोजीराव के पास से निकले, एक ने दूसरे की ओर देखा। एक सवार ने पूछा, "यह किसका काफिला है।" तुकोजीराव के एक नौकर ने कहा "रिसालदार का है।"

राजा उस समय तो चला गया किन्तु तुकोजीराव का एक नौकर जब सामान लेने बाजार मे गया तो उसने बनिये से कहा कि "यह इन्दौर के मुन्शी का काफिला है" यह तो प्रख्यात हो गया था कि इन्दौर का राजा कही गुप्त रूप से चला गया है। राजा तक सूचना पहुँची और उसकी शका बढ़ गई। राजा ने एक हरकारा भेजा। उसने कहा "राजा की आज्ञा है कि तुम सब शहर मे चले आओ। यहा कोई वारदात होगई तो उसका उत्तरदायित्व तुम्हारा होगा।" उसे उत्तर दे दिया गया कि "हमारा मुकाम यही रहेगा।"

हरकारा तो चला गया किन्तु शका हुई कि यह प्रदेश गिरासियो का है वह चूकने वाले नहीं हैं। शहर के भीतर जावे तो शहर पनाह का द्वार बन्द करके जिमकी उन्हें शंका हो गई हैं, उसकी तलाश करेंगे। रहस्य खुल जावेगा। बन्दियो की भांति रहना होगा। इन सब बातों को ध्यान मे रख मेजर इमदादअली को राहदारी के परवाने के साथ राजा साहब के पास भेजा गया। मेजर ने राजा को समझाया। उसने प्रबंध कर दिया। दूसरे दिन वहा से भीलवाडा आ गये।

३—वि० सं० १९०८ मे लुहारी के मीनो ने सरकारी डाक लूटली और अंग्रेजी इलाके मे डाके डाले। राजपूताने के एजेन्ट गवर्नर जनरल सर हेनरी लारेन्स तथा मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट जार्ज लारेंस ने इसकी शिकायत महाराणा से की। महाराणा ने उनका दमन करने के लिये मेहता अजीतसिंह को भेजा और सहायतार्थ जालंधरी के सामन्त अमरसिंह को साथ

भेज दिया। महाराणा ने राजा संग्रामसिंह को अच्छी लड़ाकू सेना भेजने को लिखा। उन्होंने उसी समय अपनी सेना मेहता अजीतसिंह के पास भेजदी।[1] इस आक्रमण में मीनों की हार हुई और वह भाग गये।

भौमियों का उपद्रवः—बनेड़ा राज्य के भौमियों की ओर से राजा संग्रामसिंह के समय में अधिक उपद्रव नही हुआ। केवल उपरेड़ा के भौमियों ने गढ़ी बांध ली थी और उपद्रव करना प्रारम्भ कर दिया था किन्तु महाराणा के आदेश से गढ़ी गिरा दी गई। उन्होंने यह भी आदेश दिया कि "उपरेड़ावाले प्रतिवर्ष एक हजार रुपया छटूंद राजा संग्रामसिंह को देंगे तथा दो सवार और चार पैदल भेजकर उनकी नौकरी करेंगे।"

विवाहः—राजा संग्रामसिंह की निम्नलिखित राणियां थीः—

१—राणी जोधपुरी फतेगढ़ के स्वामी राजा भोपालसिंह की पुत्री तथा चन्द्रसिंह की पौत्री थी। यह विवाह फाल्गुन वदी १२ वि० सं० १८९३ मे हुआ था।

२—राणी मेरतणी, निम्बाहेड़ा के ठाकुर वीरमदेव की पुत्री तथा सौभाग्यसिंह की पौत्री थी। यह विवाह भाद्रपद बदी ८ वि० सं० १८९५ में हुआ था।

३—राणी बीकानेरी, बीकानेर नरेश महाराजा सूरतसिंह की पौत्री तथा दलेलसिंह की पुत्री थी। यह विवाह वि० सं० १८९७ में हुआ था।

सन्तानः—राणी जोधपुरी की कोख से केवल एक कन्या हुई जिसका नाम अजब-कुंवरी था।

दानः—राजा संग्रामसिंह ने निम्नांकित भूमि दान मे दीः—

१—बाबा पोखरदास के चेले खुशालदास को ग्राम मूर्णा में २० बीघा भूमि दान दी।

२—श्रीजी, नाथद्वारा की पुजारिन गोस्वामिनी लक्ष्मीजी को एक सुसज्जित हथिनि भेंट की।

३—ब्राह्मण माना सवाई लोढे को २१ बीघा भूमि दान दी।

४—गोस्वामी पुरुषोत्तम पुजारी मन्दिर द्वारकाधीश को प्रतिवर्ष प्रतिग्राम एक रुपया दान दिया।

५—पंडा भीमा पुत्ता को ग्राम लामिया में बावड़ी और छः बीघा भूमि दान दी।

६—रामशोभाऊ मन्दिर लक्ष्मीनारायण के पुजारी बाबा तुलसीदास को भूमि दान दी।

७—गुसांई नीलगिरी को ग्राम उदलयावास में ११ बीघा भूमि दान दी।

८—पुरोहित नन्दा, फता, कौशल, अमरा, दौला को १८१ बीघा भूमि देकर ताम्रा पत्र कर दिया।

९—उन्होंने मृत्यु के समय पुरोहित भट्ट ब्राह्मण डोल्या को भूमि दान देकर पट्टा कर दिया।

जागीरः—उन्होने निम्नांकित जागीरें दीः—

१—बनेड़ा संग्रह।

१—कायमखानी गुलाबखा को ग्राम मोडयाखेडी जागीर मे दिया।
२—कायमखानी बादूखा को ग्राम छोटा निम्बाहेडा (निभेडा) जागीर मे दिया।
३—बहन आनन्दकुमारी को दो चडस भूमि राजपुर मे जागीर मे दी।
४—काका गुमानसिंह को ग्राम खातणखेडी जागीर मे दिया।
५—ग्राम नाणु या पुरोहित उम्मेदराम को जागीर मे दिया।
६—ग्राम राणी खेडा मे आमदखा व आशावत्त बदनोरी को सौ सौ बीघा जमीन जागीर में दी।
७—कायमखानी कासूखा को ग्राम सरदारपुरा जागीर मे दिया।

संबन्धियों के विवाह—इन्होंने अपनी बहन आनन्दकुमारी का विवाह जेठ बदी ६ वि० स० १८९२ को राघोगढ के युवराज कु वर जयमण्डलसिह के साथ किया।

अपनी दो भुआओं का विवाह भी इन्हे ही करना पडा। जिनका विवरण निम्न प्रकार है —

मेहतावकुमारी के विवाह के समय एक मनोरजक घटना घटित हुई। इनका विवाह सम्बन्ध महाराव रामसिह कोटा नरेश के साथ निश्चित होने पर बनेडा से टीके का सामान लेकर राज कर्मचारी कोटा गये और टीका कर दिया गया। उसके पश्चात् महाराणा की ओर से रावत पद्मसिह सलुम्बर की कन्या अनोपकुमारी के विवाह का टीका कोटा भेजा गया। बनेडा का टीका प्रथम होने से राजा सग्रामसिह के कर्मचारी चाहते थे कि विवाह पहले बनेडा मे हो किन्तु महाराणा ने उदयपुर से माघ वदी ११ वि० सं० १८९३ को लिखा कि "महाराव कोटा का पत्र आया है कि बनेडा के कर्मचारी प्रथम बनेडा जाकर विवाह करने के लिये आग्रह कर रहे हैं। आप अपने कर्मचारियों को लिखदे कि वह ऐसा न करें। पहले कोटा से बरात उदयपुर आवेगी उसके पश्चात् बनेडा जावेगी।" इसी प्रकार का एक पत्र महाराव कोटा ने राजा सग्रामसिह को लिखा।

महाराणा ने फिर माघ सुदी १५ वि सं० १८९३ को लिखा कि "आप भी तो हमारे ही हैं। मुझे दोनों पुत्रिया समान हैं। यहा से कुकुम पत्रिकाएं सब दूर भेज दी गई हैं। अतएव आपको इस सम्बन्ध मे अधिक आग्रह नही करना चाहिए।"

महाराणा के इस प्रकार लिखने पर राजा संग्रामसिह ने उनकी बात मानली। महाराव रामसिह का विवाह प्रथम उदयपुर हुआ। उसके पश्चात् उदयपुर से बरात सीधी बनेडा आई और फाल्गुन वदी ७ वि० सं० १८९३ को मेहतावकुमारी का विवाह सम्पन्न हुआ।

प्रतापकुमारी का विवाह झाबुआ नरेश राजा रत्नसिह के साथ फाल्गुण वदी २ वि० स० १८९६ में हुआ।

भवन आदि निर्माण—इनके समय मे निम्नांकित भवन आदि बनाये गये।

१—सरदारनगर मे एक तालाब बनवाया।
२—अपने पिताश्री के नाम पर बोडा मे उदयसागर तालाब बनवाया।
३—किले मे जलबुर्ज तथा संग्राम बुर्ज बनवाया।

४—संग्राम सागर तालाब बनवाया। इसका कार्य वि० सं० १९०७ के भाद्रपद बदी में समाप्त हुआ।

५—गणेश द्वार बनवाया।

स्वर्गवासः—राजा संग्रामसिंह कार्तिक बदी ७ वि० सं० १९११ को बीमार हुवे। कार्तिक सुदी १ तक उनका उपचार किया गया किन्तु लाभ नहीं हुआ। कार्तिक सुदी २ की रात में उनका स्वर्गवास हो गया। मृत्यु के समय उन्होंने दस गायें, एक हजार रुपये, पांच मन धान्य दान देकर बारा बीघा भूमि दान दी।

दूसरे दिन कार्तिक सुदी ३ को उनकी राणी मेरतणी सती हुई। सती होने के पूर्व उन्होंने पांच सौ रुपये, एक घोड़ा तथा एक हथिनि चतुर्भुजनाथ को भेंट की।

व्यक्तित्वः—राजा संग्रामसिंह की मृत्यु के समय आयु केवल २३ वर्ष की थी। उन्होंने १८ वर्ष राज्य किया। यह राजनीति निपुण तथा स्वामीभक्त होते हुवे भी निर्भीक थे। अन्याय के सम्मुख नहीं झुकते थे। अंग्रेजों की न्याय प्रियता से वह प्रभावित थे। उनकी शासन व्यवस्था से वह संतुष्ट थे। उन्हें यह विश्वास था कि महाराणा का पक्ष लेकर वह सामन्तों पर अन्याय नहीं करेंगे तथा सामन्तों का पक्ष लेकर महाराणा पर दबाव नहीं डालेंगे, वह जो कुछ करेंगे सत्य और न्याय के पक्ष में करेंगे। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने भाद्रपद बदी ४ वि० सं० १९१० को हेनरी लारेन्स को लिखा कि "इस भारत भूमि पर कितने ही बादशाह, राजा, महाराजा हो गये और उन्होंने जनता का पालन किया। चन्द्र, सूर्य देख रहे हैं, कम्पनी सरकार का न्याय कांच के समान स्वच्छ है। जनता पर उनकी गहरी छाया है। अत्याचार और अन्याय को जडमूल से निकाल दिया। न्याय के घाट पर सिंह और बकरी एक साथ पानी पीते हैं। प्रजा उनकी प्रशंसा में कह रही है "शाबास, शाबास।"

राजा गोविन्दसिंह

जन्म¹—राजा गोविन्दसिंह का जन्म माघ सुदी ९ मंगलवार वि० सं० १८९० को हुआ।

राजतिलक—राजा सग्रामसिंह को कोई पुत्र नही था। उनकी मृत्यु के पश्चात् राज्याधिकारी का प्रश्न उपस्थित हुआ। राणी मेरतणी ने सती होने के पूर्व गोविन्दसिंह को राज्याधिकारी बनाने की, अपने पति की इच्छा को प्रकट किया था। सती के वचनों को शुभ समझकर राजा सग्रामसिंह की प्रथम राणी जोधपुरी ने तथा राज्य के सामन्त और सम्बन्धियो ने गोविन्दसिंह को ही राज्याधिकारी बनाने का निश्चय किया।

गोविन्दसिंह उन दिनों जयपुर मे थे। उसी समय उनको लेने कर्मचारी भेजे गये। वह कार्तिक सुदी ७ वि० स० १९११ को बनेडा आ गये। और राजमाता जोधपुरी की आज्ञा से बनेडा की राजगद्दी पर कार्तिक सुदी १३ गुरुवार को आसीन हुवे। उस समय बनेडा राज्य के अधिकाश सामन्त, सम्बधि तथा प्रजा के गणमान्य सज्जन उपस्थित थे।¹

राजकार्य कुशल राजमाता जोधपुरी ने चतुरता पूर्वक राजा गोविन्दसिंह की ओर से महाराणा की सेवा मे निवेदन कराया कि "राजा सग्रामसिंह का स्वर्गवास हो गया है। वह श्रीजी के चरण कमलों मे मुझे छोड गये हैं। श्रीजी मेरे ईश्वर और माता पिता हैं।"

इतना करके ही राजमाता स्वस्थ नही बैठी। उन्होंने दूरदर्शिता पूर्वक प्रजा, सामन्त, तथा सम्बधियो की ओर से एक निवेदन पत्र कर्नल लारेन्स की ओर भिजवाया। उसमे निवेदन किया गया था कि "हम प्रजाजन, सामन्त, सम्बंधि और राणी जोधपुरी ने स्वखुशी से गोविन्दसिंह को बनेडा की राजगद्दी पर बैठाया है। यह आपकी आज्ञा मे रहकर बनेडा राज्य की उन्नति करेंगे। बनेडा राजवश से इनका नाता इस प्रकार है कि यह स्व० राजा हमीरसिंह के छोटे पुत्र मानसिंह के नाती हैं तथा स्व० राजा भीमसिंह के पुत्र दौलतसिंह के दत्तक पुत्र हैं। दौलतसिंह स्व० राजा उदयसिंह के सगे भाई हैं। इस प्रकार यह स्व० राजा संग्रामसिंह के भाई होते हैं।²

इसी आशय के पत्र महाराणा उदयपुर, महाराजा जयपुर तथा जोधपुर और मेवाड के सभी सामन्तो की ओर राजमाता ने भिजवाये।

उपरोक्त समस्त कार्य महाराणा की अनुमति के विना किये गये थे, इस कारण महाराणा स्वरूपसिंह अप्रसन्न हो गये। उन्होने बनेडा पर सेना भेजने का विचार किया। इसकी सूचना राजा गोविन्दसिंह को मिलने पर वह बहुत चिन्तित हुवे।

१—बनेडा संग्रह की बही नं० ७। २—बनेडा सग्रह बही नं० ११।

उन्होंने राजा लालसिंह गोगूंदा को इसकी सूचना दी। उसने माघ वदी ११ वि० सं० १९११ को पत्र लिखकर उनको आश्वासन दिया कि "बनेड़ा अकेला नहीं है। मेवाड़ के समस्त सामन्त उनके साथ हैं।"

इसी प्रकार के आश्वासन मेवाड़ के और भी सामन्तों ने उनको दिये।

राजमाता जोधपुरी ने कर्नल लारेन्स की सेवा मे जो निवेदन भेजा था, उसका उत्तर कर्नल लारेन्स ने यह दिया कि "महाराणा आपके स्वामी है। उनको ही निवेदन करना चाहिये।"

किन्तु उसी समय पौष वि० सं० १९११ में मीनों का उपद्रव शान्त करने को कर्नल लारेन्स को जहाजपुर जाना पड़ा।[1] यह अवसर उपयुक्त जानकर राजा गोविन्दसिंह ने माघ सुदी ९ वि० सं० १९११ को अपने कर्मचारियों को शाहपुरा मुकाम पर कर्नल लारेन्स की ओर भेजा और निवेदन कराया कि "वह बनेड़ा आने की कृपा करें।"

इस पर कर्नल ने कहा कि "उदयपुर के महाराणा की ओर से गोविन्दसिंह को जब तक मान्यता प्राप्त नहीं होगी, तब तक हम उन्हें न तो बनेड़ा के राजा मान सकते हैं, न उनसे मिल सकते हैं।"

कर्मचारियों ने फिर आग्रह किया तब उन्होंने कहा कि "बनेड़ा के राजा की हैसियत से नहीं, वरन् कालसांस के जागीरदार की हैसियत से उनसे हम मिल सकते हैं।"

कर्मचारियों ने इसे स्वीकार किया और बनेड़ा आकर राजा गोविन्दसिंह को इसकी सूचना दी। उन्होंने क० लारेन्स से भेंट की और माघ सुदी १० वि० सं० १९११ को उन्हे बनेड़ा ले आये। उनके साथ मेवाड़ के बहुत से सामन्त और मेहता शेरसिंह थे। कर्नल लारेन्स ने बनेड़ा के सामन्त तथा बनेड़ा के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से राजा गोविन्दसिंह के सम्बन्ध में पूछताछ की। सभी ने उनका एक स्वर से समर्थन किया। तिसपर भी एजेन्ट ने उनसे कहा कि "हम तब तक आपको राजा नहीं कहेंगे, जब तक आप महाराणा से मान्यता प्राप्त नहीं कर लेते। हम उदयपुर जा रहे हैं। आप भी हमारे साथ चलिये। मेहता शेरसिंह ने भी प्रजा का मन्तव्य जान लिया है। उनको एक अर्जी लिखकर दीजिये।"

इसके पश्चात् बनेड़ा के सभी उपस्थित सामन्तों ने तथा राजमाता जोधपुरी ने अर्जी लिखकर दी।

कर्नल लारेन्स के कहे अनुसार फाल्गुन वदी १० को वह उदयपुर गये। महाराणा से भेंट कर माफी मांगी। कर्नल लारेन्स ने महाराणा से निवेदन किया कि "हमने बनेड़ा में जांच कर ली है। प्रजा और सामन्त सभी राजा गोविन्दसिंह को ही राजा बनाना चाहते हैं।"

उसी समय मेहता शेरसिंह ने प्रजा और राजमाता की अर्जी प्रस्तुत की। उसे पढ़कर महाराणा ने राजा गोविन्दसिंह का अपराध क्षमा कर दिया और दण्ड स्वरूप पचीस हजार रुपये प्रस्तुत करने का आदेश दिया।

बातचीत होकर इक्कीस हजार रुपये नियत हुवे और राजा गोविन्दसिंह को बनेड़े के स्वामी होने की मान्यता प्राप्त हो गई।

१—उदयपुर राज्य का इतिहास।

कर्नल लारेन्स ने फाल्गुन सुदी १२ को राजा गोविन्दसिंह को लिखा कि "अब आप बनेडा जावें और जो शर्तें आपने स्वीकार की हैं, उनका पालन करें। जब तक आप उनका पालन करते रहेंगे, हमारी कृपा बनेडा पर बनी रहेगी।"

चैत्र वदी १३ वि० स० १९१२ को राजा गोविन्दसिंह बनेडा आ गये। महाराणा से मान्यता प्राप्त होने के हर्ष मे ग्यारह तोपे दागी गईं। वैशाख सुदी ८ वि० स० १९१२ को पुष्यनक्षत्र पर उन्होंने राज्यारोहन का समारम्भ सम्पन्न किया।

महाराणा ने परम्परागत तलवार बधाई की रीति सम्पन्न करने के लिये रघुनाथसिंह देपुरा को भेजा। वह अपने तेरह कर्मचारियों सहित आश्विन वदी १३ वि० स० १९१२ को बनेडा आया।

आश्विन सुदी १ वि० सं० १९१२ को उसने महाराणा की ओर से भेजे गये उपहार सुनहरी तलवार, मोतियो की कठी, जडाऊ सरपेंच तथा हाथी और घोडा, प्रस्तुत किये। इस प्रकार तलवार बधाई की रीति भी सम्पूर्ण हो गई। इतना ही नही महाराणा ने आश्विन वदी १२ वि० सं० १९१२ को बनेडा राज्य के समस्त ग्रामो का पट्टा राजा गोविन्दसिंह के नाम भेजकर लिखा कि "इन ग्रामों की आय रुपये १००१२६ हैं। उसके अनुसार २०० सवार तथा ४०२ बन्दूके आपको चाकरी मे रखनी चाहिये। इसलिये आधी चाकरी के ऐवज मे छटून्द रुपये ८३४६ देनी होगी और आधी चाकरी मे १०० सवारों सहित तथा २०१ बन्दूको सहित उदयपुर की चाकरी मे आना होगा।"

इस प्रकार महाराणा ने राजा गोविन्दसिंह को पट्टा देकर बनेडा राज्य का पूर्ण रूप से स्वामी बना दिया।[1]

महाराणा-सामन्त सम्बन्ध—महाराणा स्वरूपसिंह ने माघ सुदी १ वि० सं० १९०१ को कर्नल राबिन्सन से जो कौलनामा बनवाया था, उसे सामन्त और महाराणा दोनों कार्यान्वित नही कर सके थे। उस समय बनेडा के राजा सग्रामसिंह थे। कुछ सामन्तो ने जो इकरार नामा लिखा था उसमे भी वह विवाद मिट नही पाया। दोनों पक्षो मे दिन प्रतिदिन मन-मुटाव बढता जा रहा था। तब कम्पनी सरकार ने इस मनमुटाव को मिटाने के लिये पुराने कौलनामे के आधार पर एक नया कौलनामा बनाने की आज्ञा जार्ज लारेन्स को दी। उसने तीस कलमों का एक नया कौलनामा तैयार किया। वह तीस कलमे कम अधिक प्रमाण मे पुराने कौल नामो की कलमो से मिलती जुलती हैं। इस कौलनामे की कलम दो का सम्बन्ध बनेडा राज्य से होने के कारण उसे नीचे उद्धृत किया जाता है।

(२) कैद अथवा तलवार बंदी की रकम साल की अमल पैदावार पर रुपये पीछे बारह आने देनी होगी। जिस सरदार से, जिस साल तलवार बधाई ली जावेगी, उसे उस साल की छटूंद माफ की जावेगी। आमेट, गोगूंदा, कानोड तथा बनेडा के सरदार और बिशनावतों को कैद नही देनी पडती, पर उसके बजाय उनसे नजराणा लिया जाता है। जो अब महाराणा की मर्जी पर छोड दिये जाने के बजाय अमल पैदावार पर सैंकडे पीछे आठ रुपये ठहराया गया है।"

१—बनेडा संग्रह।

यह कौलनामा वि० सं० १९११ में बना था। उस समय राजा गोविन्दसिंह को बनेड़े का स्वामित्व प्रदान करने की बातचीत चल रही थी। राजा संग्रामसिंह ने उनके समय में बने कौलनामे पर हस्ताक्षर नही किये थे किन्तु अब परिस्थिति बदल गई थी। राजा गोविन्दसिंह के राज्यकाल के प्रारम्भ का समय था। महाराणा की ओर से मान्यता न मिलने से राज्य के स्थायित्व पर ही संकट आने की सम्भावना थी। कर्नल लारेन्स के प्रयत्नों ने उन्हे बनेड़ा का राजा बनाया। अतएव जब उसने वैशाख सुदी १५ वि० सं० १९१२ तथा द्वि० आषाढ़ सुदी ५ वि० सं० १९१२ को राजा गोविन्दसिंह को कौलनामे पर हस्ताचर कर उसका पालन करने के लिए आग्रहपूर्वक लिखा, तब उन्होंने कौलनामे पर हस्ताच्चर कर दिये और उसकी सूचना कर्नल लारेन्स को दी। उसने प्रसन्न होकर भाद्रपद वदी १४ को लिखा कि "आपने कौलनामे पर हस्ताच्चर कर दिये और महाराणा की आज्ञाओं का पालन करना भी आपने स्वीकार किया, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आशा है आप भविष्य में अपने स्वामी महाराणा की सेवा करते रहेगे।"

कार्तिक वदी १२ वि० सं० १९१२ को लारेन्स ने फिर लिखा कि "अब मेरे हृदय को शान्ति मिली कि आपने हमारा कहना मानकर कौलनामे पर हस्ताचर कर दिये। महाराणा की ओर से जो पट्टा मिला है, उसके अनुसार राज्य में प्रबंध करें। आय व्यय का हिसाब रखें और प्रतिवर्ष उस हिसाब को हमारे पास भेजें। हम उसे देखकर मार्गदर्शन करेंगे जिससे आपकी उन्नति होगी।"[1]

राजा गोविन्दसिंह ने कौलनामे पर हस्ताच्चर किये, उस समय सलुम्बर, कानौड़, गोगूंदा, देवगढ़, भैंसरोड़, बदनौर आदि के सामन्तों ने हस्ताक्षर नही किये थे। इस पर पोलिटिकल एजेन्ट ने ता० १९ जुलाई सन् १८५५ ई० (वि० सं० १९१२) को इस आशय का एक रुबकार जारी किया कि "यह कौलनामा अंग्रेजी सरकार की आज्ञा से तैयार हुआ है। उस पर हस्ताच्चर करने के लिये सरदारों को तीन मास की अवधि दी गई थी। वह समाप्त हो गई है। अभी तक बहुत से सामन्तों ने हस्ताक्षर नहीं किये हैं, अतएव जिन सामन्तो ने अंग्रेजी सरकार तथा महाराणा के आदेश की अवहेलना की है, उन्हें दण्ड मिलेगा और उनके गांव जब्त किये जावेंगे।"[2]

इस रुबकार के पालन में भी जब सामन्तों ने कौलनामे पर हस्ताच्चर नही किये, तब सलुम्बर ठिकाने का ग्राम सावा, देवगढ़ का मोकरूंदा, भीडर का भदौड़ा और गोगूंदा का रावल्या ग्राम जब्त किये गये। तदनन्तर दिसम्बर मे दौरे के समय कर्नल लारेन्स ने खेरौदा मुकाम पर फिर उन्हें हस्ताचर करने को कहा। सामन्तों ने कई आपत्तियां प्रस्तुत की। इस पर कर्नल ने कहा पहले हस्ताचर कर दो, फिर आपत्तियों का निर्णय करेंगे तब भैंसरोड़, कानौड़, देवगढ़, बदनौर आदि के सामन्तों ने हस्ताचर कर दिये किन्तु सलुम्बर, भींड़र, गोगूंदा आदि के सामन्तो ने हस्ताचर नही किये।

जब अधिकांश सामन्तों के हस्ताचर हो गये तब जार्ज लारेन्स तथा हेनरी लारेन्स उदय-

१—बनेड़ा संग्रह। २—उ० रा० इ०।

पुर गये और सामन्तों को सतुष्ट करने के लिये महाराणा से कहा कि "कौलनामे से कुछ धाराएं निकाल दी जावें तो शेष सामन्त भी हस्ताक्षर कर देवेगे।" महाराणा ने इसे स्वीकार नही किया। दोनों अंग्रेज अधिकारी अप्रसन्न होकर चले गये। उन्होंने अंग्रेजी सरकार को लिखा कि "कौलनामे का पालन करना न तो महाराणा चाहते हैं, न सामन्त" अंग्रेजी सरकार ने अन्तिम निर्णय दिया कि "कौलनामा रद्द समझा जावे और जो प्रथा चली आ रही है, उसे ही प्रचलित रखा जावे।"

इस आदेश के आते ही कौलनामे पर हस्ताक्षर न करने के अपराध मे जिन सामन्तों के ग्रामों पर थाने बैठाये गये थे, उन्हे वहा के सामन्तो ने उठा दिया।[1]

इस प्रकार जब सामन्तो ने कौलनामे का पालन नही किया और अंग्रेजी सरकार ने भी उसे रद्द कर दिया तब महाराणा ने वैशाख सुदी १५ वि० स० १९१३ को सामन्तो के नाम एक आदेश प्रचारित किया। वह आदेश राजा गोविन्दसिंह के पास भी आया। उसका साराश यह है कि "छट्टू द का झगडा पहले ही चला आ रहा था। उसको मिटाकर सुयोग्य प्रबंध करने के लिये टॉड साहब, कॉफ साहब, रॉबिन्सन साहब ने नियम बनाये किन्तु कुछ सामन्तो ने उन्हे नही माना, उन पर जब्ती भेजी गई। उन सरदारों ने उसे उठाकर आदेश की अवहेलना की। झगडा बढ़ते देख हमने सोचा कि परम्परा के अनुसार छट्टू द आदि वसूली का जो क्रम चला आ रहा था, उसे ही प्रचलित रखा जावे और अधिकाश सामन्त भी यही चाहते हैं। मुझे सदामत से चली आ रही नीति रीति को चलाना ही स्वीकार है।"[2]

मेवाड के राजनैतिक आकाश मण्डल मे छत्तीस वर्ष से कौलनामे के रूप मे जो बादल छा रहे थे, वह उक्त आदेश से बिखर गये और आकाश स्वच्छ हो गया।

महाराणा स्वरूपसिंह के पैरो मे वि० सं० १९०८ मे बादी की बीमारी हो गई थी। वह बढ़ती ही गई और कार्तिक सुदी १४ वि० सं० १९१८ को उनका स्वर्गवास हो गया। मेवाड के राज्य सिंहासन पर महाराणा शम्भुसिंह कार्तिक सुदी १५ वि० स० १९१८ को बैठे।

महाराणा शम्भूसिंह अवयस्क थे। अतएव कर्नल लारेन्स ने मार्गशीर्ष बदी १३ वि० सं० १९१८ को राजा गोविन्दसिंह को पत्र लिखकर उदयपुर बुलाया और लिखा कि "आप उदयपुर अवश्य आवे। राज्य प्रबन्ध के लिये आपसे परामर्श करना है।"[3]

राजा गोविन्दसिंह उदयपुर गये। पौष बदी ९ वि० सं० १९१८ को एक दरबार किया गया। सभी सामन्त अपने पुराने वैमनस्य भूलकर दरबार मे उपस्थित हुवे। एजेन्ट कर्नल लारेन्स ने प्रसन्नता प्रकट करते हुवे कहा कि "बहुत दिनो से महाराणा के दरबार मे इतने सामन्त एकत्रित नहीं हुवे थे। आज का दिन बडा शुभ है।"

महाराणा के वयस्क होने तक राज्य प्रबंध चलाने के लिये "पच सामन्ती शासन" (रीजेन्सी कौन्सिल) की स्थापना की गई। यह पच सामन्ती शासन द्वितीय श्रावण वि० सं०

१—अ० रा० इ०। २—बनेडा संग्रह। ३—बनेडा संग्रह।

१६२० तक चला। इसके पश्चात् "अहलियान श्री दरबार राज्य मेवाड़" नामक कचहरी कायम की गई।

महाराणा के वयस्क हो जाने पर मार्गशीर्ष सुदी ७ वि० सं० १९२२ को अंग्रेजी सरकार ने उन्हें मेवाड़ राज्य के सम्पूर्ण अधिकार सौंप दिये।

गवर्नर जनरल लार्ड मेयो वि० सं० १९२७ में अजमेर आया। उससे भेंट करने के लिये कार्तिक वदी वि० सं० १६२७ मे महाराणा अजमेर गये। तब उनके साथ राजा गोविन्दसिंह भी गये और सम्पूर्ण प्रवास मे उनके साथ रहे।[1]

आश्वीन वदी १२ वि० सं० १६३१ को महाराणा शम्भूसिंह का भी स्वर्गवास हो गया और मेवाड़ राज्य के सिंहासन पर महाराणा सज्जनसिंह मार्गशीर्ष वदी २ वि० सं० १९३१ को बैठे। यह भी अवयस्क थे। रीजेन्सी कौन्सिल स्थापित होकर राज्य का कार्य संचालित होने लगा।

महाराणा जब वयस्क हुवे तब उन्होंने सामन्तों के कटु सम्बन्धों को मधुर बनाने की ओर सबसे प्रथम ध्यान दिया। वह सामन्तो के हितैषी तथा उनके अधिकारों के संरक्षक थे। न्याय प्रिय और उदार थे। वह अनेक ठिकानों में स्वयम् गये और वहां के सामन्तों का प्रेम और सहयोग सम्पादन किया।

वि० सं० १९३३ के मार्गशीर्ष में जब महाराणा अपने विवाह के लिये किशनगढ़ जा रहे थे, तब राजा गोविन्दसिंह भीलवाड़ा मुकाम पर उनसे मिले और बनेडा आने के लिये निवेदन किया। महाराणा ने उनका निमंत्रण सहर्ष स्वीकार किया। मार्गशीर्ष वदी १० को वह सेना और बरातियों सहित बनेड़ा आये। राजा गोविन्दसिंह ने बहुत उत्साहपूर्वक उनका स्वागत किया। आदरातिथ्य में कोई कसर बाकी नहीं रखी। महाराणा पर सोने चांदी के पुष्पों की वर्षा की गई। कीमती सिरोपाव, मोतियों की कंठी, घोड़े, दो हजार रुपये भेंट किये तथा सोने और चांदी से बने हुवे हौदे सहित एक हाथी भी भेंट किया।[2]

वि० सं० १९३५ मे महाराणा मेवाड़ राज्य के भ्रमण पर निकले। उस सम्पूर्ण प्रवास में राजा गोविन्दसिंह उनके साथ थे। वि० सं० १९३६ के चैत्र में महाराणा नाथद्वारा कांकरोली गये। उक्त मुकाम पर उन्होने राजा गोविन्दसिंह पर प्रसन्न होकर उनका ग्राम डावला, जो रीजेन्सी कौन्सिल के समय मे जब्त कर लिया गया था, वह चैत्र सुदी १४ को फिर उनको प्रदान कर दिया।[3]

इन महाराणा का स्वभाव उदार और स्नेह भरा होने के कारण इनके समय में सामन्त और प्रजा दोनों संतुष्ट रहे। यह लोकप्रिय महाराणा भी अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे और पौष सुदी ६ वि० सं० १९४१ को इनका भी स्वर्गवास हो गया।

माघ सुदी ७ वि० सं० १६४१ को महाराणा फतहसिंह उदयपुर राज्य सिंहासन पर आरूढ़ हुवे। श्रावण सुदी १२ वि० सं० १९४२ को इनको मेवाड़ राज्य के समस्त अधिकार दे

१—बनेड़ा संग्रह (वहीड़े) वीर विनोद पृष्ठ २१०५। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह।

दिये गये।[१] इनका व्यवहार सामन्तों के साथ विशेष स्नेह भरा नही रहा किन्तु कोई प्रकट संघर्ष नही हो पाया।

वि० स० १९१४ की क्रान्ति—राजा गोविन्दसिंह के समय मे भारत मे जो प्रमुख और महत्वपूर्ण घटना घटित हुई वह है वि० स० १९१४ (सन् १८५७) की क्रान्ति। तत्कालीन इतिहास मे इसे 'सिपाही-विद्रोह' की सज्ञा दी गई है किन्तु अब ऐतिहासिक प्रमाणो ने सिद्ध कर दिया है कि वह केवल सिपाही-विद्रोह ही नही था, ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा सचालित अग्रेजी राज्य के विरुद्ध सशस्त्र योजनाबद्ध क्रान्ति थी। क्रान्ति संचालकों की यह दूरदर्शिता एवम् चतुरता थी कि उन्होने भारतीय सैनिको के हृदयों मे अग्रेजो के विरुद्ध क्रान्ति की भावनाओं को उभारा। क्रान्ति का प्रचार और प्रसार सूत्रबद्ध तथा गुप्तरूप से किया। क्रान्ति का वर्णन करने के पूर्व हम सक्षेप मे अग्रेजों का आगमन, उनकी मनोधारा और तत्कालीन भारतीय राजनीति का दिग्दर्शन करेंगे।

सोलहवी शताब्दि मे जो यूरोपीय जातिया भारत मे व्यापार करने के लिये आई। उनमे ब्रिटेन के अग्रेज भी थे। अग्रेज व्यापारी ई० सन् १६०० मे भारत मे आये। उस समय यहा मुगलों का शासन था। अकबर भारत का सम्राट् था।

अग्रेज व्यापारी व्यापार करने लगे। ई० सन् १६१५ मे सर टामस रो नामक अग्रेज ने सूरत मे फैक्ट्री खोलने की आज्ञा सम्राट् जहागीर से प्राप्त की। इस प्रकार सूरत अग्रेजो के व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया। यहा यह बात ध्यान मे रखनी होगी कि कुछ समय पश्चात् अग्रेज व्यापारियों का दृष्टिकोण केवल मात्र व्यापार करना ही नही रहा। ईसाई-धर्म का प्रचार तथा अधिकाधिक प्रदेशों पर अधिकार करना भी उनके लक्ष्य के अग बन गये थे।

जब तक मुगल सम्राटों के शासन मे दृढता रही तब तक अग्रेजो की मनोभावना अथवा लक्ष्य सिद्धि को फलने फूलने का अवसर नही मिला, फिर भी अवसर आने पर वह व्यापार के लिये अधिकाधिक सुविधाये प्राप्त करते रहते। स्थानीय जमींदारो से प्रदेश खरीदते रहते और अपने आधिपत्य के प्रदेशों मे ईसाई धर्म का प्रचार भी करते रहते। सम्राट् औरगजेब के शासन काल तक यही अवस्था रही। अग्रेज व्यापारियों ने कलकत्ता, बम्बई, मद्रास आदि स्थानों पर अपने व्यापार केन्द्र प्रस्थापित किये। सेना एकत्रित की, समुद्र मे युद्ध पोत रखे। इसी प्रकार व्यापार के साथ-साथ अपनी सैनिक स्थिति भी सुदृढ की।

सम्राट् औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब मुगल साम्राज्य क्षीण होता गया, तब अग्रेजों की उन्नति का समय आया। व्यापार की सुविधाओं मे, प्रदेश के विस्तार मे, सैनिको की सख्या मे सभी मे उन्नति होती गई। साथ ही ईसाई धर्म प्रचार की गतिविधि भी बढती गई। किन्तु मरहठों की सैनिक शक्ति ने जहा मुगल और राजपूत शक्तियों को चुनौती दी, वहा अग्रेजों की उन्नति मे भी बाधा उपस्थित कर दी। परन्तु उससे अग्रेज भयभीत नही हुवे। न उन्होंने अपनी राज्यविस्तार तथा व्यापारविस्तार की योजना को संकुचित किया। स्वभावत बुद्धिमान तथा दूरदर्शी अग्रेज भारत की उस समय की वास्तविक परिस्थिति को समझ गये थे। उन्होंने

१—उ० रा० इ०।

समझ लिया की मुगलों की शासन शृंखला से आबद्ध यह देश, उस शृंखला के टूटते ही छोटे छोटे राज्यों मे विभाजित होगया है। विशाल देश होते हुवे भी आसेतु हिमाचल एक राष्ट्रीयता की भावना का यहां सर्वथा अभाव है। राजाओं के आपसी वैमनस्य का यहां बोलवाला है। अवसर आते ही इस सम्पूर्ण देश पर हमारा अधिकार हो सकता है।

किन्तु अंग्रेजों की यह लालसा तव तक फलीभूत नही हो सकी, जब तक मरहठों की राजनीति और सैनिक शक्ति पूना में केन्द्रित रही और सत्ता पेशवा के हाथों में रही। ई० सन् १७७२ में माधवराव पेशवा की मृत्यु होने पर पेशवा वंश में गृहकलह आरम्भ हो गया और उत्तरीय सेनापति स्वतंत्र होने की सोचने लगे किन्तु तत्कालीन पेशवा का मन्त्री नाना फडनवीस के राजनीतिक चातुर्य के कारण न तो उत्तरीय मरहठा सेनापति स्वतंत्र हो सके, न अंग्रेजों को सफलता मिल सकी। नाना फडनवीस की मृत्यु ई० सं० १८०० में होगई और मरहठों की राजनीतिक शक्ति तथा सैनिक शक्ति दोनों विखर गईं।

उत्तरीय मरहठा सरदार स्वतंत्र हो गये। अंग्रेजों को सफलता मिलती गई। मरहठों की हार होती गई और दूसरे बाजीराव पेशवा को ई० सं० १८१८ में राज्यच्युत कर पेन्शन दे दी गई।

इस प्रकार दृढ़ मुगल सत्ता नष्ट हुई, मरहठों का पतन हुआ। सिखों की हार हुई और भारत में अंग्रेजों का साम्राज्य प्रस्थापित हो गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा राज्य संचालित होने लगा।

उपरोक्त विवेचन से एक बात स्पष्ट हो जाती है, और हम राजा भीमसिंह (द्वितीय) के इतिहास में लिख आये है कि उन दिनों भारत में आसेतु हिमाचल एक राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था। इसी अभाव से भारत में अंग्रेजों की विदेशी सत्ता प्रस्थापित हो गई। इसी एक राष्ट्रीयता की भावना के अभाव से सम्पूर्ण एक शति भारत में जो खून खच्चर हुआ, जो अराजकता उत्पन्न हुई और जनता को जिस अशान्ति और अस्थिर जीवन का सामना करना पड़ा, वह भारतीय इतिहास का दुर्दैव ही कहा जायगा।

अव हम क्रान्ति के कारणों पर विचार करेंगे। हम ऊपर लिख आये हैं कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज शासकों की तीन अभिलाषायें थीं व्यापार, राज्य विस्तार तथा ईसाईधर्म का प्रचार। इनमें से अन्तिम दो बातों ने क्रान्ति को जन्म दिया। ईसाईधर्म के प्रचार के हेतु उन्होंने ईसाई पादरियों को खुले आम छूट दी।

इधर जैसे-जैसे राज्य और प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आते गये उनकी राज्य लिप्सा बढ़ती गई। लार्ड डलहौजी के समय में यह लिप्सा सीमा रेखा पार कर गई। उसने देशी राज्यों के राजाओं के निस्संतान मरने पर दत्तक (गोद) लेने का अधिकार ही नष्ट कर दिया। इस नियम के अन्तर्गत सितारा, झांसी, नागपुर आदि कई राज्यों को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। वहां के राजाओं के हृदयों में अंग्रेजों के विरुद्ध प्रतिहिंसा ने जन्म लिया, उन्होंने उनके विरुद्ध संघटन करने का विचार किया और वह इस कार्य में लग गये। इस प्रकार व्यक्तिगत प्रतिहिंसा ने समष्टी का रूप धारण किया। ईसाईधर्म प्रचार से भारतीयधर्म पर आघात हो ही

रहा था। उधर राज्यों को भी हड़प करने की नीति ने क्रान्ति की भावनाओं को जन्म दिया। नाना साहब पेशवा, झांसी की राणी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, जगदीशपुराधीश कुवरसिंह आदि व्यक्ति क्रान्ति के अगुवा और संचालक बने। क्रान्ति सचालको ने धर्म और राज्य दोनो को आधार बनाकर बुद्धिमत्तापूर्वक सैनिकों मे क्रान्ति की भावना का प्रचार किया और क्रान्ति दिवस ता० ३१ मई सन् १८५७ निश्चित किया। उत्तर भारत मे जहा-जहा अग्रेजों की सैनिक छावनिया थी, वहा गुप्तचर भेजकर उपरोक्त दिन को एकदम विद्रोह करने की सूचना दी गई। वास्तव मे यह योजनाबद्ध, सुसूत्र क्रान्ति निश्चित दिवस पर एकदम होती तो इतिहास किन्ही दूसरे ही अक्षरों मे लिखा जाता किन्तु विधि लिखित कुछ और ही था। निश्चित क्रान्ति दिवस के पूर्व सैनिकों मे इस समाचार से उत्तेजना फैल गई की नई बन्दूकों के जिन कारतूसों के सिरे को दांतों से काटना पडता है। उसमे गाय और सूअर की चर्बी लगी हुई है। उक्त समाचार से उत्तेजित होकर मेरठ के सैनिको ने विप्लव कर दिया। मगल पाडे नामक एक सैनिक ने इस क्रान्ति का सूत्रपात किया। क्रांति की आग भडक उठी। समस्त उत्तर भारत क्रान्ति की ज्वालाओं से सुलग उठा। दिल्ली, लखनऊ, मेरठ, कानपुर, काल्पी आदि सभी जगह के सैनिको ने विप्लव कर दिया और अग्रेजी सत्ता की जडे हिल गई।

राजस्थान मे नीमच और नसीराबाद मे अग्रेज सैनिकों की छावनिया थी, कारतूसों मे गाय और सूअर की चर्बी लगाने का समाचार यहा भी आ पहुँचा था। यहा के भारतीय सैनिक भी विद्रोह करने की सोचने लगे। मेवाड का पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान शावर्स उन दिनो आबू मे था। वह जेष्ठ सुदी ६ को उदयपुर आगया।

क्रान्ति के सचालको मे वैसे तो सभी प्रान्त और जाति के लोग थे किन्तु प्रमुख सूत्रधार मरहठा राज्य के ही व्यक्ति थे। राजस्थान मे मरहठों के प्रति सद्भावना नही थी। उनकी अराजकता मे राजस्थानी जनता ने तथा नरेशों ने जो कष्ट सहन किये थे, वह अभी भुलाये नही जा सके थे। उन कष्टो से अंग्रेजों ने उन्हे मुक्त किया था, अतएव अग्रेजों को यहा की जनता ने उद्धारक देवदूत समझा हो तथा उनके राज्य को वरदान माना हो तो कोई आश्चर्य नही।

यही कारण है कि कप्तान शावर्स के उदयपुर आते ही महाराणा ने उसे जगमन्दिर मे ठहराया और उसकी रक्षा का समुचित प्रबंध किया। इसके एक दो दिन पश्चात् मुहम्मदअली बेग नामक सैनिक के बहकाने से नीमच की सेना ने विद्रोह कर दिया। छावनी जला दी गई और खजाना लूट लिया गया।

कप्तान शावर्स को इसकी सूचना ता० ६ जून को मिली। उसने महाराणा से विचार विमर्श किया। महाराणा अंग्रेजों की राज्य पद्धति से तथा उनके सौजन्य से प्रभावित थे। उन्होंने यह भी सोचा कि नीमच मेवाड के पास ही है। विद्रोहियों का आक्रमण मेवाड पर भी हो सकता है। अतएव उन्होंने अग्रेजो की सहायता करना उपयुक्त तथा उनसे सहयोग करना अपना कर्तव्य समझा।

महाराणा ने कप्तान शावर्स के साथ बेदने के राव बख्तसिंह की अध्यक्षता मे मेवाड की सेना भेजना स्थिर किया। उन्होंने अपने समस्त सामन्तो को अंग्रेजों की सहायता करने के

आदेश भेजे। बनेड़ा राज्य को भी उदयपुर दरबार से आदेश भेजे गये कि "अंग्रेज कप्तान शावर्स की सहायता की जावे। विद्रोहियों को संरक्षण न दिया जावे। बनेड़ा राज्य की सीमा से यदि विद्रोही निकलें तो रोका जावे।"[१]

कप्तान शावर्स ने भी राजा गोविन्दसिंह को आषाढ़ वदी ८ वि० सं० १९१४ को सेना भेजकर सहायता करने को लिखा।[२]

इसके कुछ दिन पश्चात् कप्तान शावर्स को समाचार मिला कि नीमाहेड़ा का मुसलमान अधिकारी विप्लवकारियों से मिल गया है। तब कप्तान ने नीमाहेड़े पर अधिकार करने का निश्चय किया। उसने वहां के अधिकारी को कहला भेजा कि किला अंग्रेजों के अधिकार में दे दिया जावे। किन्तु उसने कप्तान के आदेश की अवहेलना कर नगर कोट के द्वार बन्द कर लिये। अंग्रेजी तथा मेवाड़ की सम्मिलित सेना ने उस पर आक्रमण किया। दिन भर युद्ध होता रहा सफलता नहीं मिली। युद्ध बन्द कर दिया गया किन्तु रात में ही नीमाहेड़े का उक्त अधिकारी अपने साथियों सहित भाग गया। दूसरे दिन सरकारी सेना का निमाहेड़े पर अधिकार हो गया।[३]

आश्वीन सुदी ३ वि० सं० १९१४ को महाराणा ने राजा गोविन्दसिंह को लिखा कि "नीमाहेड़े को विद्रोहियों से खाली करा लिया गया है। उस पर अपना अधिकार हो गया है। किन्तु भविष्य की सुरक्षा की दृष्टि से आप अपनी सेना जहाजपुर भेज देवें।" इस आदेश के पालन में राजा गोविन्दसिंह ने बारहठ नरसिंहदास तथा सरदारमल देपुरा की अध्यक्षता में अपनी सेना जहाजपुर भेज दी।[४]

मेहता शेरसिंह ने नीमाहेड़ा मुकाम से नीमाहेड़े के युद्ध की सूचना देकर लिखा कि "चार पांच आदमी मारे गये, पच्चीस जख्मी हुवे और निमाहेड़े पर अधिकार हो गया है। यदि विद्रोही बनेड़ा की तरफ आवें तो आप उन्हें रोकें, बढ़ने न देवें तथा अपने राज्य के भोमियों, जागीरदारों को भी इसी प्रकार के आदेश भेज देवें।[५]

क्रान्तिकारियों का नेता तात्या टोपे गवालियर से हारकर जब मेवाड़ में आया तब कप्तान शावर्स ने राजा गोविन्दसिंह को लिखा कि "गवालियर से बदमाशान राजपूताने की तरफ आ गये हैं। सरकार की सेना उनके पीछे दो ओर से आ रही है। आप अपने इलाके का प्रबंध करें और सैनिकों सहित आप स्वयं सांगानेर, ढ़ावला, नसीराबाद सड़क पर उपस्थित रहें। उधर का प्रदेश आपके भरोसे पर है।" यह पत्र आषाढ़ सुदी २ वि० सं० १९१५ का है। इसी प्रकार का एक पत्र उदयपुर से भी श्रावण वदी ३ वि० सं० १९१५ को राजा गोविन्दसिंह को लिखा गया था।[६]

भारत पर ईस्ट इन्डिया कम्पनी का शासन प्रस्थापित होने के पश्चात् वि० सं० १९१४ (सन् १८५७) की यह क्रान्ति सबसे बड़ी सशस्त्र क्रान्ति थी। अंग्रेजों ने इस समय बड़े ही

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—उ० रा० इ०।
४—बनेड़ा संग्रह। ५—बनेड़ा संग्रह। ६—बनेड़ा संग्रह।

धीरज और वीरता से काम लिया तथा वह विजयी हुवे। क्रान्तिकारियो की हार हुई, किन्तु जिस शक्ति के-ईस्ट इन्डिया कम्पनी के विरुद्ध उन्होंने क्रान्ति का बिगुल बजाया था वह भी सदा के लिये समाप्त हो गई। इसी क्रान्ति युद्ध के फलस्वरूप ईस्ट इन्डिया कम्पनी को महारानी विक्टोरिया के हाथों मे भारत के शासन सूत्र सौंप देने पडे। क्रान्ति परिवर्तन की जननी है, यदि यह सिद्धान्त सत्य है, तो सत्ता हस्तातरण का यह अवसर क्रान्ति ने ही उपस्थित किया था। अतएव हमे यह लिखने मे संकोच नही है कि सत्ता परिवर्तन का यह श्रेय उक्त क्रान्ति को ही है और यही उसकी सफलता है।

क्रान्ति के दिनों मे समाचारों के प्रचार और प्रसार के आज जैसे वैज्ञानिक साधन नही थे। किन्तु क्रान्ति-युद्ध के समाचार समस्त उत्तर भारत मे द्रुत गति से फैल रहे थे। वह सत्य होने हुवे भी कितने अतिरंजित होते थे, इसके उदाहरण स्वरूप पाठकों के मनोरंजनार्थ एक पत्र के कुछ अ श हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं।

यह पत्र भोपालसिंह शाहपुरा ने राजा गोविन्दसिंह को आषाढ वदी ३ वि० स० १९१५ को लिखा है। उसमे लिखा है कि "गवालियर को पेशवाने ले लिया था। अ ग्रेजों ने महाराज की सहायता कर पेशवा को भगा दिया। वहा फिर महाराज की सत्ता कायम कर दी है। जेष्ठ सुदी ५ का एक पत्र है कि दिल्ली के चारों द्वार खुले हैं। हिन्दुओं को फिर बसाया जा रहा है। मुसलमानों की मनाही है। दिल्ली पर अ ग्रेजो की सत्ता फिर कायम हो गई है। लखनऊ को जीत लिया है। वास बरेली मे दंगा हो रहा है। दिल्ली मे एक अ ग्रेज के आदेश से पाच हजार पचपन व्यक्तियों को फासी पर लटकाया गया है। चार अ ग्रेजों की आज्ञा से दस हजार पिच हतर व्यक्तियों को फासी दे दी गई है। कम्पनी सरकार की आज्ञा से दिल्ली मे पाच हजार लोगों को फासी दी गई। यह भी सुना गया है कि लाहौर से लगाकर दिल्ली तक एक लाख दस हजार व्यक्तिओं को फासी पर लटकाया गया है। जिसमे बडे बडे नवाब भी हैं। दंगा शान्त हो गया है। अ ग्रेजों की सत्ता पहले से अधिक दृढ हो गई है। अब सब स्थानो पर अ ग्रेजों का ही राज्य होगा। लखनऊ के समाचार हैं कि आधा शहर तो लूट लिया गया है, आधा बच गया है। साहूकारों ने दो करोड रुपये अ ग्रेजो को दिये तब वह बच सके।"[1]

इसी समय बनेडे मे एक अघटित घटना घटित हुई। श्रावण वदी १४ को बनेडा में अंग्रेजी सेना का मुकाम हुआ।[2] रसद का प्रबध करने का आदेश होने मे राजा गोविन्दसिंह ने अपने कर्मचारियों द्वारा प्रबध करा दिया किन्तु अ ग्रेज सैनिकों को गायो का मास चाहिये था। कसाई लोग गाये खरीदने के लिये बनेडा मे आये तो किसी ने भी उन्हे गाये नही दीं। तब वह बल-पूर्वक गाये पकड कर ले जाने लगे। प्रजा के लोगों ने बनेडा के राज कर्मचारियों से शिकायत की। उन्होंने राजा गोविन्दसिंह मे निवेदन किया। राजा गोविन्दसिंह ने धर्माभिमान से प्रेरित होकर कहा कि "गायों को छुडा लिया जावे। कसाईयों को भगा दिया जावे।" इस पर सैनिकों ने उन कसाईयों को मारकर भगा दिया। कसाई लोगों ने अग्रेज अधिकारी से शिकायत की। उसने बनेडा दुर्ग पर आक्रमण करने के आदेश दिये। उस सेना मे सिख सैनिक थे। उन्हे जब

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह (एजेन्ट जयपुर का पत्र)।

यह सारा समाचार मालूम हुआ तो उन्होंने साहब बहादुर से कहा कि "हिन्दुओं को गाय पूजनीय होती है। गाय काटना उनके धर्म में मना है। उसी प्रकार गाय हमें भी पूजनीय होती है। यदि बनेड़ा दुर्ग पर इसी कारण आक्रमण होगा तो हम उनका साथ देंगे, आपका नहीं।" यह सुनकर साहब बहादुर चुप हो गये और अनर्थ होते होते टल गया।

अंग्रेजों के सुधार कार्य:—अंग्रेजी साम्राज्य को स्थिरता प्राप्त होते ही उन्होंने भारत में अनेक सुधार किये। सड़कें निकालीं, चौकियां स्थापित की। राज्यों की सीमा के अन्दर से जानेवाली सड़क पर बनी चौकियों पर उन राज्यों की ओर से सिपाही रखने का भी प्रबंध किया। यह सिपाही व्यापारी लोगों के माल की सुरक्षा तो करते ही थे, पोस्ट आफिस से जाने वाले पत्र पारसल आदि की भी सुरक्षा करते थे। सुरक्षा का समस्त उत्तरदायित्व वहां के राजा का होता था। यदि सड़क पर डाक लुट जाती या प्रवासी लुट जाता तो चोरी गई रकम के बराबर धन वहां के राजा से वसूल होता था। कई बार बनेड़ा राज्य को भी इस प्रकार की रकमें देनी पड़ी थी। सड़क चौड़ी बनने के लिये उसके दोनों ओर की झाड़ियां को कटवा दिया गया था[1] और उसे आवागमन के योग्य बना दिया गया था। यह सड़क चित्तौड़ से अजमेर तक थी। बनेड़ा राज्य के ग्राम डावला बनेड़ा होती हुई भीलवाड़ा जाती थी। बनेड़ा में डाक-बंगला था। जब रेल्वे लाईन बन गई तब यह सड़क भी रेलवे लाइन के साथ बनाने का विचार हुआ। वि० सं० १९२६ के माघ से इसका मार्ग बदल दिया गया और वह ग्राम लामिया होती हुई भीलवाड़ा गई।

कई स्थानों पर डाकघर खोले गये। जिससे जनता को पत्रों द्वारा अपने समाचार भेजने की सुविधा हो गई।

रेल्वे लाईन बनाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। प्रथम रतलाम से नीमच तक रेल्वे लाईन बनी। उसके पश्चात् वि० सं० १९२८ के पौष में नीमच से नसीराबाद तक उक्त लाईन को बढ़ाया गया।[2] बनेड़ा राज्य के ग्राम लामिया में रेलवे स्टेशन बना। वि० सं० १९५६ में लामिया स्टेशन को जंक्शन बनाने की योजना स्वीकृत की गई। पौष सुदी ११ को रेलवे इंजिनियर लामिया आया। बनेड़ा से कुंवर अक्षयसिंह वहां गये। रेलवे इंजिनियर से मिले। विचार विनिमय किया और बनेड़ा लौट आये।

लामिया से कोटा तक सर्वे की गई। लाईन पर कई स्थानों पर मिट्टी डालकर उसे रेलवे के रूल डालने के योग्य बनाया गया किन्तु यह कार्य किसी कारणवश स्थगित हो गया और योजना कार्यान्वित नही हो सकी।

वि० सं० १९५० में चित्तौड़ स्टेशन से उदयपुर तक रेलवे लाईन बनाने का कार्य प्रारम्भ हुआ और वि० सं० १९५२ के ज्येष्ट में समाप्त हुआ।

सामाजिक सुधार—भारत में प्रचलित सती प्रथा को लार्ड विलियम बेंन्टिंगने वि० सं० १८८६ में अंग्रेजी प्रदेशों में वैधानिक रूप से बन्द कर दिया था। उसने देशी राज्यों में भी इस

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह।

प्रथा को बन्द करने का विचार किया। राजस्थान मे उन दिनों सती होना पतिव्रत धर्म की चरम सीमा समझी जाती थी। अंग्रेजी सरकार वि० सं० १८८६ से ही राजस्थान मे भी इस प्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न कर रही थी। राजस्थान के तत्कालीन नरेशो ने अंग्रेज सरकार से मेवाड के महाराणा की सम्मति लेने को कहा। तब महाराणा जवानसिंह से इस विषय मे पत्र व्यवहार होने लगा। प्राचीन समय से चली आ रही इस प्रथा को महाराणा बन्द करना नही चाहते थे। किन्तु अंग्रेजी सरकार के कई बार आग्रह पूर्वक लिखा जाने पर वि० सं० १९१८ के श्रावण सुदी १० को अंग्रेजी सरकार की इच्छानुसार महाराणा स्वरूपसिंह ने आदेश देकर मेवाड राज्य मे सती प्रथा को वैधानिक रूप से बन्द कर दिया। इस प्रथा के साथ ही जीवित समाधि लेना भी बन्द कर दिया।

उन दिनो मेवाड राज्य मे एक घृणित प्रथा का और प्रचलन था। वह प्रथा थी किसी स्त्री को डायन समझना। इस प्रथा के अंतर्गत कभी कभी कुछ व्यक्ति किसी स्त्री पर "डायन" होने का सन्देह करके अथवा असत्य दोष लगा कर उसे निर्दयता पूर्वक अनेक प्रकार की यंत्रणाएं देते थे और मार डालते थे। तत्कालीन राज्य विधान मे यह अमानुष कृत्य करनेवालों को दण्ड देने की कोई वैधानिक व्यवस्था नही थी। अंग्रेजी सरकार के अनुरोध पर महाराणा स्वरूपसिंह ने इस प्रथा को भी बन्द कर दिया। उसी प्रकार स्त्रियों तथा बच्चो को बेचने की प्रथा अपराध घोषित कर दी गई।[1]

शासन सुधार—मेवाड राज्य मे दीवानी और फौजदारी कानून वि० स० १९२५ मे बनाये गये और न्यायदान का काम विधिवत होने लगा। उदयपुर राज्य तथा अंग्रेजी सरकार के बीच एक दूसरे के अपराधियो को सौंपने के सम्बन्ध मे एक "अहदनामा" भी हुआ। जो शासकीय सुधार उदयपुर राज्य मे होते थे, उनके पालन के लिए आधीनस्थ राज्यो को आदेश भेजे जाने लगे। बनेडा राज्य को भी उदयपुर राज्य की ओर से भाद्रपद वदी १२ वि० स० १९२५ को फौजदारी मुकदमो मे विधिवत कार्यवाही करके निर्णय देने के लिये लिखा गया। पौष वदी ६ को अपराधियों को सौंपने के सम्बन्ध मे जो अहदनामा हुआ था, उसकी सूचना दी गई।[2]

तबसे बनेडा राज्य मे दीवानी तथा फौजदारी प्रकरणो मे विधिवत कार्य होने लगा तथा अपराधियों को सौंपने के सम्बन्ध मे 'अहदनामे' का पालन होने लगा।

व्यापार के आयात-निर्यात के नियम बनाये गये। एक राज्य से दूसरे राज्य मे अनाज आदि भेजने मे प्रतिबन्ध लगा दिया गया। बिना अनुमति के उपज का कोई भी अनाज दूसरे राज्यो मे नही जा सकता था। पहले कस्टम की कोई व्यवस्था विधिवत नही थी। केवल कुछ कर वसूली की प्रथा थी, जिसे 'चौंतरा' कहते थे। अब कस्टम विभाग कायम किया गया। बनेडा राज्य मे भी श्रावण बदी १ वि० सं० १९४६ को कस्टम विभाग के लिये भवन निर्माण किया गया।[3]

शिक्षा की उन्नति—जनता को शिक्षित करने के लिये सरकार ने कई स्थानों पर पाठशालाएं खोली। वि० सं० १९३२ मे राजकुमारो की शिक्षा के लिये अजमेर मे 'मेयो

१—उदयपुर रा० इति०। २—बनेडा सग्रह। ३—बनेडा संग्रह।

कॉलेज' की स्थापना की गई। राजकुमार अक्षयसिंह को भी उक्त कालेज में शिक्षा प्राप्त करने भेजा गया था।

जनता के स्वास्थ्य सुधार के लिये एलोपेथिक डिस्पेन्सरियां खोली गईं। जहां रोगियों को निःशुल्क औषधियां देने का प्रबंध किया गया।

विविध सुधारः—जनगणना—सबसे प्रथम कर्नल टॉड ने वि० सं० १८८० में जन-गणना का श्रीगणेश किया था। यह कार्य उस समय विधिवत नहीं किया गया था केवल उसने एक नक्शा बनवाया था। इसके पश्चात् माघ वदी ८ वि० सं० १९१३ को उदयपुर राज्य से मेहता गोकुलचन्द ने एक नक्शे का नमूना भेजकर लिखा था कि इस नक्शे के अनुसार घरों की संख्या, जन संख्या तथा काम धंधों का विवरण भेजें। इसके पालन में साधारण रूप से जनगणना की जाकर नक्शा बनेड़ा राज्य से भेजा गया था।[1] सबसे प्रथम विधिवत जनगणना वि० सं० १९३८ में हुई। उसके पश्चात् वि० सं० १९४८ में हुई। उस समय बनेड़ा राज्य की जन संख्या ४५२२१ थी।

मादक द्रव्यः—मादक द्रव्यों की बिक्री पर प्रतिबंध लगाया गया। वि० सं० १९५० तक अफीम की खेती पर कोई नियन्त्रण नहीं था। मादक वस्तुओं के अन्तर्गत उस पर भी नियन्त्रण कर दिया गया।

अंग्रेज सरकार तथा देशी राज्यों की ओर से सुधार कार्य में प्रगति होते ही जनता जागृत हो गई तथा सुधार कार्यों से लाभ उठाने लगी। प्रत्येक राज्य की ओर से शासन सम्बन्धी समाचारों का प्रकाशन होने लगा। जिसे शासकीय गजट कहा जाता था। उदयपुर राज्य से "सज्जन कीर्ति सुधाकर" नामक शासकीय गजट प्रकाशित होने लगा।

जनता ने भी समाचार पत्रों का प्रकाशन करना प्रारम्भ कर दिया। विद्यानुरागी राजा गोविन्दसिंह वि० सं० १९४९ में निम्नांकित समाचार पत्र मंगाते थेः—

१—भारत मित्र (कलकत्ता)
२—हिन्दुस्तान (काला कांकर)
३—राजस्थान समाचार (अजमेर)
४—अजमेर गजट
५—सज्जन कीर्ति सुधाकर (उदयपुर)

राज कार्यः—राजा गोविन्दसिंह ने महाराणा की ओर से तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न होते ही राज कार्य की ओर ध्यान दिया। उन्होंने सर्व प्रथम मुकाता प्रथा (ठेकेदारी) समाप्त की और ग्रामों के किसानों से वसूल होने वाला लगान सीधे राज्य की कचहरी में जमा करने की प्रथा को प्रचलित किया। वि० सं० १९११ में जब वह बनेड़ा की गद्दी पर बैठे, तब राज्य की आय ३७१२६ रुपये थी, उपरोक्त प्रथा के प्रचलन से प्रतिवर्ष आय में वृद्धि होती गई और वि० सं० १९५३ में आय बढ़कर १०५४४७ रुपए हो गई।

१—बनेड़ा संग्रह।

वनेडा राज्य की आर्थिक स्थिति ठीक होने ही उन्होंने वृन्दावन मे एक मन्दिर का निर्माण किया। उसकी देखभाल को वह वृदावन जाया करते थे। वि० स० १९४३ मे जब वह वृन्दावन थे, तब उन्हे ज्ञान हुआ कि ज्योतिप्रसाद खत्री का पुत्र अमरनाथ अपने जमीदारी ग्राम वेचना चाहता है। उसमे बातचीत कर एक लाख रुपयो मे ग्राम अछनेरा, दौलताबाद, गडी-मोअदा, अरहेरा, उमगया, अमरपुर, पेठा, मुरेडा, जावली यह नौ ग्राम खरीदे। इनमे अछनेरा सबसे बडा था। तीन हजार घर थे। अग्रेजी सरकार का थाना, फौजदारी और दीवानी न्यायालय थे। अछनेरा रेलवे लाइन का जक्शन भी है। यह ग्राम पौष बदी ७ वि० स० १९४३ को खरीदे गये। वि० स० १९४९ के वैशाख मे आवलखेडा नामक एक ग्राम वहा और खरीदा तथा उसकी आय वृन्दावन के मन्दिर की भोग पूजा के लिये समर्पित कर दी। अछनेरा आदि छ: ग्रामो की आय ३,०००० रुपये थी। उसमे से कर्मचारियो के वेतन आदि की तथा प्रबंध पर व्यय होने वाली रकम १२००० रुपये घटाने पर बचत १८,०००) रु० थी। आवलखेडा ग्राम की आय जो मन्दिर की भोग पूजा के लिये समर्पित की थी वह २७२८) रुपये थी। इस प्रकार उन्होंने बनेडा की आर्थिक स्थिति सुदृढ करके उसे श्री सम्पन्न किया।

उन्होंने न्यायदान का कार्य स्वयम् अपने हाथों मे लिया। जिससे अपराधियो को न्याय पूर्वक दण्ड तथा निरपराधियो को मुक्ति मिलने लगी। नीर-क्षीर विवेक द्वारा किये गये न्याय दान से प्रजा सन्तुष्ट हुई। सरकारी काम काज वह स्वयम् देखते थे। उदयपुर राज्य से तथा अग्रेजी सरकार की ओर से आने वाले आदेशो को वह ध्यान पूर्वक पढने और उनका उत्तर विचार पूर्वक देते।

उनके जीवन का वह समय भारतीय राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन का सक्रमण काल था। अग्रेजो ने वि० स० १९१४ की क्राति के पूर्व ही भारतीय जन जीवन के सभी मूलभूत अंगो मे परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया था। क्राति के समाप्त होने के पश्चात् महारानी विक्टोरिया का शासन आया और भारत मे सुसूत्र सार्वभौम राजतंत्र प्रस्थापित हो गया। उसके पूर्व तक राजा अपने भूप्रदेश का पूर्ण रूपेण स्वामी होता था। शासन निरकुश तथा न्याय राजा के अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करता था। तलवार के बल पर अपनी टेक रखने की मनोवृत्ति प्रचलित थी। अग्रेजो द्वारा सार्वभौम राजतत्र प्रचलित होते ही भारतीय नरेशों के एकाधिकार पर अकुश लग गया। अग्रेज शासक चाहते थे कि प्रजा को विधिवत न्याय मिले। भूमि का लगान निश्चित हो। जनता का सामाजिक स्तर उन्नत हो और आर्थिक दृष्टि से वह सम्पन्न हो। उन्होंने इस दृष्टिकोण से प्रेरित होकर अनेक विधान बनाये और देशी नरेशो को उनका पालन करने के लिये बाध्य किया।

बनेडा राज्य मेवाड राज्य के अन्तर्गत होने से वहा जो विधान अथवा नियम बनते वह यहा भी भेजे जाते और उनके पालन के लिये आग्रह किया जाता।

सर्वप्रथम फाल्गुन सुदी १२ वि० स० १९३५ को उदयपुर राज्य की ओर से दीवानी और फौजदारी की एक कलमबन्दी बनेडा राज्य की ओर भेजी गई। इसमे नौ कलमे थी।

उनमें न्यायालयों का कार्य किस प्रकार होगा उसकी विधि निर्धारित की गई थी। जिससे राजा के अधिकार सीमित हो गये थे और उन पर अंकुश लगा दिया गया था।[१]

पहले यदि किसी दो राज्यों में सीमा झगड़ा निर्माण हो जाता तो तलवार के बल पर उसे निवटाया जाता था किन्तु अब ऐसे झगड़े पंचों द्वारा अथवा राजकीय कर्मचारी भेजकर बातचीत द्वारा निबटाने के आदेश मेवाड़ राज्य की ओर से वि० सं० १९१३ में प्रचलित किये गये।[२]

राज्य के आय-व्यय का विधिवत हिसाब रख कर उसकी सूचना देने के आदेश अंग्रेजी सरकार की ओर से दिये गये।[३]

उपरोक्त सुधारवादी नवीन विचारधारा में और राजा गोविन्दसिंह के पुराने संस्कारों में मेल नही बैठ सका। उन्हें एक राजा के अधिकारों मे यह हस्तक्षेप उचित प्रतीत नहीं हुआ। शब्दाडम्बर से अधिक वह तलवार के निर्णय पर विश्वास करते थे। सीमा झगड़ों को पंचों द्वारा निवटाने के आदेश होते हुवे भी उन्होंने उधर ध्यान न देते हुवे, जहां कहीं भी ऐसे झगड़े हुवे वहां उन्होंने कई बार अपनी सेनायें भेजी जिससे प्राण हानि हुई। इस प्रकार की तीन घटनाओं का हम उल्लेख करेंगे।

१—ग्राम रायला बनेड़ा राज्य की सीमा से लगा हुआ है। मुगल सम्राट अकबर ने वह ग्राम अजमेर के ख्वाजा साहब को भेंट कर दिया था। इसके पश्चात् वि० सं० १९२२ के कुछ समय पूर्व दरगाह के मुजावरों ने (पुजारियों ने) वह गांव देवगढ़ के रावत से कुछ धन लेकर उसे इस्तमुरारी ठेके पर दे दिया। झगड़े के समय वह ग्राम देवगढ़ वालों के कब्जे मे था। वह ग्राम बनेड़ा राज्य की सीमा से लगा हुआ होने से सीमा झगड़ा निर्माण हुआ। दोनों ओर से सेनायें भेजी गईं। युद्ध हुआ और उसमे तेरह व्यक्ति मारे गये और बाईस घायल हुवे।[४] यह घटना वि० सं० १९२३ के भाद्रपद सुदी ८ की हैं।[५]

२—बनेड़ा राज्य के ग्राम डाबला के जागीरदार राठौड़ राजपूत थे। कोटा के झाला जालिमसिंह से उनके वैवाहिक सम्बन्ध थे, अतएव उनकी उन पर विशेष कृपा थी। महाराणा पर भी झाला जालिमसिंह का प्रभाव था। उन्होंने महाराणा से निवेदन कर डाबला के जागीरदार को उदयपुर राज्य से दो ग्राम जागीर मे दिलाये। उदयपुर दरबार में बैठक दिलाई तथा पांव में सोना पहनने का मान भी प्रदान कराया। इस प्रकार सम्मान पाकर वह जागीरदार अभिमानवश बनेड़ा राज्य की नौकरी की उपेक्षा करने लगा और छटून्द की रकम देने में विलम्ब करने लगा। बनेड़ा राज्य की ओर से उसे इस सम्बंध में लिखा गया। समझाया गया किन्तु उसने उधर ध्यान नही दिया। स्थिति यहां तक पहुँची कि उसने नौकरी और छटून्द देना बिल्कुल बंद कर दिया। उसके इस प्रकार के अपमानजनक व्यवहार को राजा गोविन्दसिंह का वीर हृदय सह न सका और उन्होंने वि० सं० १९२१ मे उस पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। इस आक्रमण में कई व्यक्ति मारे गये। उदयपुर राज्य में इसकी शिकायत हुई। उस

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह ३—बनेड़ा संग्रह। ४—वीर विनोद।
५—बनेड़ा संग्रह।

समय महाराणा शम्भुसिंह अवयस्क थे। पंच सामन्ती शासन का समय था। रेजिडेन्ट का उस पर नियन्त्रण था। उन्होंने पुराना झगडा देखकर निर्णय दिया कि डावला ग्राम बनेडा के अधिकार से निकालकर उदयपुर राज्य के अधिकार मे ले लिया जावे। इस निर्णय के पालन में ग्राम डाबला बनेडा राज्य के अधिकार से निकाल लिया गया।

इसके पश्चात् वि० स० १९३६ के चैत्र मे जब महाराणा सज्जनसिंह काकरोली गये थे तब उनके साथ राजा गोविन्दसिंह भी थे। अवसर पाकर उन्होंने ग्राम डावला वापिस प्रदान करने के लिए महाराणा से निवेदन किया। उन्होंने चैत्र सुदी १४ वि० सं० १९३६ को यह ग्राम फिर उनको प्रदान कर दिया।[1]

३—बडा मूहा नामक ग्राम उदयपुर राज्य के दूसरे सामन्त का था। उस ग्राम की सीमा बनेडा राज्य के ग्राम कुंआर से मिलती थी। दोनो ग्रामों मे सीमा झगडा उत्पन्न हुआ। सीमा झगडे सुलझाने के लिये जो विभाग मेवाड राज्य की ओर से कायम किया गया था, उसके अधिकारियों ने झगडे वाली भूमि का कुछ भाग अनिर्णीत घोषित किया था। उस भूमि पर मूहावालो ने खेती करना प्रारम्भ किया। उनको रोकने के लिये आषाढ सुदी ११ वि० स० १९४५ को सैनिक भेजे गये। मूहावाले नही माने। परिणामस्वरूप युद्ध हो गया। कई व्यक्ति मारे गये। मेवाड राज्य की ओर से तहकीकात की गई और मार्गशीर्ष वदी १० वि० स० १९४५ को बनेडा राज्य पर दस हजार रुपए जुर्माना किया गया। आदेश यह था कि तीन मास मे उक्त धन जमा कर दिया जावे। अवधि के भीतर धन जमा नही किया गया और राजा गोविन्दसिंह नम्रतापूर्वक अपनी आपत्तिया प्रस्तुत करते रहे। अन्त मे मेवाड राज्य की ओर से आठ हजार रुपये वार्षिक आय का बनेडा राज्य का ग्राम रीछडा जब्त कर लिया गया।

उपरोक्त कार्यों से अंग्रेजी सरकार और महाराणा राजा गोविन्दसिंह पर अप्रसन्न हो गये। अंग्रेजी शासन मे इस प्रकार का मनमाना निरंकुश व्यवहार नही चल सकता था। सरकार के आदेशो का पालन अनिवार्य था। अतएव समय और परिस्थिति को देख उन्होंने अपने बडे राजकुंवर अक्षयसिंह को वि० सं० १९३८ से राजकार्य की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। नवीन पीढी के राजकुमार शीघ्र ही राज्यकार्य मे दक्ष हो गये। श्रावण बदी १ वि० स० १९४६ को राजा गोविन्दसिंह ने दीवानी और फौजदारी का समस्त कार्य इनके आधीन कर साठ प्रति शत आय उन्हें दे दी। राजकुंवर अक्षयसिंह ने बहुत बुद्धिमतापूर्वक इस कार्य को सम्पादित किया। यह देख राजा गोविन्दसिंह ने बनेडा राज्य के समस्त शासन सूत्र उन्हे सौंप दिये। उस समय उनकी आयु ५६ वर्ष की हो गई थी। अपना शेष जीवन वह धार्मिक कार्यों मे व्यतीत कर वानप्रस्थ-सा जीवन बिताने लगे।

सन्त समागम —राजा गोविन्दसिंह की प्रवृत्ति धार्मिक थी। धर्म के तत्वो को मनोयोग पूर्वक सुन, समझकर उनके गर्भित अर्थ को आत्मसात करना उनके जीवन का लक्ष्य था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जब राजस्थान का भ्रमण किया था। तब मसूदा राज्य मे भी गये

१—बनेडा संग्रह।

थे। मसूदा के राव बहादुरसिंह स्वामीजी के भाषण, निरूपण तथा विवेचन से इतने अधिक प्रभावित हुवे कि उन्होंने आश्वीन वदी १० वि० सं० १९३८ को राजा गोविन्दसिंह को पत्र लिखकर आग्रह किया कि वह स्वामीजी को बनेड़ा अवश्य बुलावें। स्वामीजी की प्रशंसा में उन्होंने लिखा कि "स्वामीजी वेद, व्याकरण, राजनीति मे निपुण है। वेदों का तथा राजनीति का जो ज्ञान इधर लुप्त हो गया था। उसको स्वामीजी ने पुनर्जीवित किया है। ईसाई, जैनी तथा मुसलमान जाति के बहुत से व्यक्ति स्वामीजी से चर्चा करने आते हैं, उनके मत का खण्डन उनके ग्रन्थों से कर देते हैं। उन लोगों से जवाब देते नही बनता। वैदिक धर्म पर यदि कोई आक्षेप करता है तो स्वामीजी तत्काल उसका खण्डन कर देते है।[1]

राजा गोविन्दसिंह संस्कृतज्ञ तथा वेदों के ज्ञाता थे। उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती को बनेड़ा आने का निमन्त्रण दिया। महर्षि कार्तिक वदी ३ वि० सं० १९३८ को बनेड़ा आये। राजा गोविन्दसिंह ने उनका प्रेम और आदरपूर्वक स्वागत किया। झालरा मन्दिर के पास के कुवे पर दो डेरे लगवा दिये। एक स्वामीजी के लिये, एक उनके साथियों के लिये। उन दिनों राजा गोविन्दसिंह के गुरु बहादुरमल बनेड़ा में ही थे। दोपहर के समय राजा और गुरु दोनों ही स्वामीजी के दर्शनों को गये। स्वामीजी की विशाल और भव्यमूर्ति देख दोनों ही चकित और प्रभावित हुवे। दोनों अभिवादन कर आसनों पर बैठ गये। स्वामीजी ने राजा गोविन्दसिंह से कहा कि कोई प्रश्न कीजिये।

राजा गोविन्दसिंह ने कहा कि "जीव, आत्मा और परमात्मा क्या हैं? और इनमें भेद क्या है?"

स्वामीजी ने कहा कि "जीव और आत्मा को तो हम एक मानते हैं और परमात्मा जीवात्मा से पृथक है।"

राजा गोविन्दसिंह ने इस पर यह श्लोक कहा:—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थो क्षर उच्यते। १६।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः। १७।

स्वामीजी ने कहा कि "हम गीता का प्रमाण स्वीकार नहीं करते। आप वेद का पाठ करते हैं और आपके यहां वेद की खूब चर्चा है। आप वेद का प्रमाण दीजिये।" राजा गोविन्दसिंह ने इस पर कोई उत्तर नही दिया।

दूसरे दिन राजा गोविन्दसिंह ने स्वामीजी से कहा कि "हमारे यहां केवल यजुर्वेद की चर्चा है, हमे चारों वेदों के दर्शन कराइये।"

स्वामीजी ने ऋग्वेद का पहला मंत्र सस्वर सुनाया और सुनाते समय उंगली खड़ी करली जो उदात्त का चिन्ह है। राजा गोविन्दसिंह ने कहा कि यह तो अनुदात्त है। आपको उंगली

१—बनेड़ा संग्रह।

खड़ी न करनी चाहिए थी। इस पर स्वामीजी ने कहा कि हम उगली खडी करने वा हिलाने का प्रमाण नही करते हमने तो केवल संकेत मात्र किया था।

विद्यानुरागी राजा गोविन्दसिंह ने अपने दोनों पुत्र राजकुमार अक्षयसिंह तथा राजकुमार रामसिंह को सस्वर वेद पाठ करना सिखाया था। उनकी स्वामीजी ने परीक्षा ली और साम गान सुना। स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुवे। दोनों राजकुमारों को "वर्णोच्चारण शिक्षा" नामक पुस्तक उपहार में दी।

स्वामीजी ने बनेडा राज्य के सरस्वती भडार पुस्तकालय से निघन्टु लेकर अपने पास के निघन्टु को शुद्ध किया था तथा यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य शिक्षा की प्रतिलीपि कराई थी।

राजा गोविन्दसिंह एक दिन स्वामीजी को हाथी पर बैठाकर दुर्ग मे ले गये और वहा धर्मोपदेश कराया।

बनेड़ा मे स्वामीजी सोलह दिन रहे और वहा से चित्तौडगढ के लिए रवाना हो गये।[1]

वैशाख सुदी १४ वि० स० १९४२ को शाहपुरा से रामसनेही साधु हिम्मतरामजी महाराज बनेडा आये। उनकी अगवानी को राजा गोविन्दसिंह तथा राजकुमार अक्षयसिंह पुरोहितजी की बावडी तक गये और उन्हे आदरपूर्वक ले आये। जेष्ठ वदी ५ तक उनके धर्मोपदेश होते रहे। इसके पश्चात् वह शाहपुरा चले गये।[2]

विविध घटनायें —राजा गोविन्दसिंह के राज्यारोहन के उपलक्ष मे बीकानेर नरेश महाराजा सरदारसिंह ने आषाढ सुदी २ वि० सं० १९२३ को हाथी, घोडा और सिरोपाव उपहार मे भेजे।[3]

वि० स० १९२५ मे मेवाड मे भयकर अकाल पडा था। उसके सम्बन्ध मे बनेडा संग्रह मे एक पुरातन पत्र है। उससे ज्ञात होता है कि वह अकाल बहुत भीषण था। लाखो मनुष्य और पशु मर गये किन्तु राजा गोविन्दसिंह ने उस समय बनेडा राज्य की जनता को हजारों मन अनाज मुफ्त बाटा और मरने नहीं दिया। जो भी इनके द्वार पर आया उसे भोजन दिया।

बीकानेर नरेश महाराजा डूगरसिंह जब सिंहासनारूढ हुवे तब बनेडा राज्य की ओर से मार्गशीर्ष सुदी १५ वि० सं० १९३१ को घोडा, हाथी तथा सिरोपाव उपहार मे भेजे गये।[4]

अग्रेज सरकार की ओर से महाराणा सज्जनसिंह को "ग्रैन्ड कमान्डर आफ दि स्टार आफ इन्डिया" की पदवी दी गई। उसका वृहत् दरबार चित्तौड मे हुवा था। उसमें सम्मिलित होने के लिये आश्विन वदी १२ वि० सं० १९३८ को उदयपुर से राजा गोविन्दसिंह को लिखा गया। इस समारोह मे लवाजमे के साथ राजकुमार अक्षयसिंह को भेजा गया।[5]

बीकानेर नरेश महाराजा सर गगासिंह के राजतिलक के उपलक्ष मे राजा गोविन्दसिंह ने कार्तिक वदी १ वि० स० १९४७ को हाथी, घोडा, सिरोपाव आदि उपहार भेजे।

१—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृष्ठ ६५०। ६५१ २—बनेड़ा संग्रह।
३—बनेड़ा संग्रह। ४—बनेडा संग्रह। ५—वीर विनोद, बनेड़ा संग्रह।

वि० सं० १९४८ में वर्षा न होने से, मेवाड़, मारवाड़, दूंढाड़, और अजमेर में भीषण अकाल पड़ा। जनता और पशु भूखों मरने लगे। न अन्न था। न पानी था। जनता अपने ग्रामों से भागने लगी। बनेड़ा राज्य की ओर से जनता का संरक्षण सतर्कतापूर्वक किया गया। भूखी जनता को तीस चालीस हजार मन अनाज निशुल्क वितरण किया गया तथा पशुओं के लिये घास दिये जाने की व्यवस्था की गई। भूखी जनता दुर्ग पर आकर अन्न के लिये पुकार मचाती। राज्य की ओर से उन्हें एक सेर अनाज तथा पशुओं को घास दिये जाने की व्यवस्था की गई।

अद्भुत घटना:—आश्वीन सुदी १२ वि० सं० १९४९ की रात को राणी नरुकी का स्वर्गवास हो गया। दूसरे दिन श्मशान यात्रा हुई। वहां चिता में उनकी साड़ी नहीं जली। उसके सम्बन्ध मे राजकुंवर अक्षयसिंह अपनी दिन चर्या मे लिखते हैं "केशरिया रंग की गोटादार साड़ी थी, जो किंचित मात्र नही जली। रंग तक फिका नहीं हुआ। कपालक्रिया के समय देवी नामक, पुरोहित के बांस के धक्के से वह चिता से खिसक कर वाहर गिर गई। श्मशान में उस समय एक हजार व्यक्ति थे। सभी ने यह अद्भुत वात देखी। उस पुरोहित ने भूल से उस साड़ी को फिर चिता में डाल दिया जो भभक कर जल गई। यह एक असम्भव घटना हुई, जिसे हजारों व्यक्तिओं ने देखा।"

इस चमत्कारिक तथा अद्भुत घटना का विवरण तत्कालीन समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुआ था। कुंवर अक्षयसिंह ने लिखा है कि "वह पुण्यात्मा थीं। नित्य गीता तथा पंचरत्न का पाठ करती थीं। वहुत ईश्वर भक्त, तपस्विनी और पतिव्रता थी।[1]

वि० सं० १९४९ में महाराणा फतेहसिंह की पुत्री का विवाह महाराव उम्मेदसिंह कोटा से हुआ था। उक्त विवाह समारम्भ मे राजा गोविन्दसिंह ने राजकुमार अक्षयसिंह को भेजा। विवाह के समय वह वहां उपस्थित थे। उन्होंने एक मोहर व पांच रुपये कन्यादान में दिये। इस विवाह के संस्मरण उन्होंने अपनी दिनचर्या में लिखे हैं उसमें लिखा है, "बरात में ३५०० मनुष्य, ६०० घोड़े, ६०० ऊंट, ४०० वैल, ५ हाथी, ५ वगियां, ४० भैंसे, १०० भारवाहक गधे थे। सेज गाड़ियां भी लायी गयीं थी। वरात वहुत ठाठ वाट के साथ आई थी।"[2]

इस विवाह के उपलक्ष में राजा गोविन्दसिंह ने अपने कर्मचारी किशनलाल के साथ महाराव कोटा की ओर उत्तम सिरोपाव तथा घोड़ा उपहार स्वरूप भेजा।[3]

माघ वदी १४ वि० सं० १९४९ को राजा गोविन्दसिंह के गुरु पंडित बहादुरमल का स्वर्गवास हो गया। वह वहुत विद्वान् थे और नवलगढ़ के निवासी थे। अपनी दिनचर्या में राज कुंवर अक्षयसिंह ने उनकी बहुत प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है, "यह मेरे पिताश्री के गुरु थे। पुरोहित मोडजी ने भी उन्हीं के पास शिक्षा ग्रहण की है। वेद और धर्म शास्त्र के वह ज्ञाता थे। उन्ही के प्रयत्नों से वनेड़ा राज्य में विद्या का प्रचार हुआ। हम दोनों भाईयों को साम वेद पढ़ाया और कर्म काण्ड से दीक्षित किया।"

१—बनेड़ा संग्रह। २—बनेड़ा संग्रह। ३—बनेड़ा संग्रह।

फाल्गुन सुदी १३ वि० सं० १९४९ को बडे वेग से भूकम्प आया। भूमि डोल उठी। भवन कम्पित हो गये। महल की वस्तुएं जोर जोर से हिलने लगी।

वि० सं० १९५३ के कार्तिक मे उदयपुर मे भारत का वाइसराय लार्ड एलजिन आया तब एक दरबार का आयोजन किया गया था। उसमे सम्मिलित होने के लिये राजकुमार अक्षयसिंह को भेजा गया।

ता० २१ जून सन् १८९७ (वि० सं० १९५४) को सम्राज्ञि विक्टोरिया की हीरक जयन्ती का समारोह उदयपुर मे धूमधाम से मनाया गया। महाराणा के निमन्त्रण पर राजकुमार अक्षयसिंह को उसमे सम्मिलित होने के लिये भेजा गया।

वि० स० १९५६ मे वर्षा न होने से भयानक अकाल पडा। खेती सूख गई। घास उत्पन्न नही हुआ। अनाज इतना अधिक मंहगा हुआ कि गरीब लोग वृक्षों के पत्ते और वन्य पशु मारकर खाने लगे। पशुओ को "हथिया थूहर" के पत्ते तथा वृक्षो की छाल खिलाने लगे। भूख से व्याकुल होकर गरीब लोग अपनी सतानों को बेचकर पेट भरने लगे। देश मे हाहाकार मच गया। ऐसे संकट के समय मे बनेडा राज्य की ओर से दूसरे स्थानो से अनाज और घास मगाकर जनता तथा पशुओं का पालन किया गया।

विवाह:—राजा गोविन्दसिंह का प्रथम विवाह राणी उदावती से हुआ था। यह आकेली के ठाकुर बलवन्तसिंह की पुत्री थी। इनका स्वर्गवास वैशाख सुदी १३ वि० सं० १९०८ मे हुवा।

इनकी दूसरी राणी नरुकी उणियारा के रावराजा फतेहसिंह की पुत्री थी। यह विवाह पौष सुदी ९ वि० स० १९१४ को हुआ था।

इनका तीसरा विवाह फाल्गुन सुदी १ वि० स० १९२० को मच्छन्द्र के स्वामी नैविक्रमसिंह की पौत्री से हुआ था। यह राणी कछवाही कहलाती थी।

इनका चौथा विवाह राणी चावडी से मार्गशीर्ष सुदी १३ वि० स० १९४० को हुआ। यह आरज्या के ठाकुर बख्तावरसिंह की पुत्री थी। यह विवाह बनेडा मे सम्पन्न हुआ। इनका स्वर्गवास फाल्गुन सुदी २ वि० सं० १९८९ को हुआ।

सन्तान —राणी कछवाही के गर्भ से कार्तिक सुदी ९ वि सं० १९२३ को ज्येष्ठ राजकुमार अक्षयसिंह का जन्म हुआ। इन्ही राणी की कोख से द्वितीय राजकुमार रामसिंह का जन्म आश्वीन सुदी ५ वि० स० १९२७ को हुआ।

सम्बन्धियों के विवाह—राजा संग्रामसिंह की पुत्री अजबकुमारी का विवाह माघ सुदी १५ वि० सं० १९१५ को रतलाम के स्वामी राजा भेरोंसिंह के साथ हुआ।

वि० सं० १९४२ के ज्येष्ठ मे द्वितीय राजकुमार रामसिंह का प्रथम विवाह दायतपुर (उत्तर प्रदेश) मे हुआ तथा दूसरा विवाह पौष सुदी ११ वि० सं० १९४८ को कोठारिया मे राव जवानसिंह की पुत्री सुमानकुमारी के साथ हुआ।

राजा गोविन्दसिंह ने अपनी एक वहन कजलोदिया के महाराज गुमानसिंह की पुत्री जवाहरकुंवरी का विवाह वि० सं० १९१९ मे मसूदा (अजमेर) के ठाकुर शिवनाथसिंह के साथ किया। जवाहरकुंवरी ने वनेड़ा में वि० सं० १९४५ मे एक धर्मशाला वनवाई।

दूसरी वहन आनन्दकुमारी का विवाह ठाकुर हरीसिंह रायपुर (मारवाड़) के साथ किया। इन्होंने भी वनेड़ा मे एक धर्मशाला वि० सं० १९४१ में वनवाई।

भवन आदि निर्माण:—राजा गोविन्दसिंह ने अपने राज्य के चौवीस तालावों पर दो लाख रुपये खर्च किये। इनमें से कुछ तालाव नये वनाये। कुछ तालाव छोटे थे, उनको विस्तीर्ण कर गहरे किये। कुछ तालावों की मरम्मत कर उन्हें सिंचन करने योग्य वनाया।

उन्होंने भवन निर्माण पर भी पचास हजार रुपये व्यय किये।

उन्होंने दुर्ग की रनवास की तीसरी मंजिल वनवाई तथा वि० सं० १९३२ में गोविन्द निवास महल तथा वि० सं० १९४१ मे "वादल महल" वनाये। वड़े वाग में गोविन्द भवन वनाया। दुर्ग मे वाला किले पर कचहरियों के लिये भवन वनवाये।

उनका सवसे उल्लेखनीय कार्य है वृन्दावन मे "गोविन्दविहारीजी" के मन्दिर का निर्माण करना। यह मन्दिर वहुत सुन्दर वना है। इसके वनाने मे वहुत धन व्यय हुआ। मन्दिर की भोग पूजा के लिये उन्होंने मथुरा जिले का गांव आंवलखेड़ा की माफी पचास हजार रुपयों मे खरीदी और उसकी आय मन्दिर को समर्पित कर दी। जिससे दो मन भुने हुवे चने अभ्यागतों को प्रतिदिन दिये जाते थे।

इस मन्दिर का कार्य फाल्गुन सुदी २ वि० सं० १९२७ को प्रारम्भ हुआ और फाल्गुन सुदी २ वि० स० १९३२ को उसकी प्रतिष्ठा हुई।

वि० सं० १९२४ में उन्होंने ग्राम कजलोदिया में एक मन्दिर वनवाया।

दुर्ग मे वने नृत्यगोपालजी के मन्दिर के द्वारों पर एक हजार तोले के चांदी के पत्रे वि० सं० १९४९ श्रावण सुदी ३ को चढ़ाये और चांदी का एक सिंहासन वनवाया।

वि० सं० १९५० में रनवास में राणी चावड़ी ने एक मन्दिर वनवाया।

यात्रा:—राजा गोविन्दसिंह भगवद्भक्त थे। उन्होने अपना उत्तरार्ध जीवन भक्ति और अध्यात्म साधना में विताया। वृन्दावन मे वह प्रतिवर्ष जाते। अपने मन्दिर की देखभाल करके वहां भगवद्भजन का आयोजन करते। उन्होंने हरिद्वार, वदरीनारायण, काशी, प्रयाग आदि यात्रायें कीं। इन पवित्र स्थानों पर वह कई वार गये और वहां पवित्र देव मन्दिरों के दर्शन किये तथा गंगा, यमुना में स्नान किया।

साहित्यानुराग:—आधुनिक साहित्य से अधिक उन्हें पुरातन साहित्य से प्रेम था। वेद, उपनिषद्, स्मृतियां आदि का ज्ञान वह प्राप्त करना चाहते थे। किसी पंडित द्वारा केवल सुनकर ग्रंथ के मर्म को समझना असम्भव जानकर उन्होंने उन्हें स्वयं पढ़ने का विचार किया। संस्कृत भाषा का मर्म व्याकरण के ज्ञान के विना हृदयंगम नही हो पाता। अतएव उन्होंने व्याकरण
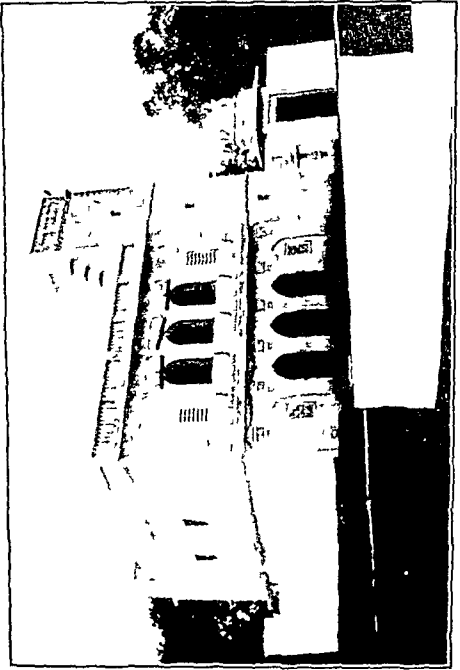
गोविन्द भवन

पढने का निश्चय किया और मार्गशीर्ष सुदी १४ वि० सं० १९२३ को पंडित कालूराम[1] से व्याकरण पढना प्रारम्भ कर दिया। उनकी व्याकरण की शिक्षा फाल्गुन सुदी ७ वि० सं० १९२५ को समाप्त हुई। इन दो वर्षों मे वह व्याकरण मे पारंगत हो गये। इसके अनन्तर पंडित बहादुरमल (नवलगढ वालों) से वेदशास्त्र आदि की शिक्षा तथा कर्मकाण्ड की दीक्षा प्राप्त की। राजा गोविन्दसिंह को वेदों का सम्यक् ज्ञान था। कर्मकाण्ड की रीतियों से वह भलीभाति परिचित थे। तत्कालीन नरेशों मे उनके जैसा वेदों का ज्ञाता कोई नही था। बहुत से पढे लिखे व्यक्ति इनके पास शका समाधान के लिये आते थे और वह उनको समुचित उत्तर देकर उनका समाधान करते थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती से जीव, ब्रह्म, आत्मा आदि के सम्बन्ध मे जो प्रश्न उन्होंने किये थे। उनको देखते हुवे यह प्रमाणित होता है कि वह वेदों के उत्तम ज्ञाता थे।

दिनचर्या —राजा गोविन्दसिंह की दिनचर्या नियमित थी। प्रतिदिन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सासारिक कार्यों का समय निर्धारित था। वह अपने युग के राजर्षि और महर्षि दोनों थे। उनके चरित्र को देखते हुवे यह कहना अत्युक्ति नही होगी।

वह पिछली रात को तीन बजे उठते थे। उठते ही ईश्वर और माता पिता का ध्यान करके उन्हे मन ही मन प्रणाम करते। शौचादि नित्य कर्म से निवृत्त होते ही स्नान करते। उसके पश्चात् सध्या वंदन मे निमग्न हो जाते। उसी समय वह नित्य तीस हजार गायत्री का जप करते थे। उन्होंने गायत्री मन्त्र के कई पुरश्चरण किये थे। सूर्योदय के समय अग्निहोत्र की विधि सम्पन्न करके धर्म के अनुसार दान दक्षिणा देते। मन्दिर मे देव दर्शन को जाते। वहा विद्वान् ब्राह्मणों की उपस्थिति मे शुक्ल यजुर्वेद का पाठ करते। शास्त्रार्थ सुनते। अनन्तर भोजन ग्रहण करते फिर राजसभा मे आकर राजकार्य करते। न्यायासन पर बैठकर वादी प्रतिवादी को तत्काल न्याय प्रदान करते। मध्याह्न की सध्या करके अल्प समय मनोहर महल मे विश्राम करते।

संध्या समय शौचादि नित्यकर्म से निबटकर फिर कचहरी मे आते। रहे हुवे न्यायदान का तथा कचहरी का काम करते, आयव्यय का हिसाब देखते। उसके अनन्तर घोडे पर बैठकर घूमने के लिये निकलते। उस समय उनके साथ सेवक, सैनिक आदि पचास साठ व्यक्ति होते। इसी समय वह अश्वशाला, गजशाला, उष्ट्रशाला, रथभवन आदि की व्यवस्था देखते। अन्न भडार तथा बाग बगीचे का निरीक्षण करते। घूमना और राजकार्य का प्रबध दोनों एक साथ करते थे।

घूमकर आने पर स्नान और संध्या वदन करते, हवन करते फिर बाहर आकर बैठते। अनेक नागरिक, राज कर्मचारी आकर प्रणाम करते। सभी से प्रेमपूर्वक वह बातचीत करते। उनके सुख-दुख की पूछताछ करते। यथायोग्य सम्मानपूर्वक उन्हें बैठाते। गायन वादन के पश्चात् शास्त्र चर्चा होती फिर आगतुक व्यक्ति विदा लेकर चले जाते। स्वयम् राजमहल मे

१—यह ग्राम बामौर मे रहने वाले थे।

जाकर राणियों सहित भोजन करते। उस समय सुमधुर वाद्यों का निनाद गूंजता रहता। अल्प समय राणियों से वार्तालाप करके शयन कक्ष मे चले जाते।'

उपरोक्त दिनचर्या से ज्ञात होता है कि वह समय की महत्ता और मूल्य को जानते थे। मानव जीवन में एक एक क्षण कितना महत्व का होता है, इसे उन्होंने अपने जीवन को नियमित शृंखला मे आवद्ध कर राजाओं के लिये ही नही, प्रत्येक मनुष्य के लिये आदर्श उपस्थित कर दिया है।

व्यक्तित्व:—उनका स्वर्गवास माव वदी १३ वि० सं० १९६१ को हुआ। उस समय उनकी आयु ७१ वर्ष की थी। उन्होंने ४९ वर्ष राज्य किया।

वह संयमी, धीर, वीर, भगवद्भक्त, ज्ञानी, वेदों के ज्ञाता, निष्ठावान तथा परम आस्तिक थे।

१—वीर वंशवर्णनम्।

राजा अत्तरसिंह

राजा अक्षयसिंह

जन्म —राजा अक्षयसिंह का जन्म राणी कछवाही के गर्भ से कार्तिक सुदी ९ वि० सं० १९२३ को हुवा।

राज कार्य —इनके पिता राजा गोविन्दसिंह ने इनकी बुद्धिमता, कार्यक्षमता, राजकार्य के प्रति उत्सुकता देख वि० स० १९४६ मे इनको राज कार्य सौप दिया। यह भी उत्साह और हर्ष के साथ पिताश्री की आज्ञा स्वीकार कर राजकार्य मे सलग्न हो गये। कुंवरपदे मे राजकार्य करने का इनका कार्य काल पन्द्रह वर्ष का है, इन वर्षों मे इन्होंने बहुत परिश्रमपूर्वक कार्य किया। फौजदारी तथा दीवानी मामलों मे इन्होंने तत्कालीन विधिका पालन करते हुवे प्रजा को न्यायदान दिया। कस्टम विभाग को सुगठित कर करों की आय मे वृद्धि की। इस प्रकार अपने परिश्रम तथा कार्य कुशलता से बनेडा राज्य को उन्नत किया।

प्रचलित परिपाटी के अनुसार प्रतिवर्ष महाराणा की सेवा मे यही जाते थे। उस समय मेवाड राज्य के स्वामी महाराणा फतहसिंह थे। इन महाराणा का व्यवहार सामन्तों के साथ ठीक नही था, फिर भी राजकुंवर अक्षयसिंह ने चतुरतापूर्वक अपने व्यवहार मे, स्वाभिमान की रक्षा करते हुवे ऐसा सन्तुलन रखा कि कोई प्रकट संघर्ष नही हो पाया।

अपने पिताश्री का स्वर्गवास होने पर यह माघ सुदी १ वि० स० १९६१ को राजगद्दी पर आसीन हुवे तथा राज्याभिषेकोत्सव फाल्गुन सुदी ४ वि०सं० १९६१ को सम्पन्न किया गया।[1]

तलवार बंधाई की रीति सम्पूर्ण करने के लिये वह महाराणा की सेवा मे नम्रतापूर्वक निवेदन करते रहे। अन्त मे महाराणा ने मार्गशीर्ष बदी ८ वि० स० १९६५ को साह चतुरसिंह को तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न करने को भेजा। महाराणा की ओर से सुनहरी तलवार, सिरपेच, मोतियों की कठी, आभूषण तथा घोडा और हाथी उपहार मे भेजे गये। मार्ग शीर्ष बदी १२ को तलवार बधाई का समारोह मनाया गया। साह चतुरसिंह को तथा उसके साथ के व्यक्तियों को बनेडा राज्य की ओर से सिरोपाव आदि दिये गये।[2]

प्रवास —राजा अक्षयसिंह को देशाटन करने की बहुत अभिरुचि थी। जहा कही भी वह गये हैं वहा का निरीक्षण और अध्ययन कर अपनी दैनंदिनी (डायरी) मे उन्होंने विस्तारपूर्वक उनका वर्णन लिखा है। आज वह वर्णन उस भूप्रदेश का इतिहास बन गया है। भ्रमण वृत्तान्त के कुछ प्रमुख उद्धरण पाठको के मनोरंजन के लिये तथा तत्कालीन स्थिति का ज्ञान होने के लिये हम प्रस्तुत कर रहे हैं।

सर्व प्रथम वह चौदह वर्ष की आयु मे (वि० स० १९३७ मे) अपने काका केशरीसिंह

१—बनेडा संग्रह। २—बनेडा संग्रह।

के साथ दिल्ली गये थे। उन्होंने अपनी स्मरण पुस्तिका में लिखा है कि "यह मेरा पहला प्रवास था और मैं अवयस्क था।"

वि० सं० १९४२ में वह जोधपुर गये। उस समय उनकी आयु उन्नीस वर्ष की थी। उनके साथ छोटे भाई राजकुमार रामसिंह भी थे। उस समय जोधपुर नरेश महाराजा तख्तसिंह थे। उनकी राणियों की तथा सन्तानों की संख्या सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुवा। उन्होंने अपनी दैनंदिनी में इसका उल्लेख करते हुवे लिखा है। "महाराजा तखतसिंह की तेतीस राणियां थीं। उनमे उत्पन्न दस पुत्र और पांच पुत्रियां थीं। पासवानियां २१ थी। उनके दस पुत्र और सात पुत्रियां थीं। इन स्त्रियों के अतिरिक्त इकसठ पात्रायें और थी।"

वि० सं० १९४४ के माघ में अंग्रेजों की सेना का पड़ाव रूपाहेली मे था। तब वह उनकी कवायद देखने इसलिये गये कि सैनिक शिक्षा का ज्ञान प्राप्त कर सकें। अंग्रेजी सेना में उस समय चार हजार घोड़े, आठ हजार सैनिक और चालीस हाथी थे। रूपाहेली मे यह सेना छब्बीस दिन रही थी।

चैत्र वदी ८ वि० सं० १९४७ को खजूरगांव तथा लखनऊ देखते हुवे वह कलकत्ता गये। महाराज जितेन्द्रमोहन के भवन मे एक मास रहे। समुद्र की छटा देखी तथा कलकत्ता नगर देखा।

ज्येष्ठ सुदी १३ वि० सं० १९४७ को वह आबू गये। वहां बीस दिन रहकर वहां से शिमला गये। वहां तीन मास रहे। चैत्र सुदी ७ वि० सं० १९४८ को वह दुबारा शिमला गये और डेढ मास रहे।

वि० सं० १९४७ में रशिया तथा ग्रीस के राजपुत्र अजमेर में आने वाले थे। उन्हें देखने वह अजमेर गये और उनकी पोषाख तथा ठाटबाट देख बहुत प्रभावित हुवे।

राजा गोविन्दसिंह रेजिडेन्ट गवर्नर जनरल से मिलने वि० सं० १९४८ के जेठ में आबू गये थे। उस समय कुंवर अक्षयसिंह तथा उनके पुत्र भंवर अमरसिंह भी उनके साथ गये थे।

वि० सं० १९५१ के चैत्र मास में वह बम्बई देखने गये। भारत में शान्ति प्रस्थापित होते ही; सामाजिक स्थिरता आते ही कला की सर्वांगीण उन्नति होने लगी थी। उन दिनों पश्चिम और पूर्व को मिलाने वाली प्रमुख कड़ी बम्बई थी। अतएव उसके माध्यम द्वारा पश्चिमी सभ्यता तथा कला का स्रोत भारत में बह रहा था। राजकुमार अक्षयसिंह वहां के भव्य भवन, वहां की सभ्यता, सड़कें, कलाकृतियां तथा कलाभिनय देख अवाक् रह गये और बहुत विस्मय चकित हुवे। उन्हें वह एक जादूभरी नगरी प्रतीत हुई। उन्होंने अपनी दैनंदिनी में उसका विशद वर्णन किया है तथा कहीं, कहीं अपने मनोभावों को भी प्रकट किया है। आज से अडसठ वर्ष पूर्व की बम्बई की झांकी पाठकों का भी मनोरंजन करेगी एतदर्थ उक्त दैनंदिनी के कुछ उद्धरण हम प्रस्तुत कर रहे हैं।

इन्दौर खण्डवा रेलमार्ग के संबन्ध मे वह लिखते हैं "मार्ग में स्थान स्थान पर अद्भुत और सुन्दर दृश्य देखे। कालाकुण्ड तथा खरडी स्टेशनों के बीच मे कितने ही पहाड़ों को अन्दर से पोला करके गुफाओं मे से मार्ग बनाये गये हैं। जिसमें .रेल बिलकुल अन्धेरे में से

जाती है। रेल के कई पुल पहाड पर इतनी उंचाई पर थे कि खिडकी से देखने पर चक्कर आजावे। नितान्त अद्भुत माया देखी। ऐसे काम किसी देवता ने नही किये, जो अग्रेजों ने किये हैं। पहाडो मे रेल ऐसी रेंगती है मानो साप बलखाता हुआ चला जा रहा हो। चैत्र बदी ८ को हम बम्बई के बोरीबन्दर स्टेशन पर उतरे और गिरगाव बैक रोड पर साह व्रज भूषणदास, नागरदास के भवन मे ठहरे।"

तीन दिन तक वह नाटक देखने गये। नाटकों को देखकर वह कितने अधिक प्रभावित और स्तंभित हुवे, यह उन्ही के शब्दो मे पढिये। "नाटक का वर्णन न तो मुख से कहा जा सकता है न लेखनी से लिखा जा सकता है, वह तो केवल देखने ही बनता है। वह एक अनिर्वचनीय आनन्द है, जो केवल अनुभवगम्य है। प्रत्येक मनुष्य को जीवन मे एक बार बम्बई अवश्य आना चाहिये और विशेष रूप से नाटक देखना चाहिए। इन्द्र की सभा भी इसके सम्मुख फीकी लगेगी।"

समुद्र के वर्णन मे वह लिखते हैं, "आज सूर्य ग्रहण था, इसलिये समुद्र स्नान को गये। ग्रहण खग्रास था। बिलकुल अन्धेरा हो गया। समुद्र स्नान किया। समुद्र मे बडे वेग से लहरें आ रही थी। उन उछलती कूदती लहरो मे स्नान करते समय बहुत आनन्द आया।

चैत्र सुदी १ को जहाज देखने गये। आज विलायत डाक जाने वाली थी। विलायत जाने के लिये दो सौ अग्रेज उपस्थित थे। हम लोग भी किश्ती मे बैठकर जहाज के पास गये। जहाज पर चढ कर उसे देखा। दो कक्ष थे प्रथम व द्वितीय और तृतीय। जहाज साडे बारह हाथ तो पानी के भीतर रहता है। इतना हो पानी के बाहर रहता है वहा से आकर 'युद्धपोत' देखा। उसके बुर्ज, उन पर रखी तोपे, बन्दूके तथा युद्ध का सामान देखा। यह भी कुछ ऐसी राक्षसी माया थी जिसका वर्णन नही हो सकता है। कहते हैं यह जहाज गोले बरसा कर पानी मे डूब जाता है। शत्रुओं के जहाज को देखने के चश्मे ऐसे अद्भुत हैं कि रात के अंधियारे मे भी २४ मील तक साफ दिखाई देता है। हमे केवल देखने मे दो घन्टे लग गये। अपोलो बन्दरगाह पर उतर कर हम अपने निवास स्थान पर आ गये।"

आज फिर समुद्र की यात्रा करने गये। आगबोट मे बैठकर समुद्र मे पच्चीस कोस तक भ्रमण किया। पानी और आकाश के अतिरिक्त कुछ नही दीखता था। एलीफेंटा पहाड पर उतर कर वहा की गुफा देखी। उस गुफा मे प्राचीन मूर्तिया हैं। एक मीठे पानी का कुण्ड है। वहा से लाइट हाऊस गये विलायत से जो जहाज आते जाते हैं, उनके मार्ग दर्शन का काम लाइट हाऊस का है। मार्ग दर्शन प्रकाश के सहारे से होता है। लाइट हाऊस के ग्यारह खण्ड है। दो खण्ड पानी मे हैं। सब से ऊपर का खण्ड बिल्लौरी काच का अष्टकोणी ताजिये के गुम्बज के समान बना हुआ है। काच सूर्य की किरणों के समान चमकते हैं। ऐसे काच हमने कभी नही देखे। मानो हीरा दमक रहा हो। यह गोलाकार गुम्बज प्रकाशित होकर रात भर घूमता रहता है। दूर से बडे तारेकी भांति चमकता है। एक मिनिट बुझ जाता है, फिर चमकने लगता है। यही उसका क्रम है। जिससे आने वाले जहाजों को तारेकी भ्रान्ति न हो। चालीस मील तक प्रकाश जाता है। ऐसे प्रकाश स्तम्भ समुद्र मे कई स्थानों पर हैं।

आगबोट में बैठने का समुचित प्रबंध था। पानी से दस फुट की उंचाई पर हम बैठे थे। समुद्र की लहरों के साथ आग बोट हिलती झुलती चली जा रही थी। एक अद्भुत रम्य आनन्द का उपभोग उस दिन हमने प्राप्त किया।"

चैत्र सुदी ४ को हमने विलायत जाने वाले तार देखे। तार समुद्र के भीतर से ले जाये गये हैं और लाइट हाऊस के पास बाहर निकाले गये हैं। बहुत मजबूत हैं। समुद्र मे जहां जहां चट्टाने निकली हैं, उन पर दो खण्ड के स्तम्भ बनाकर उन पर लगाये गये हैं, जिस से जहाज चट्टानों से टक्कर न खाजावें।

चैत्र सुदी ८ वि० सं० १९५१ को वह बम्बई से बनेड़ा वापिस आ गये।

काश्मीर नरेश महाराजा प्रतापसिंह के निमंत्रण पर राजकुमार अक्षयसिंह श्रावण वदी ५ वि० सं० १९५९ (ता० २५ जोलाई सन् १९०२) को काश्मीर जाने को निकले। इस यात्रा मे उनके पुत्र अमरसिंह भी साथ थे। वह प्रथम लाहौर आये, वहां से रात को दस बजे रवाना होकर दूसरे दन बारह बजे रावलपिण्डी पहुंचे। काश्मीर नरेश ने उनके स्वागत के लिये रावलपिण्डी में सरदार हरदत्तसिंह को पहले ही सूचित कर दिया था। अतएव स्टेशन पर बग्गियों का प्रवन्ध हो गया था। उनमे बैठकर वह सरदार हरदत्तसिंह के बंगले पर आये।

ता० ४ अगस्त को रावलपीण्डी से वह रवाना हुवे। मार्ग का वर्णन दिनचर्या मे इस प्रकार लिखा है कि "हम तांगों में बैठकर निकले। पहाड लगे और चढ़ाई प्रारम्भ हुई। चीड़ के वृक्षों की शोभा अवर्णनीय थी। ऊंचे ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ते ही चले गये। कोहमरी में आकर काश्मीर नरेश की कोठी में ठहरे। यह नगर पहाड़ पर है। सूरजमुखी के फूल बहुत हैं। वन मे गुलाव वृक्ष फूल रहे हैं। जिनकी सुगन्ध से सारा वन प्रान्त सुवासित हो उठा है।

दूसरे दिन प्रातःकाल दस बजे रवाना हुवे। यहां से उतार ही उतार है। पहाड़ों को काट कर सडकें बनाई गई हैं। बहुत भयानक स्थान है। लगभग बीस मील उतरने के पश्चात् एक नदी दृष्टिगोचर हुई। यह झेलम नदी थी। इसका पाट यहां बहुत संकुचित था। पहाड़ों की कतारो ने उसे विकसित नहीं होने दिया। मरी से कोहाला ग्राम में आये। थोड़ी विश्रान्ति लेकर यहां से रवाना हुए। झेलम के उस पार काश्मीर की सीमा प्रारम्भ होती है। इस पार अंग्रेजी राज्य की चौकी है। दुमेल ग्राम मे काश्मीर नरेश के रेस्टारेन्ट में ठहरे। यहां झेलम नदी का पाट विस्तीर्ण हो गया है। उसकी धारा वेगवती है। नदी के किनारे से लगी हुई सड़क जाती है। काश्मीर नरेश के तहसीलदार ने हमारा सब प्रवन्ध किया। यहां से फिर तांगे में बैठकर रवाना हुवे। उडी ग्राम मे मुकाम हुआ। दुमैल से ही हमारे साथ काश्मीर राज्य का मुन्शी आ रहा था। उसने और तहसीलदार ने प्रवन्ध किया।

ता० ८ अगस्त को हम बारामुला से रवाना हुवे। कोहाला के पुल के पश्चात् सड़क के दोनों ओर बहुत ऊंचे और विशाल पर्वत है। बीच मे नदी बहती है। दाहिनी ओर के पहाड़ की पठार को काटकर सड़क बनाई गई है। बारामुला से दो मार्ग है। एक नाव द्वारा नदी में होकर दूसरा तांगे से सड़क द्वारा। नाव का मार्ग लम्बा है। सड़क का मार्ग पास का है। बारामुला से श्रीनगर तीस मील है। सड़क के दोनों ओर सफेदा नामक वृक्ष लगाये गये हैं। जो

सरौस की भाँति ऊचे और पतले हैं। छ वजे शाम को श्रीनगर के पास पहुचे। यहा नदी सडक के पास आ गई है। श्रीनगर जब तीन मील रह गया, तब हमारी अगवानी को चीफ जस्टिस आये। साथ मे नावें थी। नावों मे बैठकर सौ गज ही गये होंगे कि हमारे लिये स्टीमर उपस्थित था। उसमे बैठकर राजभवनो के घाट पर उतरे। वहा काश्मीर नरेश के कर्मचारियों ने हमारा स्वागत किया और हमको राजभवनो के पास एक भव्य भवन मे ले गये। यह भवन काश्मीर नरेश के भाई स्वर्गीय राजा रामसिंह का था। इसी मे हमारे रहने की व्यवस्था की गई थी।

काश्मीर नगर बहुत पुराना है। समस्त भवन लकडी के बने हुये थे। नदी पर जो पुल बनाये गये हैं वह भी लकडी के थे। घर की छतो पर प्रथम भोज पत्र बिछाकर उन पर मिट्टी डाली गई थी जिस पर घास उग आयी थी। मन्दिरो पर टीन जडे थे। शिखरयुक्त महलों मे एक मन्दिर की भीतो को सोने के पत्रो से मढ दिया गया है। नगर नदी के दोनों ओर छ सात मील लम्बा बसा है। नदी झेलम यहा गहरी है और पाट चौडा है। सहस्रों नावे, शिकरे, हाऊन बोटे दिन भर नदी की लहरों पर नाचती रहती हैं। स्वयम् काश्मीर नरेश की चार हाऊस बोटे है। रथ के गुम्मज जैसी उनकी छतें हैं। ऊपर सोने के कलश हैं। हाऊस बोटें ऐसी थी, जैसे घर ही हो।

ता० ९ अगस्त को डल नामक झील देखने गये। यह झील बहुत बडी है। उसमे घास के थर जमाकर उन पर मिट्टी डाली गई थी। इस प्रकार बनाये गये खेतों को एक दूसरे से बांध दिया गया था। इन कृत्रिम खेतों मे बैंगन, ककडी, हरी भाजी की खेती की जाती है।

वहा से नावों मे बैठकर निशात बाग गये। यह बादशाही समय का पुराना बाग है। इसकी सुन्दरता अनुपम है। स्थान-स्थान पर पानी के फव्वारे हैं। पानी के छोटे छोटे जल प्रपात भी बनाये गये हैं।

काश्मीर मे उन दिनो स्वामी ज्ञानानन्द आये थे। यह हमारे परिचित थे। स्वामीजी कुछ समय पूर्व बनेडा भी आये थे और पिताश्री से उनका वार्तालाप हुवा था। हम उनसे मिलने गये।

काश्मीर नरेश ता० १५ अगस्त को गुलमर्ग से आ गये थे। वह ता० १६ को हमसे मिलने आये। हमने द्वार तक जाकर उनका स्वागत किया। उनके साथ उनके भाई राजा अमरसिंह और कर्मचारी थे। सब कमरे मे आकर बैठे। वार्तालाप करके महाराजा साहब चले गये। ता० १७ को हम काश्मीर नरेश से मिलने उनके महल मे गये। उन्होंने तथा उनके भाई राजा अमरसिंह ने द्वार तक आकर हमारी अगवानी की। आदरपूर्वक महल मे ले गये। बात चीत करके हम अपने निवासस्थान पर लौट आये। बातचीत के समय बहुत से सैनिक अधिकारी तथा सिविल अधिकारी वहा उपस्थित थे।

ता० १८ को सध्या समय नावों मे बैठकर 'चश्मे शाही' देखने गये। ता० १९ को सध्या समय डल झील गये। इसके बीच मे एक टापू पानी मे बाहर निकला हुआ है, जिसे लका कहते है। रात मे वही रहे। चादनी छिटक रही थी। पानी की लहरों के साथ चन्द्र

किरणों की अठखेलियां बड़ी सुहावनी प्रतीत हो रही थीं। एक अपूर्व दृश्य था।

ता० २६ को कृष्ण जन्माष्टमी थी। श्री कृष्ण का जन्मोत्सव यहां बहुत उत्साहपूर्वक मनाया जाता है। रात को कृष्ण लीला पर एक नाटक खेला गया। जिसमें सत्यभामा ने श्री कृष्ण से कल्पवृक्ष मांगा था, उसका भाव प्रदर्शन था। नाटक देखने काश्मीर नरेश महाराजा प्रतापसिंह तथा उनके भाई राजा अमरसिंह आये थे।

इसके पश्चात राजकुंवर अक्षयसिंह श्रीनगर से बीस मील दूर शिकार कैम्प में गये। उनके साथ राजा अमरसिंह भी थे। वहां उन्होंने रीछ, सांभर आदि की शिकार की। वहां से जब लौटे तब रात हो गई थी। प्रकाश के हेतु चीड़ की लकड़ियों का उपयोग एक नई बात थी। यह लकड़ी दीपक के समान जलती है। रात को दस बजे श्रीनगर आ गये।

ता० १४ को काश्मीर नरेश से विदा मांगी। उन्होंने कुंवर अक्षयसिंह तथा भंवर अमरसिंह को काश्मीर में बने दुशाले और अनेक चांदी तथा लकड़ी की कलापूर्ण वस्तुएं भेंट कीं। वहां से गुलमर्ग आये। यहां बर्फ गिरती है। चारों ओर फूल खिल रहे थे। उनकी शोभा अवर्णनीय थी। गुलमर्ग से अमृतसर, लाहौर होते हुवे बनेड़ा आ गये।

तीर्थ यात्राएं:—राजा गोविन्दसिंह ने वृन्दावन में एक मन्दिर बनवाया था। उसकी प्रतिष्ठा के समय वि० सं० १९३२ में राजा अक्षयसिंह अपने पिताश्री के साथ वहां गये। उसके पश्चात् मन्दिर का प्रवन्ध देखने वह कई बार वहां गये।

वि० सं० १९३२ में वह सौरोंजी गये। वि० सं० १९४५ के आषाढ़ में सूर्य ग्रहण पर फिर वहां गये और गंगा स्नान किया।

वि० सं० १९३७ में वह प्रयाग गये। चैत्र सुदी ६ वि० सं० १९४७ को काशी गये और गंगा स्नान किया। चैत्र वदी ५ वि० सं० १९४७ को वह अयोध्या गये।

आषाढ़ वदी १२ वि० सं० १९४७ को तथा चैत्र सुदी १३ वि० सं० १९४८ को वह हरिद्वार गये।

आषाढ़ वदी वि० सं० १९४७ मे सूर्य ग्रहण के अवसर पर वह कुरूक्षेत्र गये। वि० सं० १९४९ में महावारुणी नामक योग आया था, ऐसा योग कई वर्षों मे आता है। इस योग पर वह अपने पिताश्री के साथ हरिद्वार गये और गंगा स्नान किया।

कार्तिक सुदी ६ वि० सं० १९५२ में वह बटेश्वर गये। वहां का मेला देखा। छः घोड़े खरीदे।

साहित्य प्रेम:—राजा अक्षयसिंह को साहित्य से बहुत प्रेम था। उनके पिता ने उन्हें शैशव से ही संस्कृत साहित्य का ज्ञान कराना प्रारम्भ कर दिया था। गुरु पण्डित बहादुरमल ने उनको व्याकरण सिखाया तथा संस्कृत साहित्य मे पारंगत किया। सामवेद का वह सस्वर गायन कर सकते थे। वेद में निहित संस्कृति का उनके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिससे उनकी जन्मजात धार्मिक प्रवृति और भी दृढ़ हुई।

अपने युवराजत्व काल में राजकार्य करने के उपरान्त प्रतिदिन मध्यान्ह के समय दो घन्टे वह संस्कृत साहित्य का अध्ययन करते थे। महर्षियों द्वारा रचित संस्कृत ग्रन्थों में उन्हें

ज्ञान का असीम भंडार मिला। उन्होंने अनेक नीति ग्रन्थ पढे। उनमे जो श्लोक उन्हे प्रभावित करता उस पर वह चिन्ह कर देते। इसके पश्चात् उनके मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि, राजा, राजकर्मचारी तथा प्रजा को उनके कर्तव्यो का ज्ञान कराने के लिये इन नीति रत्नों का सकलन कर पुस्तक रूप मे प्रकाशित किया जावे। इस कार्य के सम्पादन के लिये उन्होने पण्डित नगजीराम शर्मा को नियुक्त किया। उन्होने चिन्हित सूक्तावलियों का चयन किया। चयन सम्पूर्ण होने पर ग्रन्थ का नाम "अक्षय नीति सुधाकर" रखा गया। पाच सौ पृष्ठों का यह विशाल ग्रन्थ कार्तिक सुदी ९ वि० सं० १९६० को समाप्त हुआ। इसे श्री खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई ने प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ मे प्रत्येक सस्कृत श्लोक का अर्थ हिन्दी भाषा मे दिया गया है। मानव को अपने कर्तव्यों का ज्ञान करा कर सत्पथ पर ले जाने की क्षमता इस ग्रन्थ मे है, यह नि संकोच कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के अन्त मे बनेडा राज्य का संक्षिप्त इतिहास भी दिया गया है।

इन्होंने सरस्वती भण्डार नामक पुस्तकालय की स्थापना की। इस पुस्तक भण्डार मे संस्कृत ग्रन्थों के साथ अर्वाचीन ग्रन्थों का भी संग्रह किया गया है। वह तत्कालीन अनेक दैनिक तथा साप्ताहिक समाचार पत्र, और मासिक पत्र भी मंगाया करते थे।

विवाह—इनका प्रथम विवाह वैशाख सुदी ४ वि० सं० १९३१ को खजूरगाँव (उत्तर प्रदेश) के राणा शंकरबख्शसिंह की पुत्री तथा राणा रघुनाथसिंह की पौत्री से हुआ। वह राणी बैशणी कहलाती थी।

इनका दूसरा विवाह वैशाख सुदी ७ वि० सं० १९४० को बदनौर के कुंवर सबलसिंह की पुत्री तथा ठाकुर केशरीसिंह की पौत्री से हुआ। वह राणी मेरतणी कहलाती थी। इनका नाम सूर्यकुमारी था। इनका स्वर्गवास वैशाख बदी ८ वि० सं० १९४५ को हुआ।

इनका तीसरा विवाह वि० सं० १९५५ मे खजूराहट (उत्तर प्रदेश) के स्वामी सोमेश्वरदत्तसिंह की पुत्री तथा अभयसिंह की पौत्री से हुआ। इनका नाम शुभकुमारी था। इनका स्वर्गवास मार्ग शीर्ष कृष्ण १३ वि० सं० २०१६ को हुवा (ता० २५ नवम्बर, सन् १९६२ ई०)।

सन्तति—राणी मेरतणी के गर्भ से प्रथम कन्या हुई। जिनका नाम सज्जनकुमारी रखा गया। इसके पश्चात् इसी राणी से श्रावण सुदी ३ सोमवार वि० स० १९४३ को भंवर अमरसिंह का जन्म हुआ, फिर दशरथ कुमारी नामक कन्या हुई। इनका जन्म चैत्र सुदी १० वि० स० १९४५ को हुआ।

तीसरी राणी के गर्भ से कृष्णाकुमारी नामक कन्या हुई। इनका जन्म फाल्गुन सुदी १० वि० सं० १९५७ को हुआ।

सम्बन्धियों के विवाह—राजा अक्षयसिंह ने अपने युवराजत्व काल मे अपनी दो पुत्रियों के विवाह किये। उस समय राजा गोविन्दसिंह जीवित थे। प्रथम पुत्री सज्जनकुमारी का विवाह आषाढ सुदी १० वि० स० १९५४ को करौली के स्वामी महाराजा भंवरपालसिंह से किया। सज्जनकुमारी का स्वर्गवास आश्वीन बदी ७ वि० सं० १९८१ को तथा महाराजा

भंवरपालसिंह का स्वर्गवास श्रावण सुदी ८ वि० सं० १९८४ को हुवा। द्वितीय पुत्री दशरथ कुमारी का विवाह चैत्र वदी २ वि० सं० १९५८ को उणियारा के रावराजा गुमानसिंह से हुआ।

दानः—पंडित नगजीराम को "अक्षय नीति सुधाकर" पुस्तक के सम्पादन के उपलक्ष में वैशाख वदी ६ वि० सं० १९६२ को दस वीघा भूमि वनेड़ा में दान दी। आश्वीन सुदी ७ वि० सं० १९६२ को सिद्धेश्वर महाराज के मन्दिर की भोग पूजा के लिये भूमि दान दी।

भवन आदि निर्माण कार्यः—इन्होंने अपने युवराजत्व काल मे निम्नांकित भवन वनायेः—

१. अक्षय निवास महल दुर्ग में वि० सं० १९४३ में वनवाया।
२. सुख विलास महल वि० सं० १९४६ में वनवाया।
३. कृष्ण भवन वि० सं० १९५४ मे वनवाया।
४. अक्षय भवन, राम सरोवर तालाव के किनारे पर वनवाया। इसकी नीव वैशाख सुदी (अक्षय) तृतीया वि० सं० १९६१ को लगी और वास्तु संस्कार कार्तिक सुदी (अक्षय) नौमी को सम्पन्न हुवा।

इनके अतिरिक्त और भी कई छोटे वड़े भवन वनाये तथा जीर्ण महलों की मरम्मत कर उन्हें नया रूप दिया।

विविध घटनायेंः—राजा अक्षयसिंह को शिकार खेलने में अत्यन्त रुचि थी। वह बन्दूक से तो शिकार करते ही थे किन्तु घोड़े पर वैठकर उसे सरपट दौड़ाते हुवे बल्लम से जंगली सूअर का शिकार करना उनका प्रिय आखेट था। इससे उनकी शारीरिक शक्ति का अनुमान होता है कि वह कितने वलशाली थे। उनके कुंवरपदे में एक वार वह एक सूअर का पीछा करते हुवे घोड़े को भगाये चले जा रहे थे। सारी मानसिक शक्ति और आंखें सूअर पर केन्द्रित थी। सामने का कुआ उन्हें नही दिखा, क्योंकि कुआ जमीन से मिला हुआ था और आस पास घास उग आई थी। राजा अक्षयसिंह घोड़े सहित उसमें गिर गये, किन्तु उन्होंने धीरज नही छोड़ा। वह और घोड़ा दोनों पानी में तैरने लगे। जव राज सेवक उन्हें ढूंढते हुवे आये, तव उन्होंने उन दोनों को कुवे से निकाला। इस दुर्घटना के पश्चात् भी उन्होंने इस प्रकार की शिकार करना नही छोड़ा तथा अनेक सूअर मारे।

उसी प्रकार नवीनता से उन्हें वहुत प्रेम था। प्रवास के समय उन्हें कहीं कोई नवीन आविष्कार अथवा नवीन वस्तु दीखती तो वह उसे खरीदकर बनेड़ा ले आते। सेना के संकेत के 'हेलियो ग्राफ' वह वनेड़ा लाये थे और उसकी शिक्षा अपने सैनिकों को दी थी।

उसी प्रकार नवीन अंग्रेजी खेलों को देखकर वह वहुत प्रभावित हुवे। घोड़ों पर वैठकर खेला जाने वाला 'पोलो' नामक खेल उन्हें वहुत पसन्द आया। उन्होंने उसे सीखा और वनेड़ा आकर एक टीम बनाकर उसे शिक्षित किया। यह टीम पोलो खेलने में निष्णात हो गई थी।

जव उन्होंने 'क्रीकेट' खेल देखा, तो उसे भी बनेड़ा में प्रचलित किया। एक वार महाराज कुमार भूपालसिंह (उदयपुर) ने इच्छा प्रकट की कि "बनेड़ा की टीम का और हमारी

अक्षय भवन का उत्तरी दृश्य
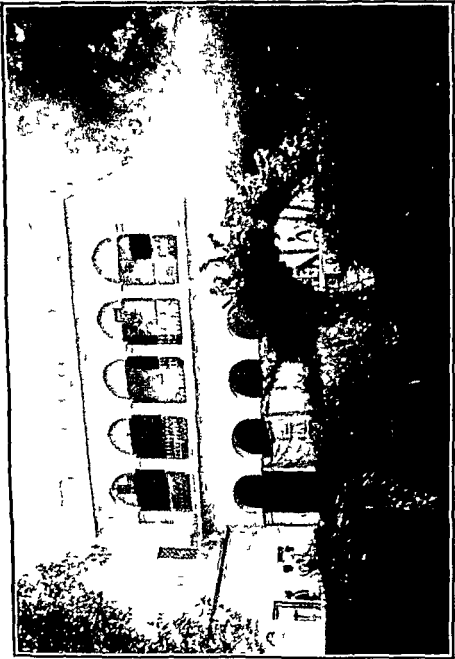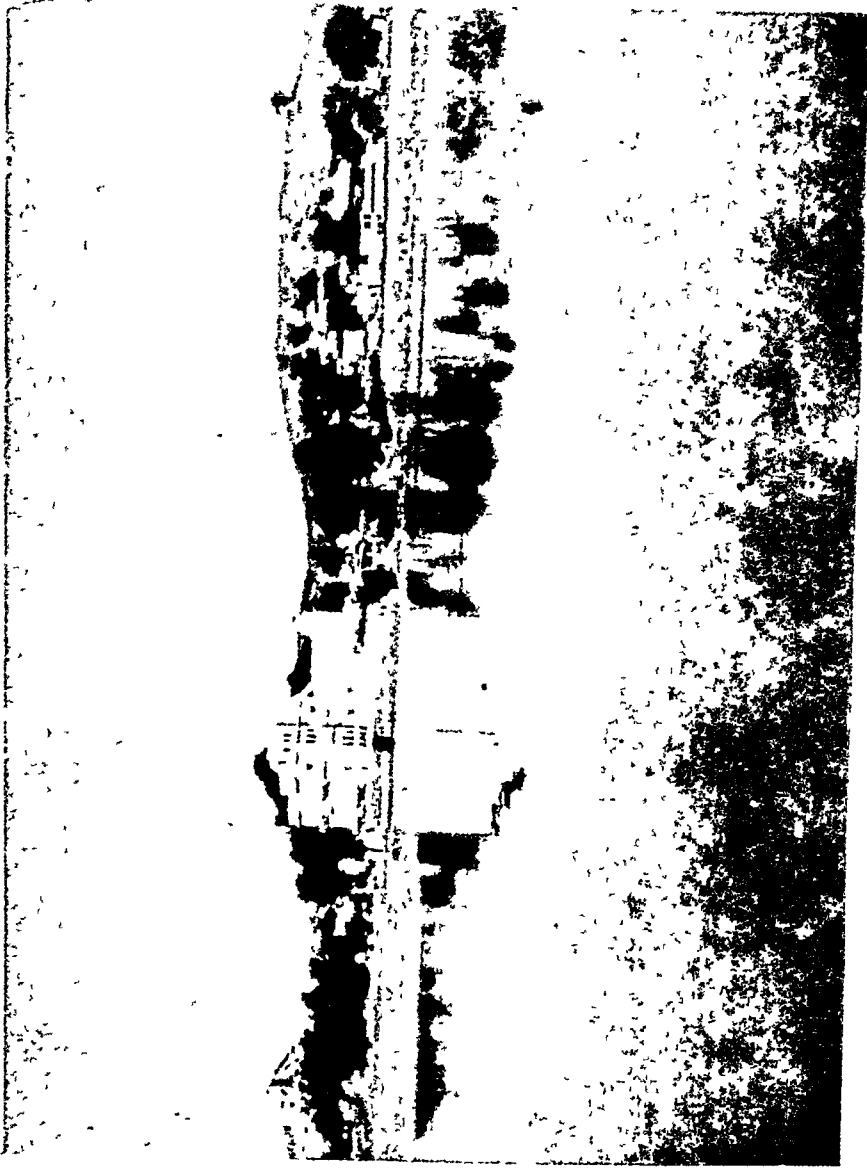
अक्षय भवन दक्षिण पूर्वी दृश्य रामसरोवर सहित

टीम का मेच होना चाहिये।" मेच हुवा, जिसमें बनेडा की टीम के कुछ ही 'रन' कम हुवे। दर्शकों ने दोनों टीमों के मेल की प्रशंसा की।

'टेनिस' नामक खेल को भी उन्होंने बनेडा में प्रचलित किया जिसे वह स्वयम् भी खेलते थे।

व्यक्तित्व—राजा अक्षयसिंह स्वाभिमानी, धर्मप्रिय, ज्ञान पिपासु, मित्रता के इच्छुक, न्यायी तथा कर्तव्यशील थे। वीर प्रकृति और धार्मिक प्रवृत्ति का उनमें अपूर्व संयोग था। न्याय के विरुद्ध आचरण करने वाले को वह क्षमा नहीं करते थे। परम्परागत चली आ रही रीति नीति के वह कट्टर पक्षपाती थे। वह स्वयम् इनका दृढतापूर्वक पालन करते थे। पौष सुदी ६ वि० स० १९५३ को भारत के वाइसराय लार्ड एल्गिन उदयपुर में आये थे। उस समय दरबार में सम्मिलित होने के लिये सभी सामन्तों को बुलाया गया था। राजा गोविन्दसिंह को भी आमंत्रित किया गया था। उन्होंने राजकुंवर अक्षयसिंह को दरबार में सम्मिलित होने के लिये भेजा।

बनेडा राज्य के राजा अथवा उनके राजकुमार की कुर्सी महाराणा के सामने लगाने का नियम था किन्तु उक्त दरबार में नियमित स्थान पर उनकी कुर्सी नहीं थी। राजकुमार अक्षयसिंह जब दरबार में पहुँचे तब नियमित स्थान पर अपनी कुर्सी न देख उनका स्वाभिमान जाग उठा। नियम का पालन अनिवार्य समझ, एक क्षण का भी विलम्ब न करके एक कुर्सी को उठाकर नियमित स्थान पर रखा और उस पर बैठ गये। उस समय तो किसी ने कुछ नहीं कहा किन्तु दूसरे दिन रेजिडेन्ट वाइली साहब ने उनको बंगले पर बुलाकर क्रोध से कहा कि "आम दरबार के समय आपने ऐसी असभ्यता क्यों की?"

एजेन्ट को उदयपुर राज्य के दरबार की रीति का ज्ञान न होने से उसने उस कार्य को असभ्यता समझा था। एजेन्ट के क्रोध से राजकुमार अक्षयसिंह किंचित मात्र भी भयभीत नहीं हुवे। उन्होंने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, "इसमें मेरा तनिक भी अपराध नहीं है। मेवाड राज्य के प्रत्येक दरबार में हमारी बैठक महाराणा के सामने होती है। जब मैंने अपनी बैठक नियमित स्थान पर नहीं देखी तब मुझे जो कुछ करना चाहिये था, वही मैंने किया। जो मेरा कर्तव्य था। क्योंकि नियमों का पालन अनिवार्य होता है।

एजेन्ट ने इस सम्बन्ध में महाराणा से पूछा तो उन्होंने भी राजकुमार अक्षयसिंह के कथन की पुष्टी की। उसे पुरातन कागज तथा दरबार के चित्र दिखाये गये। जिनसे प्रमाणित हो गया कि उन्होंने जो कुछ किया वह उचित था। न्यायप्रिय एजेन्ट ने राजकुमार अक्षयसिंह से अपने व्यवहार पर खेद प्रकट किया और माफी मांगी।

इनके पिता राजा गोविन्दसिंह ने इनके शैशव में घर पर संस्कृत पढ़ाने की व्यवस्था की थी किन्तु जब अजमेर में मेयो कॉलेज स्थापित हुवा तब महाराणा सज्जनसिंह की विशेष इच्छा से अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने के लिए इनको मेयो कॉलेज में भेजा गया। वहां उन्होंने वि० सं० १९३४ से वि० सं० १९३६ तक शिक्षा प्राप्त की।

राजा अक्षयसिंह को देश भ्रमण की रुचि के साथ विद्वानों से वार्तालाप करने की तथा अधिकारियों से मित्रता सम्पादन करने की अभिलाषा रहती थी। उनका विश्वास था कि भारत में जो कुछ सुधार हो रहे हैं, स्थित्यन्तर हो रहा है। वह सब अंग्रेजों द्वारा हो रहे हैं। इस कारण भ्रमण के समय अवसर मिलते ही वह अंग्रेज अधिकारियों से मिलते और सम्पर्क बढ़ाते। वह फाल्गुन सुदी १४ वि० सं० १९४६ को लखनऊ गये तब वहां अवध प्रांत के चीफ सैक्रेट्री से मिले। वहा के कमिश्नर से मिले। इसी वर्ष वह आगरा के कमिश्नर तथा कलेक्टर से मिले और परिचय बढ़ाकर मित्रता सम्पादन की।

उनको अंग्रेजों की संस्कृति तो प्रभावित नहीं कर सकी किन्तु उनकी कला, राज्यव्यवस्था तथा न्यायप्रियता ने उन्हें अवश्य मुग्ध किया। प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन से उनकी धार्मिक वृत्ति में दृढ़ता आई, जिसके कारण वह व्यक्तिगत रूप से कर्मकाण्ड, ईश्वर भक्ति तथा तीर्थयात्रा करते रहे। उसी प्रकार अंग्रेजों की कला, न्यायप्रियता और राज्यव्यवस्था से प्रभावित होकर वह बनेड़ा राज्य की उन्नति करते रहे तथा प्रजा को न्याय दान देते रहे।

वह बनेड़ा राज्य की अधिक सेवा नहीं कर सके। वि० सं० १९६१ में राजगद्दी पर बैठने के पश्चात् वि० सं० १९६३ से ही बीमार रहने लगे और पौष बदी १४ वि० सं० १९६५ को उनका स्वर्गवास हो गया। मृत्यु के समय उनकी आयु ४२ वर्ष की थी।

राजाधिराज अमरसिंह
(सं० २०२१ वि०)

राजाधिराज अमरसिंह

जन्म —इनका जन्म श्रावण सुदी ३ सोमवार वि० सं० १९४३ को हुआ। इनकी माता का नाम मेरतणी सूर्यकुमारी था।

वि० सं० १९५० मे वह अपने पिता अक्षयसिंह के साथ उदयपुर गये। उस समय उनकी आयु केवल सात वर्ष की थी। पौष सुदी १४ को अपने मामा के साथ वह महाराणा को अभिवादन करने दरबार मे गये। महाराणा इनके जन्मजात प्रतिभा वैभव को देख बहुत प्रभावित हुवे। उस समय तक इनका नामकरण नही हुआ था। अतएव माघ सुदी ५ को महाराणा ने आशीर्वाद स्वरूप 'अमरसिंह' नाम प्रदान किया और एक बन्दूक उपहार मे दी। इसी वर्ष अपने पितामह के साथ नैनीताल गये। वहा के गवर्नर से जब उन्होंने भेट की तब यह साथ थे।

वैशाख सुदी ३ वि० स० १९५४ को इनका उपनयन संस्कार वेद विधि के अनुसार सम्पन्न किया गया। उस समय इनके पितामह राजा गोविन्दसिंह जीवित थे। वह संस्कृतज्ञ, वेदो के ज्ञाता तथा सुपठित थे। उसी प्रकार इनके पिता राजा अक्षयसिंह भी वेदपाठी और सुशिक्षित थे। पितामह और पिता ने बालक अमरसिंह की शिक्षा-दीक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। क्षात्रधर्म के अनुसार प्रचलित अस्त्र शस्त्रो के प्रयोगों का इन्हे सम्यक् ज्ञान कराकर पारगत किया। पिता और पितामह दोनों ज्ञान के विकास के लिये देशाटन की तथा सभाओ मे सम्मिलित होकर ज्ञान अर्जित करने की महत्ता को भली भाति जानते थे, अतएव इन्हे सोलह वर्ष की आयु मे इनके काका कुवर रामसिंह के साथ वि० सं० १९५९ मे दिल्ली भेजा गया। उन दिनो दिल्ली मे सम्राट एडवर्ड के राज्यारोहण के उपलक्ष मे एक बडे दरबार का आयोजन किया गया था, इस समारोह को सम्पन्न करने के लिये सम्राट के अनुज ड्यूक आफ कनॉट दिल्ली आये थे। उस दरबार मे भारत के सभी नरेश तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित हुये थे। उस समय भारत के वायसराय लार्ड कर्जन थे।

उपरोक्त समारोह मे सम्मिलित होने के लिये महाराणा उदयपुर को आमंत्रित किया गया था। महाराणा के साथ जो सामन्त जाने वाले थे, उनमे कुवर अक्षयसिंह थे। महाराणा ने इन्हे दिल्ली चलने का निमत्रण भिजवाया। कुवर अक्षयसिंह इस समारोह मे अपने पुत्र अमरसिंह तथा भाई रामसिंह को भी ले जाना चाहते थे। उन्होंने रेजीडेन्ट के द्वारा उनके भी निमन्त्रण पत्र प्राप्त किये। वह स्वयम् तो अस्वस्थता के कारण नही जा सके। कुवर रामसिंह तथा भवर अमरसिंह दोनों दिल्ली गये और समारोह मे सम्मिलित हुवे। उस समारोह का वर्णन भवर अमरसिंह ने अपनी दैनंदिनी मे किया है। उसके कुछ उद्धरण हम नीचे दे रहे हैं। उसमे लिखा है, "उसके पश्चात् शहर मे गये। भीड बहुत अधिक थी। भारतवर्ष के समस्त प्रान्तो से हजारों की संख्या मे लोग आये थे। उनकी विचित्र वेशभूषा तथा अलग-अलग रंग-

रूप देखकर मैं बहुत विस्मित हुआ। सड़कों पर गाड़ियों की इतनी भीड़ थी कि पन्द्रह-पन्द्रह मिनट तक मार्ग ही नहीं मिलता था। शहर के बीच मे नहर निकली है। उसको ढांप दिया गया था। उस पर हजारों लकड़ी की बेन्चें तथा कुर्सियां लगाई गई थीं। भवनों का भाड़ा बहुत बढ़ गया था। छोटे छोटे घरों का हजार-हजार रूपये हो गया था।"

पौष मास था और ठंड के दिन थे। दिनचर्या मे लिखा है कि "रात को साढ़े नौ बजे डेरों की विद्युत आभा देखने के लिये निकले। उस समय ठंड बहुत तीव्र थी। किन्तु ठण्ड की शान्त नीरवता में विद्युत दीपावलियों की शोभा अवर्णनीय थी। प्रकाशभरी शान्ति वेला में जयपुर के वाद्यवादक (बैन्ड बजाने वाले) ठुमरी के अलाप भर रहे थे। उस शान्त नीरवता में वह सुमधुर निनाद कानों को बहुत सुखद प्रतीत हो रहा था।"

"प्रातःकाल ठण्ड इतनी कड़ाके की थी कि नौ बजे तक उठने का साहस ही नहीं हुआ। आश्चर्य यह है कि बाहर रखे बर्तनों में पानी बर्फ के समान जम गया था। कुहरे ने सूर्य को ढंक लिया था। उस स्निग्ध मंद प्रकाश में तोपों की गर्जना तथा जयपुर के वाद्यों का सुमधुर निनाद एक अद्‌भुत सुहावना वातावरण निर्माण कर रहे थे, जो वर्णनातीत है।"

दरबार में महाराणा के पीछे मेवाड़ के सामन्तों का स्थान था। महाराणा दरबार में नही आये। उनके पीछे उदयपुर राज्य के सामन्तों का जो स्थान था। वही कुंवर रामसिंह तथा भंवर अमरसिंह बैठे। समारोह देखा और भाषण सुने।

वि० सं० १९६३ मे काबुल का अमीर आगरा आने वाला था। उसके स्वागत में तत्कालीन भारत सरकार की ओर से समारोह का आयोजन किया गया था। विदेशी नरेशों का ठाटबाट तथा उनके राजनीतिक प्रभाव को देखने यह माघ वदी २ को आगरा गये और उक्त समारोह देख बनेड़ा लौट आये।

श्रावण सुदी १ वि० सं० १९६४ को वह बम्बई गये और श्रावण सुदी १३ को वापिस आये।

राजकुमार अमरसिंह अपने पिता की स्नेह भरी छत्र छाया का अधिक दिनों तक उपभोग नही ले सके। पौष वदी १४ वि० सं० १९६५ को उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। उस समय राजकुमार अमरसिंह की आयु केवल २३ वर्ष की थी। धैर्यपूर्वक इस आघात को सहकर उन्होंने एक कर्तव्यशील व्यक्ति की भांति बनेड़ा राज्य की उन्नति मे तथा प्रजा की सेवा मे अपना ध्यान केन्द्रित कर दिया।

इनका राज्यारोहन समारम्भ माघ वदी ७ वि० सं० १९६५ को सम्पन्न हुआ। उस समय महाराणा फतहसिंह थे। उन्होंने श्रावण सुदी ५ वि० सं० १९६७ को परम्परागत तलवार बंधाई का दस्तूर लेकर साह चतुरसिंह देपुरा को बनेड़ा भेजा। महाराणा ने उसके साथ सिरोपाव, मोतियों की कंठी, सिरपेंच, सुनहरी तलवार, घोड़ा और हाथी उपहार में भेजे। तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न होने पर राजा अमरसिंह ने साह चतुरसिंह को तथा उसके साथियों को सिरोपाव आदि उपहार दिये। उसके पश्चात् राजा अमरसिंह भाद्रपद सुदी ३ वि० सं० १९६७ को दरबार में उपस्थित होने को उदयपुर गये। प्राचीन प्रचलित रीति के

अक्षय आदर्श उच्च विद्यालय

अनुसार उनकी अगवानी को महाराणा सूर्यपोल द्वार के बाहर आधा मील जहा वावडी और मन्दिर है, वहा आये।

राजा अमरसिंह ने नजर नौछावर की, वाह पसाव हुआ। साथ के पाच व्यक्ति, भाई जागीरदार, कामदार और वकील ने नजर की। राजकुमार प्रतापसिंह साथ मे थे, उन्होंने भी नजर की। महाराणा ने उन्हे रुपये उपहार मे प्रदान किये। उस समय राजा अमरसिंह के साथ बनेडा राज्य का प्राचीन नियमित लवाजमा था। महाराणा के साथ छत्र चवर आदि थे। उपरोक्त मिलन विधि समाप्त होने पर महाराणा ने सीख (विदा) का बीडा (पान) प्रदान किया।

राजकार्य और शासन सुधार —राजा अमरसिंह ने शैशव, किशोर तथा तरुण अवस्था मे भारत के प्रसिद्ध स्थानो का भ्रमण किया था। वहा के आर्थिक, सामाजिक तथा राजकीय परिवर्तनों को तथा व्यवस्था को देखा था। उन्हें प्रतीत हुआ कि राज्य बनेडा की आर्थिक तथा सामाजिक अवस्था पिछड़ी हुई है। राजकीय गठन दोष पूर्ण है। तीनो मे परिवर्तन की आवश्यकता है। उन्होंने विचार पूर्वक यह भी सोचा कि जिस राज्य की प्रजा अशिक्षित तथा दरिद्री होगी उस राज्य की उन्नति होना असम्भव है। उसी प्रकार शासकीय गठन दोष पूर्ण होगा तो उसका सचालन सुचारु रूप से नही हो सकेगा। उन्होंने उपरोक्त तीनो अवस्थाओ मे परिवर्तन करने तथा उन्हें विकासोन्मुख करने की ओर साहस पूर्वक कदम उठाया।

सबसे प्रथम प्रजा को सुशिक्षित बनाने के लिये उन्होने शिक्षा विभाग की ओर ध्यान दिया। इनके पिता ने अपने युवराजत्व काल मे वि० सं० १९६० मे एक पाठशाला की स्थापना की थी। जिसमे केवल एक अध्यापक था। कुछ विद्यार्थी पढने आया करते थे, जिनसे कुछ फीस भी ली जाती थी। जैसे ही राजा अमरसिंह के हाथो मे राज्य व्यवस्था आई। उन्होंने व्यवस्थित रूप से शिक्षा विभाग का निर्माण किया। पाठशाला के लिये अपने पिताश्री के नाम पर बनेडा नगर मे "अक्षय मेमोरियल" नामक भवन बनवाया। विद्यार्थियों से ली जाने वाली फीस का आकार नियत किया। धनी और गरीब प्रजा के बालको को समान रूप से शिक्षा का लाभ मिल सके इस सद्हेतु से प्रेरित होकर उन्होंने वि० स० १९७२ मे विद्यार्थियो से ली जाने वाली फीस माफ करदी। ग्रामीण प्रजा को सुशिक्षित बनाने के लिये पाचसौ जनसंख्या वाले ग्रामों मे पाठशाला खोलने का नियम बनाया। तदनुसार वि० स० १९७३ मे सरदारनगर, मूसी, छोटा महुवा, तथा मेघरास ग्रामों मे पाठशालायें खोली गईं। अक्षय मेमोरियल पाठशाला मे मिडिल तक पढाई का प्रबध किया गया। वि० स० १९७९ मे वहा विद्यार्थियो की सख्या १७० हो गई। यह सख्या प्रति वर्ष बढकर वि० स० २००३ मे २९८ हो गई। विद्यार्थियों की सख्या के साथ अध्यापकों की सख्या मे भी वृद्धि होती गई। परिणाम स्वरूप शिक्षा पर व्यय की जाने वाली धनराशी भी बढती गई। वि० स० १९७९ मे शिक्षा पर व्यय की जाने वाली धनराशी जहा १७९० रुपये थी वहा वि० स० २००३ मे ४८५५ रुपये हो गई।

कन्याओं के लिये वि० स० १९८० मे चन्द्रकान्ता पाठशाला की स्थापना की।

बुद्धिमान और विद्यानुरागी गरीब विद्यार्थियों की उन्नति के लिये स्कॉलरशिप देने की व्यवस्था की गई। जो विद्यार्थी दूसरे ग्रामों अथवा नगरों से अक्षय मेमोरियल पाठशाला में पढ़ने आते उनके रहने के लिये छात्रावास की व्यवस्था की गई।

ज्ञान पिपासु तथा शिक्षा प्रेमी बनेडा नगर तथा राज्य की जनता ने अपने राजा की शिक्षा के प्रचार तथा प्रसार की उपरोक्त योजना का सहर्ष स्वागत किया और मुक्त रूप से लाभ उठाया। अध्यापकगण परिश्रम पूर्वक अपने विद्यादान के कर्तव्य को निभाते थे। ऐसे अनेक विद्यार्थी है, जिनके हृदय के विद्या बीज को अक्षय मेमोरियल पाठशाला के अध्यापकों ने अपने ज्ञान से सिंचित कर अंकुरित एवम् पल्लवित किया। भविष्य मे वह बीज विशाल वृक्ष बनकर खूब फूला और फला। तात्पर्य यह है कि प्रारम्भ मे इस पाठशाला में पढे हुये विद्यार्थियों ने अपने भावी जीवन मे आश्चर्यजनक उन्नति की। उनमें से कुछ व्यक्ति आज भी राजस्थान सरकार के अनेक विभागों मे बड़े बड़े पदों पर कार्य कर रहे हैं और अपने उत्तरदायित्व को निभाकर स्वदेश की सेवा में निमग्न हैं। प्रारम्भ में इसी पाठशाला में पढ़े हुये अनेक विद्यार्थी बैरिस्टर, डीलिट, वकील और प्रोफेसर है, और इसका समस्त गौरव तथा श्रेय अक्षय मेमोरियल पाठशाला को है।

जहां राजा अमरसिंह ने जनता को शिक्षित करने की ओर ध्यान दिया वहां उनकी स्वास्थ्य रक्षा का भी समुचित प्रबन्ध किया। स्वास्थ्य विभाग कायम कर सुयोग्य डाक्टर और कम्पाउन्डरों की नियुक्ति की। औषधालय के लिये भवन निर्माण किया। वि० सं० १९७९ मे औषधालय में आने वाले रोगियों की वार्षिक संख्या ३८४३ थी, वही बढ़कर वि० सं० २००३ में बीस हजार हो गई। जहां वि० सं० १९७९ मे स्वास्थ्य विभाग पर केवल १०५८ रुपये व्यय होते थे, वहां वि० सं० २००३ मे ४१०० रुपये व्यय होने लगे।

वि० सं० १९७३ के वैशाख सुदी १२ को एक चलते फिरते औषधालय का निर्माण किया गया। इसके प्रचलित करने के मूल मे ग्रामीण जनता की स्वास्थ्य रक्षा का उद्देश्य था। बनेड़ा नगर से दूर रहने वाली अथवा यातायात के साधनो के अभाव मे बनेड़ा तक न आ सकने वाली गरीब जनता को निःशुल्क औषधियां वितरित करने की यह योजना वास्तव में प्रशंसा के योग्य है। इस औषधालय में दो वैद्य रखे गये थे। बनेड़ा राज्य को दो भागों मे विभाजित किया गया था। प्रत्येक वैद्य अपने मण्डल के ग्रामों के प्रति उत्तरदायी था। वह प्रत्येक ग्राम में जाकर बीमारों को औषधियां देता था। भारतीय आयुर्वेद के अनुसार चिकित्सा होती थी। यह वैद्य ग्रामीण बालकों को चेचक के टीके भी लगाते थे। इस औषधालय का वार्षिक व्यय प्रथम २०० रुपये था। वि० सं० २००३ मे छसौ वार्षिक व्यय होने लगा। वि० सं० १९७९ में मे केवल १८६ रुग्णों की चिकित्सा की गई, वि० सं० २००३ में वह संख्या बढ़ कर २६८५ हो गई।

बनेड़ा के एलोपेथिक डिस्पेन्सरी मे गम्भीर स्थिति के रुग्णों को रखने के लिये स्थान की सकुचित व्यवस्था थी, किन्तु जब रुग्णों की संख्या अधिक बढ़ने लगी और स्थान का अभाव प्रतीत होने लगा, तब राजा अमरसिंह ने एक नया भवन बनाया। उसका नाम अपनी माता

अक्षय चिकित्सालय और सूर्यकुमारी रुग्णालय

के स्मरणार्थ सूर्यकुमारी सैनिटोरियम रखा। फाल्गुन सुदी १५ वि० स० १९९४ (ता० १७ मार्च सन् १९३८) को उसका उद्घाटन किया गया।

शिक्षा और स्वास्थ्य की उपरोक्त व्यवस्था कर उन्होंने अपनी कृषक प्रजा की आर्थिक स्थिति की ओर ध्यान दिया। उन्होंने राज्य के कागजो को देखा तो कृपको मे लगान के लाखो रुपये लेने थे और उनपर राज्य की ओर से बहुत से कर भी लगे हुवे थे। उनका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने सोचा ऋणग्रस्त, दीनहीन कृपक, भूमाता की सेवा करने की क्षमता नही रख सकेगा। राज्य के समस्त आर्थिक और राजकीय व्यवहार कृपको के परिश्रम के फल पर आधारित होते है। राज्य का कर्तव्य है कि वह उन्हे सुखी और सम्पन्न बनावे। तभी वह कृषि के प्रति उत्साहित होंगे और अधिक से अधिक परिश्रम करेंगे। वि० सं० १९७३ मे अपने जन्म दिवस के अवसर पर वि० स० १९२९ से वि० स० १९५३ तक के बकाया लगान के रुपये एक लाख तथा उनका समस्त व्याज माफ कर दिया।

उससे पूर्व तक शहरी और ग्रामीण जनता अनेक प्रकार के करों के बोझ से दबी हुई थी। इसी अवसर पर उन्होंने कोलडी का लगान, त्यौहारी का लगान, चवरी तथा कागली, भोम का कासा, ढोल की लगान, ब्राह्मण चाकर के कीने, चमारो का सदैव दण्ड, कोतवाली के झण्डे का लगान आदि कर लेना बन्द कर दिया।

वि० सं० १९७८ मे उन्होंने शहरी तथा ग्रामीण सभी प्रकार की बेगारे लेना बन्द कर दिया। इन बेगारो से शहरी तथा ग्रामीण जनता त्रस्त थी। राज्य कर्मचारीगण भ्रमण के समय जनता से जो बेगारे लेते थे। वह भी बन्द कर दी गईं। बेगारों से मुक्ति पाकर जनता ने शान्ति और सुख की सास ली।

वि० स० १९७८ का सर्वश्रेष्ठ सुधार कार्य 'ग्राम सभा' की स्थापना है। जिसे म्युनिसिपेलिटी कहा जा सकता है। इस ग्राम सभा का गठन इस प्रकार किया गया था कि राज्य की ओर से सदस्य नामांकित किये जाते थे। वही इसका कार्य सम्पादन करते थे। उसके व्यय के लिये प्रति घर कुछ कर वसूल करने का नियम बनाया गया और आय व्यय पर राज्य का नियन्त्रण रखा गया। वि० स० १९९८ मे बनेड़ा नगर की जनता ने ग्राम सभा का कार्य जनता के हाथों मे सौंप देने की माग की। जनता की माग का स्वागत कर उन्होंने ग्राम सभा को समस्त अधिकारों सहित प्रजा के हाथों मे सौंप दिया तथा विधि पूर्वक सदस्य निर्वाचित करने के नियम बनाये।

इस वर्ष भी उन्होंने बचे खुचे कर तथा रही सही बेगारो को नितान्त समाप्त कर दिया। बनेड़ा राज्य की प्रजा से अब कोई कर वसूल नही होता था तथा किसी प्रकार की बेगार नही ली जाती थी।

वि० सं० १९८० मे राज्य की बीड मे से २५० बीघा भूमि बनेड़ा नगर के पशुओं को चरने के लिये दी गई। इसी वर्ष भवा की कृषि पर प्रति खाता जो दो आना अतिरिक्त लगान लिया जाता था, वह लेना बंद कर दिया।

बनेड़ा राज्य मे विधिवत बन्दोवस्त नहीं हुआ था। प्रचलित प्रथा यह थी कि स्यालू तथा उन्हालू की फसल पर कामदार लोग ग्रामों में जाते और बोये हुये खेतों की नपती कर उपज के हिसाब से लगान और लाटा नियत करते थे। दोनों फसलों की प्रथा पृथक थी। स्यालू में उपज के हिसाब से नकदी जमा कायम होती थी और उन्हालू में उपज का तीसरा हिस्सा अनाज के रूप मे लिया जाता था, जिसे लाटा कहते थे। स्यालू मे कामदार लोग ग्रामों मे जाकर बोये हुवे खेतों की नपती करके उपज की शक्ति को दृष्टिगत रखते हुये उस पर नकदी जमा निर्धारित कर देते। उन्हें यह भी अधिकार था कि यदि उपज निर्बल होती तो उसके अनुसार भूमि में कमी करके जमा निर्धारित कर देते। एक प्रकार से इस कार्य में कामदार लोग निरंकुश थे। अतएव कृपकों को न्यायोचित लाभ मिल सके इस दृष्टिकोण से इस दोष पूर्ण प्रथा में यह परिवर्तन किया कि कामदार लोग स्वयम् भूमि में कमी नहीं कर सकेंगे। वह केवल खेत की परिस्थिति को लिख कर प्रस्तुत करेंगे और राज्य उस पर विचार करके वास्तविक लाभ नकदी के रूप में लगान में कमी करके देगा।

उन्हालू की उपज लाटे के रूप में ली जाती थी। लाटा उपज का $\frac{1}{3}$ भाग होता था। उपज के तीन भाग किये जाते, दो भाग काश्तकार के होते, एक भाग राज्य सरकार का होता। अफीम और कपास का लगान नकद वसूल होता।

उपरोक्त लगान वसूली की प्रथा में अनेक त्रुटियां और अस्थिरता थी। राजा अमरसिंह इन त्रुटियों को दूर कर समस्त कृपकों को समान रूप से लाभ पहुँचाना चाहते थे। वह भली भांति जानते थे कि जब तक लगान स्थिर नही होगा कृपकों को अपनी कृपि का वास्तविक लाभ नहीं मिल सकेगा और जब तक यह कार्य विधिवत नही होगा तब तक सफल नही हो सकेगा। बन्दोवस्त का कार्य प्रारम्भ मे माल विभाग के अन्तर्गत था। उसे अलग कर एक पदाधिकारी की नियुक्ति की। बन्दोवस्त कार्य के विशेषज्ञ समझे जाने वाले एक दो पदाधिकारियों की इस कार्य के हेतु नियुक्ति की गई किन्तु उनका कार्य सन्तोपजनक नही रहा। तब वि० सं० १९८२ में तत्कालीन माल आफिसर पण्डित शिवनारायण देराश्री को यह कार्य सौंपा गया।

पण्डित शिवनारायण बनेड़ा राज्य मे वि० सं० १९७७ में माल आफिसर के पद पर नियुक्त किये गये थे। वह कृपि विज्ञान के ज्ञाता थे। उन्होंने इस कार्य को लगन और परिश्रम पूर्वक सम्पादित किया। वि० सं० १९८२ में इस कार्य का श्री गणेश किया जाकर वि० सं० १९८६ में समाप्ति हुई और उसका पालन वि० सं० १९८७ से होने लगा।

यह कार्य इतना व्यवस्थित और विधिवत था कि वैशाख वदी अमावस वि० सं० १९८७ को देवगढ़ राज्य की ओर से अपना कर्मचारी इसलिये भेजा गया कि वह उक्त कार्य का अध्ययन कर प्रेरणा प्राप्त करें और देवगढ़ राज्य में तदनुसार कार्य करें।

माघ सुदी ५ वि० सं० १९८६ को रेजिडेन्ट बनेड़ा आया और बन्दोवस्त के कार्य को देखा।

इसी प्रकार वन विभाग तथा सायर (कस्टम) विभाग की स्थापना की गई। उनमें मेवाड़ राज्य के विधानों के अन्तर्गत कार्य संचालित होने लगा।

बनेडा राज्य मे दिनचर्या लिखने की प्रथा राजा संग्रामसिंह से प्रारम्भ हुई। राजा गोविन्दसिंह तथा राजा अक्षयसिंह ने भी यह क्रम प्रचलित रखा। राजा अक्षयसिंह की दिनचर्या लिखने की प्रणाली आधुनिक है। राजा अमरसिंह ने भी इस प्रथा को अपनाया। उनकी दिनचर्या के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वह नित्य नियमपूर्वक शासकीय कार्य करते थे। विधिवत वादो की सुनवाई करते और निर्णय देते। वि० स० १९६५ मे जब उन्होंने राज्य की बागडोर सभाली तब दीवानी प्रकरणों की सख्या ६५४ थी, उन्होंने उसी वर्ष ३७६ प्रकरणों मे निर्णय दे दिया। वि० सं० १९६९ मे तो केवल ७० प्रकरण ही शेष रहे। जिनमे नये प्रकरण भी थे, वि० सं० १९७२ मे एक भी पुराना प्रकरण नही रहा। उसी प्रकार वि० सं० १९६५ मे फौजदारी प्रकरण १२६५ थे। उसी वर्ष ३०८ प्रकरणों का निर्णय कर दिया। प्रतिवर्ष नये प्रकरण आते रहने पर भी वि० स० १९७८ मे केवल ९३ प्रकरण शेष रहे। इतना कार्य तब तक होना सम्भव नही है जब तक प्रतिदिन परिश्रमपूर्वक कार्य न किया जाता रहा हो।

मेवाड राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकार—महाराणा शम्भूसिंह के पूर्व तक मेवाड के सामन्तों को अपने प्रदेश की प्रजा को न्याय देने के पूर्ण अधिकार थे। सर्व प्रथम महाराणा शम्भूसिंह के समय मे जब कि वह अवयस्क थे और राजकार्य पच सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत रेजिडेन्ट के नियन्त्रण मे चलता था, उस समय सर्व प्रथम सामन्तो के न्यायिक अधिकारों को सीमाबद्ध करने की ओर मेवाड राज्य का ध्यान गया था किन्तु कोई कलमबन्दी अथवा विधान प्रचलित नही किया गया था। भाद्रपद बदी १२ वि० स० १९२५ को केवल यह आदेश भेजा गया था कि "गम्भीर अपराध जैसे हत्या, डकैती, सती होना, मनुष्य को बेचना, आदि की सूचना तत्काल मेवाड सरकार को दी जावे तथा उसके पश्चात् तहकीकात की जाकर अन्तिम निर्णय के लिये प्रकरण उदयपुर भेजा जावे।"

महाराणा सज्जनसिंह के समय मे वि० सं० १९३५ मे सामन्तो के अधिकारो को सीमाबद्ध करके एक कलमबन्दी बनाई गई, जिसमे केवल नौ कलमे थी। राजा गोविन्दसिंह के इतिहास मे इस कलमबन्दी का उल्लेख आ चुका है। इस कलमबन्दी द्वारा प्रदत्त अधिकारो पर मेवाड राज्य के कई सामन्तो को आपत्ति थी। किसी ने इसे कार्यान्वित किया, किसी ने नही। महाराणा का स्वर्गवास अल्पायु मे होजाने से यह कार्य अधूरा ही रहा। महाराणा फतहसिंह तथा सामन्तो मे इस पर विचार विनिमय होता रहा कोई निर्णयात्मक कार्य नही हो पाया।

महाराणा भूपालसिंह के हाथो मे मेवाड राज्य की बागडोर आते ही उन्होंने सामन्तों के न्यायिक अधिकारों को सीमाबद्ध करने के लिये एक कमेटी बनाई। जिसके सदस्य निम्नांकित थे —

१ मि० सी० जी० सी० ट्रेन्च सी० आई० ई०, रेवेन्यु कमिश्नर।
२ राजा अमरसिंह बनेडा।
३ रावत केसरीसिंह कानोड।
४ पडित धर्मनारायण सीनियर मिनिस्टर।
५ बाबू मदनमोहनलाल मेम्बर महद्राज सभा।

इस कमेटी ने एक कलमवन्दी वनाई, जिसे महाराणा ने स्वीकृत किया। इस कलमवन्दी में प्रथम श्रेणी के सामन्तों को फौजदारी के तथा दीवानी के जो अधिकार दिये गये थे, वह नीचे लिखे अनुसार थे। वनेड़ा राज्य प्रथम श्रेणी का होने से उक्त कलमवन्दी का पालन अनिवार्य था।

फौजदारी:—समस्त गम्भीर अपराध जैसे हत्या, डकैती, लुटेरी, ठगी, सती होना, मनुष्य का वेचना, जाली सिक्का अथवा जाली दस्तावेज बनाना, वलात्कार आदि अपराध यदि ठिकाने की सीमा मे घटित हों तो उसकी सूचना तत्काल महद्राज सभा को तथा मेवाड़ के निकटतम पुलिस स्टेशन को दी जाया करे। उपरोक्त अपराधों की तहकीकात ठिकाने के पुलिस अधिकारी तथा मेवाड़ राज्य के पुलिस अधिकारी मिलकर करेंगे किन्तु मेवाड़ राज्य की पुलिस की प्रतीक्षा मे तहकीकात स्थगित नही की जावेगी। इन अपराधो की सुनवाई ठिकाने का न्यायालय करेगा और अन्तिम निर्णय के लिये प्रकरण माल और मुलजिम सहित महद्राज सभा मे भेज देगा। ऐसे प्रकरणों में लिये गये स्टाम्प की आय तथा किये गये जुरमाने की धनराशि मेवाड़ राज्य की होगी।

उपरोक्त अपराधों के अतिरिक्त भारतीय दण्ड विधान के अन्तर्गत आने वाले समस्त अपराधों की सुनवाई ठिकानों के न्यायालयों में होगी और अन्तिम निर्णय भी वहीं होगा। जिन प्रकरणों में ठिकाना पक्षकार हो तथा दूसरे पक्षकार को आपत्ति न हो तो उसका भी अन्तिम निर्णय ठिकाने का न्यायालय देगा और उसकी स्टाम्प की आय तथा दण्ड की धनराशि ठिकाने की होगी। इन ठिकानों की अदालतों को तीन वर्ष तक की सजा देने के तथा एक हजार रुपये तक जुरमाना करने के अधिकार होंगे।

ठिकानों के न्यायालय प्राप्त शक्तियों के आधीन जिन अपराधियों को कैद की सजा देगी वह ठिकाने के जेलखाने में भुगताई जावेगी, यदि उसका प्रवन्ध और भवन मेवाड़ राज्य की ओर से स्वीकार कर लिये गये हों।

दीवानी:—समस्त वह प्रकरण जो दस हजार रुपयों से कम तथा दस हजार रुपयो के नकदी के अथवा उतनी मालियत के हों उनकी सुनवाई करने का तथा अन्तिम निर्णय देने का अधिकार ठिकाने के न्यायालयों का होगा। यदि प्रतिवादी अथवा प्रतिवादियों में से कोई एक ठिकाने की सीमा में रहता हो और विवादास्पद जायदाद ठिकाने की सीमा के अन्तर्गत हो। उपरोक्त प्रकरणों में ठिकाना पक्षकार होने पर, दूसरे पक्षकारों को आपत्ति न हो तो अथवा मालियत दस हजार रुपयों से अधिक हो तो सुनवाई ठिकाने के न्यायालय मे की जावेगी और अन्तिम निर्णय के लिये प्रकरण महद्राज सभा की ओर भेज दिये जावेंगे। ऐसे प्रकरणों में जो न्यायालयीन शुल्क लिया जावेगा, वह मेवाड़ राज्य का होगा।

फौजदारी तथा दीवानी प्रकरण जिनमें ठिकाना पक्षकार हो और विरुद्ध प्रतिपक्षी को आपत्ति हो तो ऐसे समस्त प्रकरणों की सुनवाई मेवाड़ राज्य के निकटतम सेशन कोर्ट में होगी और अन्तिम निर्णय भी वही न्यायालय देगा।

सर टी० वी० राघवाचार्य के मेवाड राज्य के प्रधान मन्त्री होने के पूर्व तक इसी कलमबन्दी के पालन मे ठिकानों मे न्यायिक कार्य होता रहा। सर टी० वी० राघवाचार्य चाहते थे कि अंग्रेजी राज्य के प्रचलित विधान के अनुसार मेवाड राज्य की प्रजा को तथा ठिकानों की प्रजा को एक ही न्याय सूत्र मे परिवेष्टित कर दिया जावे। प्रचलित कलमबन्दी उनके उद्देश्य को पूर्ण नही करती थी। क्योंकि ठिकानों के सामन्तों को कुछ ऐसे विशेष अधिकार प्राप्त थे, जो अंग्रेजी राज्य के विधान के अन्तर्गत नही आते थे। अतएव सर टी० वी० राघवाचार्य ने राजा अमरसिंह को बुलाया और अपनी इच्छा प्रकट करते हुये कहा, "आपने पूर्व की कलमबन्दी बनाने मे सहयोग दिया है। अब अंग्रेजी राज्य के विधान के अनुसार दीवानी और फौजदारी की शक्तियों को नियंत्रित करने के लिये विधान बनाना है और आपका सहयोग अपेक्षित है, आप सामन्तों को इसके लाभ समझा दीजिये।"

राजा अमरसिंह ने सामन्तो को समझाया कि "यह समय जन जागृति का है। भारतीय जनता जागृत हो रही है, हमे अपने विशेष अधिकारों को छोडकर ऐसे विधान बनाने मे सहायक हो जाना चाहिये, जिससे प्रजा को न्यायिक लाभ अधिक से अधिक मिल सके।" सभी सामन्त सहमत होगये और ता० ११ नवम्बर सन् १९४२ (वि० स० १९९९) को मेवाड सरकार की ओर से सन् १९४२ का २१ वां एक्ट बनाया गया। उसका उद्देश्य उसी के शब्दों मे लिखा जाता है। "चू कि मेवाड की दूसरी अदालतों के मुवाफिक करने की गर्ज से ठिकानो की अदालतो को दुबारा तरतीब देना और उनके अख्तयारात को दोहराना व कायम करना जरूरी है, लिहाजा हस्ब जेल कानून बनाया जाता है।"

इस एक्ट का प्रचलन ता० १ जनवरी सन् १९४३ ई० से होकर पूर्व की कलमबन्दी निरस्त हो गई। उपरोक्त विधान के अन्तर्गत प्रथम श्रेणी के ठिकानों को दीवानी और फौजदारी के प्रकरणो मे मुन्सिफ और फर्स्टक्लास मजिस्ट्रेट के अधिकार दिये गये। पूर्व की कलम बन्दी के अनुसार ठिकानो के निर्णय की अपील सीधी महद्राज सभा मे होती थी। इस विधान के प्रचलन से वह सेशन जजी मे होने लगी, जिससे जनता को न्याय प्राप्ति का एक अवसर और मिल गया। जब भारत स्वतन्त्र होकर दूसरा गठन हुआ तब यह अधिकार समाप्त हो गये।

रेवेन्यु (माल) के अधिकार —पहले माल विभाग से सम्बन्धित समस्त प्रकरणो के निर्णय करने के सम्पूर्ण अधिकार ठिकानों को प्राप्त थे। ठिकाने के निर्णय मे किसी पक्षकार को आपत्ति होती तो वह महाराणा की सेवा मे केवल निवेदन प्रस्तुत कर सकता था। कोई विधिवत कार्यवाही नही होती थी। सामन्तों की इस निरंकुशता को नियन्त्रित करने का सर्व प्रथम सुझाव राजा अमरसिंह ने महाराणा को दिया। महाराणा ने इस सुझाव के अनुसार भाद्रपद बदी ४ वि० सं० १९८७ को एक सरक्यूलर प्रसारित किया, जिसके अन्तर्गत ठिकानों की माली शक्तियों को नियन्त्रित कर आदेश दिया गया था कि रेवेन्यु से सम्बन्धित समस्त माली, शिकमी जागीरदारो की गोद नशीनी, उनकी चाकरी, उदूल हुकमी, ठिकानों द्वारा प्रदत्त जागीर खालसा करना आदि प्रकरणो म निर्णय देने का अधिकार ठिकनो को होगा और उसकी अपील महकमा खास मे होगी। अपील का निर्णय होने तक ठिकाना अपने आदेश

को कार्यान्वित नहीं कर सकेगा। इस सरक्युलर का उद्देश्य यह था कि ठिकानों की जनता को एक और न्याय का अवसर प्रदान किया जावे।

एक्साईजः—उन दिनों मेवाड़ राज्य में मदिरा पान बहुत बढ़ गया था। सरकार की ओर से उस पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न होने से असीमित मदिरा बनने लगी। जिससे पीने वालों की संख्या और मात्रा दोनों बढ़ गई। परिणाम स्वरूप लोगों का स्तर गिरने लगा। महाराणा चाहते थे कि सामन्तों के मदिरा बनाने के कार्य को निरस्त कर समस्त मेवाड़ राज्य में एक ही स्थान पर मदिरा बनाने का कार्यालय (डिस्टलरी) हो। उसपर मेवाड़ सरकार का नियन्त्रण हो। उस योजना से सामन्तों की आय में जो क्षति होगी उसकी पूर्ति सरकार करेगी। क्षति पूर्ति के तथा मदिरा पर नियन्त्रण करने के नियम बनाने के लिये वि० सं० १९८७ में एक कमेटी का उन्होंने निर्माण किया, जिसके निम्नांकित सदस्य थे:—

१. राजा अमरसिंह बनेड़ा।
२. रावत केसरीसिंह कानोड़।
३. दीवान बहादुर कुं० धर्म नारायण सीनियर मिनिस्टर।
४. सी० जी० सी० ट्रेन्च सी० आई० ई० रेवेन्यु कमिश्नर।
५. बाबू मदनमोहनलाल मेम्बर महद्राज सभा।

समिति ने सर्व सम्मति से जो नियम बनाये उन्हें महाराणा ने स्वीकृत किया। यह नियम ता० १ जनवरी सन् १९३१ ई० से समस्त मेवाड़ राज्य में प्रभावशील हुवे। इन नियमों के अन्तर्गत क्षति पूर्ति धन दे दिया गया और मेवाड़ राज्य में एक ही मदिरा बनाने का कार्यालय स्थापित किया गया।

महाराणा से सम्बन्धः—महाराणा फतहसिंह का व्यवहार अपने सामन्तों के साथ प्रेम भरा नहीं रहा। राजा अमरसिंह के साथ वि० सं० १९७८ में जो घटना घटित हुई उसका उल्लेख यहां करना आवश्यक है।

मेवाड़ राज्य के निमंत्रण पर जब बनेड़ा के राजा उदयपुर जाते थे, तब महाराणा उनकी अगवानी को नगर से बाहर निश्चित स्थान पर आते थे। राजा की ओर से नजर न्यौछावर होती थी और महाराणा सीख (विदा) का बीड़ा (पान) प्रदान करते थे। उसके पश्चात् राजा उदयपुर नगर में प्रवेश करते थे। यह बहुमान मेवाड़ राज्य के दोही सामन्तों को प्राप्त था। वह हैं बनेड़ा और शाहपुरा। इसका कारण यह था कि इन दोनों राजाओं के राज्य मेवाड़ राज्य द्वारा प्रदत्त नहीं थे। मुगल सम्राटों द्वारा दिये हुवे थे। मुगल साम्राज्य का पतन होने पर तत्कालीन बनेड़ा और शाहपुरा के राजाओं ने महाराणा को अपने वंश के प्रमुख समझ स्वेच्छा से मेवाड़ राज्य के नियंत्रण में रहना स्वीकार किया था। तभी से उपरोक्त बहुमान की रक्षा और पालन प्रत्येक महाराणा की ओर से होता आ रहा था।

वि० सं० १९७७ में दशहरा दरबार में उपस्थित होने का निमंत्रण उदयपुर राज्य की ओर से राजा अमरसिंह को मिला। वह वहां गये। उस समय महाराणा गोवर्धनविलास में थे।

बनेड़ा राज्य के वकील ने उनको निवेदन कराया कि "राजा अमरसिंह बनेडा से आ गये हैं, श्रीमान उनकी अगवानी को किस समय और किस स्थान पर पधारेंगे।"

इस पर महाराणा ने कहलाया कि "अभी हम प्रवास मे हैं। ऐसे समय अगवानी करने की आवश्यकता नही है।"

राजा ने अपने वकील द्वारा फिर निवेदन कराया कि "वि० स० १९७१ मे श्रीमान प्रवास मे थे। नाहरमगरा मुकाम था, उस समय अगवानी के लिये आने की कृपा की थी। अब भी श्रीमान की आज्ञा हो तो शिकार के स्थान पर अथवा जहा आज्ञा होगी वहा उपस्थित हो जाऊगा, वही यह कार्य सम्पूर्ण हो जावेगा।

महाराणा ने कहलाया कि "देवगढ रावजी के डेरो पर आजावे।"

महाराणा की आज्ञानुसार राजा अमरसिंह वहा गये। वहा जाने पर महाराणा का आदेश आया कि "इस बार राज भवन मे ही आजावे।"

इस आज्ञा का भी पालन किया गया और वह राज भवन मे चले गये। वहा परम्परानुसार राजा अमरसिंह ने नजर न्योछावर की और महाराणा ने बिदा का पान दिया। उसके पश्चात् वह अपने निवास स्थान पर गये और दुर्घटना होते होते टल गई।

वि० सं० १९७८ मे दशहरा दरबार मे सम्मिलित होने का निमन्त्रण पाकर आश्विन बदी ३० वि० सं० १९७८ को फिर वह उदयपुर गये। रेलवे स्टेशन पर ठहर कर महाराणा से कहलाया कि "श्रीमान अगवानी को किस समय पधारेंगे?"

उस समय महाराणा राजभवन मे ही थे। उन्होंने कहलाया कि "इस समय किन्ही महत्व के कामों मे व्यस्त हैं, अगवानी को नही आ सकेंगे।"

महाराणा का उत्तर सुनकर राजा अमरसिंह बहुत व्यग्र और चिन्तित हुये। पिछले वर्ष की घटना का उन्हे स्मरण हो आया। उस समय भी अगवानी की अवहेलना की गई थी। इस वर्ष भी उसी बात को दोहराया जा रहा है। यह प्रश्न उनके व्यक्तिगत अपमान का नही था। वंश की प्रतिष्ठा, गौरव और सम्मान का प्रश्न था। यह एक बहुमान था, जिसको रक्षा पीढ़ी दर पीढ़ी बनेडा के राजा तथा उदयपुर के महाराणा करते चले आ रहे थे, उन्होंने सोचा महाराणा परम्परागत चली आ रही सम्माननीय प्रथा का अन्त करना चाहते हैं, यदि इस समय महाराणा की उपेक्षा को सहन किया गया तो यह सम्मान सदा के लिये समाप्त हो जावेगा और मेरें भावी वंशज इस प्रथा को बन्द करने का दोषी मुझे समझेंगे। उनका क्षात्र तेज जागृत हो गया। उन्होंने महाराणा के सम्मुख झुकना स्वीकार नही किया। उन्होंने एक सच्चे वीर की भाति प्रण किया कि "जब तक महाराणा परिपाटी के अनुसार अगवानी को नही आवेंगे मै उदयपुर नही आऊगा।" उसके पश्चात् वह स्टेशन से ही बनेडा लौट गये।

बनेडा आकर उन्होंने इस पर गहराई मे विचार किया। असतुलित मस्तिष्क से कार्य करने का उनका स्वभाव न होने से उन्होंने उदयपुर राज्य के आदेश की अवहेलना करना उचित नहीं समझा और राजकुमार प्रतापसिंह को दशहरा दरबार मे सम्मिलित होने को उदयपुर भेज दिया।

इतना करके ही वह स्वस्थ नहीं बैठे। उन्होंने महाराणा की सेवा में समस्त परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुवे निवेदन किया कि "ऐसी परिस्थिति में अब मैं राजकार्य नहीं कर सकूंगा। मैं उसे छोड़ रहा हूं। श्रीमान की सेवा के लिये राजकुमार प्रतापसिंह को भेज दिया है। भविष्य में मेवाड़ राज्य के निमन्त्रण पर वही उपस्थित होते रहेंगे।

उन्होंने इस कटु घटना का दिग्दर्शन कराते हुवे एजेन्ट गवर्नर जनरल राजस्थान की ओर तथा रेजीडेन्ट मेवाड़ राज्य को भी पत्र भेजे। महाराजकुमार भूपालसिंह को भी इसकी सूचना दी गई।

एजेन्ट गवर्नर जनरल मि० हालेण्ड ने ता० १० अक्टूम्बर सन् १९२१ को राजा अमरसिंह को लिखा कि "मुझे खेद है कि आपके साथ इस प्रकार की कटु घटना हुई। मैं शीघ्र ही उदयपुर आ रहा हूँ। उस समय विचार करूंगा कि इस विषय में क्या हो सकता है? और मैं आपकी कितनी सहायता कर सकता हूं।"

इस पत्र के प्राप्त होने के कुछ दिन पश्चात् महकमा खास उदयपुर से कार्तिक सुदी १४ वि० सं० १९७८ (ता० १४ नवम्बर सन् १९२१) को आदेश आया कि "सदा से चला आ रहा बनेड़ा राज्य का बहुमान समाप्त कर देने की महाराणा की इच्छा नहीं थी। उस दिन कार्यवश वह नहीं आ सके थे। अब आप आवेंगे तो परिपाटी के अनुसार अगवानी की जावेगी।"

इसके पश्चात् राजा अमरसिंह उदयपुर गये। महाराणा निश्चित स्थान पर अगवानी को आये। राजा अमरसिंह ने प्रसन्नतापूर्वक नजर न्यौछावर की। महाराणा ने हर्षित होकर विदा का पान प्रदान किया। उसके पश्चात् महाराणा राज भवन मे तथा राजा अमरसिंह अपने निवास स्थान पर गये।

मेवाड़ राज्य में जो कुछ आधुनिक सुधार हुवे, वह सब महाराणा भूपालसिंह के समय में हुवे हैं। महाराणा फतहसिंह पुरातनमत वादी होने से उन्होंने न तो राजकीय गठन को सुदृढ़ किया और न सुधार कार्यों की ओर ध्यान दिया। महाराणा फतहसिंह का स्वर्गवास ज्येष्ठ बदी ११ वि० सं० १९८७ (ता० २४ मई सन् १९३०) को हो गया। उस दिन बनेड़े में घड़ी घन्टे बन्द रहे, कचहरी की छुट्टी रही और बाजार बन्द रहा।

महाराणा भूपालसिंह ज्येष्ठ बदी १२ वि० सं० १९८७ को उदयपुर राज्य-सिंहासन पर विराजित हुवे। राजा अमरसिंह शोक प्रदर्शनार्थ ज्येष्ठ बदी १३ वि० सं० १९८७ को उदयपुर गये।

महाराणा भूपालसिंह का राज्यारोहण समारम्भ ज्येष्ठ सुदी ९ वि० सं० १९८७ को मनाया गया। उसके दूसरे दिन उन्होंने अपने प्रायवेट सेक्रेट्री द्वारा निम्नांकित घोषणा कराई।

"जिन जिलों में बन्दोबस्त हुआ है, उनके वि० सं० १९८५ तक के हांसिल का बकाया माफ कर दिया गया है और जिन मे बन्दोबस्त नही हुआ है, उनके उसी सम्वत् की ज्येष्ठ

सुदी १५ की किश्त मे पांच रुपये सैंकडे के हिसाब से रिआयत की गई है। उमरावों, सरदारों, जागीरदारो तथा माफीदारों के सिवा और लोगों के जिम्मे वि० सं० १९७० के पहले का मुकदमो के सम्बन्ध का राज्य का जो बकाया लेना था, वह छोड दिया गया है। जागीरदारों के यहा के माफीदारो के साथ भी यह रिआयत की गई है। लोगो मे पहले का राज्य का जो कर्ज बाकी था, उसमे से १५ लाख रुपये छोड दिये गये हैं। इसके सिवा विवाह, चंवरी, नाता, घरजु सी आदि छोटी छोटी सब लागते माफ कर दी गई हैं। परलोकवासी महाराणा की यादगार मे उदयपुर मे एक सराय बनाई जावेगी। जिसमे मुसाफिर तीन दिन ठहर सकेंगे और उनके आराम का प्रबन्ध राज्य की ओर से होगा। निजी खजाने से एक लाख रुपये नोबल स्कूल को दिया गया। इस रकम के सूद मे गरीब राजपूत विद्यार्थियों को भोजन और वस्त्र मुफ्त दिये जावेंगे तथा उनके रहने के लिये राज्य के खर्चे से छात्रावास बनाया जावेगा।"

महाराणा की ओर से घोषित की गई उपरोक्त उदारता भरी घोषणा को सुनकर जनता हर्षित तथा सामन्त प्रभावित हुवे। ज्येष्ठ सुदी ११ वि० स० १९८७ को उदयपुर मे स्थित बनेडा की हवेली मे सभी सामन्त एकत्रित हुवे। राजा अमरसिंह ने सुझाव रखा कि "महाराणा भूपालसिंह ने अपनी प्रजा-पालन की नीति तथा सामन्तों की उन्नति के अपने दृष्टिकोण को घोषणा मे प्रदर्शित किया है। यह प्रसंग मेवाड राज्य के इतिहास मे अभूतपूर्व है। हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हें धन्यवाद स्वरूप एक धन्यवाद-पत्र देकर उनका यशोगान करे। सभी सामन्तों ने इस सुझाव का स्वागत किया और धन्यवाद पत्र महाराणा की सेवा मे प्रस्तुत करने का निर्णय किया। सभी सामन्तों ने आग्रह किया कि राजा अमरसिंह ही दरबार मे धन्यवाद पत्र पढेंगे।

ज्येष्ठ सुदी १३ वि० सं० १९८७ को महाराणा की सेवा मे राजा अमरसिंह ने निवेदन किया कि "सामन्तगण धन्यवाद-पत्र प्रस्तुत करना चाहते हैं, आज्ञा होने पर उपस्थित होंगे।"

महाराणा ने कहा कि "आज सध्या समय सामन्त उपस्थित हो सकते हैं।"

विधिवत दरबार का आयोजन किया गया और सब सामन्तगण उपस्थित हुवे। राजा अमरसिंह ने धन्यवाद-पत्र पढा। उसका सारांश यह था कि "हम राज भक्त और आज्ञा पालक सामन्तगण, श्रीमान ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर जो अनुग्रह हम लोगों पर तथा प्रजा वर्ग पर किया है, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाशन करने की अभिलाषा से उपस्थित हुवे हैं, विशाल मेवाड राज्य का बहुत सा शासन भार जब युवराज अवस्था मे श्रीमान ने अपनी भुजाओं पर उठाया था, तभी हम सामन्तवर्ग को आशा बध गई थी कि हम श्रीमान की शीतल छत्र छाया मे सुख और सन्तोष की सांस ले सकेंगे। अपनी ऐतिहासिक घोषणा द्वारा श्रीमान ने पन्द्रह लाख रुपये की छूट लगान मे दी है। दीवानी और फौजदारी की रकम माफ की है। करों का बोझ कम किया है। और हम सामन्तों को भी विश्वास दिलाया है कि हमारी अनेक समस्याओं को निकट भविष्य मे सुलझा देवेंगे। यह श्रीमान के प्रजा प्रेम को प्रकट करता है और महान मेवाड राज्य के गौरव को बढ़ाता है। मेवाड राज्य के सामन्तों ने अपने स्वामी के प्रीत्यर्थ सदा से बलिदान के मार्ग को अपनाया है। उसी प्रकार महाराणाओं ने

भी अपने स्वामीभक्त सेवकों पर दया दृष्टि तथा अनुकम्पा रखी है। इस पुनीत परम्परा को अमर बनाने के लिये हम आज विश्वास दिलाते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि हम और हमारे वंशज महान् मेवाड़ और प्रजा पालक मेवाड़ के स्वामी के अनन्य भक्त बने रहेंगे। आजीवन अपनी सेवायें अर्पित करते रहेंगे। मेवाड़ राज्य की उन्नति में अपनी उन्नति तथा उसके लाभ में अपना लाभ समझेंगे।"

इस धन्यवाद-पत्र के प्रस्तुत करने के पश्चात् महाराणा ने सामन्तवर्ग पर जो प्रकरणों से सम्बन्धित बकाया धन था वह माफ कर दिया तथा अनेक लाभ देकर उन्हें संतुष्ट किया।

महाराणा भूपालसिंह के युवराजत्व काल में इनके पिता ने आधुनिक सुधारवादी युग प्रवाह को ध्यान मे लाते हुवे श्रावण वदी ८ वि० सं० १९७८ को अपना बहुत सा राज्याधिकार इनको सौंप दिया था। उस समय भी उन्होंने मेवाड राज्य में अनेक सुधार किये थे। जैसे ही मेवाड़ राज्य की बागडोर उनके हाथों में आई, उन्होंने अपने प्रिय मेवाड़ राज्य की सर्वांगीण उन्नति करने का प्रण किया। उन्होंने अपने राज्य के बुद्धिमान तथा शिक्षित व्यक्तियों को और उत्साही एवम् सुधारवादी सामन्तों को इस सुधार कार्य में हाथ बटाने के लिये प्रोत्साहित किया। महाराणा और राजा अमरसिंह समवयस होकर दोनों के सुधारवादी दृष्टिकोण थे। भारतीय जन जागृति के अभ्युदय को देखकर दोनों की धारणा थी कि अभ्युदय की यह किरणें मेवाड़ की जनता को भी आलोकित, प्रभावित तथा उत्तेजित किये बिना नहीं रहेंगी अतएव युगप्रवाह को देखते हुवे, जनता की उन्नति तथा सुख सुविधा के अधिक से अधिक कार्य किये जाना आवश्यक है। "समान शीले व्यवनेसु सख्यं" इस उक्ति को चरितार्थ करते हुये महाराणा ने राजा अमरसिंह को सार्वजनिक सेवा कार्य के लिये आमन्त्रित किया, क्योंकि उनकी कार्यक्षमता का परिचय महाराणा को युवराजत्व काल में आ चुका था। उस समय (वि० सं० १९८०) राजा अमरसिंह ने सुझाव रखा कि "ऐसे कितने ही जागीरदार तथा सामन्त हैं जो आर्थिक कठिनाई के कारण मेयो कॉलेज अजमेर के व्यय भार को वहन करने की क्षमता नहीं रखते। वर्तमान युग मे शिक्षा की महत्ता सर्व विदित है। गरीब जागीरदारों तथा सामन्तों की भावी पीढ़ियों को शिक्षित करना परमावश्यक है, जिससे वह स्वयम् की तथा अपनी जागीर की उन्नति कर सकें। यह तभी सम्भव है जब कि किसी ऐसी पाठशाला तथा छात्रावास का निर्माण किया जावे, जिसमें कम से कम व्यय पर उत्तम शिक्षा प्राप्त की जासके।"

राजकुमार भूपालसिंह ने उनके इस उत्कृष्ट सुझाव का स्वागत किया और भूपाल नोबल स्कूल की स्थापना की गई। मेवाड़ राज्य की ओर से पाठशाला और छात्रावास दोनों के लिये एक विशाल भवन दिया जाकर एक लाख रुपये का स्थायी अनुदान दिया गया। राजा अमरसिंह ने कार्तिक वदी ५ वि० सं० १९८० को छः हजार रुपये देकर इस पाठशाला के निर्माण में सक्रिय भाग लिया। पाठशाला का कार्य सुचारू रूप से संचालित हो सके इस हेतु एक समिति का गठन किया गया। जिसके सदस्य यह भी थे। इनकी दैनंदिनी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जब भी यह उदयपुर गये हैं, उत्साहपूर्वक भूपाल नोबल स्कूल की मीटिंग में उपस्थित होते रहे हैं।

वि० सं० १६८० के पूर्व अंग्रेजी राज्य मे अफीम की खेती तथा व्यवहार को नियन्त्रित करने के लिये कुछ नियम बनाये गये थे। उनका आशय यह था कि "अनियन्त्रित अफीम की खेती तथा बहु प्रचार से जनता मे नशा करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिल रहा है। खेती को मर्यादित तथा प्रचार पर नियन्त्रण किया जाना आवश्यक है। केवल औषधियों के लिये ही उसका उपयोग किया जाना चाहिये।"

इस सुधार कार्य को क्रियान्वित करने के लिये महाराजकुमार भूपालसिंह ने एक समिति बनाई जिसके एक सदस्य राजा अमरसिंह थे। गहरे विचार विमर्श के पश्चात् इस समिति ने नियम बनाकर प्रस्तुत किये। जिन्हे महाराजकुमार ने स्वीकार किया और उन्हे वैधानिक रूप दिया। मादक द्रव्यों के व्यवहार से जनता का स्तर गिर रहा था। उसे उन्नत करने के लिये युवराज ने "मादक प्रचार सुधारक सस्था" स्थापित की और उसके नियम बनाये जो तत्कालीन जनता का स्तर ऊचा उठाने मे सहायक हुवे।

वाल्टरकृत राजपूत हितकारिणी सभा—वि० सं० १९४६ मे कर्नल वाल्टर जब राजस्थान के एजेन्ट गवर्नर जनरल थे, उस समय उन्होंने राजा महाराजाओं का ध्यान क्षत्रिय जाति मे प्रचलित कुरीतियो की ओर आकर्षित करते हुये कहा, "आपकी जाति मे टीका, नुगता, चारण भाटों का त्याग, विवाह आदि के समय बहुत अधिक और अनावश्यक व्यय किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि धनी तो निर्धन हो जाते हैं और निर्धन ऋण के बोझ से दब जाते हैं। ऐसे दुखद प्रसंग भी उपस्थित हो जाते हैं कि धनाभाव के कारण उपजिविका का साधन अपनी भूमि गिरवी रखनी पडती है। गरीब राजपूतो की कन्याओं का विवाह अधिक टीका न दे सकने के कारण समय पर नही हो पाता। धनी राजपूत अधिक से अधिक टीका देकर अपनी कन्याओं का विवाह कर देते हैं। बेचारी गरीब की कन्याये मुह ताकती रह जाती हैं। यह बडी दुखद बात है। नुगता एक अमानवीय प्रथा है। जिसके घर का व्यक्ति मर जावे, उसके दुख की सीमा नही रहती, ऐसी दुखद अवस्था मे उस पर भोजन का व्यय डालकर उसके दुख को द्विगुणित करना है। उसी प्रकार विवाह आदि मे किया जाने वाला अनावश्यक व्यय कम होना चाहिये। आडम्बरों से बचना चाहिये। आडम्बर एक अवास्तविक सम्मान है। जिसके लिये व्यय करना बुद्धिमानी नही है। जिस जाति की आर्थिक अवस्था दुर्बल होती है वह शनै शनै पतन की ओर अग्रसर होती है। अतएव इन कुप्रथाओ मे सुधार होना आवश्यक है।"

कर्नल वाल्टर की क्षत्रिय जाति की उन्नति के प्रति सद्भावना का तत्कालीन नरेशों ने तथा क्षत्रिय जाति के सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने स्वागत किया। परिणाम स्वरूप वि० सं० १९४६ मे "राजपूत हितकारिणी सभा" की स्थापना की गई। कर्नल वाल्टर की प्रेरणा को चिरस्थायी बनाने के हेतु इसका नाम "वाल्टर कृत राजपूत हितकारिणी सभा" रखा गया।

इस सभा का गठन इस प्रकार किया गया था कि प्रत्येक राज्य के क्षत्रिय जाति के पाच पांच सदस्य नियुक्त किये गये थे। एजेन्ट गवर्नर जनरल के सभापतित्व मे आबू मे उसकी बैठक वर्ष में एक बार होती थी। प्रत्येक राज्य के सदस्यों मे से एक एक प्रतिनिधि इस बैठक मे

उपस्थित होता था। राजस्थान के सभी राज्यों में इसकी शाखायें थीं। महाराणा भूपालसिंह ने उदयपुर राज्य की ओर से आषाढ़ बदी ७ वि० सं० १९८७ (ता० १८ जून सन् १९३०) को राजा अमरसिंह को इस सभा का सदस्य नियुक्त किया। कर्नल वाल्टर के जाने के पश्चात् प्रत्येक एजेन्ट गवर्नर जनरल इस सभा का सभापति होता था। उसके सभापतित्व में प्रत्येक वर्ष इस सभा की बैठक होती थी। यह क्रम अबाधितरूप से चल रहा था।

इस सभा ने समाज-सुधार के जो नियम बनाये थे उनका पालन प्रत्येक क्षत्रिय के लिये अनिवार्य कर दिया गया था। उनके विरुद्ध आचरण करने वालों को दण्ड दिये जाने की विधि भी उन नियमों में थी। स्वेच्छा से दण्ड की रकम न दिये जाने पर सम्बन्धित राज्यों द्वारा वसूली की कार्यवाही होती थी।

भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त होने के दो वर्ष (सन् १९४५-४६) पूर्व से ही अंग्रेजों का भारत से जाना निश्चित-सा हो गया था। उस समय एक अपराधी ने सभा द्वारा बनाये गये नियमों की वैधता को अजमेर के न्यायालय द्वारा चुनौती दी। न्यायालय ने निर्णय दिया कि "यह विधान, विधान सभा के बनाये हुये नही हैं। यह एक सामाजिक जातीय विधान हैं, जिन्हें सरकार से मान्यता प्राप्त नहीं है, अतएव इस विधान द्वारा दिये गये दण्ड के आदेश वैधानिक नही हैं।"

इस न्यायालयीन निर्णय ने सभा के नियमों को निरर्थक बना दिया तब तत्कालीन सभापति एजेन्ट गवर्नर जनरल मि० ओगलवी ने सब राज्यों से एक एक प्रतिनिधि को बुलाया। उदयपुर राज्य की ओर से राजा अमरसिंह को भेजा गया। उस सभा में मि० ओगलवी ने कहा कि "यह एक सामाजिक जातीय कानून है। नियमानुसार विधान सभा की ओर से बना हुआ नहीं है। मैं एक सरकार का उत्तरदायी शासक हूँ। अब मैं इस कार्य को नहीं कर सकूंगा। आप और आपके नरेश इस सभा को भविष्य मे चालू रखे या समाप्त कर देवें। यह आप पर निर्भर करता है। अब मैं अपने पश्चात् राजा अमरसिंह को इस सभा का सभापति नियुक्त करता हूं। भावी कार्यों के सम्बन्ध मे जैसा आप उचित समझें, वैसा करें। मैंने और मेरे पूर्व के एजेन्टों ने इस सभा की जो सेवा की है वह आप लोगों से छिपी नही है।"

सभी प्रतिनिधियों ने अब तक की सेवाओं की सराहना करते हुवे उन्हें धन्यवाद दिया। उसके अनन्तर प्रतिनिधियों ने निश्चय किया कि "इस सभा को जीवित रखना आवश्यक है। इसी के द्वारा अब तक क्षत्रिय जाति की उन्नति होती आई है और भविष्य में भी होगी। वर्तमान समय को देखते हुये इसके नियमों मे परिवर्तन अवश्यम्भावी है। नियमों को समयानुकूल बनाकर उनका पालन जाति द्वारा कराना चाहिये और इस कार्य मे अपने नरेशों की सहायता प्राप्त करनी चाहिये।"

नियमों में किस प्रकार के सुधार किये जावें। इसके लिये एक तीन सदस्यों की समिति बनाई गई। उसने नियमों मे विचारपूर्वक उचित सुधार किये और सम्बन्धित राज्यों की अनुमति से सभा का कार्य चलता रहा किन्तु जब नरेशों के राज्य स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत मे विलीन हो गये तब इस सभा का आधार जाता रहा और वह समाप्त हो गई। उस

समय सभा के कोष मे ४० हजार रुपये थे। वह धन राजा अमरसिंह के सुझाव पर महाराणा ने भूपाल नोबल्स स्कूल को प्रदान कर दिया।

महद्राज सभा

महाराणा सज्जनसिंह ने प्रजा को पक्षपात रहित न्याय मिले, उसकी जीवन रक्षा का समुचित प्रबन्ध हो तथा कोई व्यक्ति अपने स्वत्वो मे वंचित न रहे, इस दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते हुवे श्रावण सुदी १५ वि० सं० १९३७ को "इजलास खास" के स्थान पर 'महद्राज सभा' की स्थापना की थी। वह न्याय विभाग का सर्वोच्च न्यायालय था।

महाराणा फतहसिंह के समय मे जब युवराज भूपालसिंह को शासन सुधार का कार्य सौंपा गया तब उन्होंने इसे और अधिक सुगठित किया। सदस्यों की सख्या बढाई तथा कार्य सचालन के लिये अनुभवी व्यक्तियों की नियुक्ति की। उन्होंने महाराणा बनने पर आश्विन बदी ३० वि० स० १९८७ (ता० २२ सितम्बर सन् १९३०) को राजा अमरसिंह को इसका सदस्य बनाया। सदस्य बनने पर इन्होने पक्षपात रहित न्यायदान करने मे अपूर्व सहयोग दिया। अपने कार्यों से यह अल्प समय पश्चात् लोक विश्रुत हो गये। जनता को यह दृढ विश्वास हो गया था कि इनकी सम्मति पक्षपात रहित न्याय पूर्ण होती है। पक्षकार लोग आग्रह करते थे कि "जिस बैठक मे राजा अमरसिंह उपस्थित हो, उसमे हमारा प्रकरण प्रस्तुत किया जावे।"

महद्राज सभा का कार्य सर टी० वी० राघवाचार्य के प्रधान मन्त्री होने पर समाप्त कर दिया गया और विधिवत् हाई कोर्ट की स्थापना की गई।

मेयो कालेज का नया विधान

वि० संवत् १९८८ मे मेयो कालेज अजमेर के प्रिंसिपल ने कालेज का नया विधान बनाकर महाराणा की ओर सम्मति के लिये भेजा। महाराणा ने उस पर विचार करने के लिये राजा अमरसिंह, सलूम्बर रावजी, तथा कानोड रावजी की एक समिति बनाई। समिति ने नये विधान को आद्योपान्त पढ़कर विचार विमर्श किया और अपनी सम्मति महाराणा की सेवा मे प्रस्तुत कर दी। जिसे महाराणा ने स्वीकार कर मेयो कालेज को ओर भेज दिया।

इस कालेज की जनरल कौन्सिल के सदस्य महाराणा भूपालसिंह थे। कार्यव्यस्तता के कारण उन्होंने अपने प्रतिनिधिस्वरूप कौन्सिल की सभा मे उपस्थित होने का आदेश ता० २२ मार्च सन् १९३४ को राजा अमरसिंह को दिया। राजा अमरसिंह चार पांच वर्ष तक प्रत्येक मीटिंग म उपस्थित होते रहे।

ऋषभदेव के मन्दिर का प्रकरण

धुलेव ग्राम मे ऋषभदेव का एक सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर है। इन्हे श्वेताम्बरी तथा दिगम्बरी तो मानते ही हैं। सनातनधर्मी तथा भील लोग भी मानते हैं। वन्दना और पूजन करते हैं। दोनों जैन उपसम्प्रदाय पूजन करते हैं तथा ध्वजादण्ड चढ़ाते हैं। वि० सं० १९९० मे दोनो उपसम्प्रदायो मे विवाद खडा हो गया। दिगम्बरी जैनों का कहना था कि ऋषभदेव के पूजन का प्रथम अधिकार उनका है। उन्हो की पद्धति के अनुसार पूजा होनी चाहिये। श्वेताम्बरी

कहते थे कि श्वेताम्बरी पूजा विधि के अनुसार पूजन होना चाहिये तथा पूजा का प्रथम मान उनका है।

विवाद का निपटारा करने मे दोनों सम्प्रदायों में कई बार उग्र झगड़े हुवे। अन्तिम झगड़े में मन्दिर में ही एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। तब महाराणा को इस प्रकरण में हस्तक्षेप करना पड़ा, क्योंकि धुलेव ग्राम मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत था। महाराणा ने एक समिति बनाई जिसके सदस्य निम्नांकित थे:—

१—राजा अमरसिंह बनेड़ा।

२—मि० सी० जी० सी० ट्रेंच सी० आई० ई० रेवेन्यु कमिश्नर।

३—बाबू बिन्दुलालजी।

४—पं० रतिलाल अंताणी।

महाराणा ने वैशाख वदी १ वि० सं० १९९१ (३१ मार्च सन् १९३४ ई०) को आदेश दिया कि "कमेटी के चारों सदस्य निश्चित दिवस पर एकत्रित होवे। पक्षकारों को प्रमाण प्रस्तुत करने का पूर्ण अवसर देवे। उनकी आपत्तियां ध्यानपूर्वक सुनें तथा पूजा विधि की सम्पूर्ण जांच करके अपनी सम्मति प्रस्तुत करें।

यह प्रकरण उन दिनो जनता के आकर्षण का केन्द्र रहा। कमेटी जिस दिन इस प्रकरण की सुनवाई करती। उस दिन सैंकड़ों की संख्या में जनता वहां एकत्रित हो जाती। दोनों सम्प्रदाय धनी थे और अपनी टेक रखना चाहते थे। यह प्रकरण दोनों की प्रतिष्टा का प्रश्न बन गया था। दोनों पक्षकारों की ओर से भारत विख्यात वकीलों को बुलवाया गया था। मि० मोहमदअली जिन्ना[1], श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी[2], सर चिमनलाल सीतलवाड़ तथा मोतीलाल सीतलवाड़ इस प्रकरण मे वकील थे। ऐसे दिग्गज वकीलों का वाद विवाद सुनने का सौभाग्य राजा अमरसिंह को प्राप्त हुआ। दोनों सम्प्रदाय झुकने को तैयार नहीं थे। यह प्रकरण एक वर्ष तक चलता रहा। चैत्र वदी ३ वि० सं० १९९२ (ता० १ अप्रेल सन् १९३५) को राजा अमरसिंह धुलेव गये, विवादास्पद स्थान का निरीक्षण किया तथा वास्तविकता का पता लगाया।

दोनों पक्षकारों के वकीलों के तथ्यों तथा विवाद को सुनकर समिती के सदस्य इस निर्णय पर पहुँचे कि "इस मन्दिर की यह परम्परा रही है कि प्रत्येक सम्प्रदाय अपने पूजा विधि के अनुसार पूजन करता है। जो व्यक्ति अथवा सम्प्रदाय अधिक धन देता है, वही प्रथम पूजन का अधिकारी होता है। सदा से चली आ रही यह प्रथा भविष्य मे भी प्रचलित रखी जाना आवश्यक है। इसमे हेरफेर करने की आवश्यकता नही है।"

१—मि० मोहम्मदअली जिन्ना-पाकिस्तान के जनक तथा उसके प्रथम गवर्नर जनरल बने।

२—श्री० कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी—गुजराती के श्रेष्ठ लेखक तथा उपन्यासकार हैं। प्रथम चुनाव में लोक सभा के सदस्य तथा मन्त्री रहे। यू० पी० के राज्यपाल भी रहे। हैदराबाद पुलिस एक्शन के समय भारत सरकार की ओर से वहां के प्रतिनिधि थे।

कर्नल राजाधिराज अमरसिंह सैनिक वेश में

ता० १४ अक्टूबर सन् १९३२ को सर्व हितैषी कन्याशाला उदयपुर के वार्षिक सम्मेलन के सभापति मनोनीत हुवे।

करेडा ग्राम मे क्षत्रिय विद्या प्रचारिणी सभा के वि० स० १९९० के वार्षिक अधिवेशन के वह सभापति बनाये गये थे। वहा उन्होंने बहुत ओजस्वी भाषण दिया।

उदयपुर मे चारण जाति को शिक्षित करने के लिये एक विद्यालय कविराजा श्यामल दास ने महाराणा सज्जनसिह के समय मे प्रारम्भ किया था। वह विद्यालय किसी कारणवश बन्द हो गया और विद्यालय का भवन मेवाड राज्य ने ले लिया। राजपूत नरेशों की ओर से चारण जाति को त्याग के रूप मे कुछ धन नरेशो की संतानों के विवाहो के समय दिया जाता है। धन की रकम निश्चित होती है। यह रकम उपस्थित चारण बाट लेते हैं। चारण सैंकडो की सख्या मे आते हैं। धन थोडा होता है, एक-एक दो दो रुपये एक एक चारण के हिस्से मे आते हैं। राजाधिराज अमरसिंह ने करनीदान आदि तत्कालीन चारण नेताओ से कहा कि यह अल्प धन चारण लोग व्यर्थ ही खर्च कर देते हैं। यदि यह धन समस्त चारण जाति की उन्नति मे व्यय किया जाया करे तो सार्वजनिक हित हो, मेरे विचार से यह धन किसी पाठशाला मे लगाया जावे तो अत्युत्तम होगा।

करनीदान आदि नेताओं को यह सम्मति बहुत भायी और उन्होंने जाति के बालकों के लिये एक पाठशाला खोलने का निश्चय किया। उन्होंने महाराणा भूपालसिह से इस सम्बन्ध मे निवेदन किया। विद्याप्रेमी महाराणा ने विद्यालय के भवन के लिये पाच बीघा भूमि तथा तीस हजार रुपये प्रदान किये।

इस विद्यालय की स्थापना का मूल प्रस्ताव राजाधिराज अमरसिंह का होने से उसका शिलान्यास चारण करनीदान आदि नेताओ ने इन्ही के हाथो कराया। यह शिलान्यास वैशाख बदी ८ वि० सं० १९९३ को हुआ।

क्षयरोग निवारक समिति की बैठक माघ बदी १३ वि० स० १९९४ को उदयपुर मे हुई। उसके सभापति राजाधिराज अमरसिंह को बनाया गया था और परिश्रमपूर्वक उन्होंने चन्दा भी वसूल किया था।

वि० सं० १९९७ मे उदयपुर राज्य की ओर से जो वार कमेटी गठित हुई थी, उसके सदस्यों मे यह भी थे।

वि० स० २००२ मे बैंक आफ राजस्थान के डायरेक्टर थे और उसकी प्रत्येक बैठक मे सम्मिलित होते थे।

प्रवास—पूर्वकाल मे आवागमन की असुविधा, भारत मे फैली अराजकता तथा असुरक्षितता के कारण जनता लम्बे प्रवास नही कर पाती थी। केवल वह लोग जिन्हे आवागमन के साधन उपलब्ध थे और जिनके पास सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध होता था, वही लम्बे प्रवास मे जाने का साहस कर पाते थे। उनके प्रवास का लक्ष्य विशेष रूप से तीर्थ स्थानों की यात्रा करना ही होता था। धार्मिक भावनाओ से प्रेरित होकर जन साधारण से लगाकर नरेशों तक तीर्थ स्थानो की यात्राये करते थे। किसी प्रदेश के साहित्यिक, सामाजिक तथा

ऐतिहासिक युग का अध्ययन करना उनका लक्ष नहीं होता था, किन्तु जब भारतीय अंग्रेजों के सम्पर्क में आये, तब अंग्रेजी साहित्य से परिचय होता गया। विद्याभिरुचि बढ़ती गई और ज्ञान विकसित होता गया। उनके प्रवास का दृष्टिकोण बदला। तीर्थ स्थानों की यात्रा करने तक ही वह सीमित नहीं रहा। भारतीय प्रदेश की यात्रा हो अथवा विदेश की यात्रा हो वहां का सामाजिक गठन, आर्थिक व्यवस्था, साहित्यिक सृजन को देखने तथा हृदयंगम करने की ओर उनकी अभिरुचि बढ़ी, उनसे प्रेरणा पाकर जन जागृति करने की ओर वह अग्रसर हुवे। ऐतिहासिक पुरातन स्थान देख कर वहां की सभ्यता के सर्वांगीण विकास शृंखला का अध्ययन करने का उन्होंने अपना लक्ष निर्धारित किया। राजाधिराज अमरसिंह ने उपरोक्त दृष्टिकोण को अपना कर प्रवास किये और उसी दृष्टिकोण की महत्ता से प्रभावित होकर अपने प्रवास काल मे जिन स्थानों को देखा। उसका विशद वर्णन अपनी दिनचर्या मे किया है। हम संक्षेप मे उनका वर्णन करेंगे।

वि० सं० १९६३ मे जब वह युवराज थे। उन्होंने समाचार पत्रों मे पढ़ा कि शीघ्र ही काबुल का अमीर आगरा आने वाला है। उसे देखने का तथा उसके देश के रीति रिवाजों को जानने का कुतूहल उनके हृदय मे जाग्रत हुआ और अपने पिता की आज्ञा लेकर माघ बदी २ वि० सं० १९६३ को वह आगरा गये और माघ सुदी ४ को वापिस आये।

इसके पश्चात् वह कई बार आगरा गये क्योंकि उनके पितामह राजा गोविन्दसिंह ने वृन्दावन मे जो मन्दिर बांधा था उसका तथा अछनेरा आदि छे गांव जमीदारी के खरीद किये थे उनका प्रबन्ध देखने प्रतिवर्ष उन्हें वहां जाना पड़ता था। वि० सं० २००२ के प्रथम चैत्र मे भी वह आगरा गये थे, वहां के मुगलकालीन महलों को देखा था, तथा कलक्टर से भी भेंट की थी।

श्रावण सुदी १ वि० सं० १९६४ को वह सर्व प्रथम बम्बई गये। वहां के प्रसिद्ध स्थान देखे और श्रावण सुदी १३ को वापिस आये। इसके पश्चात् वह कई बार राजकीय तथा व्यक्तिगत कार्यो मे वहां गये। वि० सं० १९८६ में अहमदाबाद, बड़ौदा होते हुवे वह फिर बम्बई गये। बड़ौदा मे उन दिनों प्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर के कार्यक्रम हो रहे थे। बड़ौदा के ऐतिहासिक स्थानों को देखा और कार्तिक बदी १४ को बम्बई पहुँचे और समुद्र स्नान किया। वहां से कार्तिक सुदी ६ को उदयपुर आगये। वि० सं० १९९४ में जब बम्बई गये तब वहां से भाद्रपद सुदी १ को वह पूना गये, वहां के ऐतिहासिक स्थान तथा सुप्रसिद्ध शिवाजीपार्क देखा। भाद्रपद सुदी ५ को वह बनेड़ा आगये।

सम्राट एडवर्ड के राज्यारोहण के समारम्भ के समय वह प्रथम बार दिल्ली गये थे, जिसका वृत्तान्त प्रारम्भ में लिखा गया है। उसके पश्चात् चैत्र बदी ४ वि० सं० १९८८ को महाराणा भूपालसिंह के साथ दिल्ली गये थे। वहां के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थलों को देखा और चैत्र बदी ६ को वापिस बनेडा आगये।

वि० सं० १९७८ (ई० सन् १९२१) मे सम्राट पंचम जार्ज के युवराज (प्रिन्स आफ वेल्स) भारत में आये थे। वह ता० २८ नवम्बर सन् १९२१ ई० को अजमेर आने वाले थे।

मि० हालेएड एजेन्ट गवर्नर जनरल के प्रयत्न से राजाधिराज को युवराज से मिलने तथा पाच मिनिट वार्तालाप करने का अवसर प्राप्त हुआ। वह अजमेर गये। मेयो कालेज की ओर से युवराज का सत्कार समारम्भ किया गया था। उस समय राजाधिराज ने उनसे भेट और वार्तालाप किया आश्वीन वदी ३० वि० स० १९७६ को सूर्य ग्रहण के पर्व पर पुष्कर गये और तीर्थस्नान किया। इसके पश्चात वह कई बार पुष्कर गये।

प्रथम ज्येठ वि० स० १९८० मे वह पहली बार शिमला गये और प्रथम ज्येष्ठ वदी ९ को वापिस आये।

कर्नल बीथम जब उदयपुर के रेजिडेन्ट थे तब उनकी और राजाधिराज अमरसिंह की घनिष्टता हो गई थी। कर्नल बीथम का स्थानातर उदयपुर से जब नेपाल हो गया, तब राजाधिराज अमरसिंह ने उनसे नेपाल देखने की इच्छा प्रगट की। नेपाल पहुचकर कर्नल ने उनका सब प्रबन्ध करके निमन्त्रण भेजा। वि० स० १९८७ मे उनके निमन्त्रण पर वह गोरखपुर पहुचे। कर्नल वहा उपस्थित थे। दोनो नेपाल गये। वहा के प्रधान मन्त्री, सेनापति तथा उच्च अधिकारियो से भेट की। वहा के प्रसिद्ध स्थानों को देखा और बनेडा वापिस आ गये।

चैत्र सुदी ५ वि० सं० १९८९ को राजकुमार प्रतापसिंह तथा उनकी माता उज्जैन गये और राजा अमरसिंह सेलाना गये, वहा से चैत्र सुदी ६ को उज्जैन पहुँचे। वहा के पुरातन, मध्ययुगीन तथा आधुनिक स्थान देखे। वहा से भोपाल, बीना तथा कटनी होते हुये सरगुजा गये, वहा सरगुजा नरेश की पुत्री के विवाह मे सम्मिलित हुये। चैत्र सुदी ९ को बनेडा लौट आये।

ता० ७ फरवरी सन् १९३३ (वि० सं० १९८९) को वह चित्तौड गये। वहा का किला ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा व अध्ययन किया। ता० ११ फरवरी को वापिस बनेडा आये।

वि० स १९९० मे उन्होंने यूरोप की यात्रा करने का निश्चय किया। थामस कुक कम्पनी से पत्र व्यवहार किया गया और आषाढ वदी २ वि० स० १९९० (ता० १० जून सन् १९३३ ई०) को यात्रा प्रारम्भ हुई। अपनी दैनंदिनी मे उन्होंने इस यात्रा के सस्मरण लिखे हैं। वह रोचक, मनोरजक, उद्बोधक तथा ज्ञानवर्धक होने से हम सक्षेप मे उन्हे नीचे दे रहे हैं, जिनसे ज्ञात होगा कि आज से तीस वर्ष पूर्व यूरोप की परिस्थिति कैसी थी। अपने इतिहास प्रेम के वश उन्होने वहा के अधिकतर ऐतिहासिक स्थानों को देखा और उनका विस्तार से वर्णन किया है।

विलायत यात्रा के सस्मरण

ता० १६ जुलाई सन् १९३३ को हम अदन पहुचे। प्रात काल का समय था, पहाडो मे से सूर्य की किरणे निकल रही थीं। पहाड बहुत ऊचे थे किन्तु न तो उनपर घास थी न वृक्ष ही थे। वहा वनश्री का वैभव नहीं था। हमे भारत की पर्वत श्रेणियो का स्मरण हो

था। रोम साम्राज्य के अनेक नगर समुद्र के किनारे पर बसे हुये थे। रात हुई और अंधकार गाढ़ा होता गया। उस घने अन्धकार मे समुद्र के किनारे पर बसे हुवे उन नगरों की विद्युत दीपमालायें बड़ी सुहावनी प्रतीत हो रही थी। ऊपर आकाश में चमकने वाली तारिकाओं मे और उन विद्युत दीपों में मानव सेवा की मानो होड़ सी लग रही थी। कितना वर्णनातीत सुन्दर, सुखद दृश्य था वह।

प्रातःकाल होते ही (ता० २२ जुलाई सन् १९३३) को हम जनेवा नगर में पहुँच गये। किनारे के पास जहाज रुका। यहां एक ऐसा भवन बना हुआ था जिसकी ऊपर की मंजिल जहाज के ऊपर के बरामदे के सामने आ जाती थी। दोनों के अन्तर को एक लकड़ी के पुल से पाट दिया गया और हम उसी पर से उस भवन के एक बडे हाल में चले गये।

जनेवा नगर की जनसंख्या दस लाख है। उसकी विशालता और सुन्दरता अनुपम है। इटली राज्य का सबसे बड़ा विदेशी व्यापार का वह केन्द्र है। दस दिवस पूर्व समुद्र से हुई हमारी मित्रता, यहां छूट गई। अब रेलवे का प्रवास था। ग्यारह बजे हम रेल में बैठे। संध्या के छः बजे हम स्वीट्झरलैण्ड की सीमा पर पहुँच गये। वहां के कर्मचारियों ने महसूली सामान की पूछताछ की। इस राज्य मे इटली का सिक्का नही चलता था।

यह प्रदेश पहाड़ी है। पहाड़ों से झरने वह रहे है। तराई में नयनाभिराम हरियाली छा रही है। पानी की अधिकता के कारण यहां बिजली का उत्पादन अधिक है। छोटे से छोटे ग्रामों में भी बिजली घर हैं। अनेकों कारखाने बिजली की शक्ति से ही संचालित होते हैं। ट्रेन असाधारण गति से भाग रही थी और प्रातःकाल सात बजे फ्रान्स की राजधानी पेरिस पहुँच गई। यहां अधिक देर नही रुकना पड़ा। शीघ्र ही दूसरी ट्रेन में बैठकर हम चल पड़े और बारह बजे समुद्र के किनारे पहुँच गये। यह समुद्र इङ्गलैण्ड और फ्रान्स के बीच में है। रेल से उतरकर हम बोट में बैठे। दो बजे इङ्गलैण्ड का किनारा आगया। बोट रुकी और हम नीचे उतरे। पासपोर्ट और सामान की जांच होने पर हम फिर ट्रेन में बैठे। ट्रेन की खिड़कियों से बाहर का दृश्य दीख रहा था। यहां के पहाड़ खड़िया मिट्टी के समान शुभ्र रंग के थे। इन शुभ्र पहाड़ों में रेल द्रुतगति से चली जा रही थी। मार्ग में बड़े नगर और छोटे ग्राम दोनों दीख रहे थे। खेतों मे गाये चर रही थी। यहां की गायों को देख मन प्रसन्न हो गया। वह हृष्ट पुष्ट, छोटे-छोटे सीगों वाली और सुन्दर आकार की थी। प्रत्येक झुण्ड एक ही रंग की गायों का था। मिश्रित रंग की गायों का एक भी झुण्ड नही था। यहां का यही नियम है कि एक झुण्ड में एक ही रङ्ग की गायें रखी जावे। खेतों मे सहस्रों की सख्या मे भेड़ें चर रही थीं। जिन खेतों में वह चर रही थी उनमें हरी घास थी और विशेष रूप से उन्ही के लिये सुरक्षित रखी गई थी। यह भेड़े स्वस्थ मोटी, ताजी तथा बारीक और नरम ऊन वाली थी।

ट्रेन में से खेतो को देखा। खेत बहुत बड़े बड़े थे। जिनमे गेहूँ, मक्का आदि अनाज बोया गया था। भाजी के खेत भी थे। मार्ग मे ग्रामो के भवनों को देखते रहे। भवन पत्थर और चूने के पक्के बने हुये थे। दुमजिला भवन अधिक थे। कही कही चार पांच मंजिलें भी थीं। यहां के भवन बनाने की व्यवस्था बड़ी सुन्दर और आरोग्य प्रदायक है। भवन के आगे एक छोटीसी वाटिका सुशोभित थी। जिसमें रङ्ग विरङ्गे पुष्प खिल रहे थे। भवन के पीछे की वाटिका मे

भाजी की क्यारिया थी। दोनों के बीच मे भवन था। प्रत्येक भवन मे कांच के द्वार थे। जाली के परदे लगे हुये थे। भवन की सजावट सुन्दर थी। रसोईघर के ऊपर, धुंवा निकलने के लिये चिमनिया लगाई गई थी। बरफ पडने पर घरों को गरम रखने की भी व्यवस्था की गई थी। कही कूडा करकट दृष्टिगोचर नही हुआ। मार्ग मे यह समस्त दृश्य देखते हुये हम चले जा रहे थे। हृदय मे इन ग्रामों की तुलना प्रिय मातृभूमि भारत के ग्रामो से करने लगे और सोचने लगे कि "कब स्वदेश के ग्राम ऐसे सुव्यवस्थित, समृद्ध और आरोग्य प्रदायक होंगे?"

दो घण्टे पश्चात् छ बजे सध्या को हम लन्दन के विक्टोरिया स्टेशन पर पहुँचे। यह स्टेशन बहुत बडा है और ऊपर काच से आच्छादित है। अनेक ट्रेनें आकर खडी रह सके, इतना विशाल है। शहर मे रेलवे की लाईने कही भवनो के बराबर ऊची हैं कही उनसे भी ऊचाई पर हैं। कही नीचे भी हैं किन्तु व्यवस्था इतनी सुन्दर है कि कोई व्यक्ति सिवाय रेलवे स्टेशन के रेलवे की पटरी पर नही जा सकता। स्टेशन पर मेरे द्वितीय पुत्र राजकुमार मान सिंह जो उन दिनो लन्दन मे बैरिस्टरी का कोर्स पूरा कर रहे थे, आ गये थे। मोटर मे बैठकर हम लगभग बीस मिनिट मे ही अपने पूर्व नियोजित होटल मे आ गये।

लन्दन मे हम अट्ठाईस दिन रहे। उन दिनो यह नगर विश्व का सबसे बडा नगर था। उसकी जनसख्या एक करोड बीस लाख थी। भवन पक्के चूने पत्थर के ४ मजिल से लगाकर १२ मजिल तक थे। बाजार तथा गलियो की सख्या कुल मिलाकर दस हजार थी। जिनके अलग-अलग नाम थे। नगर के बीच मे विस्तीर्ण पाटवाली टेम्स नदी बहती है, जिस पर अनेक पुल बने हुये हैं। तथा उसमे बडे बडे जहाज भी चलते है।

जनसख्या की अधिकता को लक्ष्य करके राज्य की ओर से आवागमन के अनेक अद्भुत तथा विस्मयकारी मार्गों का निर्माण किया गया है। ऊपर तो मार्ग बने ही हुये हैं। पृथ्वी के गर्भ को चीर कर उसमे भी मार्ग बनाये गये हैं। यही नही नगर के बीच मे बहने वाली नदी के नीचे से भी मार्ग निकाले गये हैं। इन सभी मार्गों पर आवागमन की सुविधा के लिये दिन रात ट्रामे, मोटरें, रेले दौडती रहती हैं। सडक के दोनो ओर, पावपट्टी बनी हुई है। जिन पर सहस्रो व्यक्ति पैदल चलते हैं। पृथ्वी को खोदकर भी डेड सौ फीट नीचे सुरंगे बनाकर रेल के मार्ग बनाये गये हैं। इन रेल मार्गों की लम्बाई तीन सौ मील से भी अधिक है। स्थान स्थान पर स्टेशन बने हुवे हैं। यह इतने विशाल हैं कि चार, पाच सौ व्यक्ति सहज मे ही खडे रह सके। इस भूगर्भ मे जाने के लिये जिन सीढियो पर से उतरना या चढना पडता है वह विजली से सचालित होती हैं। इन सिढियों पर खडे होते ही नीचे जाने वाली सिढिया नीचे जाती हैं। ऊपर आने वाली सिढिया ऊपर आती हैं। ट्रेन पाच पाच मिनट के अन्तर से आती है। ट्रेन के रुकते ही बिजली की शक्ति से द्वार अपने आप खुल जाते है। उतरने वाले प्रवासी पहले उतरते हैं। जाने वाले उनके पश्चात् चढते हैं। तब द्वार अपने आप बन्द हो जाते हैं, और ट्रेन तीव्र वेग से चल पडती है। कई स्टेशनो पर सीढियों के बजाय कमरे बने हुवे हैं। जो विद्युत शक्ति के बल पर अपने आप ऊपर जाते हैं और नीचे आते हैं। जिन्हें लिफ्ट कहते हैं। विज्ञान के इस चमत्कार को देख हम बहुत विस्मित हुवे। हम यह देखकर भी बहुत अधिक आश्चर्यान्वित हुवे कि जिस भूगर्भ मे यह मार्गों का जाल बिछाया गया है। उनके

ऊपर बारा-बारा मंजिल के भवन खडे हुवे हैं। ऊपर के मार्गों पर ट्रेनें, ट्रामें, मोटरें चल रही हैं। नदी वह रही है और जिस में जहाज भी चल रहे हैं, किन्तु भूगर्भ के उन मार्गों पर उनका कोई प्रभाव नहीं, कोई धोका नही, न कोई बाधा उपस्थित होती है। ऊपर नदी अविचल वहती रहे और उसके पानी की एक भी बूंद इन मार्गों तक न आसके यह एक अद्भुत बात है। भूगर्भ में वायु तथा प्रकाश पहुँचाने की पूर्ण व्यवस्था की गई है। विद्युत दीपों से दिन रात यह भूगर्भ जगमगाता रहता है। मानवीय तर्क शक्ति तथा विज्ञान के इन प्रयोगों के चमत्कारों को देख हम आश्चर्य से भर गये।

लन्दन में अनेक पुरातन वस्तु संग्रहालय है। एक साइन्स म्यूजियम है। इसमें अनेक प्रकार के यन्त्रों का प्रदर्शन किया गया है। प्रत्येक यन्त्र प्रारम्भ में कैसा था, उत्तरोतर उसमें किस प्रकार विकास होता गया, यह सब दिखाया गया है। जहाज, रेल, मोटर, हवाई जहाज, पानी के इंन्जिन आदि के प्रारम्भिक रूप तथा उसके विकसित रूप दिखाये गये है।

छः सौ वर्ष पूर्व बने एक पुरातन किले में इंग्लैण्ड के सम्राटों के जवाहरात, सोने के वर्तन तथा शस्त्र रखे हुये है। शस्त्रों में जड़ाऊ तलवारें भी हैं। भारत सम्राट् शाहजहां का जग प्रसिद्ध कोहेनूर हीरा यहां सम्राट् के मुकुट में लगा हुआ है। और भी बहुत सी कीमती वस्तुयें जनता को अथवा विदेशी प्रवासियों के देखने के लिये व्यवस्थित रूप से रखी हुई हैं। पास में ही चार मंजिल का एक और भवन है उसमे प्राचीन तथा अर्वाचीन शस्त्रों को विकास क्रम के अनुसार सजाकर रखा गया है। आदिम युग की शस्त्रीय पत्थर कला से लगाकर आधुनिकतम शस्त्रों को इस ढंग से सजाया गया है कि शस्त्रों पर गवेषणा करने वाले व्यक्ति विकास क्रम को सहज में ही हृदयंगम कर सकें।

एक संग्रहालय पुरुष और स्त्रियों की पोषाकों से सजाया गया है। इसकी सजावट इस ढंग से की गई है कि पांच सौ वर्ष पूर्व से वर्तमान समय तक के पोषाकों के परिवर्तन का इतिहास दर्शकों के सामने उपस्थित होजाता है। इसी संग्रहालय में सम्राट् तथा राजाओं के राज्यारोहण के समय पहनने की तथा विवाह के समय पहनने की पोषाकें एक कांच की आलमारी में सजाकर रखी गई हैं।

लन्दन नगर के विकास को दिखाने वाला एक संग्रहालय भी यहां है। उसमे लन्दन की पुरातन से पुरातन वस्तुयें रखी हुई हैं। तीन सौ वर्ष पूर्व लन्दन नगर किस प्रकार का था, उसके पश्चात् वास्तु कला में, सांसारिक वस्तुओं के वनाने की कला में किस प्रकार उन्नति होती गई, यह सब दिखाया गया हैं। इसी संग्रहालय के एक भवन मे आग लगने तथा उसके वुझाने का दृश्य दिखाया गया है। विद्युत प्रकाश को इस प्रकार प्रज्वलित कराया गया है कि मानो भवन मे आग लग रही है। धुवां निकल रहा है तथा लोग उसे वुझा रहे है।

यहां गिरजाघर वहुत वड़े वड़े हैं। सेन्टपाल गिरजाघर सवमे ऊंचा है। छः सौ सीढ़ियां चढ़ने पर इसके शिखर पर पहुँचा जा सकता है। लगभग पांच सौ फीट ऊंचा है। शिखर पर जो गुम्मज वना है। वह लगभग सौ फीट लम्बा, चौड़ा और गोलाकार है इसकी भीतों में वास्तु कला का एक चमत्कार सन्निहित है। भीतर की ओर मुख करके धीरे धरे

बोलने पर भीत के उसपार इस प्रकार सुनाई देता है जैसे भीत मे से ही कोई बोल रहा है। ध्वनि प्रसारण की यह कला वास्तव मे अभूतपूर्व है।

पालियामेन्ट का भवन रमणीय और दर्शनीय है। अनुपमेय शिल्पकला तथा चित्रकला के यहा दर्शन होते हैं। यह भवन नदी के किनारे पर बनाया गया है। इसके दो विभाग हैं। एक 'हाऊस आफ लार्डस' कहलाता है। एक 'हाऊस आफ कामन्स' कहलाता है। पालियामेन्ट के अधिवेशन के समय सम्राट यहा आते है। उनके बैठने के लिये सिंहासन रखा हुआ है। लार्ड सदस्यो को बैठने के लिये कुर्सिया रखी हुई हैं। इस (हाऊस आफ लार्डस) मे दो सौ व्यक्तियों के लिये कुर्सिया रखी हुई हैं। बडे बडे जमीदारों को यहा लार्ड कहते हैं। लार्ड एक पदवी है। हाऊस आफ लार्डस के सदस्यों का चुनाव इन्ही मे से होता है। हाऊस आफ कामन्स के सदस्यों का चुनाव आम जनता मे से होता है। विधान के अनुसार चुनाव होते हैं। हाऊस आफ कामन्स मे २५० व्यक्तिओं के बैठने का स्थान है। शेष सदस्य अधिवेशन काल मे खडे ही रहते हैं। प्रजातन्त्रीय राज पद्धति मे यह बात हमे उचित प्रतीत नही हुई।

लन्दन नगर की विशाल जनसंख्या को देखते हुवे, वहा दुकानों की सख्या भी अगनित है किन्तु उनमे चार दुकाने प्रख्यात हैं। उनमे भी एक दुकान सबसे बडी है। इसका 'नाम सेलफ्रिज' है। इस दुकान के भवन का विस्तार बहुत बडा है। इसकी दो मंजिले भूमि के नीचे और सात ऊपर हैं। ऐसी कोई वस्तु नही जो यहा न मिलती हो। प्रत्येक वस्तु का अलग विभाग है। इन विभागो की सख्या चार सौ है, बेचने वाले चार हजार हैं। जिनमे स्त्रियों की सख्या अधिक है। सहस्रों व्यक्तिओं की भीड हर समय लगी रहती है। भोजन की वस्तुओं से लगाकर खेती के औजारों तक की बिक्री यहा होती है। इस भवन की छतो पर बाग भी लगाया गया है, जो फल फूलो से सुशोभित रहता है। ऊपर की छत पर से नगर का अधिकाश दृश्य देखा जा सकता है। नगर को देखने के लिये यहा कई दुर्बिने लगा रखी हैं। लन्दन मे इस दुकान का दूसरा प्रतीक नही है। इस दुकान का वैभव देख हम बहुत विस्मित हुवे।

मेण की मूर्तियों का एक संग्रहालय देखा। यह मेण की मूर्तिया पूर्व सम्राटो की तथा सुप्रसिद्ध व्यक्तियों की हैं। इनकी कला इतनी अधिक प्राणमयी है कि लगता है, हम उसी व्यक्ति के सम्मुख खडे हैं जिसकी यह मूर्ति है। बीच बीच मे मार्ग बनाये गये हैं और उन पर सिपाही खडे हैं, वह भी ऐसे लगते हैं, मानो जीवित हों। इसी संग्रहालय मे, नीचे के तहखानो मे हत्यारो की मूर्तिया बनाकर रखी गई हैं। यह दृश्य भयोत्पादक होने से स्त्रियों और बालकों को नही दिखाये जाते। उसमे ऐसे दृश्य दिखाये गये हैं कि जैसे एक व्यक्ति ने छुरी मारकर दूसरे व्यक्ति की हत्या की है, जिसे छुरी लगी है वह नीचे पडा है और घाव मे से रक्त टपक रहा है। यह दृश्य वास्तविक, सजीव और भयानक था उसे देख हमारे मन मे एक ही भाव उत्पन्न हुवा कि यदि विधाता शिल्पी मानव को मूर्ति मे प्राण डालने की सत्ता प्रदान कर देता तो ।

लन्दन नगर का परिभ्रमण करने के उपरान्त हमारे मन मे यह अभिलाषा उत्पन्न

हुई कि इस समस्त देश की ग्रामीण जीवन की झांकी देखी जावे। हम ग्रामों में गये, खेतों को देखा। कोई खेत बीस पच्चीस बीघा से कम नहीं था। इससे बड़े तो थे। हल या तो घोड़ों से चलाते हैं अथवा यन्त्रों से। दो या चार घोड़े एक हल में जोतते हैं। हल की बनावट बड़ी सुविधाजनक है। हांकने वाले व्यक्ति को बैठने के लिये उन पर स्थान बना होता है। यह लोहे के हल भूमि को बहुत गहरी फाड़ते हैं। घोड़े हृष्ट पुष्ट, आकार में बड़े और ऊंचे पूरे होते हैं। भारत में ऐसे घोड़े कम देखे गये। यहां के गेहूं का दाना बड़ा और भरा हुआ होता है। खेतों में गेहूं के पेड़ छाती तक ऊंचे थे, जिनमें बिना तन्तु की बालें लगी हुई थी। यहां मक्का भी होती है। विशेषता यह है कि गेहूं तथा मक्का एक ही समय बोई और काटी जाती है। यहां के ग्रामीणों के जीवन का स्तर इतना ऊंचा है कि दो चार बीघा की खेती करने से किसान को भरपेट भोजन भी नहीं मिलेगा। एक गृहस्थी का सुचारु रूप से भरण पोषण करने के लिये यहां के किसान को कम से कम सौ डेढ़ सौ बीघा भूमि की आवश्यकता रहती है।

ग्रामीण किसान खेती के अतिरिक्त और भी व्यवसाय करते हैं। मधुमक्खी पालन उनका प्रमुख धन्धा है। यहां शहद भोजन की प्रमुख आवश्यकता है। प्रातःकाल के कलेवे के समय रोटी को शहद और मक्खन लगा कर खाते हैं। इस कारण शहद की बिक्री यहां बहुत है। यहां के किसी रोगी को शकर खिलाना जब बन्द कर दिया जाता है तब डाक्टर शहद खाने को देते हैं। इस धन्धे के अतिरिक्त किसान दूध बेचने का धन्धा भी करते हैं। गायें, भेडे, मुर्गा, मुर्गी पालते हैं। उनका व्यापार भी करते हैं। यहां का किसान धनी है। उसके भवन आधुनिक सभी सुख साधनों से सम्पन्न होते हैं। यहां के किसान नौकर भी रखते है, किन्तु उनके साथ बराबरी का व्यवहार करते हैं। वह मजदूर है, नौकर है इस कारण उपेक्षित है, यह हीन भावना उनमें नहीं होती।

आज भारत के हाई कमिश्नर का निमन्त्रण पत्र प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था कि भारत के वाईसराय लार्ड विलिंगडन की पत्नी का सत्कार समारम्भ होगा अतएव समारम्भ में आवें। रात के दस बजे हम भारतीय पोशाक पहन कर वहां गये। हाई कमिश्नर के रहने के लिये भारत सरकार की ओर से एक नया भवन अभी कुछ दिन पूर्व ही बनाया गया था। वह भारत के प्रत्येक प्रान्त की वस्तुओं से सजाया गया था, समारोह इसी भवन में होने वाला था। उन्हीं व्यक्तियों को आमन्त्रित किया गया था जिनका सम्बन्ध भारतवर्ष से था अथवा जो भारत के निवासी थे। भारत मे वाइसराय के पद पर जिन्होंने कार्य किया था, उन्हें भी निमंत्रित किया गया था। वह सब वहां आये थे। हाई कमिश्नर सर मिटर और लेडी विलिंगडन एक हाल मे खड़े थे। निमंत्रित सज्जन वहां जाकर प्रथम हाई कमिश्नर से हाथ मिलाते, उसके पश्चात् लेडी विलिंगडन से हाथ मिलाकर भीड़ मे चले जाते और दूसरे कमरे में चाय, शरबत पीने लगते। यहां अनेक परिचित मित्रों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। रात को बारह बजे अपने निवास स्थान पर आ गये।

आज (ता० ३० जुलाई सन् १९३३ ई०) सम्राट् की ओर से उनके महल के बाग में गार्डन पार्टी थी। कर्नल पिटरसन जो किसी समय राजस्थान के एजेन्ट गवर्नर जनरल रह चुके

थे और हमसे उनका प्रगाढ स्नेह था, उन्होंने कृपापूर्वक लार्ड चेम्बरलेन को लिखकर सम्राट की ओर से हमारे पास निमन्त्रण पत्र भिजवाया। एक निमन्त्रण पत्र बेदला राव साहब के नाम भी आया। चार बजे दिन को भारतीय पोशाक पहन कर हम और बेदला राव साहब पार्टी मे सम्मिलित होने को रवाना हुये। पार्टी मे सम्मिलित होने वालो के लिये एक छपा हुआ विधान था। उसका अनुसरण करते हुये हम पार्टी मे बकिंघम पेलेस गये। प्रथम सम्राट् के महल मे जो बाग है उसमे गये। वहा तीन चार हजार व्यक्ति उपस्थित थे। आने वालो का ताता लगा था। समाचार पत्र से ज्ञात हुआ कि छ हजार व्यक्ति निमन्त्रित किये गये हैं। इनमे से केवल चालीस पचास व्यक्तियों की भेट सम्राट् से कराई जावेगी।

ठीक चार बजे सम्राट्, सम्राज्ञी तथा प्रिन्स आफ वेल्स राजभवन से बाहर आये। वाद्यवादको ने अभिवादन का गान बजाया। तीनो भीड मे अलग अलग चले गये। मार्ग मे निमन्त्रित सज्जनों ने अभिवादन किया। किन्चित स्मित हास्य से उसे स्वीकार किया। परिचित व्यक्तियों से तथा प्रसिद्ध व्यक्तियो से हाथ मिलाया। किसी से कुछ अल्प सी बात भी की और अपने नियत स्थान पर चले गये। उपस्थित व्यक्ति बाहर ही रुक गये, केवल सम्राट् के वशज, उनके कृपा पात्र व्यक्ति, भारत के जयपुर नरेश, मोरवी नरेश, तथा किसी राज्य के एक और नरेश उनके साथ गये। वहा उन सबने खडे खडे ही चाय पी। यह स्थान तीन ओर से खुला था। मेज पर सोने के गुलदस्ते तथा बर्तन सजाये गये थे। सर पिटरसन ने हमे और बेदला राव साहब को एक ओर खडा कर दिया। चाय पीने के बाद सम्राट् और सम्राज्ञी उस स्थान से आकर चादी के स्तम्भो पर तनी एक छोटी सी चान्दनी मे खडे हो गये। प्रथम कनेडा, आस्ट्रेलिया आदि देशों के प्रतिनिधियो को वहा के मिनिस्टर ने सम्राट् से मिलाया, फिर भारत की बारी आई। सर पिटरसन हम छ व्यक्तियो को, जिनमे हम और बेदला रावजी तथा काठियावाड के चार रईस और थे, सम्राट् के पास ले गये। बारी बारी से सबने सम्राट् और सम्राज्ञी से हाथ मिलाया। हमने उदयपुर महाराणा की ओर से सम्राट् की कुशल पूछी तथा महाराणा की ओर से ही अपनी शुभ कामनाये प्रकट की। उसके पश्चात् जहा चाय पानी, खाने पीने का कार्यक्रम था, वहा गये। परिचितों से भेट की। ठीक छ: बजे सम्राट् और सम्राज्ञी महल मे वापिस चले गये। चार वाद्यवादक सुमधुर स्वर मे प्रस्थान का गान बजाने लगे। सभी निमन्त्रित सज्जन अपने अपने निवासस्थान पर चले गये।

हेरोगेट के सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सालय देखने गये। वहा गरम और ठण्डे पानी से स्नान कराया जाता है और वहा का प्राकृतिक खारा और कडवा पानी पीने को दिया जाता है। जिसके पीने से पेट का मल साफ हो जाता है। हमने भी वहा की पद्धति के अनुसार स्नान किया और खारा कडुवा पानी पिया। यह स्थान बहुत रमणीय है। यहां गुलाब के वृक्षों की अधिकता है। उनके पुष्पों की सुगन्ध से मन प्रसन्न हो उठता है।

लन्दन से ३५ मील दूर 'विंडसर केसल' नामक एक किला है। वह एक ऊचे पर्वत पर बना हुआ है। इस किले मे भी सम्राट् के रहने के भवन बने हुवे हैं। उन्हें देखने गये। किला चारो ओर से कोट से घिरा हुआ है। बुर्जे बनी हुई हैं। किला विशाल है। भवन विस्तीर्ण हैं। एक गिरजाघर है। यहां से दो मील दूर इटन कालेज है। उसको स्थापित हुये

छः सौ वर्ष हो गये। उस कालेज की यह विशेषता है कि यहां के अनेक विद्यार्थियों ने अपने जीवन में बहुत उन्नति की तथा विश्व में कीर्ति अर्जित की।

हेम्पटन कोर्ट नामक सम्राट् का एक भवन मार्ग में ही था। किसी समय यहां उनका निवास था। इसे देखने के पश्चात् दूसरा भवन देखा। वह चार सौ वर्ष पुराना था। उसमें चार सौ वर्ष पूर्व की वस्तुओं की सजावट की गई है। जिन्हें देख तत्कालीन संस्कृति, रहन सहन तथा जीवनयापन का ज्ञान हो जाता है।

एक दिन कैम्ब्रिज गये। यहां सर रेनाल्ड रहते हैं। यह राजस्थान के एजेन्ट गवर्नर जनरल रह चुके थे। उनके निमन्त्रण पर हम उनके घर गये। वह बड़े प्रेम से मिले। कैम्ब्रिज में चालीस से भी अधिक कालेज हैं। अनेक भारतीय विद्यार्थी यहां शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। सर रेनाल्ड स्वयम् एक कालेज में हमें ले गये। वहां के ज्ञान दान को देख हम बहुत प्रभावित हुवे।

लन्दन की यात्रा समाप्त हो गई थी। ता० २ अगस्त सन् १९३३ ई० को हम विमान द्वारा पेरिस जाने को निकले। आकाश में मेघ छा रहे थे और पानी की बूंदें गिर रही थीं। शीघ्र ही विमान आकाश में बहुत ऊंचाई पर उड़ने लगा। विमान मेघों के ऊपर चला गया था। पृथ्वी पर पानी बरस रहा था और हम नभ मण्डल मे सुरक्षित उड़ रहे थे। सूर्य दीख रहा था। रेलवे अथवा पानी के जहाज द्वारा लन्दन से पेरिस तक जाने मे छः घण्टे लगते है। हम केवल पौने दो घण्टों मे ही पेरिस पहुँच गये।

पेरिस फ्रान्स की राजधानी है और विश्व का सबसे सुन्दर नगर है। यहां के भवन कलापूर्ण तथा नयनाभिराम हैं। सड़कें सीधी और विस्तीर्ण है। एक सड़क बहुत लम्बी, चौड़ी और सीधी है। विश्व भर में इस सड़क की समता करने वाली सड़क नही है। मार्ग मे स्थान स्थान पर बाग लगाये गये है, कलापूर्ण मूर्तियां स्थापित की गई हैं। पानी के फव्वारे बनाये गये हैं। एक बहुत बड़ा ऊंचा टावर लोहे के शहतीरों के सहारे से बनाया गया है। उसका नाम 'एफल टावर' है। भूमि से नौ सौ फीट ऊंचा है। इस टावर की कई मंजिलें हैं। जिन पर जाने के लिये बिजली का झूला लगा हुआ है। उसके द्वारा किसी भी खण्ड मे पहुँचा जा सकता है। उसकी बीच की मंजिल में भोजनालय और नाचघर हैं। ऊपर के खण्ड में दुकानें हैं, जिनमें अनेक प्रकार की वस्तुयें बिकती हैं। सबसे ऊपर के खण्ड से पूरा नगर देखा जा सकता है। शीतल और निरोगी वायु प्रति क्षण बहती रहती है। रात में वह विद्युत दीपों के उज्ज्वल प्रकाश से जगमगाता रहता है।

यहां के पुरुष तथा स्त्रियां पोषाक तथा वेशभूषा में नवीनता लाने में प्रवीण हैं। कहते हैं पेरिस "फैशन" की जननी है। फैशन का जन्म यहां होता है और समस्त विश्व मे उसका अनुकरण होता है। यहां की भाषा फ्रेन्च है, लीपि रोमन है। अंग्रेजी और फ्रेन्च दोनों अलग अलग भाषायें हैं।

पेरिस और वारसाई में सोलह मील का अन्तर है। किसी समय यहां के वनों में फ्रान्स के सम्राट् शिकार खेलने आया करते थे। इसीलिए यहां उन्होंने महल बनवाये थे। इन महलों

मे बडे बडे कलापूर्ण चित्र हैं। जो एक हजार वर्ष पूर्व के इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमे फ्रान्स की राजनीतिक घटनाओ को कला के सूत्र मे पिरोया गया है। यह सूत्र फ्रान्स की राज्य क्रान्ति के प्रवर्तक नेपोलियन बोनापार्ट के जीवन तक आकर समाप्त हो जाता है। यह स्थान विस्तृत है। कितने ही वर्षों तक सम्राट् इन महलों मे रहते रहे हैं। इस समय यह महल केवल प्रदर्शन की वस्तु रह गये हैं।

ई० सन् १९१४ मे प्रथम विश्व युद्ध हुआ था, उसमे ब्रिटेन, फ्रान्स आदि मित्र देश एक ओर थे और जर्मनी एक ओर था। इस युद्ध मे जर्मनी की हार हुई थी। उस समय दोनो पक्षों मे जो सधि हुई थी वह इसी वारसाई के महलो मे बैठकर लिखी गई थी। दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों ने इसी स्थान पर सधि पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। जिस मेज पर संधि पत्र लिखा गया था वह मेज, जिन कुर्सियों पर प्रतिनिधि बैठे थे वह कुर्सिया, जिस कलम से सधि पत्र पर हस्ताक्षर किये गये थे वह कलम और जिस दवात मे स्याही थी वह दवात, सभी वहा आज भी सुरक्षित हैं। महल के ऊपरी मंजिल पर खडे होकर हमने जब नीचे बाग की ओर देखा तो मन प्रसन्न हो उठा। उस बाग मे पुष्पवल्लरियो का सृजन कलापूर्ण ढंग से चतुरतापूर्वक किया गया था। ऊपर से देखने पर हमे प्रतीत हुआ कि किसी बुनकर कलाकार ने किसी गलिचे पर उन पुष्प चित्रो को मडित किया है।

इस महल के पास ही एक दूसरा महल है, वह नेपोलियन की पत्नी का है। जिसने नेपोलियन को तलाक दिया था और जीवन के अन्तिम क्षणो तक इसी महल मे रही थी। इस महल मे नेपोलियन की अनेक वस्तुए शस्त्र आदि रखे हुये हैं। पेरिस नगर मे भी उसकी स्मृति मे बनाया एक विशाल भवन है। उसमे नेपोलियन तथा उसके सैनिक जनरल साथियों की मूर्तिया बनाकर रखी गई हैं। नेपोलियन की समाधि एक गहरी खाई मे है। जिसे देखते समय प्रत्येक मनुष्य को अपना मस्तक झुकाना पडता है।

नेपोलियन प्रथम एक साधारण व्यक्ति था। उसने फ्रान्स की सेना मे केवल एक सैनिक के नाते प्रवेश किया था। अपने व्यक्तित्व के बल पर वह उन्नत होता गया और फ्रान्स की सेना का सर्वोच्च सेनापति बन गया। उसने फ्रान्स के सामन्तवाद के विरुद्ध क्रान्ति का बिगुल बजाया। सामन्तवाद को समूल नष्ट कर प्रजातन्त्र की स्थापना की। फ्रान्स का प्रथम राष्ट्रपति बना। उसने यूरोप के कितने ही देशो पर आक्रमण किया। उन्हे जीता और फ्रान्स की सीमा का विस्तार किया। उसकी सत्ता लगभग समस्त यूरोप पर छा गई थी। एक साधारण सैनिक का सर्वोच्च सेनापति बन जाना, क्रान्ति करना, उसमे सफलता प्राप्त करना, राष्ट्रपति के पद पर आसीन होना, यूरोप को जीतना आदि अनहोनी घटनाओं को नेपोलियन ने प्रत्यक्ष करके दिखलाया था। इस कारण फ्रान्स की जनता ने उसे अपना उद्धारक-देवता माना। उसे विश्व के अन्तिम क्षण तक वन्दनीय बनाने के लिये उसकी समाधि गहरी खाई मे बनाई। जिससे विश्व के किसी भी मनुष्य को उसे देखने के लिये मस्तक झुकाना पडे।

आज ता० ५ अगस्त सन् १९३३ है और हम आस्ट्रेलिया की राजधानी वियेना मे आगये हैं। पेरिस को देखने पर हमारी धारणा बन गई थी कि अब इससे अधिक सुन्दर नगर

हमें देखने को नहीं मिलेगा, किन्तु वियेना।आने पर हमारी वह भ्रान्त धारणा दूर हो गई। यह अवश्य है कि पेरिस जैसी विस्तीर्ण और सीधी सडकें यहां नहीं हैं परन्तु शिल्पकला और रचना चातुर्य की दृष्टि से यह नगर अनुपम है। भवनों की सुन्दरता देखते ही बनती है। विविध रंग के पत्थर यहां अधिक हैं। जिन पर शिल्पकला को साकार किया गया है। यहां के म्युजियम तथा राजमहल दर्शनीय हैं। एक भवन ऐसा है, जिसमें विभिन्न प्रकार के अनेक खेल दिखलाये जाते हैं। इस भवन की समता करने वाला भवन, न तो पेरिस में है, न लन्दन में है। इसी भवन में सब देशों के अलग-अलग कमरे बने हुये हैं। उनमें उस देश के प्रतीक चित्र और वस्तुयें रखी हुई हैं। भूमि से चार सौ फीट ऊंचा एक रेहट है, जिसमे पालकियों के स्थान पर लकड़ी के कमरे बने हुए हैं। जिसमें कुर्सियां रखी हुई हैं। कांच के द्वार हैं। यह बिजली से चलता है और प्रकाश से जगमगाता रहता है। रात्रि के समय नगर की दीपमालायें दिखाने के लिये यह थोड़ी देर रुकता है। उसमें बैठे व्यक्ति विद्युत प्रकाश में नगर की शोभा देख आनन्द विभोर हो उठते हैं।

एक बिजली की रेल बनाई गई है। जो एक ऊंचे पहाड़ पर चढ़ती है और अत्यन्त तीव्र वेग से नीचे उतरती है मानो धनुष की प्रत्यन्चा से छूटा हुआ वेगवान तीर हो। इसी के पास पानी से भरी हुई एक नहर है। जिसमें छोटी-छोटी नावे छोड़ी गई हैं। वह नावें भी बिजली से चलती हैं और एक दूसरे से टकराती हैं किन्तु उनकी बनावट में ऐसी कुशलता से रबड़ लगाया गया है कि टक्कर लगने पर भी न तो पानी मे डूबती हैं, न पानी के छींटों से शरीर भींगता है, अन्धकार भरी गुफा में भी यह नावें चली जाती हैं और बिजली की शक्ति से फिर बाहर आ जाती हैं। इस प्रकार अनेक आश्चर्य भरे तथा मनोरंजक खेल इस भवन में दिखाये जाते हैं।

ता० ८ अगस्त सन् १९३२ को हम इटली के सुप्रसिद्ध नगर वेनिस पहुँच गये। यह नगर समुद्र के किनारे पर बसा हुआ है। इसके लगभग तीन सौ उपनगर हैं। जो अलग-अलग टापू पर बसे हुवे हैं। इस नगर का सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि इसकी सभी गलियां और सड़कें पानी की हैं। नगर में न तो मोटरें चल सकती है, न घोड़ागाड़ी, न और कोई सवारी। कहीं जाना हो तो पैदल जाना पड़ता है अथवा नावों मे बैठकर जाया जा सकता है। इस नगर की रचना दो हजार वर्ष पूर्व हुई है। एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले में जाने के लिये लकड़ी के पुल बने हुए हैं। सात-सात आठ-आठ मंजिलों के मकानों की नीव मे लकड़ियां लगाई गई हैं। पानी से भरी गलियों में छोटी नावें अथवा मोटर किश्तियां चलती हैं। बड़े बाजारों मे बोट और स्टीमलेन्च चलते हैं। यह नगर इस अद्भुत रचना के कारण अखिल विश्व में प्रसिद्ध है।

इस नगर में कांच के कारखाने बहुत हैं। एक कारखाने मे हम गये। वहां कांच उबल रही थी। बहुत से कारीगर खिलौने बना रहे थे। एक कारीगर ने अत्यन्त चपलतापूर्वक उबलते हुए कांच के रस के दो खिलौने बनाकर हमें दिये। उसकी चपलता और कुशलता देख हम अवाक् रह गये। कांच का अनेक प्रकार का बहुत सा माल यहां से विदेशों मे जाता है।

इटली में जब पंचायती राज्य का प्रारम्भ हुआ, तब एक विशाल भवन बनाया गया

था, उसे देखा। उसी के पास सोने का बना एक भव्य भवन है। सोने के पत्रों को काटकर उसके चौकोर टुकडे काच के मध्य में लगाकर भीतों मे जड दिये गये हैं। कहीं कहीं सोने के पत्रो के कलापूर्ण चित्र बनाकर भीतो मे लगाये गये हैं। अनेक शताब्दिया बीत गई किन्तु यह चित्र ऐसे दीखते हैं, जैसे अभी बनाकर चिपकाये गये हो। इतनी सजीवता और नवीनता उनमे है। वास्तव मे यह कला अद्भुत और मन को आल्हादित करने वाली है। यहा कपडे पर कशीदा काढ़ने का तथा जाली बनाने का काम बहुत सुन्दर होता है।

ता० १० अगस्त सन् १९३३ को हम स्वीट्जरलैण्ड के प्रमुख नगर जिनेवा पहुचे। स्वीट्जरलैण्ड छोटा सा पहाडी देश है। वह एक स्वतन्त्र देश है। यहा घडिया और उनके पुर्जे बनते हैं। इसी के कारण यह विश्व विख्यात है। यहा 'लीग आफ नेशन्स का आफिस है। प्रत्येक देश के प्रतिनिधियो का सम्मेलन यहा होता है। भारतवर्ष के प्रतिनिधि भी उसमें सम्मिलित होते हैं।

ता० १२ अगस्त सन् १९३३ को हम मार्सलीज आये। यह नगर फ्रान्स की सीमा मे है और समुद्र के किनारे पर बसा हुआ है। यहा से हम नीस गये। यह भी फ्रान्स का नगर है और समुद्र के किनारे पर बसा हुआ है। एक ओर समुद्र की अनन्त जलराशि, उस पर नाचनेवाली लहरे, दूसरी ओर पर्वत श्रेणियों की शृखलाए, उनपर छाई हुई हरियाली, प्रकृति की इस अभिनव सुन्दरता को देख हम प्रफुल्लित हो उठे। कहते हैं, इसी प्राकृतिक सौंदर्य पर मुग्ध होकर ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया यदा कदा यहा आकर इस स्वयम्भू सौंदर्य का रसास्वादन करती थी। फ्रान्स की सरकार ने समुद्र के किनारे किनारे एक नयनाभिराम सडक का निर्माण कर प्रकृति के सौदर्य वैभव को वृद्धि की है। हमने यहां एक पुरातन जागीरदार का ग्राम और किला देखा। इसे देखते ही हम भारतीय जागीरदारो के ग्राम तथा दुर्गों की स्मृति हो आई। दोनों मे विस्मयजनक समानता थी। जागीरदारी प्रथा का अब यहा अन्त हो गया है। यह दुर्ग पुरातत्व विभाग ने जागीरदारी प्रथा के प्रतीक के रूप मे सुरक्षित रखा है। यहा से सडक पहाड पर चढ जाती है। यह पर्वत चार हजार फीट ऊचा है। सडक ऊपर तक गई है। इस पर्वत पर एक जल प्रपात है। बहुत ऊचाई से पानी गिरता है। ऊपर से गिरने वाली पानी की धारायें नीचे आते आते बूदों मे परिवर्तित होकर भूमितल पर बिखर जाती हैं। बडा रमणीय दृश्य था। पर्वत के शिखर पर एक गाव बसा हुआ था। वहा चार हजार वर्ष पहले बने भवनों को सुरक्षित रूप मे रखा गया है।

फ्रान्स का इत्र सुविख्यात है। जिस नगर मे इत्र बनता है वह इन्ही पर्वत श्रेणियों मे बसा हुआ है। यहां इत्र के अनेक कारखाने हैं। पूरे वन मे फूलों की बेले और वृक्ष लगाये गये हैं। सारे वन प्रान्त मे फूल खिल रहे थे और वातावरण सुगंधित हो उठा था।

मान्टेकार्लो गये। यह एक छोटासा स्वतन्त्र राज्य है। यह एक बडे आश्चर्य की बात है कि फ्रान्स, इटली आदि बलशाली साम्राज्यो के मध्य मे यह छोटासा देश कैसे स्वतन्त्र रह सका ? यहा एक भवन है जो सोने की वस्तुओं से सजाया गया है। यह एक जुआघर है।

इस राज्य को सबसे अधिक आय इसी से होती है। आसपास के समस्त देशों में वैधानिक रूप से जुआ खेलना बन्द कर दिया गया है। इसलिये यूरोपीय देशों के अनेक धनी व्यक्ति यहां जुआ खेलने आते हैं। सहस्त्रों रुपये कमाते और गवांते हैं। इस विचित्र भवन को देखने का कुतुहल हमारे मन में जागृत हुआ। हम वहां गये। भवन के भीतर जाने का टिकिट पांच रुपयों में खरीदा और अन्दर गये। सैंकड़ों मेजें लगी थी और उनके आसपास बैठकर सहस्त्रों व्यक्ति जुआ खेल रहे थे। मेजों पर अंक लिखे हुवे थे और जुआरी उनपर दांव लगा देते थे। उसके पश्चात् एक चक्र घुमाया जाता उसमे जिसका अंक आ जाता वह जीत जाता और सब हार जाते। सरकारी टेक्स और जुआ खिलाने वाले की फीस पहले ही ले ली जाती है। यह एक अद्‌भुत मायानगरी थी जिसमें प्रतिक्षण राजा, रंक तथा रंक, राजा बन रहा था।

यहां से जनेवा गये। इस नगर का वर्णन हम प्रारम्भ मे कर चुके हैं। इस समय हमने केवल वहां का सुविख्यात कबरिस्तान देखा। उसकी बराबरी करने वाला एक भी कबरिस्तान विश्व में नहीं है। इस में अनेक करुणामयी मूर्तियां स्थापित की गई हैं। उनकी कला अद्वितीय है। एक मूर्ति के मुख पर करुणा के भाव इतने सजीव थे कि आंखों से झर रहे आंसुओं को देख दर्शक का हृदय कातर हो उठे। मूर्तियों के रेशमी, रंगीन मखमली वस्त्र इस कुशलता से बनाये गये थे कि मानो सच्चे वस्त्र हों।

ता० १६ अगस्त को हम पीसा नगर देखने गये। इस नगर की दर्शनीय वस्तु एक नौ खण्ड का बुर्ज है। इसके मध्य में सीढ़ियां बनी हुई हैं। जिन पर से प्रत्येक खण्ड मे जाया जा सकता है। प्रत्येक खण्ड में जाकर नगर की शोभा देखी। इस बुर्ज की विशेषता यह है कि उसका चौदह फीट लम्बा भाग झुका हुआ है। शताब्दियां बीत गईं। वह उसी स्थिति में है, गिरता नही है।

पीसा नगर से फ्लारेन्स गये। इस नगर में एक भारतीय ढंग का बाग है। इस बाग में कोल्हापुर नरेश की छत्री बनाकर उनकी मूर्ति स्थापित की गई है। यह ज्ञात हुआ कि कोल्हापुर नरेश विद्याध्ययन के लिये यूरोप में आये थे। अध्ययन समाप्त होने पर जब वह भारत जा रहे थे, तब मार्ग में अचानक इसी स्थान पर उनका देहान्त हो गया था।

फ्लारेन्स से हम इटली की राजधानी रोम जाने के लिये निकले। ट्रेन अविरल गति से चल रही थी। खिड़की से हम इटली की भूमि, वहां के ग्राम, वहां की लहलहाती खेती देख रहे थे। ग्राम अधिकतर पहाड़ों पर बसे हुवे थे। इन ग्रामों मे पूर्व जागीरदारों के दुर्ग भी कहीं-कही बने हुवे थे। ग्राम के भवन केवल एक या दो मंजिल के बने हुवे थे। यहां मक्का, अंगूर और भाजियों की खेती होती है। यह देश इंगलेण्ड तथा फ्रान्स के समान धनी नही है। ऐसा प्रतीत हो रहा था। अब तक प्रवास मे किसी देश में हमने भैंसें नहीं देखी थी। यहां हमने भैंसें देखीं। गाय और घोड़े देखे किन्तु उनकी नस्ल यूरोपीय नहीं थी। भारतीय जैसी प्रतीत हुई। तुलनात्मक दृष्टि से हम इसपर विचार कर रहे थे कि रोम का स्टेशन आ गया। जैसे ही हम प्लेटफार्म पर उतरे हमारे पौत्र समरसिंह ने और पंडित रविशंकर देराश्री ने हमारा स्वागत किया। पौत्र समरसिंह शिक्षा प्राप्त करने लन्दन जा रहे थे और देराश्री उनके

साथ थे। हम सब पूर्व नियोजित होटल मे आये। वहां हमारे द्वितीय पुत्र राजकुमार मानसिंह मिले। वह लन्दन से समरसिंह को लेने आये थे। समरसिंह की आयु उस समय केवल ग्यारह वर्ष की थी।

ता० १८ अगस्त को हम पोप का नगर देखने गये। पोप रोमन कैथोलिक धर्म का सर्वोच्च गुरु होता है। पहले यूरोप के समस्त सम्राट् पोप को अपना गुरु मानते थे। श्रद्धा और भक्ति के साथ उनका आदर करते थे। जिसे पोप राजतिलक कर देवे वही राजा बनता था। रोम नगर के आसपास के कितने ही प्रदेशों पर पोप की सत्ता थी किन्तु साठ सतर वर्ष पूर्व जब रोम मे प्रजातन्त्र की स्थापना हुई, और सम्राट् की सत्ता भग करदी गई, तब पोप की सत्ता भी सकुचित हो गई। रोम के अल्प प्रदेश पर ही उसका प्रभुत्व रह गया है। पोप की अवनति का एक कारण प्रोटेस्टेन्ट मत का प्रचलन तथा उसकी प्रबलता भी है।

टिकिट लेकर हमने पोप नगर मे प्रवेश किया। नगर के चारो ओर पक्का कोट बना हुआ है। एक विशाल संग्रहालय मे यूरोपीय सम्राटों की ओर से पोप को भेंट किये गये अनेक उपहार रखे हुये हैं। एक पुस्तकालय है जिसमे सहस्रों पुरातन तथा नवीन ग्रन्थ संग्रहीत हैं। सहस्रो मूर्तियो का संग्रह भी देखने योग्य है।

पोप नगर देख हम दोपहर को एक बजे निवास स्थान पर आये। आज पौत्र समरसिंह तथा राजकुमार मानसिंह लन्दन जा रहे थे। उनको विदा किया और हम रोम के पुरातन ऐतिहासिक स्थान देखने चल पडे। इन स्थानों पर जो भवन हैं, वह दो हजार वर्ष पूर्व बने हुवे हैं। यहा एक विशाल गोलाकार भवन बना हुआ है, जिसमे एक लाख मनुष्य बैठकर, बीच के चौक मे होने वाले खेल को देख सकते हैं। शताब्दिया बीत गईं यह भवन वीरान पडा हुवा है। कहते हैं पहले रोम के सम्राट् इसी भवन मे बैठकर हिंस्र पशु और मनुष्यों का द्वन्द्व युद्ध करवाकर अपना मनोरजन करते थे। इस अमानवीय भयानक युद्ध को देखने सहस्रों की सख्या मे जनता इस भवन मे उपस्थित होती थी।

ता० २० अगस्त को प्रात १० बजे हम सेन्टपाल गिरजाघर देखने गये। यह ससार का सबसे बडा गिरजाघर है। इसका शिखर बहुत ऊ चा है। जिस पर एक गोल कलश लगा हुवा है। नीचे से देखने पर वह कलश बहुत छोटा दीखता है। किन्तु वहा के लोगों का कहना है कि वह इतना बडा है कि उसमे चौदह व्यक्ति सुविधापूर्वक बैठ सकते हैं। इस गिरजाघर मे भक्त कलाकारो ने श्रद्धा और भक्ति मे सराबोर होकर कला का जो सृजन किया है, वह अनुपम है। यहा गिरजाघर बहुत हैं जिनमे भक्तों की भीड लगी रहती है। हमने देखा भक्त यात्रियों के झुड के झुड हाथ मे जलती मोमबत्ती लिये भजन गाते हुवे गिरजाघर की ओर जा रहे हैं। उनके स्वर मे भक्तिभरी करुणा थी। शब्दो मे श्रद्धा भरे भाव थे।

एक गिरजाघर के नीचे तलघर था। उसे देख हमारे आश्चर्य की सीमा नही रही। वहा मनुष्यो की हड्डियों की सजावट की गई थी। भीतो पर हड्डियो के बेल बूटे बनाये गये थे। छतो मे खोपडियो को सजाया गया था। उन्ही के झाड फानूस बनाकर लटकाये गये थे। जिन मे बिजली के मोमबत्तियो जैसे बल्ब जल रहे थे। हमे अवगत कराया गया कि तीस हजार

मनुष्यों की हड्डियां व खोपड़ियां यहां गड़ी हुई थीं। वह खोदकर निकाली गईं और उन्हें ही कलापूर्ण ढंग से सजाया गया है। यहां कला ने भयानकता को सुन्दरता प्रदान की है। उसे देख यह सिद्धान्त प्रमाणित हो जाता है कि कला का चरम लक्ष्य सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्, है। उसमें एक पुण्य भरा आलोक निहित होता है और उसके सम्मुख मानव का मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है।

ता० २१ अगस्त को दस बजे दिन को पुराना रोम देखने गये। दो हजार वर्ष पूर्व बने भवनों के खण्डहरों को देखा। शिल्पी मानव के कुशल हाथों ने कठिन पत्थरों को तराश कर बनाई हुई अभिराम मूर्तियां, भवनों की सुन्दर बनावट, स्तम्भों की दृढ़ता, भीतों पर अंकित अनुपम चित्र देख, लगा कि दो हजार वर्ष पूर्व का मानव भी कलाविज्ञ था, सुसंस्कृत था, सभ्य था। उसमें मानव जीवन की समस्त भावनाओं को कला के उन्नत आकार में प्रकट करने की अपूर्व क्षमता थी।

और जब पुराना कब्रिस्तान देखने गये तो हमारे विस्मय का ठिकाना न रहा। सुरंग द्वारा हमें साठ फीट नीचे उतरना पड़ा। वहां अन्धेरा था। एक व्यक्ति के हाथों में जलती हुई मोमबत्तियां थी। उसके प्रकाश में हम दो फीट चौड़ी गली में से जा रहे थे। गली के दोनों ओर आलमारियों के समान खनों में दफनाये हुवे मनुष्यों के शव रखे हुवे थे। उन्हें देखा। कहीं केवल हड्डियां ही रखी हुई थी। इस प्रकार की अनेक गलियां हैं। उन सब गलियों की लम्बाई कुल मिलाकर ग्यारह मील है। वास्तव में यह स्थान अनोखा तथा भयोत्पादक है।

ता० २२ अगस्त को हम नेपल्स आ गये। प्रारम्भ में जब हम नेपल्स में गये थे। उस दिन की दिनचर्या में जिस ज्वालामुखी का वर्णन लिखा है, उसका नाम विसुवियस है। ता० २३ अगस्त को हम उसे देखने गये। एक छोटी रेलगाड़ी में बैठकर हम उसके नीचे पहुँच गये। वहां से ट्राम मे बैठे। विद्युत शक्ति से संचालित वह ट्राम बल खाती हुई एक पहाड़ पर चढ़ जाती है। इस पहाड़ पर अंगूर की खेती होती है। उसकी मदिरा भी बनती है। इस पहाड़ के आगे की भूमि पर ज्वालामुखी पर्वत से निकली हुई मिट्टी पड़ी हुई है। यहां न तो खेती होती है, न कोई वृक्ष है। यहां ट्राम का मार्ग समाप्त हो जाता है। यहां बिजली के झूले में बैठना पड़ता है। वह सीधा एक हजार फीट की ऊंचाई पर ले जाता है। वहां से डेढ़ सौ गज के लगभग पैदल चलना पड़ता है। यह स्थान समुद्र की सतह से चार हजार फीट ऊंचा है। यहां से समुद्र दीखता है। दूसरे पहाड़ के घेरे में ज्वालामुखी पर्वत है। दो, तीन मिनिट के अन्तर से जोर से आवाज होती है और पर्वत अपने भयानक मुख से बहुत-सा धुंवा उगल देता है जो आकाश में बादलों के समान छा जाता है। उसके पश्चात् उबलती हुई लोहा आदि धातुएं बाहर आकर भूमि पर बहने लगती हैं। जले हुए पत्थर चारों ओर उड़ते हुवे दीखते हैं। धूंवें में गन्धक की गन्ध आती है। सर्व शक्तिमान प्रभु की इस विध्वंसकारी कृति को हम कितनी ही देर तक देखते रहे।

हमारा यूरोप का प्रवास समाप्त हो गया था। ता० २५ अगस्त को हम रोम से रवाना हुवे और ता० ३० को हम अदन पहुँच गये। हमारे जहाज ने अरब सागर में प्रवेश किया।

इस जहाज मे मैसूर नरेश के भाई तथा युवराज थे। हैदराबाद राज्य के पोलिटिकल और फायनेन्स मिनिस्टर सर अकबर हैदरी अपनी पत्नी सहित इसी जहाज से यात्रा कर रहे थे। इसी जहाज मे भारत के महान् व्यक्ति दार्शनिक राधाकृष्णन् भी थे। नित्य प्रति प्रात काल के पूर्व अरुणोदय मे वह डेक पर घूमने जाया करते थे। हमारे घूमने का भी वही समय होने से नित्य भेंट हो जाया करती थी। घूमते हुवे अनेक विषयो पर वार्तालाप करने का सौभाग्य भी हमे प्राप्त हुवा। जब वह स्वतन्त्र भारत के उपराष्ट्रपति थे, तब जयपुर आये थे। हम उन दिनों बैंक आफ राजस्थान के डायरेक्टर थे। उक्त बैंक के भवन का उद्घाटन करने वह आये थे। बैंक की ओर से हमने उनका स्वागत किया। उस समय हमने जहाज के डेक पर घूमने का स्मरण दिलाया तो प्रसन्नतापूर्वक बोले "मुझे वह सब स्मरण है"

ता० ४ सितम्बर को प्रात काल उषा के पवित्र समय मे हमने अपनी मातृभूमि के दर्शन किये, उसे वन्दन किया और बम्बई के समुद्र तट पर उतरे।

हिमाचल प्रदेश देखने की अभिलाषा से वह चैत्र सुदी १८ वि० स० १९९४ को दिल्ली गये। वहाँ से देहरादून होते हुवे हरिद्वार गये। वहाँ से ऋषिकेश, टिहरी देखते हुवे मसूरी आये। मसूरी समुद्र सतह से ६६८२ फीट की ऊचाई पर है। हिमाचल प्रदेश के इस भूखण्ड मे प्रकृति ने अपनी सुन्दरता को मुक्तहस्त से बिखेरा है। निर्झरों का कलकल निनाद, वन्य पुष्पो की सुगन्ध लेकर बहने वाली वायु लहरियाँ, गगनचुम्बी हिम चोटियाँ सभी मानव के मन मे एक अद्भुत रम्य हर्ष की सृष्टि करते हैं।

वह मसूरी से देहरादून आये और मेरठ, अलीगढ, मथुरा, वृन्दावन देखते हुवे अपने जमीदारी ग्राम अछनेरा आये। वहाँ उन्होंने जमीदारी का प्रबन्ध देखा। वैशाख सुदी १५ वि० स० १९९८ को वापिस बनेडा आ गये। यह पूरा प्रवास उन्होंने अपनी मोटर द्वारा किया।

चैत्र बदी १० वि० सं० २००५ को वह बीकानेर गये। वहाँ से जामनगर तथा भुज होते हुवे चैत्र सुदी ४ वि० स० २००५ को द्वारका गये। नाव मे बैठकर बेट द्वारका देखने गये। वहाँ के प्रमुख मन्दिरों को देखा। मीरां बाई का बनाया हुवा एक मन्दिर वहाँ है। मन्दिर की बनावट प्रमाणित करती थी कि वह बहुत प्राचीन है किन्तु इस समय उसकी अवस्था जीर्ण-शीर्ण थी। गोपीघाट से नाव मे बैठकर द्वारका आ गये। उन्होंने अपने इतिहास प्रेम के वश द्वारकाधीश के मन्दिर के पुराने लेख देखे। वह तेरह सौ वर्ष पुराने थे। सात मन्जिलों के पश्चात् निज मन्दिर का शिखर है। दर्शन करने के उपरान्त सातों मन्जिलो पर जाकर देखा। छतें जीर्ण हो गई हैं। सातवी मन्जिल पर सभा मंडप है। वहाँ से समुद्र की शोभा देखते ही बनती थी। समुद्र के वक्ष पर लहरों का नर्तन मानव के मन को मुग्ध कर रहा था। वह ता० १५ अप्रेल को यहाँ से जामनगर आ गये। स्वतन्त्र भारत मे जामनगर राज्य विलीन हो गया था। राज्य का अधिकार लेने स्वराज्य के मन्त्री ढेबर भाई आये थे। यहाँ के तीन सौ छोटे बडे राज्य स्वतन्त्र भारत मे विलीन हुवे थे। जाम साहब के भाई प्रतापसिंह इन विलीन राज्यों की सेना के सर्वोच्च पदाधिकारी नियुक्त किये गये थे।

राजकोट से बीकानेर होते हुवे चैत्र सुदी ८ वि० सं० २००५ (ता० १७ अप्रेल सन् १९४८) को वह उदयपुर आ गये।

हैदराबाद यात्रा के संस्मरण

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देशी राज्यों के भारत संघ मे विलय होने का प्रश्न था। सभी देशी राज्य स्वेच्छा से भारत में विलीन हो चुके थे। किन्तु हैदराबाद राज्य अभी स्वतंत्र ही था। समस्त राज्य पर रजाकारों का आतंक छा रहा था। वह एक सैनिक सगठन था, जिससे हैदराबाद राज्य की हिन्दू प्रजा विशेषरूप से संत्रस्त थी। भारत सरकार ने रजाकारों के इस आतंक को रोकने के लिये कई बार निजाम को लिखा, किन्तु उन्होंने इस ओर ध्यान नही दिया। रजाकारों को निजाम का बल और विश्वास प्राप्त था। जब उनके अत्याचार नहीं थमे और लूट खसोट प्रतिदिन बढ़ने लगी, तब भारत सरकार ने पुलिस कार्यवाही करने का विचार किया और महाराणा उदयपुर को सैनिक सहायता करने को लिखा। उन दिनों उदयपुर राज्य की भूपाल इन्फेन्ट्री युद्ध कला मे निपुण समझी जाती थी। महाराणा ने तत्काल भूपाल इन्फेन्ट्री को भारत सरकार की सेवा मे भेज दिया। ता० १३ सितम्बर सन् १९४८ ईस्वी को हैदराबाद राज्य पर पुलिस कार्यवाही प्रारम्भ की गई। रजाकारों ने उसके विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। भारत सरकार की सोलापुर की ओर बढ़ने वाली सेना में मेवाड़ की सेना अग्रणी थी। छः दिनों मे ही रजाकारों ने आत्मसमर्पण कर दिया और हैदराबाद राज्य भारत संघ मे विलीन कर लिया गया। इस पुलिस कार्यवाही मे भूपाल इन्फेंट्री ने जो युद्ध कुशलता तथा वीरता दिखाई उसकी प्रशंसा में भारत सरकार ने महाराणा को पत्र लिखा उसमे मेवाड़ी सैनिको की वीरता को सराहा है और आभार प्रदर्शन किया है।

स्वतन्त्र भारत के सैनिकों को पुलिस कार्यवाही के रूप में यह छोटा सा युद्ध लड़ना पड़ा था और उन्हें विजय प्राप्त हुई थी। राजाधिराज अमरसिंह के मन में युद्ध भूमि देखने की तथा विजयी-वीर सैनिकों से मिलने की इच्छा जाग्रत हुई। वह अक्टूबर में ही हैदराबाद जाने की सोच रहे थे किन्तु कार्यवश नही जा सके। ता० १२ दिसम्बर को वह अपनी इच्छा पूर्ति के निमित्त बम्बई होते हुवे पूना गये। उन्होंने अपने यात्रा सस्मरण मे लिखा है—"हम पूना सदर्न कमान्ड के मुख्य स्थान पर जनरल महाराज राजेन्द्रसिंह से मिलने गये तो मालूम हुवा कि वह आवश्यक कार्य से दिल्ली गये हैं, अतएव हम उनके प्रतिनिधि जनरल कटोच से मिले। अपना मन्तव्य उनके सामने रखा। उन्होंने तत्काल अपने कार्यालय से पूछकर सिकन्दराबाद जाने वाली ट्रेन का समय बताया। उन्होंने मेजर हिरन को बुलाकर कहा, "वायरलेस द्वारा आप मेवाड़ इन्फेन्ट्री के कमान्डेन्ट को सूचना दे दें कि राजाधिराज कल प्रातः सिकन्दराबाद पहुँच रहे हैं। इनको महबूबनगर ले जाने का प्रबन्ध कर दीजिये। फिर कर्नल ने मेवाड़ी सैनिकों की प्रशंसा करते हुवे कहा कि "भारत के समस्त देशी राज्यों की सेनाओं में मेवाड़ इन्फेन्ट्री सब प्रकार से उच्च श्रेणी की है। उसने हैदराबाद की पुलिस कार्यवाही में बहुत वीरता दिखाई।" एक सैनिक उच्चाधिकारी के मुख से मेवाड़ी सैनिकों की प्रशंसा सुन कर हमने गर्व का अनुभव किया।

मेजर हिरन उदयपुर के थे। उन्होने हमे पहचान लिया और हमारा प्रबन्ध कर दिया। उन्होंने हमे भोजन का निमन्त्रण भी दिया। भोजन और चाय पीकर हम उनके घर से अपने

निवास स्थान पर आये। सन्ध्या के छः बजे हम स्टेशन पर पहुँच गये। मेजर हिरन हमे पहुँचाने स्टेशन पर आये थे।

मार्ग मे एक स्टेशन पर एक सैनिक उच्चाधिकारी तथा एक दूसरे सज्जन हमारे डिब्बे मे आकर बैठ गये। सैनिक अधिकारी इन्डियन आर्टिलरी के केप्टिन थे। उन्होंने पुलिस कार्यवाही मे भाग लिया था। मेवाडी सेना के युद्ध कौशल की प्रशसा करते हुवे उन्होंने कहा, "हमने स्वयम् अपनी आखो से उनकी युद्ध चातुरी देखी है। क्योंकि हमारा तोपखाना मेवाडी सेना के पीछे था। हम मेवाडी सेना के ऊपर से शत्रुओं पर गोले बरसाते थे। तोपों के गोलों से शत्रु की सेना का नाश होता था और हमारे मेवाडी सैनिकों को आगे बढने का अवसर मिलता था। मेवाडी सेना की दो विशेषताये उल्लेखनीय है, एक तो सैनिक अपने उच्चाधिकारी का बहुत अधिक सम्मान और आदर करते हैं। दूसरे वह अधिकारी भी अपने पद के घमन्ड मे नहीं रहते। यौद्धिक प्रवृत्ति तथा रणोत्साह उन मे इतने तीव्र वेग से जागृत होता है कि वह अपने अधिकार चिह्न उतार कर रख लेते हैं और रिवाल्वर के स्थान पर साधारण सैनिक की बन्दूक लेकर युद्ध मे कूद पडते हैं। उन्हे प्राणों की तनिक भी चिन्ता नही रहती। अपने अधिकारी का ऐसा रणोत्साह देख सैनिको के मन मे उनके प्रति आदर द्विगुणित हो जाता है। उनमे एक अपूर्व चेतना जागृत हो उठती है और वह रणागण मे शत्रु के दात खट्टे कर देते हैं। हैदराबाद के युद्ध मे मेवाडी सेना इसी प्रकार युद्ध करती हुई आगे बढ रही थी। शत्रु की ओर से गोलियों की वर्षा हो रही थी और आकाश मन्डल से पानी बरस रहा था। ऐसे भीषण समय मे मेवाडी सेना आगे बढ़ती ही चली गई। शत्रु सेना के छक्के छूट गये और उन्होंने श्वेत ध्वज दिखा दिया और अपनी हार स्वीकार कर ली।"

मेवाडी सेना की वीरता तथा युद्ध कुशलता की यह कहानी सुनकर एक मेवाडी के नाते हमारा मस्तक गौरव से उन्नत हो उठा।

नौ बजे प्रात हम हैदराबाद होते हुवे सिकन्दराबाद पहुँचे। वहां मेवाडी सेना के कमान्डर कर्नल रावत दिलीपसिह बाठेरडा उपस्थित थे। उनसे मिलकर फिर हम हैदराबाद आये। वहा से ५५ मील दूर महबूबनगर गये—जो मेवाडी सेना का प्रमुख स्थान था। वहा कितने ही सेनाधिकारी उपस्थित थे। उन सब से भेट की। दूसरे दिन का कार्यक्रम निश्चित किया गया। दूसरे दिन प्रात सैनिको की परेड, कैम्प, स्टोर, वायरलेस और आधुनिक शस्त्रास्त्र देखे।

उसी दिन भोजन के पश्चात् यहा से ५० मील दूर दक्षिण, पूर्व के कोण मे एक बृहत सरोवर देखने गये। इसके पानी से सात हजार एकड भूमि मे चावल की खेती होती है। सरोवर की विशालता तथा उसका सिंचन सामर्थ्य देख हम बहुत प्रभावित हुवे।

वहा से फिर महबूबनगर आ गये। वहा जितने भी सैनिक थे उन सबको हमने बुलवाया। कुछ सेनाधिकारी भी उपस्थित थे। अभिवादन के पश्चात् हमने उनको सम्बोधित करते हुवे कहा, "आपने हैदराबाद की पुलिस कार्यवाही मे जो वीरता दिखाई है, मेवाड का मुख उज्वल किया है तथा अपने पूर्वजो के पराक्रम को मूर्तरूप दिया है, उसके लिये आप सब धन्यवाद के पात्र हैं। भारतीय उच्चाधिकारियों ने आपके युद्ध कौशल की मेरे सम्मुख प्रशसा की

है, जिसे सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई और मेरा मस्तक गौरव से ऊंचा ही उठा। आपको स्मरण होगा, मैंने सात वर्ष पूर्व आपसे कहा था कि आप उन वीर पुंगवों की सन्तान हैं, जो मेवाड़ की स्वतन्त्रता और सम्मान के लिये अनेक वर्षों तक अपना रक्त समर्पित करते रहे हैं। वही रक्त आज भी आपकी नस-नस मे व्याप्त है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि देश पर संकट आने पर आप अपने पूर्वजों के पद चिन्हों पर चलकर अपना रक्त बहा देने में अग्रसर रहेंगे। मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है कि आपने मेरे उस कथन को इस युद्ध मे मूर्तरूप दिया। इसी कारण मैं आप लोगो का अभिनन्दन करने, बधाई देने यहां उपस्थित हुवा हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी आप अपने प्रिय मेवाड़ के उज्वल नाम को सार्थक करते हुवे भारतमाता की सेवा करते रहेगे।"

इसके पश्चात् हमारी ओर से सैनिकों को जल पान कराया गया तथा सेना के एक उच्चाधिकारी ने हमे धन्यवाद दिया।

मध्याह्न के उपरान्त हम वहां से पांच मील दूर आजमगढ़ गये। यह स्थान एकान्त में अत्यन्त रमणीय है। पर्वत शृंखलाओं के बीच एक सरोवर के किनारे एक सुन्दर भवन बना हुवा है। उसे देख हमे ब्रिटेन के छोटे-छोटे दुर्गों का स्मरण हो आया जो इसी प्रकार पर्वत श्रेणियों के बीच एकान्त मे बने हुवे थे।

हम यह जानने को उत्सुक हो उठे कि हैदराबाद राज्य के भारत में विलीन होने से ग्रामीण जनता पर क्या प्रभाव पड़ा। मार्ग मे ग्राम निवासियों से वार्तालाप करने का हमने प्रयत्न किया, किन्तु उनकी भाषा हम नहीं समझ सके। कुछ ऐसे भी ग्रामीण मिले जो थोड़ी बहुत हिन्दी जानते थे। उनके कहने से हमें ज्ञात हुवा कि इस राज्य परिवर्तन से उन्हे सन्तोष है तथा वह भारतीय सेना के व्यवहार से प्रसन्न हैं। प्रत्येक ग्राम मे अनेक घरों पर तिरंगा ध्वज लहरा रहा था।

दूसरे दिन हमने हैदराबाद नगर के प्रसिद्ध स्थानों को देखा। इतिहास प्रसिद्ध गोलकुन्डे का दुर्ग देखने गये। मिलिट्री के गवर्नर मेजर जनरल चौधरी से मिलने उनके निवास स्थान बोलारम रेजिडेन्सी मे गये। उनके उन्नत व्यक्तित्व, शील स्वभाव और मोहक सौजन्य ने हमें बहुत प्रभावित किया। उन्होने भी मेवाड़ी सेना की वीरता की प्रशंसा की और रजाकारों से छीनी हुई ३०३ बोर की विदेशी बन्दूकें जो निजाम ने करोड़ो रुपये खर्च करके यूरोप के देशों से मंगवाई थी, उन्हें देखने के लिये एक आफिसर को साथ मे भेजा। लगभग एक लाख बन्दूकें थी।

हैदराबाद से हम सुप्रसिद्ध एलोरा के मन्दिर देखने गये। मार्ग मे मोटर ड्राईवर ने हमें वह स्थान दिखाया जहां भारतीय सेना का रजाकारो से युद्ध हुवा था। ड्राईवर ने कहा' "यहां रजाकारों की सैकड़ों लाशें पड़ी थी।"

हम दौलताबाद पहुंचे, जिसे इतिहास में देवगिरी, देव दुर्ग, देवगढ़ कहा गया है। यहां मुसलमानों के आक्रमणों के पूर्व हिन्दू राज्य था। जिसे अलाउद्दीन खिलजी ने धोके, से जीत लिया था। भूमि से छः सौ फीट ऊंची पहाड़ी पर दुर्ग बना हुवा है। दुर्ग के चारों ओर चट्टानों

को काट कर खाई बनाई गई है। नगर कोट चट्टानो को काट कर बनाया गया है। यह कोट कही सौ फीट, कही दो सौ फीट ऊंचा है। प्राचीन समय का यह एक अभेद्य दुर्ग है। प्राचीन भवन अधिकाश खण्डहर हो गये है। मुस्लिम बादशाहों के समय का दो सौ फीट ऊंचा और सत्तर फीट घेरे का एक मीनार अभी सुस्थिति मे खडा है।

यहा से खुलदाबाद होते हुवे एलोरा पहुँचे। यहा तीन सम्प्रदायों के मन्दिर हैं। बौद्ध, जैन और पौराणिक। तीनो मे युग की अभिजात कला साकार हो उठी है। पर्वत की चट्टानो को काट कर मन्दिरों के स्तम्भ, छत आदि बनाने गये हैं। मूर्तिया भी इन्ही स्वयम्भू चट्टानों को काट कर बनाई गई हैं। जिनमे शिल्पकार ने मुक्तहस्त से कला को उडेला है। यहा के कैलाश मन्दिर मे शिल्प कला अपनी चरमता पर पहुँच गई है। उसकी अनुपम सुन्दरता, अद्भुत कारीगरी देखते ही बनती है।

वहा से लौटने पर खुल्दाबाद मे हमने बादशाह औरंगजेब की कब्र को देखा। बादशाह की इच्छा के अनुसार यह एक खुले स्थान पर बनाई गई है। कब्र के ऊपर मिट्टी है और उस पर एक तुलसी का वृक्ष लगा हुआ है।

महान् मुगल साम्राज्य के अधिपति बादशाह औरंगजेब ने हमारे वश के मूल पुरुष राजा भीमसिह को बनेडा आदि अनेक परगने जागीर मे दिये थे। जिनका उपभोग हम आज भी कर रहे हैं, अतएव हमने इस स्थान को मस्तक झुका कर अभिवादन किया।

बादशाही समय मे औरंगाबाद नगर दक्षिण की राजधानी था। उस समय यह बहुत समृद्धिशाली था। प्राचीन खण्डहर आज उसकी विशालता सम्पन्नता तथा समृद्धि की कहानी सुना रहे ह। बादशाह औरंगजेब यहा पच्चीस वर्ष रहे। उस समय उत्तरी राजपूत नरेशो की सेनाये भी यहा रहती थी। जिस राजा की सेना का शिविर जिस स्थान पर होता उसके नाम पर वहा उपनगर बस जाते। जयपुर की सेना का शिविर जहा था उसको जयसिंहपुरा और जोधपुर की सेना के शिविर के स्थान को जसवन्तपुरा आज भी कहते ह।

बनेडा राजवश के वीरवर राजा सुरताणसिंह भी बादशाह की ओर से अनेक वर्षों तक यहा रहे थे उनके सेना शिविर के स्थान का नाम 'सुरताणपुरा' पड गया था। जो अब खण्डहर हो गया है।

औरंगाबाद से ७७ मील दूर अजन्ता की गुफायें देखने गये। अजन्ता एक ग्राम का नाम है। गुफाये वहा से बहुत दूर हैं। पर्वत से लगभग एक हजार फीट नीचे उतरने पर गुफायें आती हैं। चट्टानो को काट कर मन्दिरो का निर्माण किया गया है। मन्दिरो मे सर्वत्र चित्रकला के दर्शन होते हैं। इन चित्रो के अंकन मे कलाकारो ने जिस कला को मूर्त किया है वह अनुपमेय है। उसमे कला के परम और चरम रूप, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम, के दर्शन होते हैं। इतने कलापूर्ण सुन्दर चित्र विश्व मे और कही नही हैं। जिनको रेखांकित किये सहस्रो वर्ष व्यतीत हो गये किन्तु कला की मधुरता और रगो की चमक नष्ट नही हुई। भारतीय प्राचीन कला के दर्शन कर हम कृतार्थ हुवे।

एक अभाव हमे यहा खला, क्या तो एलोरा और क्या अजन्ता, दोनो स्थानो पर कोई

शिला लेख नहीं है। जिससे ज्ञात हो सकता कि इन गुफाओं के प्रवर्तक कौन थे, कलाकार कौन थे और किस युग का यह रेखांकन है।

अजन्ता का स्थान कितनी ही शताब्दियों से अज्ञात था। उचित सुरक्षा का प्रवन्ध न होने के कारण वर्षाऋतु मे पत्थर एवम् मिट्टी वह कर आये और उन्होंने इस अनुपम कला भण्डार को छिपा दिया। ई० सन् १८१८ मे अंग्रेजी सेना जव युद्ध का अभ्यास करने यहां आई। उस समय एक सैनिक अधिकारी ने दुर्विन से इस स्थान को देखा। वह वहां गया; पत्थर और मिट्टी हटाकर गुफाओं में गया और अनुपम कला भण्डार को देख वहुत प्रभावित हुवा। उसने इस अद्भुत स्थान के सम्वन्ध में भारत सरकार से लिखा पढ़ी करके निजाम राज्य द्वारा उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध करा दिया।

मैसूर राज्य मे दशहरे का उत्सव विशेप रूप से उतम और वहुत धूम धाम से मनाया जाता है। राजाधिराज के मन में उस उत्सव को देखने की अभिलापा उत्पन्न हुई। सन् १९४८ में उनके कनिष्ठ पुत्र राजकुमार कर्नल गुमानसिंह भारत सरकार की ओर से दक्षिणी राज्यों की सेना का निरीक्षण करने "सैनिक परामर्शदाता" अधिकारी वना कर भेजे गये। उस समय राजाधिराज ने मैसूर का दशहरा उत्सव देखने की अपनी इच्छा प्रकट की। राजकुमार ने मैसूर नरेश को सूचना दी। उन्होने राजाधिराज को निमन्त्रित किया। वह वहां गये और उत्सव मे सम्मिलित हुवे। वहां का "वृन्दावन गार्डन्स" नामक वाग जो एक अद्भुत रम्य कला कृति है उसे देखा तथा वहां के और भी प्रसिद्ध स्थान देखे।

भांखड़ा बांध का उद्घाटन ता० १७ नवम्बर सन् १९५५ ईस्वी को पं० जवाहरलाल नेहरु द्वारा होने वाला था। पंजाव सरकार के गवर्नर ने उक्त समारम्भ में सम्मिलित होने के लिये राजाधिराज को निमन्त्रण पत्र भेजा। वह वहां गये और भांखड़ा वांध देखा।

अतिथि सत्कार:—दैनंदिनी राजाधिराज की के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वनेड़ा दुर्ग में अतिथियों का तांता लगा रहता था। सभी का यहां यथा योग्य आदर सत्कार होता था। मेवाड़ के प्रत्येक रेजिडेन्ट यहां प्रतिवर्ष आते थे और एजेन्ट गवर्नर जनरल दो वर्ष में एक बार तो आते ही थे।

महाराणा भूपालसिंह फाल्गुन बदी १ वि० सं० १९८७ को बनेड़ा आये। प्रचलित नियम के अनुसार राजाधिराज ने नजर न्यौछावर की। महाराणा के साथ १४० व्यक्ति थे। महाराणा का आदर सत्कार राजाधिराज ने अत्यन्त उत्साहपूर्वक किया। फाल्गुन वदी २ को एक दरबार का आयोजन किया गया। राजाधिराज ने महाराणा को उत्तम सिरोपाव, कन्ठी सिरपेच, हाथी, एक घोड़ा तथा सोने का एक खासा वारह हजार रुपयों के मूल्य का भेंट किया तथा साथ के सामन्तों को, सैनिकों को सिरोपाव और नकदी रुपये दिये। महाराणा ने राजाधिराज को हीरे के सात वटन छः हजार रुपये मूल्य के दिये तथा तीन हजार रुपये की मूल्य के हीरे के लौग भंवर समरसिंह को उपहार मे दिये। उसी दिन महाराणा वापिस उदयपुर चले गये।

– अंग्रेजों का गमन और भारत को स्वतन्त्रता प्राप्ति'—सन् १८५७ ई० (वि० सं० १९१४) की क्रान्ति के पश्चात् भारत मे अंग्रेजी सत्ता दृढ हो गई। राजनैतिक परिवर्तन केवल इतना ही हुआ कि जो सत्ता ईस्ट इन्डिया कम्पनी के हाथो मे थी, उसे ब्रिटेन की राजसत्ता ने ले लिया और सुनियन्त्रित राजतन्त्र भारत मे प्रचलित हो गया। लार्ड केनिंग भारत के प्रथम वायसराय नियुक्त हुवे। अंग्रेजी सत्ता ने ब्रिटेन जैसी राज्य व्यवस्था यहा प्रारम्भ करने का दिखावा किया। सन् १८६१ मे इन्डियन कौन्सिल एक्ट पास हुवा। उसके अनुसार केन्द्रीय धारा सभा तथा प्रान्तीय धारा सभाये प्रारम्भ की गई।

क्रान्ति विफल होने पर भी भारतीय जनता के हृदय से स्वतन्त्रता प्राप्ति की भावना नष्ट नही हुई किन्तु संगठन के अभाव मे वह यत्रतत्र बिखरी हुई थी। उसमे सूत्र बद्ध आन्दोलन करने की क्षमता नही थी।

अंग्रेजी सत्ता के राजनैतिक कार्यों की आलोचना करने वाला एक विरुद्ध पक्ष हो इस दृष्टिकोण से प्रेरित होकर वाइसराय लार्ड रिपन जो प्रजातन्त्र का पक्षपाती था, उसने मिस्टर ह्यूम नामक एक आई० सी० एस० आफिसर को (जो रिटायर हो चुका था।) कहा कि एक ऐसे पक्ष की स्थापना की जावे कि जो सरकार के कार्यों की आलोचना करे। उसने सन् १८८५ ई० मे 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना की। दिन प्रतिदिन जनता मे स्वतन्त्रता की भावना बल पाती गई, जन प्रतिनिधियो ने इस राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा अपनी राजनीतिक मांगों को अंग्रेजी राज्य सत्ता के सामने रखना प्रारम्भ कर दिया। सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी तथा लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के प्रयत्नो से भारतीय लोग जागृति को अधिक स्फुरण मिला और स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रीत्यर्थ अन्दोलन होने लगे। इन आन्दोलनो के फलस्वरूप सन् १९०९ ई० मे मिन्टो मार्ले सुधार नामक एक विधान बना, जिसके अनुसार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के अधिकारो मे वृद्धि की गई। भारतीय जनता तथा जन प्रतिनिधि इससे सन्तुष्ट नही हुवे।

सन् १९१४ ई० मे यूरोप का प्रथम विश्वव्यापी महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। ब्रिटेन फ्रान्स आदि मित्र देश एक ओर थे, जर्मनी दूसरी ओर था। ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियो से सहायता की मांग की। इस संकटकाल मे तत्कालीन भारतीय नेताओ ने सरकार की सहायता करना अपना कर्तव्य समझा और भारतीय सेना यूरोप के रणसंग्राम मे भेजी गई। उसके वीर सैनिको ने इस महायुद्ध मे वीरता का अद्भुत परिचय दिया और प्रमाणित कर दिया कि भारतीय सैनिक युद्धकला मे किसी भी देश के सैनिकों से कम नही है। युद्ध समाप्त होने पर सन १९१७ ई० मे भारत मन्त्री मान्टेग्यु ने भारतीयो को अधिक सुविधाये देने की घोषणा की तथा सन् १९१९ ई० मे शासन सुधार नियमो मे उदारता बरती गई। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा दो भागों मे विभक्त कर दी गई, एक कौन्सिल आफ स्टेट तथा दूसरी लेजिस्लेटिव असेम्बली। इनकी सदस्य संख्या मे भी वृद्धि की गई। निर्वाचन क्षेत्र विस्तृत किये गये। इस सुधार व्यवस्था से भी भारतीयो की तृप्ति नही हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के आन्दोलन ने उग्र रूप धारण किया। आन्दोलन को कुचलने के लिये सरकार कटिबद्ध हो गई।

महात्मा गान्धी उन दिनों भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी सेनानी थे। ब्रिटिश सरकार की दमन नीति से वह बहुत क्षुब्ध और दुःखी हुवे। वह पूर्णतया समझ चुके थे कि जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं होगा, भारतीय जनता सुख, समृद्धि और शान्ति का उपभोग नहीं कर सकेगी। उन्होंने भारत को स्वतन्त्र करने का संकल्प किया और सरकार की दमन नीति को चुनौती दी।

ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता के आन्दोलन को कुचल कर साम्राज्य की रक्षा चाहती थी। यह मानवता के विरुद्ध असत्य का पक्ष था। इस असत्य पक्ष के संरक्षण के लिये सरकार के पास शस्त्र सज्जित सेना थी। जिसका लक्ष्य हिंसा था। इसके विरुद्ध महात्मा गान्धी ने सत्य और अहिंसा का मोर्चा बनाया और सन् १६२० ई० मे सत्याग्रह आन्दोलन का सूत्रपात किया।

सत्याग्रह की युद्ध प्रणाली विश्व के इतिहास में महात्मा गान्धी की अपूर्व, अनुपम तथा सर्वोपरि देन है। असत्य के विरुद्ध सत्य का तथा हिंसा के विरुद्ध अहिंसा का प्रयोग करके उन्होंने एक नवीन प्रतिरोधक युद्ध शैली को जन्म दिया। इस अभूतपूर्व युद्ध प्रणाली ने लोक जागृति को अपूर्व शक्ति प्रदान की। आसेतु हिमाचल आश्चर्यजनक जन जागृति हुई। इस लोक जागृति तथा सत्याग्रह युद्ध के सैनिको के आत्मिक बल को देख सरकार भारतीय स्वतन्त्रता के लक्ष्य को अधिक उदारता से देखने को बाध्य हो गई। सन् १९२७ ई० में उसने भारत में "साईमन कमीशन" भेजा। भारत की जागृत जनता ने उसका घोर विरोध किया। उसके पश्चात् लन्दन में तीन बार गोलमेज परिषदें हुईं। फलस्वरूप सन् १९३५ ई० में प्रान्तीय स्वराज्य प्रदान किया गया। इसको भारतीय नेताओं ने अपनाया। चुनाव हुवे और अधिकांश प्रान्तों में कांग्रेस विजयी हुई। प्रान्तीय धारा सभाओं में कांग्रेसी सरकारे बनीं। किन्तु जब सन् १९३९ मे द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया तब अंग्रेजी सत्ता और कांग्रेसी सरकारों मे मतभेद उत्पन्न हो गया। परिणामतः कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिये।

स्वराज्य प्राप्ति का आन्दोलन फिर प्रारम्भ हुआ। सन १९४२ ई० में महात्मा गान्धी ने अपना व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ किया। इधर कांग्रेस ने ऐतिहासिक "भारत छोड़ो" प्रस्ताव पास किया। सरकार ने सभी नेताओं को पकड़ कर जेल मे बन्द कर दिया, फिर भी आन्दोलन बन्द नही हुवा। क्रान्ति की आग की लपटें उग्र से उग्रतम होती गई। समस्त देश मे क्रान्ति की ज्वालायें प्रज्वलित हो उठीं। साम्राज्य की सैनिक प्रबलता का सामना भारतीय जनता ने प्राणपण से किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये हंसते हंसते मृत्यु का आलिगन करने वाले वीर देश भक्तो के त्याग को देख सरकार आश्चर्य-चकित हो गई। उसने समझ लिया कि भारत मे लोक जागृति उग्र रूप धारण कर चुकी है। वह अब स्वराज्य लेकर ही रहेगी। उसने बाध्य होकर कांग्रेस से समझौते की बातचीत करना प्रारम्भ कर दिया और सन् १९४५ मे जेलों मे बन्द सभी नेताओ को छोड़ दिया।

द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने पर इङ्गलैंड के चुनाओं मे मजदूर दल की जीत हुई। मिस्टर एटली प्रधानमन्त्री नियुक्त हुवे। उन्होंने ब्रिटिश मन्त्रीमण्डल का दृष्टिकोण ही बदल

दिया। मन्त्रीमण्डल ने भारतीय स्वाधीनता एक्ट पास किया और हमारा प्रिय देश भारत ता० १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्र हो गया। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य गवर्नर जनरल नियुक्त हुये। भारतीय मुस्लिम जनता की मांग पर भारत का एक भूभाग उसे दिया गया और विश्व के इतिहास तथा मानचित्र मे "पाकिस्तान" नामक एक नये देश का जन्म हुआ।

ता० २६ नवम्बर १९४९ को स्वतन्त्र भारत का सविधान बना उसके अनुसार ता० २६ जनवरी सन् १९५० ई० को हमारा भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक स्वतन्त्र गण राज्य बन गया। सविधान के पालन मे चुनाव हुये। स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद तथा प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू निर्वाचित होकर आये। द्वितीय चुनाव मे भी यही चुन कर आये। सन् १९६२ के तृतीय चुनाव मे सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन् राष्ट्रपति तथा प० जवाहरलाल नेहरू प्रधान मन्त्री चुन कर आये।

राजस्थान मे जन जागृति

राजस्थान की जनता ने भी भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम मे अपूर्व साहस, अदम्य उत्साह, तथा अनुपम लगन से भाग लिया। प्रारम्भ मे सत्याग्रह का केन्द्र अजमेर था। अर्जुनलाल सेठी, विजयसिंह पथिक, हरिभाऊ उपाध्याय, रामनारायण चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा, हरि भाई किंकर, नानूराम व्यास, शोभाराम गुप्त आदि अनेक कर्मठ देश भक्तों ने स्वतन्त्रता संग्राम मे योग दिया। धीरे धीरे राजस्थान के सभी देशी राज्यो मे स्वतन्त्रता सग्राम के सेनानी प्रकट हुये। जयपुर, जोधपुर आदि सभी राज्यो मे सेवा समितियों की स्थापना की गई। मारवाड मे राजस्थान सेवा सघ से सम्बन्धित "मारवाड सेवा सघ" स्थापित किया गया। जयनारायण व्यास ने "मारवाड हितैषी सभा" के नाम से एक सस्था का निर्माण कर उसके तत्वावधान मे आन्दोलन का सूत्रपात किया।

धीरे धीरे समस्त राजस्थान मे स्वतन्त्रता संग्राम उग्र से उग्रतम होता गया। देशी राज्यों का शक्ति स्रोत अंग्रेजी साम्राज्य सागर से जीवन प्राप्त कर रहा था। उनकी शक्ति का सूत्र अंग्रेजी साम्राज्य के शक्ति सूत्र से बधा था। उनका राजसी वैभव अंग्रेजी साम्राज्य के वैभव से ही दीप्तिमान था। अंग्रेजी साम्राज्य के पतन के साथ ही उनका राज्य स्रोत, शक्ति और वैभव समाप्त हो जाते। अतएव अंग्रेजी साम्राज्य के कर्णधारों ने भारत मे देशभक्त क्रान्तिकारियों के आन्दोलन को विफल करने तथा दबाने के लिये जिस दमन नीति का अवलम्बन किया था, उसी का अनुसरण देशी राज्यों के स्वामियों ने किया, तो वह स्वाभाविक ही था किन्तु प्रतिक्रिया स्वरूप इस दमन नीति से क्रान्ति को अनुपम बल मिला क्योंकि युग परिवर्तन चाहता था। स्वराज्य की माग सत्याग्रह था और क्रान्ति ही उसका एकमात्र उपाय था। इस कारण क्रान्ति के आन्दोलना की वेगवती धारा को रोकने की सामर्थ्य न तो अंग्रेजी साम्राज्य मे थी, न देशी राज्यों के स्वामियों मे थी। आन्दोलना का प्रवाह अबाधगति से चलता रहा। उस युग प्रवाह ने आन्दोलनकारियों को जो दैवी शक्ति, तप और त्याग की भावना प्रदान की वह विश्व के इतिहास मे अमर हो गई है।

वैसे तो राजस्थान मे क्रान्ति की लहरें सन् १९२१ के पूर्व से ही बहने लगी थी। किन्तु

सन् १९३१ ई० से उन्हें स्थायित्व प्राप्त होता गया। जयपुर में सन् १९३१ में प्रजामण्डल की स्थापना हुई थी। उसे हीरालाल शास्त्री तथा जमनालाल बजाज ने सन् १९३६ ई० में पुनर्गठित किया।

जैसलमेर मे राजनीतिक चेतना का प्रारम्भ सन् १९३१ में और बीकानेर मे सन् १९३२ में हुवा। जोधपुर मे प्रजामण्डल की स्थापना सन् १९३४ मे हुई। मेवाड़ मे माणिक्यलाल वर्मा ने अप्रेल सन् १९३८ मे मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना की। मई सन् १९३८ में जयपुर राज्य प्रजामण्डल का खुला अधिवेशन सेठ जमनालाल बजाज की अध्यक्षता मे हुवा। उसी समय मारवाड़ मे 'लोक परिषद' की स्थापना हुई और अलवर राज्य मे प्रजामण्डल बना।

बनेड़ा राज्य में भी जन जागृति का स्रोत बह उठा। माणिकलाल नोवाल तथा उमरावसिंह ढाबरिया आदि नेताओं ने जन जागृति में अपूर्व सहयोग दिया।

राजस्थान के समस्त देशी राज्यो में इन संस्थाओं द्वारा उत्तरदायी शासन की माँग की जाने लगी। मेवाड़ मे जैसे ही प्रजामण्डल कायम हुवा उसे अवैधानिक घोषित कर दिया गया किन्तु नये दिवान सर टी० विजय राघवाचार्य के आते ही उस पर से प्रतिबन्ध हटा लिया गया। प्रतिबन्ध के हटते ही नवम्बर सन् १९४१ ई० में मेवाड़ प्रजामण्डल का प्रथम अधिवेशन उदयपुर मे हुवा। जिसमे राजस्थान के समस्त कार्यकर्ता एकत्रित हुवे थे। उसके पश्चात् फरवरी सन् १९४२ में मारवाड़ लोकराज्य परिषद का अधिवेशन लाडनू मे सम्पन्न हुवा। जयपुर प्रजामण्डल का अधिवेशन सवाई माधोपुर में हुवा।

दिसम्बर सन् १९४५ ई० में देशी लोकराज्य परिषद का एक वृहत् अधिवेशन उदयपुर में हुवा। इसके सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू थे। राजाधिराज अमरसिंह ने उक्त अधिवेशन के सम्बन्ध मे लिखा है, "ता० ३० दिसम्बर—प्रेसिडेन्ट जवाहरलाल नेहरू थे। उनका चल समारोह निकाला गया। समारोह सूरजपोल द्वार से प्रारम्भ होकर बड़े बाजार से होता हुवा हाथीपोल द्वार तक गया। सैकड़ों स्त्री, पुरुष, पाठशाला के विद्यार्थी समारोह में सम्मिलित हुवे थे। पं० जवाहरलाल नेहरू पैदल चल रहे थे। उदयपुर की जनता ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। नगर में ४५ द्वार बनाये गये थे। समस्त नगर ध्वज पताकाओं से सुशोभित किया गया था। ता० ३१ को खुला अधिवेशन हुवा। पच्चीस हजार जनता की उपस्थिति से पण्डाल खचाखच भरा था। प्रथम मेवाड़ प्रजामन्डल के सभापति माणिक्यलाल वर्मा का तदनंतर पं० जवाहरलाल नेहरू का भाषण हुवा।"[1]

राजस्थान के अब तक के स्वतन्त्रता संग्राम के समस्त अधिवेशनों में यह अधिवेशन सब से बड़ा था। इस ऐतिहासिक अधिवेशन में जनता का संगठित, बलशाली रूप दृष्टिगोचर हुवा। इसमे निश्चय किया गया कि देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन तत्काल प्रचलित किया जावे तथा उनके प्रतिनिधि भावी भारतीय संघ मे भेजे जावें।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम मे राजस्थान की जनता ने उपरोक्त रूप से दृढ़तापूर्वक

१—दैनंदिनी।

सहयोग दिया और प्रमाणित कर दिया कि वह अपनी उत्तरदायी शासन की माग पूर्ण करके ही रहेगी।

सम्पूर्ण भारत के आन्दोलनो ने जहा अग्रेजों को भारत को स्वतन्त्र करने की प्रेरणा दी। वहा देशी राज्यो के नरेशो को भी सचेत कर दिया। वह अपना सघ बनाकर एक उपराज्य स्थापित करने का विचार करने लगे। उदयपुर सम्मेलन मे वह जनता का जागृतरूप देख चुके थे। अतएव उसके तत्काल बाद ही जयपुर मे उनके प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन हुवा। उसी प्रकार का एक सम्मेलन अप्रेल १९४७ मे बम्बई मे भी हुवा। नवाब भोपाल उसके सभापति थे। इस सम्मेलन मे उपस्थित नरेश एक ऐसा उपराज्य स्थापित करना चाहते थे, जो भारत तथा पाकिस्तान से अलग एक स्वतन्त्र उपराज्य हो किन्तु बीकानेर नरेश ने इसका विरोध किया तथा भारतीय संघ मे सम्मिलित होने के लिये अपना स्पष्ट मत दिया। महाराणा उदयपुर ने भी बीकानेर महाराजा का समर्थन किया और अपना प्रतिनिधि भारतीय संघ परिषद् मे भेजना निश्चित किया। महाराणा ने सम्भावित राजस्थान सघ के लिये एक विधान बनाने का विचार किया किन्तु राजस्थान के नरेश इससे सहमत नही हुवे। तब उन्होंने कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी को बुलाकर केवल मेवाड राज्य के लिये विधान बनवाया और उसकी घोषणा उदयपुर मे ता० २२ मई १९४७ ई० को की गई किन्तु जागृत जनता ने उसका समर्थन नही किया और वह कार्यान्वित नही हो सकी।

लोक जागृति की शक्ति को देख तथा भारतीयों को सत्ता हस्तान्तरित करने का अग्रेजो का निश्चय देख अधिकाश देशी नरेशों ने भारत संघ मे सम्मिलित होने के प्रवेशपत्रो पर हस्ताक्षर कर दिये। ता० १५ अगस्त १९४७ को भारत के स्वतन्त्र होते ही भारतीय सरकार देशी नरेशों की सघ व्यवस्था पर विचार करने लगी।

फरवरी सन् १९४८ ई० मे उत्तरी राजस्थान, अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली आदि राज्यों को मिलाकर एक मत्स्य संघ की स्थापना की गई। उसके एक मास पश्चात् भारत सरकार ने डूगरपुर, बासवाडा, कोटा, बू दी, झालावाड, प्रतापगढ, किशनगढ और शाहपुरा आदि दस राज्यों को मिलाकर एक सयुक्त राजस्थान संघ की स्थापना की। उदयपुर, जोधपुर, जयपुर इसमे सम्मिलित नही हुवे। कुछ दिन पश्चात् महाराणा उदयपुर ने इस संघ मे मेवाड राज्य को विलीन करना स्वीकार कर लिया तब प० जवाहरलाल नेहरू ने ता० १८ अप्रेल १९४८ को संयुक्त राजस्थान संघ की स्थापना की। जिसमे महाराणा उदयपुर को आजीवन राजप्रमुख तथा कोटा और डूगरपुर महारावो को उपराज प्रमुख नियुक्त कर प्रजा प्रतिनिधियों का एक मन्त्री मण्डल बना दिया। ता० १० मई सन् १९४९ को इस संघ मे मत्स्य संघ का भी विलय कर दिया गया। और ता० २८ मई को नया राजस्थान संघ बना। उसमे जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर तथा बीकानेर राज्यों का भी समावेश कर दिया गया। इस बृहत राजस्थान संघ के महाराज प्रमुख उदयपुर के महाराणा भूपालसिंह बनाये गये। राजप्रमुख जयपुर नरेश मानसिंह बनाये गये और राजधानी जयपुर निश्चित की गई तथा पं० हीरालाल शास्त्री मुख्यमन्त्री नियुक्त किये गये। उन्होंने अपना मन्त्रीमण्डल बनाया। शीघ्र ही इस संघ मे अजमेर प्रान्त और सिरोही राज्य भी विलीन कर दिये गये।

देशी राज्यों का भारत मे विलय होने के पश्चात् जागीरों की समाप्ति अनिवार्य हो गई। तब सर्वप्रथम राज्य सरकार ने सन् १९४९ ई० में राजप्रमुख द्वारा एक अध्यादेश स्वीकार कराकर जागीरदारों के माली अधिकार हस्तगत कर लिये और लगान वसूली की कार्यवाही प्रारम्भ कर दी और प्रतिशत रकम जागीरदारों को देना निश्चित किया। वह रकम जागीरदारों को राज्य सरकार की ओर से दी जाती रही जब जागीरदारों को मुआवजा देना निश्चित हुवा। तब वह रकम देना बन्द कर दिया गया।

राजस्थान सरकार ने सन् १९५२ मे राजस्थान भूमि सुधार तथा जागीरों का पुनर्ग्रहण अधिनियम नामक विधान बनाया। इस विधान में जागीरदारों को आपत्तियां थीं। जब राज्य सरकार ने उन्हे दूर नहीं किया तब जागीरदारो ने कानून की शरण ली। जागीरों के पुनर्ग्रहण का कार्य स्थगित हो गया। जागीरदारों मे और राज्य सरकार मे मतभेद बढ़ता ही गया और अप्रेल सन् १९५३ ई० मे जागीरदारों के शिष्टमण्डल ने तथा राज्य सरकार ने पं० जवाहरलाल नेहरू को मध्यस्थता करने के लिये निवेदन किया। उन्होंने अपनी ओर से पं० गोविन्दवल्लभ पन्त को नियुक्त किया और वास्तविकता का पता लगाकर विवरण प्रस्तुत करने को कहा। पं० पंत ने राज्य सरकार के प्रतिनिधि तथा जागीरदारों के शिष्टमण्डल का कहना सुना और अपना निर्णय सितम्बर १९५३ मे प्रस्तुत किया। जिसे पं० जवाहरलाल नेहरू ने स्वीकार किया। उसके पालन में राजस्थान सरकार ने विधान में संशोधन कर उसे कार्यान्वित किया। इसी विधान के अन्तर्गत राजाधिराज अमरसिंह ने ता० १ जुलाई सन् १९५४ ई० को "बनेड़ा राज्य" राजस्थान सरकार को समर्पित कर दिया।

भारतीय संविधान के अन्तर्गत केन्द्र के लिये 'लोकसभा' के और राज्य के लिये 'विधान सभा' के चुनाव हुवे। उनमें सभी राजनीतिक संस्थाओं ने तथा निर्दलीय व्यक्तियों ने भाग लिया। राजस्थान मे चुनाव क्षेत्र बनाये गये। बनेड़ा और शाहपुरा मिलाकर एक क्षेत्र निश्चित किया गया।

बनेड़ा नगर के नागरिक तथा ग्रामीण जनता के प्रमुख व्यक्तियों ने आकर राजाधिराज से निवेदन किया कि "स्वतन्त्र भारत के चुनाव हो रहे हैं। हम नागरिको की तथा ग्रामीण जनता की इच्छा है कि आप स्वतन्त्र रूप से चुनाव लड़ कर विधानसभा मे जावें। हमे पूर्ण विश्वास है कि बनेड़ा परगने से तथा शाहपुरा परगने से आपको अधिकाधिक मत मिलेंगे।"

जन सेवा की भावना से प्रेरित होकर राजाधिराज सहमत हो गये। वह बनेड़ा और शाहपुरा क्षेत्र के कई स्थानों पर गये। वहां के प्रमुख व्यक्तियों से मिले और उनका मन्तव्य लिया। सभी ने उन्हे सहायता का आश्वासन दिया और चुनाव मे खड़े होने का आग्रह किया। वह चुनाव में खड़े हुवे और अपने प्रतिद्वंद्वी कांग्रेसी उम्मीदवार को तीन हजार मतों से पराजित कर विजयी हुवे। पांच वर्ष तक वह विधान सभा मे जाते रहे। वहां भी वह निष्पक्ष रहे। न तो उन्होंने विरोधीपक्ष की हां मे हां मिलाकर सरकार के प्रत्येक प्रस्ताव का विरोध करने का दुराग्रह किया। न सरकार के प्रत्येक प्रस्ताव का आंख मूंद कर समर्थन किया। उन्होंने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रख जनता तथा स्वदेश के वास्तविक हित व उन्नति के प्रस्तावों का समर्थन किया। इसके पश्चात् आगामी चुनावों मे उन्होंने भाग नहीं लिया।

राष्ट्रपिता का स्वर्गवास –राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी का सम्पूर्ण जीवन देश सेवा मे बीता। उनके जीवन का एक-एक क्षण तथा रक्त का एक एक कण स्वदेश की स्वतन्त्रता के प्रीत्यर्थ व्यतीत हुवा। अंग्रेजों की शक्तिशाली सार्वभौम सत्ता को उन्होंने चुनौती दी और सैनिक प्रबलता का विनाश सैनिक प्रबलता के बिना असम्भव है, इस सर्वमान्य सिद्धान्त को असत्य प्रमाणित कर दिया। उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये एक अहिंसात्मक नवीन युद्धशैली को जन्म दिया और उसकी सफलता ता० १५ अगस्त १९४७ को उन्होंने स्वयम् अपनी आखों से देख ली। इसके पश्चात् वह प्राप्त स्वराज्य को सुराज्य मे, रामराज्य मे परिवर्तित करना चाहते थे। किन्तु दुर्भाग्यवश देश मे एक ऐसा वर्ग निर्माण हुवा, जो राष्ट्रपिता के विचारों से तथा कार्यों से सहमत नही था। जब अंग्रेजों ने भारतवर्ष को 'हिन्दुस्तान' और 'पाकिस्तान' दो देश बनाकर विभाजित किया, तब प्रदेशों के बटवारे के साथ ही पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को देना भी निश्चित किया। कांग्रेस ने इसे स्वीकार किया। विरोधीवर्ग ने इसका विरोध किया, किन्तु महात्मा गान्धी सत्य के पक्षपाती थे। उन्होंने कहा, "जो बात स्वीकार कर ली गई उसका पालन करना आवश्यक है। पाकिस्तान को उसके हिस्से की रकम दे देनी चाहिये। यदि नही दी जावेगी तो मैं सत्याग्रह करूंगा।" उनके इस निश्चय से विरोधीवर्ग और भी चिढ गया और उत्तेजित हो उठा। उस वर्ग ने उनको पाकिस्तान का पक्षपाती समझा और उनकी हत्या करने का षडयन्त्र रचा।

राष्ट्रपिता, भगवान राम के दिव्य आदर्श के अनन्य उपासक थे। रामराज्य के प्रति उनकी अचल निष्ठा थी। प्रार्थना सभा मे नित्यप्रति 'रघुपति राघव राजाराम' का गान होता था। सैकडो नर नारी जब यह भजन सुमधुर स्वर मे गाते तो हृदय गद्गद् हो उठता। ता० ३० जनवरी सन् १९४८ ई० को वह सन्ध्या समय प्रार्थना सभा मे जा रहे थे। उनके हृदय मे 'राम का दिव्य रूप' तथा कानो मे 'रघुपति राघव' की पवित्र गूंज थी। तभी विपक्षीवर्ग के एक व्यक्ति नाथूराम गोडसे ने लगातार तीन गोलिया उनके वक्षस्थल को लक्ष कर के दाग दी। उनके प्राण वायु मे 'राम' रम रहा था। जैसे ही हृदय विदीर्ण हुवा, प्राण वायु के साथ उनके मुख से निकला 'हेराम' और वह लडखडा कर भारत माता की गोद मे सो गये। सत्य की पक्षपाती आत्मा सत्य पर बलिदान हो गई।

सम्पूर्ण भारत मे शोक की लहरें फैल गईं। समस्त जनता शोक सागर मे डूब गई। इस समाचार से विश्व मे सनसनी फैल गई।

बनेडा मे उनके स्वर्गवास का समाचार आते ही कचहरियों का कार्य बन्द हो गया। बाजारों मे दूकानें बन्द कर दी गयी तथा जनता ने शोक सभायें की। जिसमे हिन्दू मुसलमान दोनों ने भाग लिया।

ता० १२ फरवरी १९४८ को राष्ट्रपिता की अस्थिया गगा मे विसर्जित की गईं। उस दिन बनेडा मे भी राजाधिराज अमरसिंह ने एक चल समारोह का आयोजन किया। उन्होंने अपनी दैनंदिनी मे लिखा है, "आज माघ सुदी २ को राष्ट्रपिता की अस्थिया गगा मे विसर्जित की जावेंगी, अतएव मैंने राजमहल से एक चल समारोह का आयोजन किया। मेरी उनके प्रति

अनन्य श्रद्धा थी। वह वास्तव में महात्मा थे। उनका एक चित्र चान्दी के तामझाम में रखा गया और चल समारोह राजमहल से रवाना हुवा। नगर की समस्त जनता एकत्रित हो गई। राजकुमार प्रतापसिंह भी साथ थे। सब लोग पैदल चल रहे थे। समारोह गणगौर घाट पर पहुँचा। वहां समारोह आम सभा में परिवर्तित हो गया। जनता के प्रतिनिधियों ने उनके जीवन पर प्रकाश डाला। मैंने भी उनके जीवन के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये। सर्वानुमत से सभा ने निश्चय किया कि उस पवित्र महान् आत्मा को जलांजली दी जावे, तब उपस्थित विद्वान् पंडितों ने मन्त्रोच्चार किया और मैंने जलांजली दी। पश्चात् जनता ने भी उनको जलांजली समर्पित की। जिस गणगौर घाट पर यह ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न हुवा। मैंने उस का नाम बदल कर 'गान्धी घाट' रख दिया।

महात्मा गान्धी के प्रति राजाधिराज की भावपूर्ण श्रद्धा थी। सबसे प्रथम उन्होंने उन्हें ट्रेन में देखा था जब वह दिल्ली से चैत्र बदी ४ वि० सं० १९८८ को बनेडा आ रहे थे। उन्होंने अपनी दिनचर्या में इसका उल्लेख किया है। वह लिखते हैं—"इस ट्रेन में महात्मा गान्धी थे। वह थर्ड क्लास में बैठे थे। प्रत्येक स्टेशन पर सैंकड़ो की संख्या में जनता उपस्थित थी। ट्रेन में बहुत भीड़ हो गई। उनके प्रति जनता की श्रद्धा असीम थी।"

विविध घटनायें-१—सन् १९१४ (वि० सं० १९७१) में यूरोप में प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। ब्रिटेन फ्रान्स आदि मित्र देश एक ओर थे, जर्मन एक ओर था। भारतवर्ष उन दिनों ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत था। साम्राज्य पर संकट आ गया था। राजाधिराज ने इस संकटकाल में सरकार की शारीरिक और आर्थिक सहायता के हेतु अपनी सेवायें अर्पित कीं। उन्होंने युद्ध के मोर्चे पर जाने के लिये सरकार की अनुमति मांगी। ब्रिटिश सरकार की ओर से उन्हें धन्यवाद दिया जाकर लिखा गया कि "आवश्यकता पड़ने पर आप को युद्ध के मोर्चे पर जाने का अवसर अवश्य दिया जावेगा।" राजाधिराज युद्धकाल मे प्रतिमास सौ रुपये ब्रिटिश सरकार की ओर युद्ध फन्ड मे जब तक युद्ध समाप्त नही हो गया, भेजते रहे।

२—वि० सं० १९७८ में बाजार मे अनाज की कमी पड़ गई, तब राजाधिराज ने जनता के कष्ट को दूर करने के लिये राज भण्डार से एक हजार मन अनाज जनता को वितरित किया। बाजार मे अनाज के भाव बहुत ऊंचे हो गये थे। उन्होंने सस्ते भाव में राजभण्डार से अनाज देना प्रारम्भ कर दिया। प्रति व्यक्ति दो रुपये का अनाज दिया जाता था। उनके इस दयापूर्ण कार्य से जनता प्रसन्न और सन्तुष्ट हुई।

३—प्रकृति की नियमित तथा नियन्त्रित व्यवस्था का रूप हम प्रतिदिन देखते हैं। इस व्यवस्था में भी कभी-कभी अन्तर आ जाता है। ऐसी एक घटना वैशाख सुदी १४ वि० सं० १९७८ को घटित हुई। वह एक अद्भुत उल्कापात था। सन्ध्या के पांच बजे आकाश में एकदम भयकर आवाज हुई और जिस प्रकार बिजली चमकती है, उसी प्रकार का प्रकाश हुआ। वह भयानक आवाज आकाश में पांच मिनिट तक गूंजती रही और धुंवा छोड़ती

हुई एक रेखा दस मिनट तक दीखती रही। सभी लोग आश्चर्य और भय से आकाश की ओर देखते रहे।

दूसरे दिन वैशाख सुदी पूर्णिमा को बनेडा से चार मील दूर वेसकलाई नामक ग्राम से दो व्यक्तियो ने लोहे जैसे तीन टुकडे लाकर प्रस्तुत किये। उन व्यक्तियो ने कहा कि—"बनेडा जैसी ही गर्जना और चमक हमारे ग्राम मे तथा आस पास के सभी ग्रामों मे सुनाई और दिखाई दीथी। हमारे यहा यह बात विशेष हुई कि एक भील के खेत मे यह लोहे का गोलाकार टुकडा गिर कर भूमि के भीतर दो हाथ घस गया था। जिस समय भील ने इसे निकाला था। उस समय वह बहुत गरम था। जिसे पानी डाल कर ठण्डा किया गया। वह गोला तोला गया तो वजन मे डेढ सेर निकला।

उसके पश्चात् ज्ञात हुवा कि ऐसी आवाज और चमक और भी कई स्थानों पर सुनाई और दिखाई दी थी। गोले भी गिरे थे। राजाधिराज ने विश्वकोष निकाल कर देखा तो ज्ञात हुवा कि मुगलकाल मे ऐसे उल्कापात कई बार हुवे थे। उस समय जो लोहे के गोले गिरे थे। उन से तलवार आदि शस्त्र बनाये जाते थे। किन्तु गिरे हुवे लोह खण्ड मे तलवार बनाने का प्रयत्न किया गया तो ज्ञात हुवा कि इनका लोहा नरम है। तलवार नही बन सकती।

४—सन् १६२१ ई० की जनगणना मे बनेडा नगर की जन संख्या ४१०६ थी। घर १०२१ थे। बनेडा राज्य की जन सख्या २६८५४ थी। घर ५२९७ थे।

५—द्वितीय ज्येष्ठ वदी ७ वि० सं० १९८० को बनेडा मे ब्रह्मचर्य-आश्रम की स्थापना की गई।

६—राजाधिराज उन दिनों उदयपुर मे थे। पौष वदी १३ वि० स० १९८६ को उन्होंने वीरवर महाराणा प्रतापसिंह की छत्री को देखा। उसे देख उनके हृदय को बडी ठेस लगी। उक्त छत्री की उस समय की दशा का यथा-तथ्य वर्णन उन्होंने अपनी दैनंदिनी मे किया है। वह लिखते हैं—"महाराणा प्रतापसिंह की छत्री देखने गये। पत्थरो पर चूना बिल्कुल नही रहा है। खम्भो ने भी अपना स्थान छोड दिया है। बहुत दिनों से उसकी मरम्मत नही हुई है। कुछ बीघा भूमि किसी पुजारी को पूजन के लिये दी गई है किन्तु पूजन नही होता। कोई प्रबन्ध नही। पशु आकर गोबर कर देते है। शिखर के पत्थरो ने भी एक दूसरे का साथ छोड दिया है। थोडे ही दिनों मे छत्री ढह जावेगी और उसका निशान भी नही रहेगा।"

उन्होंने निश्चय किया कि प्रथम महाराणा का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाकर मरम्मत कराने के लिये निवेदन किया जावे। उन्होंने मरम्मत की तो ठीक ही है वरन् बनेडा राज्य की ओर से मरम्मत करा दी जावेगी।

पौष सुदी १० को महाराणा से इस सम्बन्ध मे वार्तालाप किया। उन्होंने मरम्मत कराने का आश्वासन दिया। तदनन्तर उदयपुर राज्य की ओर से मरम्मत कर दी गई।

७—आषाढ वदी २ वि० सं० १९८८ को भूकम्प हुवा। छ सैकिण्ड तक उसके धक्के आते रहे। राजाधिराज शृ गार बुर्ज मे बठे थे। किले के समस्त महल हिल रहे थे और द्वार खटखडा रहे थे।

८—वैशाख सुदी ११ वि० सं० १९९० को बनेड़ा मे मोहरम्म के अवसर पर हिन्दू मुस्लिम झगड़ा हो गया। शाम को पाँच बजे अपराधियों को बन्दी बना लिया गया। झगड़ा और भी बढ जाता किन्तु हिन्दू मुस्लिम जनता ने राजाधिराज को निवेदन किया कि "आप इसका जो भी निर्णय करेंगे उसे हम दोनों पक्ष मानेंगे।" राजाधिराज ने दोनों पक्षों को समझाया और झगड़ा शान्त हो गया।

९—उदयपुर की महारांणी की ओर से बनेड़ा राज्य के रनिवास की समस्त स्त्रियों को आमन्त्रित किया गया। वैशाख वदी ८ वि० सं० १९९२ को वह वहाँ गई। महारांणी ने द्वार तक आकर उनका स्वागत किया और यथा योग्य आदर-सत्कार किया।

यह अवसर बहुत वर्षो में आया था। पहले बनेड़ा राज्य के रनिवास की स्त्रियों का आवागमन उदयपुर के रनिवास में होता था किन्तु बीच में बन्द हो गया था। महाराणा भूपाल-सिंह ने इसे फिर प्रारम्भ कर दिया।

१०—वि० सं० १९९६ में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुवा। राजाधिराज ने रेजिडेन्ट को ता० ६ सितम्बर १९३९ को लिखा कि "मैंने सन् १९१४ के प्रथम महायुद्ध में अपनी सेवायें और साधन ब्रिटिश सरकार के निर्णय पर अर्पित किये थे। अब द्वितीय महायुद्ध में भी मेरी सेवायें और साधन ब्रिटिश सरकार की सेवा मे अर्पित हैं।"

ता० २८ सितम्बर १९३९ को रेजिडेन्ट ने लिखा कि—"मैं आपकी शुभकामना को धन्यवाद देता हूं और सराहना करता हूं।"

उन्होंने अपने अछनेरा आदि जमींदारी ग्रामों में जाकर जनता मे से नव सैनिक भरती कराये तथा सरकार की और भी सहायता की। उसके उपलक्ष में कमिश्नर आगरा ने उन्हें ता० २६ मार्च १९४१ को एक सनद प्रदान की।

११—वि० सं० १९९६ में मेवाड में अकाल पडा। ब्रिटिश सरकार ने जनता की सहायतार्थ तालाव आदि बांधने के कार्य प्रारंभ किये। राजाधिराज ने भी बनेड़ा राज्य मे अैसट तालाबों पर काम प्रारम्भ कराया। पुराने तालाब छोटे से बड़े कराये। बहुत से तालाबों की मरम्मत कराई। राजाधिराज ने यह कार्य किसी कर्मचारी पर नही छोड़ा। स्वयम् रोज तालाबों पर जाकर काम देखते। जनता के हृदय में विश्वास उत्पन्न करते। उनके काम की नप्ती हो जाती थी। उसके अनुसार अपने सामने मजदूरी चुकाते थे। उन दिनों में वह अपनी मोटर से भ्रमण करते थे। कुल तीन हजार मील का भ्रमण हुवा। चालीस हजार रुपये खर्च हुवे।

फाल्गुन सुदी ३ वि० सं० १९९६ (ता० १२ मार्च सन् १९४०) को रेजिडेन्ट मेवाड, अकाल पीड़ितों को किस प्रकार सहायता दी जा रही है, यह देखने बनेड़ा आये। राजाधिराज ने जिन तालाबों पर कार्य चल रहा था। वहां के काम का विवरण उन्हे बताया। रेजिडेन्ट ने सब कागजात देखे और बहुत प्रसन्न हुवे।

फाल्गुन सुदी ४ वि० सं० १९९६ (ता० १३ मार्च सन् १९४०) को चित्तौड़ जाकर उन्होंने राजाधिराज को धन्यवाद देकर लिखा कि "अकाल सहायता कार्य जितने अच्छे ढंग से आपके राज्य में चल रहा है। उतने अच्छे ढंग से और किसी राज्य मे नही चल रहा है।"

१२—महाराजकुमार भगवतसिंह उदयपुर राज्य का विवाह बीकानेर नरेश की पौत्री से फाल्गुन बदी ७ वि० स० १९९६ को होना निश्चित हुवा था। महाराणा के निमन्त्रण पर राजाधिराज उदयपुर गये और वहाँ से वरात मे बीकानेर गये।

वरात वापिस उदयपुर आने पर राजाधिराज ने महाराणा, महाराज कुमार तथा राज-परिवार के लोगो को विवाह के समारोह के उपलक्ष मे अपने निवास-स्थान मानभवन मे आमन्त्रित किया। उस दिन तीन हजार व्यक्तियो को भोजन के लिये निमन्त्रित किया गया था। यह एक अपूर्व समारोह था।

१३—द्वितीय महायुद्ध के समय मे ब्रिटिश सरकार ने महाराणा भूपालसिंह को सैनिक सहायता देने को लिखा। महाराणा ने अपनी सुप्रसिद्ध भूपाल इन्फेन्ट्री के बारह सौ सैनिकों को महायुद्ध मे सम्मिलित होने के लिये भेजा। विदेश जाने के पूर्व उनका मुकाम कामठी (नागपुर) मे था। उस समय मेवाडी सैनिकों ने कुछ आपत्तिया प्रस्तुत की। महाराणा को इसकी सूचना दी गई।

सैनिकों को समझाना आवश्यक था। जिस समय रेजिडेन्ट और महाराणा मे इस सम्बन्ध मे मन्त्रणा चल रही थी, उस समय राजाधिराज वहा उपस्थित थे। दोनों ने राजा धिराज से कहा कि "आप इस कार्य को सुचारु रूप से कर सकते है। आप जाकर सैनिकों को समझावे।"

राजाधिराज ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। ता० १४ मई सन् १९४१ को विधिवत् आदेश प्राप्त हुवा और वह कामठी गये। सैनिको की आपत्तिया सुनी। उनकी प्रमुख आपत्ति यह थी कि "हम लोग अपने देश मे शत्रु से लड सकते हैं। हमे विदेशो मे क्यों भेजा जा रहा है?"

राजाधिराज न समझाया कि "अब तक भारतीय सैनिको ने स्वदेश मे अपनी वीरता दिखाई है। अब आपको विदेश मे भारत का मुख उज्वल करना है। शत्रु को विदेश मे ही समाप्त कर देना है। वह यदि भारतवर्ष तक आ गया तो बडी कठिन परिस्थिति निर्मित हो जावेगी। आप लोग उन नरपुगवो की सन्तान हो, जिन्होंने मेवाड के मस्तक को गौरव से प्रतिक्षण ऊचा रखा है।

राजाधिराज का ओजस्वी भाषण सुनकर सैनिको का समाधान हो गया। उनमे स्फूर्ति जागी और वे विदेश जाने को सहमत हो गये।

सैनिकों की जो दूसरी आपत्तिया थी, उनको दूर करने का आश्वासन राजाधिराज ने दिया और समस्त सैनिको को जलपान कराया।

वहाँ से वे उदयपुर आये, महाराणा को सारा वृत्तान्त निवेदन किया। महाराणा ने सैनिकों की आपत्तियों को दूर किया। महाराणा उनके इस कार्य से अत्यन्त प्रसन्न हुवे।

१४—श्रावण बदी १२ वि० स० २००० (ता० २९ जुलाई १९४३) को सन्ध्या के पांच बजे से अत्यन्त तीव्र वेग से वर्षा प्रारम्भ हुई और दूसरे दिन प्रात ९ बजे बन्द हुई। लग

भग ग्यारह इंच वर्षा हुई। इस भयानक वर्षा से बनेड़ा नगर के सौ घर ढह गये। तालाब रामसरोवर की चादर की दीवार गिर गई, बहुत से तालाब फूट गये। अनेक पशु पानी की तीव्र धारा में बहकर मर गये। धन और जन की बहुत हानि हुई।

१५—जागीरों के विलीनीकरण के पूर्व तक सुरक्षा की दृष्टि से युद्ध की आवश्यक वस्तुएं ४२ तोपें, २०० मन बारुद, सौ मन शीशा, सौ मन नमक, जलाने के लिये पांच सौ मन लकड़ी दुर्ग में रखी हुई थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नये विधान के अनुसार इनको रखना अवैधानिक होने से राजाधिराज ने तोपों को तोड़ कर बेच दिया। बारुद और नमक भी बेच दिया।

१६—बनेड़ा का वर्तमान दुर्ग बनने के पूर्व तक राजपरिवार जिन पुरातन भवनों में रहता था, उसमें वि० सं० १७७२ में राजा सुरताणसिंह ने नये भवन बनवाये। दुर्ग बनने पर राजपरिवार तो वहां चला गया और इन भवनों का दूसरे राजकार्य के लिये उपयोग होने लगा। वि० सं० २००८ में अक्षय विद्यालय उच्च विद्यालय हो गया और प्राथमिक पाठशाला के लिये भवन की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस कारण राजाधिराज ने यह प्राचीन समस्त भवन राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग को दे दिये।

१७—सर्वोदयी नेता शंकरराव देव जब जिला भीलवाड़ा में भूदान की पदयात्रा पर आये थे तब पौष सुदी २ वि० सं० २००८ (ता० १८ दिसम्बर सन् १९५२ ई०) को बनेड़ा में भी आये थे, और अक्षय भवन मे निवास किया था। उस समय राजाधिराज ने १००१ बीघा भूमि दान में समर्पित की थी। बनेड़ा के छोटे छोटे जागीरदारों ने तथा जनता के प्रमुख लोगों ने भी भूमि दान मे दी थी।

१८—आश्वीन सुदी ३ वि० सं० २०१३ (ता० ७ अक्टूबर सन् १९५६ ई०) को राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जब भीलवाड़ा आये थे तब राजाधिराज को राजस्थान सरकार की ओर से जिलाधीश भीलवाड़ा द्वारा निमन्त्रित किया गया था। उस समय के राजस्थान प्रदेश के राजप्रमुख जयपुर नरेश मानसिंह भी उपस्थित थे। राजाधिराज ने राष्ट्रपति से भेंट की।

१९—ता० १४ फरवरी सन् १९५९ ई० (वि० सं० २०१५)को संत विनोबा भावे राजस्थान की पदयात्रा करते हुवे बनेड़ा आये थे। राजाधिराज तथा स्थानीय जनता ने उनका भव्य स्वागत किया। संत विनोबा का भाषण अक्षय चौक में हुआ। राजाधिराज ने १०१ बीघा भूमि दान मे दी।

२०—ता० ८ मार्च सन् १९५९ ई० को पं० जवाहरलाल नेहरू भारत सेवक समाज भीलवाड़ा के उत्सव के अवसर पर शाहपुरा से भीलवाड़ा जाते समय बनेड़ा आये। पंचायत समिति के प्रांगण में राजाधिराज तथा जनता ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। नेहरूजी का भाषण हुआ। सहस्त्रों की संख्या मे जनता उपस्थित थी।

विवाह—राजाधिराज अमरसिंह का विवाह सरगुजा नरेश महाराजा रघुनाथसिंह की पुत्री चन्द्रकान्ता कुमारी से माघ वदी ४ वि० सं० १९५५ को हुवा। इनका स्वर्गवास मार्गशीर्ष

प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरु का स्वागत करते हुये राजाधिराज

कैप्टिन राजकुमार प्रतापसिंह

सुदी ३ वि० सं० २०११ को हुवा ।

संतति—इन राणी की कोख से राजकुमार प्रतापसिंह, मानसिंह तथा गुमानसिंह ने जन्म लिया । जिनका संक्षिप्त जीवन चरित्र नीचे लिखा जाता है ।

राजकुमार प्रतापसिंह

इनका जन्म पौष सुदी ८ वि० सं० १९५७ को हुवा ।

इनकी शिक्षा मेयो कालेज अजमेर मे हुई । वि० स० १९७८ मे शिक्षा समाप्त हुई । उन दिनों सम्राट् के पुत्र प्रिंस आफ वेल्स भारत मे आये थे । जब वह अजमेर आये तब मेयो कालेज के सचालकों ने डिप्लोमा वितरण का कार्य उन्ही के हाथो से सम्पन्न कराया । जिन विद्यार्थियो को उस समय डिप्लोमा दिये गये, उनमे राजकुमार प्रतापसिंह भी थे ।

शिक्षा समाप्त करके आने पर उनको राजकार्य मे दक्ष करने के लिये राजाधिराज ने चीफ कमिश्नर अजमेर से परामर्श किया । उन्होंने सहर्ष राजकुमार प्रतापसिंह को न्याय विभाग मे अवैतनिक न्यायाधीश नियुक्त कर दिया । दो वर्ष सफलतापूर्वक कार्य कर वह बनेड़ा लौट आये तथा बनेडा राज्य का कार्य उत्साहपूर्वक सम्पादन करने लगे ।

शिकार प्रेमी होने के नाते तथा अपने मिलनसार स्वभाव के कारण अनेक राजाओ से, राजकुमारों मे तथा अंग्रेज अधिकारियों से उनकी मित्रता थी । जम्मू काश्मीर राज्य के महाराज कुमार हरीसिंह भी उनके मित्र थे । उनके विवाह का निमन्त्रण पत्र राजाधिराज के नाम आया था किन्तु वह कार्यवश नही जा सके । अतएव राजकुमार प्रतापसिंह को उक्त विवाह मे सम्मिलित होने के लिये भेजा गया । विवाह वैशाख सुदी १५ वि० स० १९८० को था ।

कोटा राज्य के महाराजकुमार भीमसिंह का विवाह वि० स० १९८६ के वैशाख मे बीकानेर नरेश महाराजा गंगासिंह की पुत्री से हुवा था । इस विवाह के निमन्त्रण कोटा और बीकानेर दोनो राज्यों की ओर से आये थे । राजाधिराज आवश्यक कार्य के कारण नही जा सके । राजकुमार प्रतापसिंह को भेजा गया । राजकुमार कोटा गये । उसके पश्चात् बरात के पूर्व ही बीकानेर पहुंच गये । कोटा राज्य की चली आ रही रीति के अनुसार घोड़ा और सिरोपाव भेंट किया गया । उसी प्रकार बीकानेर राज्य की भी नियमित उपहार भेंट किये गये । विवाह के पश्चात् विदा के समय राजकुमार प्रतापसिंह को कोटा राज्य की ओर से सिरोपाव और घोडा तथा बीकानेर राज्य की ओर से उत्तम सिरोपाव, कन्ठी और सिरपेच उपहार मे दिये गये ।

राजकुमार प्रतापसिंह के मामा सरगूजा नरेश रामानुजशरणसिंह वि० सं० १९८६ मे अफ्रीका जा रहे थे । उन्हाने राजकुमार प्रतापसिंह को साथ ले जाने के लिये राजाधिराज से स्वीकृति मागी । उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दे दी । उस समय उदयपुर के महाराणा फतहसिंह थे । राजकुमार उनका आशीर्वाद प्राप्त करने उनके पास गये और अफ्रीका जाने का अपना विचार प्रकट किया । महाराणा बहुत प्रसन्न हुवे और उन्होंने तीन हजार रुपये मूल्य की एक बन्दूक उन्हे उपहार मे प्रदान की ।

राजकुमार बम्बई गये। राजाधिराज भी उनको विदा करने कार्तिक वदी १३ को बम्बई पहुँच गये। कार्तिक सुदी ४ को सरगूजा नरेश बम्बई आये। दूसरे दिन वह और राजकुमार दोनों अफ्रीका के लिये रवाना हो गये। कच्छ राज्य के महाराज भी इसी जहाज से अफ्रीका जा रहे थे।

चार मास से अधिक अफ्रीका रहने के पश्चात् राजकुमार तथा सरगूजा नरेश भारत लौट रहे थे। राजाधिराज फाल्गुन वदी ६ वि० स० १९८६ को उनका स्वागत करने बम्बई गये। फाल्गुन सुदी १ वि० सं० १९८६ को खन्डाला नामक जहाज से दोनों बम्बई आ गये। राजाधिराज ने अत्यन्त हर्ष से दोनों का स्वागत किया। सरगूजा नरेश तो उसी दिन सरगूजा चले गये। राजाधिराज और राजकुमार फाल्गुन सुदी २ को बनेड़ा के लिये रवाना हुवे। युवराज चित्तौड़ से ही महाराणा से मिलने उदयपुर चले गये। महाराणा को वन्दन कर राजकुमार ने उनको अफ्रीका यात्रा का सब वृतान्त सुनाया उसके पश्चात् बनेड़ा आ गये।

महाराजा सरगूजा यूरोप जा रहे थे। वह अपने साथ राजकुमार को भी ले जाना चाहते थे। राजाधिराज ने उन्हे ले जाने की स्वीकृति दे दी, तब श्रावण बदी ८ वि० स० १९८८ को वह यूरोप जाने के लिये रवाना हुवे। राजाधिराज उन्हे पहुँचाने बम्बई तक गये। दोनों श्रावण वदी १० को इंग्लेन्ड के लिये रवाना हो गये। वहां का तथा मध्य यूरोप के देशों का भ्रमण किया। वहां की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्था और व्यवस्था का अध्ययन कर कार्तिक सुदी १२ वि० सं० १९८८ को बनेड़ा लौट आये।

जनता की ओर से किया गया सम्मानः—आश्वीन सुदी १० वि० सं० १९८९ को भीलवाड़ा मे एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। भीलवाड़े की जनता ने उसका उद्घाटन राजकुमार के हाथो कराया।

ज्येष्ठ सुदी ३ वि० सं० १९९५ को भीलवाड़े मे वीरवर महाराणा प्रतापसिंह की जयन्ती बहुत धूमधाम से मनाई गई थी। भीलवाड़े की जनता ने राजकुमार प्रतापसिंह को उसका सभापति बनाया। सभापति पद से उन्होंने अत्यन्त ओजस्वी, सारगर्भित तथा प्रभावशाली भाषण दिया।

औद्योगिक विकासः—राजकुमार को बनेड़ा राज्य की उन्नति की बड़ी चिन्ता थी। वह औद्योगिक दृष्टि से भी उसकी उन्नति चाहते थे। उन्होंने पौष सुदी ७ वि० सं० १९९४ को एक जिनिंग फेक्टरी का निर्माण किया। वि० सं० १९९० मे एक पावर हाउस बना कर नगर के समस्त मार्गों पर बिजली की बत्तियां लगवाईं, जनता ने अपने घरों मे बिजली लेकर राज्य के इस कार्य मे हाथ बटाया।

विवाहः—इनका प्रथम विवाह लूनावाड़ा नरेश की पौत्री रतनकुमारी से माघ सुदी ६ वि० सं० १९७३ को हुवा। उनका स्वर्गवास ज्येष्ठ वदी ७ वि० सं० १९८९ को हो गया।

दूसरा विवाह मार्गशीर्ष सुदी १५ वि० सं० १९८६ को धांगधा राज्य के स्वामी झाला

घनश्यामसिंह की वहिन पद्मकुमारी से हुवा। वह अधिक दिनों तक जीवित नही रह सकी और ज्येष्ठ सुदी १० वि० स० १९६० को उनका भी स्वर्गवास हो गया।

तीसरा विवाह भाद्रपद वदी ८ वि० सं० १९९३ को धागध्रा नरेश के भाई की पुत्री यशवन्तकुमारी से हुवा। यह विवाह जामनगर (गुजरात) मे हुवा क्योंकि यह जामसाहव रणजीतसिंह के वहन की पुत्री हैं। विवाह के समय इनके मामा के पुत्र जामसाहव दिग्विजय-सिंह जामनगर के सिंहासन पर आसीन थे।

संतान —प्रथम पत्नी रतनकुमारी (लूनावडा) की कोख से पाच पुत्रिया तथा एक पुत्र हुवा। जिनका विवरण निम्न प्रकार है —

सबसे बड़ी पुत्री का नाम मुक्तावलीकुमारी है। इनका जन्म श्रावण सुदी २ वि० सं० १९७७ (ता० १५ अगस्त १९२०) को हुवा और विवाह मार्गशीर्ष सुदी पूर्णिमा वि० स० १९९० को सादडी राज्य के राजराणा दुलेरसिंह के पुत्र राजकुमार कल्याणसिंह से हुवा। राजराणा दुलेरसिंह की मृत्यु माघ वदी १३ वि० स० १९९२ (ता० २२ जनवरी १९३६) को होने पर कल्याणसिंह राजगद्दी पर बैठे। दुर्भाग्यवश इनका देहान्त पौष वदी ८ वि० स० २००१ (ता० ८ दिसम्बर सन् १९४४) को हो गया। इनके चार पुत्र हिम्मतसिंह, लक्ष्मणसिंह, मनोहरसिंह, चन्द्रसिंह विद्यमान हैं। हिम्मतसिंह को दो पुत्र घनश्यामसिंह और कर्णसिंह हैं। लक्ष्मणसिंह के दो पुत्रिया दुर्गेश्वरीकुमारी तथा राजेश्वरीकुमारी हैं।

दूसरी पुत्री चन्द्रावलीकुमारी का जन्म फाल्गुन वदी १ वि० स० १९७८ (ता० १२ फरवरी १९२२) को हुवा और विवाह वैशाख वदी ५ वि० सं० १९९५ (ता० २० अप्रेल सन् १९३८) को बाकानेर राज्य के राजराणा झाला अमरसिंह के तृतीय पुत्र रसिककुमारसिंह के साथ हुवा। इनको तीन पुत्रिया हरसेन्द्रकुमारी, हितेन्द्रकुमारी, इन्दिराकुमारी तथा एक पुत्र जनक कुमारसिंह है।

इन दो पुत्रियो के पश्चात् पुत्र समरसिंह हुवे। इनका जीवन वृतान्त आगे लिखा गया है।

भवर समरसिंह के पश्चात् तीसरी पुत्री पदमावली कुमारी का जन्म ज्येष्ठ वदी ५ वि० स० १९८२ (ता० १३ मई सन् १९२५) को हुवा और विवाह वैशाख सुदी २ वि० सं १९९७ (ता० ६ मई सन् १९४०) को चान्दिया के लाल साहव वाघेल उपेन्द्ररमणसिंह के पुत्र इन्द्रदमणसिंह से हुवा। इनके दो पुत्र कमलेन्द्रसिंह और अजीतसिंह तथा दो पुत्रिया उमाकुमारी और उषाकुमारी हैं।

चौथी पुत्री पुष्पावली कुमारी का जन्म वैशाख वदी १० वि० स० १९८३ (ता० ७ मई सन् १९२६) को हुवा और विवाह वैशाख सुदी १२ वि० सं० १९९९ को भुज राज्य के महाराजा खंगारजी के पौत्र जोरावरसिंह के साथ हुवा। इनके तीन पुत्र एक और पुत्री हैं। जिनके नाम निम्नांकित हैं, पुत्र घनश्यामसिंह, रघुराजसिंह दीनेन्द्रसिंह पुत्री प्रीतिकुमारी।

पांचवी पुत्री कुसुमावली का जन्म पौष वदी १३ वि० सं० १९८४ (ता० २१ दिसम्बर सन्

१९२७) को होकर विवाह कार्तिक सुदी १२ वि० सं० २००२ को सारथल के ठाकुर दीपसिंह राठौड़ के पुत्र जयेन्द्रसिंह के साथ हुवा। इनके पिता का स्वर्गवास द्वितीय वैशाख सुदी १५ वि० सं० २०१० को होने पर यह गादी पर बैठे। इनके पांच पुत्र हैं; १. गजेन्द्रसिंह, २. रणजीतसिंह, ३ तेजराजसिंह, ४. विक्रमसिंह ५. सुरेन्द्रसिंह।

शिकार:—राजकुमार प्रतापसिंह को शिकार के प्रति बहुत रुचि थी। अफ्रीका में तथा स्वदेश मे उन्होंने अनेक खूंखार हिंस्र पशुओं की तथा शेरों की शिकार की थी। स्वदेश में उन्होने सरगूजा राज्य में बारा, राज्यराधौगढ़ में आठ, बनेड़ा मे एक व काछोला में एक इस प्रकार बाईस सिंह मारे। उनके जीवन की एक घटना बहुत रोमांचकारी तथा स्फूर्तिदायक है। पौष बदी ४ वि० सं० १९८८ को वह शिकार खेलने अरण्य मे गये थे। एक चीते को उन्होने मार गिराया। उसे देखने जब वह जाने लगे तब पांव फिसल कर गिर पड़े। हाथ में भरी हुई बन्दूक थी। वह चल गई और उसकी गोली उनकी जांघ मे लगी। जो मांस को चीर कर बाहर निकल गई। इस आकस्मिक आघात से वह जरा भी विचलित नही हुवे और धीरज तथा साहसपूर्वक घर आ गये। स्थानीय डाक्टर ने प्रथम उपचार किया। घाव बड़ा था। अजमेर से चीफ मेडिकल आफिसर डाक्टर मेकमिलन को बुलाया गया। उन्होंने जब जला हुवा मांस काटने के लिये उनको बेहोशी की दवा सूंघानी चाही तो, वह क्षत्रियोचित दर्प से बोले "महाशय, मैं क्षत्रिय हूँ। घावों को हसते हसते सहना हमारा धर्म है। क्लोरोफार्म सूंघ कर घाव का मांस कटवाना मेरे लिये लज्जा की बात है। आप मेरी सचेतावस्था में ही मांस काट लिजिये।" इतना कह कर अपनी जांघ उन्होने उनकी ओर बढा दी।

व्यक्तित्व:—ऐसे वीर, साहसी, सत्य प्रिय राजकुमार का स्वर्गवास पौष बदी ५ वि० सं० २०१३ को गया। अनादिकाल से चला आ रहा यह वही समय है। जहां मानव गति कुंठित हो जाती है। जहां मानव की समस्त शक्तियां पंगु होकर प्रभु सत्ता के सामने घुटने टेक देती है।

राजकुमार मानसिंह

इनका जन्म मार्गशीर्ष बदी ८ वि० सं० १९६५ (ता० १६ नवम्बर सन् १९०८) को हुवा। उस समय उनके पितामह राजा अक्षयसिंह जीवित थे।

शिक्षा:—सात वर्ष की आयु मे इनको मेयो कालेज अजमेर मे भरती किया गया और इनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। शैशव मे यह अस्वस्थ रहते थे। इसलिये शिक्षा ठीक नही हो पाई किन्तु जब वह प० रविशंकर देराश्री के सम्पर्क मे आये तब इनका शिक्षाक्रम सुचारु रूप से चलने लगा। पं० रविशंकर विद्वान् तथा चरित्रवान व्यक्ति थे। उनकी देखरेख मे घर पर ही शिक्षा प्रारम्भ की गई। स्वभावतः बुद्धिमान् होने के कारण तथा पं० रविशकर के सत्प्रयत्न से इन्होने देहली बोर्ड से द्वितीय श्रेणी मे मेट्रिक पास किया। इसके पश्चात् सेन्ट जार्ज कालेज आगरा मे भरती हुवे। वहां से इन्टरमिजियेट पास किया। अब शिक्षा की लगन उनके हृदय मे उत्पन्न हो चुकी थी। इंगलैण्ड जाकर बैरिस्टर होने की अभिलाषा उनके मन में उत्पन्न हुई। ता० १४ अप्रेल सन् १९३० को वह इंगलैण्ड यात्रा के लिये रवाना हुवे। वहां जाकर

'इन्साआफ कोर्टस' के लिन्कन्स इन कोर्ट मे ता० २ जून १९३० को बैरिस्टरी कोर्स मे दाखिल हुवे । एक वर्ष शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वह भारत मे आये और फिर शीघ्र ही—इगलैण्ड वापिस चले गये । शिक्षा काल मे उन्होंने यूरोप का भ्रमण किया और प्रसिद्ध स्थान देखे । ता० १३ मार्च सन् १९३४ को लन्दन मे सम्राट् पन्चमजार्ज की लेव्ही (दरबार) मे सम्मिलित हुवे और सम्राट् से भेट की । उन्हे विधिवत निमन्त्रण पत्र मिला था । ता० १३ जून १९३४ ई० को उन्होंने बैरिस्टरी की परीक्षा पास की । सर्टिफिकेट लिया और ता० ५ जोलाई को स्वदेश लौट आये । ता० १२ जोलाई सन् १९३४ ई० को बनेडा की जनता ने उनका भव्य स्वागत किया ।

राज्य कार्य की शिक्षा —शिक्षा के क्षेत्र मे अपनी लक्ष्य सिद्धि को प्राप्त करने के उपरान्त उनके मन मे राज्य कार्य सीखने की इच्छा बलवती हुई । अपनी इस इच्छा को राजाधिराज के सम्मुख प्रकट किया । उन्होंने इन्हे एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस का प्रशिक्षण लेने के लिये बेगलोर भेज दिया । वहा के तत्कालीन दीवान सर मिर्जा इस्माइल की देखरेख मे उनका प्रशिक्षण प्रारम्भ हुवा । वहा राज्य के सभी विभागों की राजकीय शिक्षा ग्रहण की और छ मास पश्चात् वह बनेडा लौट आये ।

मेवाड राज्य की सेवा —महाराणा भूपालसिंह ने इन होनहार राजकुमार की शिक्षा और प्रशिक्षा को देख मेवाड राज्य की सेवा मे आने को प्रोत्साहित किया । उन्होने राणावत जवानसिंह जो उस समय डिस्ट्रिक्ट एन्ड सेशन्स जज थे । उनकी देखरेख मे प्रशिक्षण लेने के लिये भेजा । राजकुमार मानसिंह ने वहा दो मास ट्रेनिंग लिया । उसके पश्चात् ता० २ अगस्त १९३६ को उनकी नियुक्ति डिस्ट्रिक्ट एन्ड सेन्शस जज के पद पर कर दी गई और राणावत जवानसिंह को दूसरे पद पर उन्नत किया गया । ता० १९ अक्टोबर सन् १९३८ को फिर राजकुमार मानसिंह का पद उन्नत किया गया । वह राजकीय चीफ कोर्ट मे जज नियुक्त हुवे । उनकी कार्यक्षमता, निष्पक्ष न्याय प्रियता और बुद्धिमता को देख महाराणा भूपालसिंह ने उनकी नियुक्ति स्पेशल ऑफिसर के पद पर की । इस पद का कार्य मेवाड राज्य के समस्त न्यायालयो का तथा दूसरे विभागों का निरीक्षण और परीक्षण करने का था । यह कार्य उन्होंने बहुत परिश्रम और लगनपूर्वक किया । केवल निरीक्षण और परीक्षण ही उन्होंने नही किया । जिन न्यायालयो मे और विभागो मे विधानों के अनुसार कार्य सम्पन्न नही होता था । उनके पदाधिकारियो का तथा कर्मचारियो का मार्ग दर्शन भी किया । उन्हे विधानों के मूल भूत उद्देश्य और कार्य प्रणाली से अवगत कराया । सभी के साथ उनका व्यवहार प्रेम भरा और सहयोग का रहा । उनके व्यवहार और प्रशिक्षण प्रणाली की सर्वत्र बडी प्रशसा हुई और उन्हे इस कार्य मे अभूतपूर्व सफलता मिली ।

सर० टी० वी० राघवाचार्य जब मेवाड राज्य के मुख्यमन्त्री हुवे । तब महद्राज सभा को समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर विधिवत हाईकोर्ट की स्थापना की गई । ता० २२ जून सन् १९४२ ई० को राजकुमार मानसिंह की हाईकोर्ट जज के पद पर नियुक्ति की गई । इस पद पर वह ता० १५ नवम्बर सन् १९४६ तक रहे ।

उन दिनों भारत में स्वराज्य प्राप्ति के प्रयत्न अपनी चरमसीमा पर पहुँच गये थे। हिन्दु मुस्लिम एकता के प्रयत्न चल रहे थे और विफल हो रहे थे। इसी समय नोआखाली काण्ड हुवा। इस काण्ड पर महामना पं० मदमोहन मालवीय का एक करुण भरा और प्रभावोत्पादक वक्तव्य कल्याण मासिक मे प्रकाशित हुवा था। उसका परिणाम कुं० मानसिंह के कोमल और भावुक हृदय पर इतना अधिक हुआ कि उन्होंने ता० १६ नवम्बर १९४६ को हाईकोर्ट के जज के पद का स्वेच्छा से त्याग कर दिया। उन्होंने देश सेवा करने का प्रण किया। विशेष रूप से क्षत्रिय जाति की उन्नति को अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य बनाया। इसमें भी उन्हें अनुपम सफलता मिली और वह क्षत्रिय परिषद के अध्यक्ष चुने गये। क्षत्रिय जाति के सगठन के कार्य मे वह बहुत सफल हुवे। किन्तु ता० १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र होकर जब मेवाड़ राज्य भारत संघ मे विलीन हो गया तब उन्होंने राजनीतिक के क्षेत्र से संन्यास ले लिया और मध्य प्रदेश के इन्दौर नगर में कानूनी सलाहकार के रूप में कार्य करने लगे।

साहित्य सृजन—राजकुमार मानसिंह साहित्यिक और साहित्य स्रष्टा दोनों हैं। उन्होंने अनेक विषयों पर लेख लिखे हैं और वह सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये हैं। उन्होंने "लन्दन में भारतीय विद्यार्थी" "बाल राजनीति" तथा "देशी राज्यों की अन्तिम ज्योति" नामक तीन पुस्तकें लिखी हैं। तीनों पुस्तकें अपने विषय का प्रतिनिधित्व करती हैं। "लन्दन मे भारतीय विद्यार्थी" तो अपने विषय की एक ही पुस्तक है। इसकी भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है। इसके पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक है। पृष्ठभूमि दृढ़ और कथानक रोचक है। अपने धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक विचारों को इस पुस्तक मे उन्होंने निर्भयता पूर्वक यथास्थान और यथा तथ्य प्रस्तुत किया है। इन पुस्तकों की प्रशंसा हिन्दी के महान् साहित्यिक स्वर्गीय डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने मुक्तकंठ से की थी।

साहित्यिक रचनाओं को तथा साहित्य प्रेम को देख कर उनको "भारतीय विद्वत् परिषद्" ने "विद्या भूषण" की उपाधि से विभूषित किया। उन दिनों उनकी साहित्यिक रचनाओं ने तत्कालीन सभी सुविख्यात साहित्य सेवियों को मुग्ध किया था। अजमेर के साहित्यिक बन्धु तो इतने अधिक प्रभावित हुये कि ता० १० फरवरी १९४१ ई० को उनका अभिनन्दन करने के लिये एक साहित्यिकों की सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में उन्हें आमन्त्रित कर अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया। इस सभा के सम्बन्ध मे ता० १६ फरवरी सन् १९४१ ई० के दैनिक हिन्दुस्तान के अंक में लिखा है, "प्रान्त के प्रमुख और एकाकी साहित्यिक राजकुमार श्री मानसिंहजी बार० एट० ला० (बनेड़ा) के सम्मान मे ता० १० को पण्डित हरिभाऊजी उपाध्याय के सभापतित्व मे स्थानीय साहित्यिकों की विशाल सभा हुई। बनेड़ा के साहित्यिक राजकुमार श्री मानसिंह के सम्मान में श्री दीपक द्वारा मान पत्र पढ़ा गया। जिसमें उनके साहित्य प्रेम के नाते २५०) रुपये के 'मान पुरस्कार' का और साहित्य सेवा के नाते "बाल राजनीति" तथा "लन्दन में भारतीय विद्यार्थी" आदि कुशल रचनाओं का उल्लेख था।

अपनी साहित्यिक भक्ति, प्रीति और अनुरक्ति के वश उन्होंने राजस्थानी लेखकों की उत्तम कृति पर २५०) रुपये का "मान पुरस्कार" देने की घोषणा की।"

प्रवास:—विदेश भ्रमण के उन्हें दो अवसर आये। प्रथम बार जब उनके ज्येष्ठ भ्राता

राजकुमार प्रतापसिंह वि० स० १९८६ मे अपने मामा सरगूजा नरेश के साथ अफ्रीका जा रहे थे तब उनकी इच्छा भी अफ्रीका जाने की हुई। उनके पिता राजाधिराज ने उन्हे जाने की स्वीकृति दी, किन्तु अदन पहुचने पर उनकी और सरगूजा नरेश की तबीयत अस्वस्थ हो गई अतएव सभी स्वदेश वापस आगये। और कुछ दिन पश्चात् राजकुमार प्रतापसिंह तथा सरगूजा नरेश तो अफ्रीका गये और वह बैरिस्टरी शिक्षा ग्रहण करने इङ्गलैण्ड गये।

विवाह —उनका विवाह राव बहादुर मानसिंह झाला नरवर[1] नरेश की सबसे छोटी कन्या हेमन्तकुमारी से फाल्गुन सुदी ७ वि० सं० १९९१ (ता० ११ मार्च सन् १९३५ ई०) को उज्जैन मे सम्पन्न हुवा। यह विवाह आश्चर्यजनक सादगी से सम्पन्न हुवा। इस सम्बन्ध मे "राजपूताना क्रानिकल" ने "आदर्श विवाह" शीर्षक के नीचे लिखा है, "राजपूताने मे बनेडा का राजवश बहुत ही प्रगतिशील समझा जाता है वहा के आदर्श नरपति के पुत्र महाराजकुमार मानसिंह का शुभ विवाह ता० ११ मार्च को उज्जैन मे सानन्द सम्पन्न हो गया। ता० १० की रात्री को बहुत साधारण रीति से बरात बनेडा से रवाना हुई और ग्यारह बजे उज्जैन पहुँची। जहां साधारण धनिकों की बरातो मे स्पेशल ट्रेनो का प्रबन्ध होता है। पानी की तरह संख्यातीत धन राशि आमोद प्रमोद एवम् नाच रग मे बहाई जाती है, वहा उच्च कुल के राज कुमार की बरात मे आश्चर्यजनक सादगी हृदय मे अभूतपूर्व भावनाओं की सृष्टि कर रही थी।"

सतति —उनके दो पुत्र और तीन पुत्रिया हैं। जिनका विवरण निम्न प्रकार है —

१—बडे भवर विक्रमसिंह का जन्म फाल्गुन सुदी ११ वि० सं० १९९२ (ता० ४ मार्च १९३६) को हुआ। होलकर कॉलेज इन्दौर से बी० ए० पास किया। उनका विवाह सुहावल के बघेल राजकुमार पुरुषोतमसिंह की पुत्री सीलाकुमारी के साथ माघ सुदी ५ वि० सं० २०१३ (ता० ५ फरवरी सन् १९५७) को हुवा। उनके दो पुत्रिया प्रतिभाकुमारी तथा हंसाकुमारी और एक पुत्र महेन्द्रसिंह हैं। भवर विक्रमसिंह भारतीय सैनिक सेवाओं के लिये चुन लिये गये हैं और मद्रास मे ट्रेनिंग लेकर इस समय राजूगत बटालियन मे लेफ्टनेन्ट के पद पर कार्य कर रहे हैं।

२—छोटे भवर उदयभानुसिंह का जन्म कार्तिक बदी ७ वि० सं० १९९४ (ता० १६ अक्टूम्बर सन् १९३७ ई०) को हुवा। उनकी शिक्षा डेली कॉलेज इन्दौर मे हुई और वही से मेट्रिक पास किया। उनका विवाह सुहावल के बघेल राजकुमार पुरुषोतमसिंह की छोटी कन्या गीताकुमारी के साथ ज्येष्ठ बदी ३ वि० सं० २०१५ (ता० ६ मई सन् १९५८) को हुवा। उनकी एक पुत्री जयाकुमारी है।

३—पुत्री शीलाकुमारी का जन्म चैत्र बदी १३ वि० सं० १९९८ (ता० १५ मार्च सन् १९३९) को हुवा। उनका विवाह नारोली के परमार ठाकुर अमरसिंह के पुत्र चन्द्रसिंह के साथ माघ सुदी ११ वि० स० २०११ (ता० ३ फरवरी सन् १९५५) को हुवा। उनके दो पुत्र वीरविक्रमसिंह तथा धर्म विजयसिंह हैं। तीन पुत्रिया रविकाकुमारी, रूपविजयकुमारी तथा पुण्यविजयकुमारी हैं।

१—यह राज्य ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत ग्वारन्टेड स्टेट्स् में से एक राज्य था।

४—दूसरी पुत्री सुशीलाकुमारी का जन्म माघ वदी ६ वि० सं० १६९७ (ता २१ जनवरी सन् १६४१) को हुवा। उनका विवाह भावनगर के झाला घनश्यामसिंह के पुत्र भारतसिंह के साथ माघ सुदी १० वि० सं० २०११ (ता० २ फरवरी सन् १९५५) को हुवा। उनके दो पुत्रियां रागिनीकुमारी और रंजनाकुमारी है।

५—तीसरी पुत्री लक्ष्मीकुमारी का जन्म कातिक वदी १० वि० सं० २००१ (ता० ११ अक्टूम्बर सन् १६४४) को हुवा।

योग मार्ग और भक्ति मार्गः—स्वयम्भू साहित्यिक निष्ठावान होता है तथा उसकी आस्था भगवद्भक्ति मे होती है। साहित्यिक प्रवृत्तियों के साथ भक्ति की वृत्ति भी उनमे जागृत होती देखी गई है। ऐसा ही कुछ पर्यवसान राजकुमार मानसिंह के जीवन मे हम देखते हैं। आजकल उनके जीवन का अधिकांश समय भक्ति तथा योगमार्ग मे व्यतीत होता है। साहित्य का सृजन भी इन्ही दो मार्गो को लेकर हो रहा है। इन दिनो वह आध्यात्मिक विचारधारा का मासिकपत्र "परमानन्द" का सम्पादन कर रहे हैं। उनके जीवन मे आत्मसंतोषभरी स्थिरता आ गई है। जिन गुरु के कृपाप्रसाद तथा कल्याणरूप आशीर्वाद से यह स्थिति उन्हे प्राप्त हुई है, उनका नाम है श्री सीतारामदास ओंकारनाथ, वह बंगाली है। सुप्रसिद्ध योगी और महात्मा है। उन्होने योगमार्ग पर कई पुस्तके भी लिखी है। उनसे दीक्षा प्राप्त कर उसके दिव्य प्रकाश मे योग के खडतरमार्ग पर राजकुमार मानसिंह अग्रसर हो रहे हैं।

राजकुमार गुमानसिंह

इनका जन्म ता० १८ जुलाई सन् १६१७ ई० (वि० सं० १६७४) को हुवा।

शिक्षाः—सन् १६२५ तक घर पर ही शिक्षा पाई। सन् १९२६ मे उन्हें भूपाल नोबल्स स्कूल मे भरती किया गया। वहां एक वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् सन् १९२८ मे सेन्ट एन्स्लिम हाईस्कूल अजमेर मे और उसके पश्चात् सेन्ट पिटर्स कॉलेज आगरा मे भरती किया गया। वहां शिक्षा पाई। उनकी हार्दिक इच्छा सैनिक शिक्षा प्राप्त करने की होने से राजाधिराज ने जनवरी सन् १९२९ मे प्रिन्स आफ वेल्स रॉयल इन्डियन मिलिट्री कॉलेज देहरादून में भरती कराया। इस कॉलेज को आजकल राष्ट्रीय इन्डियन मिलिट्री कॉलेज कहते हैं। यहां उन्होंने दिसम्बर सन् १९३४ तक शिक्षा पाई और उत्तीर्ण हुवे।

जनवरी सन् १६३७ मे सैनिक शिक्षण प्राप्त करने के हेतु इन्डियन मिलिट्री एकेडमी देहरादून मे प्रवेश प्राप्त किया और स्नातकीय शिक्षा सम्पूर्ण कर जून सन् १९३९ में सफलता प्राप्त की।

राजकीय सैनिक सेवाः—ता० १५ जुलाई सन् १९३६ को सेकिण्ड लेफ्टिनेन्ट का पद प्राप्त हुवा और रायल फ्यूजिलियर्स झांसी मे भेज दिये गये

सितम्बर सन् १६३६ मे द्वितीय महायुद्ध की घोषणा होने पर "क्विन्स रायल रेजिमेण्ट इलाहाबाद" मे उनका स्थानान्तर किया गया और वहां अगस्त सन् १९४० तक सेवा करते रहे।

एक वर्ष ब्रिटिश रेजिमेन्ट के साथ रह कर वह अगस्त सन् १९४० मे "पाचवी बटालियन राजपूत रेजिमेन्ट "केन्नोर मलाबार (केरल) मे भेज दिये गये। सितम्बर सन् १९४० मे मद्रास बन्दरगाह से मेडे के जहाज पर अपनी बटालियन के साथ 'हागकाग' के लिये प्रस्थान किया। वहा पहुँचने के पूर्व जहाज ने सिगापुर मे दो दिन विश्राम किया। सितम्बर सन १९४० से सितम्बर सन् १९४१ तक वह 'हागकाग' मे रहे और उसके पश्चात् भारत आये। मार्ग मे सिगापुर एवम् पनाग देखा। पेनाग मे उन्होंने साँपों का एक अद्भुत मन्दिर देखा। उसमे भिन्न भिन्न जाती के अद्भुत साप पाले हुवे थे। पेनाग से वह जहाज द्वारा कलकत्ता आ गये। उनके हागकाग से भारत आने के पश्चात् ता० ८ दिसम्बर सन् १९४१ को जापानियो ने हाग काग पर आक्रमण किया। कुछ दिन युद्ध होने के पश्चात् ता० २५ दिसम्बर सन् १९४१ ई० को ब्रिटेन की सेना ने हथियार डाल दिये और वहा के सब सैनिक बन्दी बना लिये गये। इस प्रकार परमेश्वर ने उन्हे बन्दी होने से बचा लिया। भारत मे आने पर वह अपने पिताश्री के दर्शन करने तथा सम्बन्धियों से मिलने आश्विन सुदी ६ वि० स० १९९८ को बनेडा आये और कुछ दिन रह कर वापिस गये।

भारत मे आने पर उन्हे १५ वी बटालियन राजपूत रेजिमेन्ट मे क्वार्टर मास्टर के पद पर फतहगढ (उत्तर प्रदेश) भेजा गया और अस्थाई केप्टिन के पद पर नियुक्ति की गई। वहा स बटालियन के साथ 'क्वेटा' गये। जहा स्थानान्तर होने के पूर्व दो मास तक रहे।

जून सन् १९४२ मे १८ वी बटालियन राजपूत रेजिमेन्ट बेगलौर मे उनको भेजा गया। वहा दक्षिण भारत के बेगलौर, कोयम्बटूर, त्रिचनापल्ली और तन्जौर मे रह कर सरकारी सेवाये की। बेगलौर मे कई हजार इटालियन सैनिक कैदियो की देखभाल का काम उन्हे सौंपा गया था यह कैदी उत्तरी अफ्रीका की लडाई मे पकडे गये थे।

सन् १९४३ मे बटालियन के साथ वह बगाल गये। वहा कुशतिया, कुलना, बैरीसाल और मिदनापुर मे सेवाये की। उस समय बगाल मे घोर अकाल पडा हुवा था। उन्होंने सरकार द्वारा अकाल पीडितो की सहायता के लिये प्रारम्भ की गई योजना मे परिश्रमपूर्वक कार्य किया। सन् १९४३ मे उन्हे पदोन्नति के साथ अस्थाई मेजर बना दिया गया।

सितम्बर १९४४ मे न० १ बटालियन राजपूत रेजिमेन्ट छिन्दवाडा मध्य प्रदेश मे उनको भेजा गया। वहा वह सितम्बर सन् १९४५ तक रहे। यहा उन्हें बहुत महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया। वहा कई सहस्त्र नव सैनिकों को जगल के युद्ध की शिक्षा देनी थी। यह कार्य उन्होंने बहुत उत्साह और लगन के साथ किया। उसके पश्चात् बर्मा के युद्ध के भिन्न भिन्न केन्द्रों पर उन्हे भेजा गया। जब आप छिन्दवाडा पहुँचे उस समय नं० १ बटालियन की कमान्ड, लेफ्टिनेन्ट कर्नल ठा० नाथूसिह कर रहे थे। बर्मा के युद्ध मे भाग लेने की क्षत्रियोचित इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने वहा जाने की सरकार से प्रार्थना की। एक सैनिक अधिकारी को स्वेच्छा से युद्ध मे जाने का आग्रह करते देख सभी उच्चाधिकारियों को बडी प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी हुवा। उन्होंने उन्हे युद्ध मे जाने की आज्ञा दी किन्तु वहा पहुँचने के पूर्व ही युद्ध समाप्त हो गया।

अक्टूबर सन् १९४५ में छठी बटालियन राजपूत रेजिमेन्ट के साथ उन्हें (थातोन) बर्मा भेजा गया। वहां उन्होंने कुछ दिन तक सुरक्षा कार्य किया। उसके पश्चात् जापान की '३३ वी आर्मी' के युद्ध बन्दियों पर और उनके हथियारों पर चौकसी रखने का कार्य उन्हें सौंपा गया। बटालियन १७ वी इन्डियन इन्फेन्ट्री डिवीजन के आधीनस्थ थी। जिसने युद्ध में बहुत अच्छा काम किया था। वहां से वह सन् १९४६ मे वायुयान द्वारा भारत वापस आये और स्टाफ कालेज क्वेटा में दिसम्बर सन् १९४६ तक रह कर अपना १४ वा स्टाफ कोर्स सम्पूर्ण किया।

कोर्स पूर्ण होने के पश्चात् उनकी प्रथम मेरठ मे और उसके बाद इन्डियन मिलिट्री एकेडमी देहरादून मे स्टाफ नियुक्तियां हुईं।

उसके पश्चात् नं० १ बटालियन राजपूत रेजिमेन्ट के कमान्डिंग आफिसर के पद पर उनकी नियुक्ति की गई तथा १ दिसम्बर सन् १९४७ को लेफ्टिनेन्ट कर्नल बना दिये गये। गुरुदासपुर (पंजाब) में उनको भेजा गया। वहां उन्होंने बटालियन की देखभाल की। ता० २ दिसम्बर सन् १९४७ को बटालियन के साथ उन्हें सुरक्षाकार्य के लिये जम्मू-काश्मीर भेजा गया। ता० ७ दिसम्बर सन् १९४७ से ता० २३ मार्च सन् १९४८ तक "नौशेरा" (जम्मू) मे कार्य किया। इस अवधि में बटालियन ने पाकिस्तानी आक्रमणकारियों के विरुद्ध वीरता भरे विविध कार्य किये। ता० ६ फरवरी सन् १९४८ को नौशेरा के युद्ध मे उनकी बटालियन ने अपनी वीरता और युद्ध-कौशल की चरम सीमा कर दी। तीन सहस्र सैनिकों से अधिक आक्रमणकारियों ने इस बटालियन पर धूंवाधार आक्रमण किया। उनकी बटालियन के सैनिक बहुत शौर्य से लड़े और शत्रु का धावा विफल कर दिया। इस युद्ध मे शत्रु के एक सहस्र से भी अधिक सैनिक मारे गये और घायल हुवे। उनके बहुत से हथियार भी अधिकार मे ले लिये गये। इनकी बटालियन के भी काफी व्यक्ति हताहत और घायल हुवे। आपके कमान्ड के अन्तर्गत बटालियन ने नौशेरा की लड़ाई मे प्रमुख भाग लिया और विजय सम्पादन की। इस विजय के उपलक्ष मे बटालियन के सैनिकों को सरकार की ओर से एक "परमवीर चक्र", दो 'महावीर चक्र' तथा छः 'वीर चक्र' प्रदान किये गये।

इस युद्ध मे राजकुमार गुमानसिंह ने अद्भुत वीरता और निर्भयता का परिचय दिया। युद्ध के दिन ता० ६ फरवरी को वह ताईंवार पहाड़ी पर थे। यह पहाड़ी नौशेरा ग्राम के पास थी। नौशेरा मोर्चे की यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहाड़ी थी। उस दिन युद्ध सारे दिन होता रहा। उसमे भी प्रातःकाल के समय दो घण्टे तक जो युद्ध हुवा वह बहुत घमासान और भयानक था। ऐसे प्राणघातक समय, जबकि चारों ओर से आग उगलती हुई गोलियों की बौछार हो रही हो। राजकुमार गुमानसिंह ने अपनी सेना की भिन्न भिन्न दिशाओं में बनी सैनिक चौकियों का निरीक्षण किया। वहां के सैनिकों को उत्साहित किया। वह शत्रुओं की दृष्टि मे खटकने लगे। उस दिन और युद्ध के अन्य दिनों मे भी शत्रु के सैनिकों ने उनको अपनी गोली का निशाना बनाने के प्रयत्न किये। कई बार शत्रुओं की गोलियां इनके पांवों के बीच में से, दाईं और बाईं ओर से आकर निकल गईं। एक बार सिर पर पहनी हुई गरम टोपी मे भी गोली आकर लगी। वह वीरतापूर्वक अपने देश की सेवा मे व्यस्त थे। वह किन्चितमात्र भी

भयभीत नही हुवे। दिसम्बर सन् १६४७ से मार्च सन् १९४८ तक के प्रत्येक युद्ध मे प्रतिदिन युद्ध के समय अपने सैनिको के साथ मोर्चे पर आगे रहते थे। उनके इस साहस भरे कार्य से सैनिक उत्साहित होते थे। तीव्र वेग से शत्रु पर टट पडते थे। प्राणो की बाजी लगाकर वीरतापूर्वक लडते थे। स्वदेश की सेवा मे प्राणपण मे लडने वाले इस वीर राजकुमार की रक्षा, सर्वशक्तिमान भगवान प्रतिक्षण करते रहे, और उन्हे किञ्चित मात्र भी चोट नही लगने पाई।

इस युद्ध मे अथक परिश्रम करने से वह रुग्ण हो गये तब उन्हे निरुपाय होकर सुरक्षा क्षेत्र छोडना पडा और औषधोपचार के लिये दिल्ली के सैनिक अस्पताल मे दो मास तक रहना पड़ा।

रुग्ण होने पर जिस दिन वह नौशेरा से जीप द्वारा रवाना हुवे उस दिन परमेश्वर की कृपा ने एक चमत्कार और दिखाया। शत्रुओ ने मार्ग पर सुरग बिछा कर मोटरों की कतार (कॉनवास) को रोक दिया था और युद्ध होने लगा था राजकुमार गुमानसिह की जीप आगे थी किन्तु इसी समय एक सैनिक अधिकारी से वह बातें करने लगे तभी उनके पीछे की जीप आगे निकल गई और सुरग मे फस कर उड गई। जीप मे बैठे कई व्यक्ति घायल हो गये। ईश्वर की असीम कृपा से वह फिर बच गये।

जून सन् १६४८ मे दक्षिण भारतीय राज्यो के लिये 'सैन्य परामर्शदाता" अधिकारी के पद पर भेजे गये। उनका प्रमुख स्थान बेगलौर था। वहा वह इस पद पर नवम्बर सन १९४९ तक कार्य करते रहे।

वह मैसूर, कोचीन, ट्रावनकोर तथा कोल्हापुर राज्यों के लिये मिलिट्री एडवाईजर तथा लिजियन आफिसर थे। उन राज्यो मे समय समय पर जाकर वहा की सैनिक इकाईयो का निरीक्षण करते थे। कोल्हापुर मे उन्हे "पन्हाला दुर्ग" देखने का अवसर प्राप्त हुवा। जहा बनेडा राज्य सस्थापक राजा भीमसिह ने मरहठा के विरुद्ध युद्ध किया था और वीरगति को प्राप्त हुवे थे। ता० १९ दिसम्बर सन् १९४९ ई० को दूसरी बटालियन राजपूत रेजिमेन्ट के कमान्डिग आफिसर बना कर उनको "खासा" (अमृतसर) भेजा गया। वह सितम्बर सन् १९५१ ई० तक इस बटालियन के अधिकारी रहे।

सितम्बर सन् १९५१ मे अगस्त सन् १६५३ तक फतहगढ (यू० पी०) मे राजपूत रेजिमेन्टल सेन्टर के कमान्डेन्ट के रूप मे उन्होंने कार्य किया। उपरोक्त सेवाकाल मे सेनापति जनरल के० एम० करिअप्पा भ्रमण पर आये और उन्होंने वहा के कार्य का निरीक्षण किया। इनके कार्य की उन्होंने सराहना की और प्रसन्न हुवे।

अगस्त सन् १९५३ मे उनको प्रथम श्रेणी मे जनरल स्टाफ आफिसर के पद पर नियुक्त कर के राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद (नेशनल डिफेन्स एकेडमी) देहरादून भेजा गया। वहा नवम्बर सन् १९५४ तक कार्य किया।

नवम्बर सन् १९५४ ई० से मई सन् १६५५ तक पूना के निकट खरकवासला मे नेशनल डिफेन्स एकेडमी के 'कर्नल इन्चार्ज एडमिनिस्ट्रेशन' के पद पर उन्होंने कार्य किया। इस समय एकेडमी को देहरादून से खरकवासला लाने एवम् स्थापित करने का उत्तरदायित्व

पूर्ण कार्य उनको सौंपा गया था। यह कार्य उन्होंने अत्यन्त परिश्रम और लगनपूर्वक सम्पन्न किया। ता० ११ नवम्बर सन् १६५४ ई० को उनको कर्नल बना दिया गया।

ता० २ जून सन् १९५५ से ता० ११ सितम्बर सन् १९५६ तक लद्दाख मे कमाण्डर "एविल गैरिसन" के पद पर उनकी नियुक्ति की गई। जिसका मुख्य आवास (हैडक्वार्टर) कारगिल था। इस अवधि मे उन्होंने लेह तथा लद्दाख के अन्य स्थानों का निरीक्षण किया। इस समय एक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि "वह ता० २० जनवरी सन् १९५६ ई० को कारगिल से दौरे पर रवाना हुवे। अनेक सैनिक चौकियों का निरीक्षण करते हुवे ता० २० फरवरी सन् १९५६ को वापिस कारगिल आये। वहां का जनवरी और फरवरी का मौसम बहुत खराब होता है। जब कि पारा ४० डिग्री फ़ारनहाइट होता है। ठण्ड कड़ाके की होती है और बर्फ चारों ओर रात दिन गिरती रहती है। ठण्ड की तीव्रता से तथा बर्फ के मार्गों पर बिछ जाने से चलना फिरना बहुत कठिन हो जाता है। मगर उन्होंने तनिक भी चिन्ता नहीं की। अपने कर्तव्य पालन मे वह नित्य प्रति भ्रमण करते ही रहे और सैनिक चौकियों का प्रबंध करते रहे। उनके इस त्याग भरे कार्य को देख सैनिकों के हृदय में साहस का संचार हो जाता था और वह अपने कर्तव्य;पालन मे मनोयोग से निमग्न हो जाते थे।

उस समय यदि उन्हें बीच मे थोड़ा बहुत अवकाश मिलता तो वह शिकार खेलने चले जाते। उन्होंने वहां तीन "आई बेक्स्" (पहाडी बकरें) तथा दो शापू (पहाड़ी भेड़) का शिकार किया। इस शिकार के समय उनको १६ हजार फीट तक ऊंचे पर्वतों पर चढ़ना पड़ा जबकि पर्वत बर्फ से ढके थे। ऊपर से बर्फ गिर रही थी। ऐसे कठिन और दुर्गम पर्वतों पर चढकर शिकार खेलना एक असाधारण बात थी। जो उनकी वीरता और अदम्य साहस का परिचय देती है।

ता० १९ सितम्बर १९५६ से ता० ६ अप्रेल १६६० तक उन्होंने मेरठ में नं० ११ सर्विसेज सिलेक्शन बोर्ड के प्रेसिडेन्ट के पद पर कार्य किया। इस कार्यकाल में उन्होंने सैंकड़ों प्रशिक्षणार्थियों को चुन कर नेशनल डिफेन्स एकेडमी खरकवासला मे तथा इन्डियन मिलिट्री एकेडमी देहरादून में प्रशिक्षण के लिये भेजा।

उनकी नियुक्ति ता० १८ अप्रेल सन् १९६० से ता० २ दिसम्बर सन् १६६१ तक शिमला में कर्नल एडमिनिस्ट्रेशन हेड क्वार्टर्स वेस्टर्न कमाण्ड के पद पर की गई।

ता० १२ दिसम्बर सन् १६६१ ई० से ता० २६ दिसम्बर सन् १६६२ ई० तक उनकी नियुक्ति प्रथम डिप्टी डायरेक्टर आफ पर्सनल सर्विसेज और उसके पश्चात् डिप्टी डायरेक्टर आफ आर्गनाईजेशन आर्मी हेड क्वार्टर्स के पद पर नई दिल्ली मे की गई।

अभी वह ता० ६ जनवरी सन् १६६२ से २२ सर्विसेज सिलेक्शन बोर्ड मेरठ के प्रेसिडेन्ट के पद को सुशोभित कर रहे है।

विवाह:—उनका विवाह लेफ्टिनेन्ट जनरल ठा० नाथूसिंह गुमानपुरा (डूंगरपुर) की द्वितीय पुत्री आनन्द कुमारी के साथ ता० १६ अप्रेल सन् १९४६ ई० को हुवा।

सन्तति:—उनके एक पुत्र और दो पुत्रियां हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकार है:—

भंवर समरसिंह

१—भंवर हितेन्द्रसिंह का जन्म ता० २० जुलाई सन् १९४७ को उदयपुर में हुवा। इस समय वह मेयो कालेज अजमेर में विद्याध्ययन कर रहे हैं।

२—पुत्री मनहरकुमारी का जन्म ता० ३१ जनवरी सन् १९४९ को रांची (बिहार) में हुवा। वह भी सोफिया कन्या शाला अजमेर में पढ़ रही है।

३—दूसरी पुत्री मंजुलकुमारी का जन्म ता० ११ अगस्त सन् १९५४ ई० को बनेड़ा में हुवा। वह भी सोफिया कन्या शाला अजमेर में शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

धार्मिक आस्था—मातृभूमि की सेवा का प्रण कर सदैव मृत्यु से जूझने वाले सच्चे सैनिक के हृदय में ईश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा और धर्म के प्रति आस्था होती है। राजकुमार गुमानसिंह में एक वीर सैनिक के नाते यह दोनों गुण विद्यमान हैं। युद्ध के मैदान में परम पिता परमेश्वर ने उनकी कई बार रक्षा की है। वह ईश्वर और धर्म दोनों के पुजारी हैं। उन्होंने ता० १० जनवरी सन् १९६० ई० को महान् तपस्वी और योगी स्वामी सितारामदास ओंकारनाथजी से बिरला मन्दिर नई दिल्ली में सपत्नीक दीक्षा ग्रहण कर अपनी धार्मिक प्रवृति का परिचय दिया।

व्यक्तित्व—उनके समस्त जीवन का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वह वीर, धीर, साहसी और अपने कर्तव्य का कठोरतापूर्वक पालन करने वाले पराक्रमी सैनिक हैं तथा वह भारतमाता की रक्षा तन और मन से लगनपूर्वक कर रहे हैं।

भंवर समरसिंह

इनका जन्म श्रावण सुदी १५ वि० सं० १९८० (ता० २६ अगस्त सन् १९२३ ई०) को हुवा।

उनकी शिक्षा प्रथम घर पर प्रारम्भ की गई। अंग्रेजी सीखने के लिये अगस्त सन् १९३३ में उन्हें पण्डित रविशंकर देराश्री के साथ इङ्गलैण्ड भेजा गया। उस समय राजाधिराज यूरोप की यात्रा पर थे। ता० १७ अगस्त को वह रोम में थे उस दिन पण्डित रविशंकर उन्हें लेकर वहां आये। राजाधिराज के द्वितीय पुत्र राजकुमार मानसिंह जो उन दिनों बैरिस्टरी का शिक्षण लेने लन्दन गये थे। वह वहां से उन्हें लेने रोम आ गये थे।

ता० १८ अगस्त को यह सब इङ्गलैण्ड के लिये रवाना हो गये। भंवर समरसिंह को लन्दन के 'मिल हिल जूनियर पब्लिक स्कूल' में भरती किया गया। वहां ग्यारह महीने शिक्षा प्राप्त कर स्वदेश आये। उसके पश्चात् उन्होंने मेयो कालेज में शिक्षा ग्रहण की और बी० ए० पास किया।

शिक्षा समाप्त होने पर उन्होंने राजपरिवार की आय में वृद्धि करने के दृष्टिकोण से खेती की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। अत्यन्त परिश्रमपूर्वक वह इस कार्य में जुट गये। सैकड़ों बीघा भूमि को ट्रेक्टरों से फड़वाया। खेती को उन्नत करने के लिये आधुनिक यन्त्रों तथा पद्धति को अपनाया और सैकड़ों मन अनाज उत्पन्न किया।

उनका विवाह वैशाख सुदी २ वि० सं० १९९७ को सादड़ी राज्य के राजराणा दुलेरसिंह की पुत्री निहालकुमारी के साथ हुवा। उनके दो पुत्र तथा दो पुत्रियां हुईं जिनका विवरण निम्नांकित है:—

१—ज्येष्ठ पुत्र हेमेन्द्रसिंह का जन्म माघ वदी १ वि० सं० २००२ (ता० १९ जनवरी सन् १९४६) को हुवा।

२—पुत्री ललितकुमारी का जन्म मार्गशीर्ष सुदी १२ वि० सं० २००४ (ता० २४ दिसम्बर सन् १९४७) को हुवा।

३—द्वितीय पुत्री निर्मलकुमारी का जन्म माघ सुदी ९ वि० सं० २००६ (ता० २७ जनवरी सन् १९५०) को हुवा।

४—द्वितीय पुत्र पराक्रमसिंह का जन्म चैत्र सुदी १५ वि० स० २००९ (ता० १० अप्रेल सन् ११५२) को हुवा।

भंवर समरसिंह खेती मे दत्तचित थे कि कार्तिक बदी १ वि० सं० २०१७ (ता० २६ अक्टूबर सन् १९६०) को केवल ३७ वर्ष की आयु मे अचानक उनका स्वर्गवास हो गया।

वह होनहार, परिश्रमी, दयालु तथा उच्च प्रकृति के व्यक्ति थे। कहते हैं, खेती के प्रति उनकी लगन अपूर्व थी। किसानों मे वह ऐसे घुलमिल जाते जैसे वह भी एक किसान ही हो। दयालुता उनका अभिजात गुण था। आज भी उनकी दयालुता की अनेक कहानियां बनेड़ा नगर के निवासी प्रेमपूर्वक सुनाते हैं। उनके स्वर्गवास से बनेड़ा नगर के निवासी तथा ग्रामवासी दुख से कातर हो उठे। राजपरिवार के व्यक्तियों के हृदय दुःख से विदीर्ण हो गये। प्रभु सत्ता के सामने मानव की शक्ति कुंठित हो गई।

युवराज हेमेन्द्रसिंह

इनका जन्म माघ वदी १ वि० सं० २००२ (ता० १९ जनवरी सन् १९४६ ई०) को हुवा। उनकी शिक्षा अजमेर के मेयो कॉलेज मे हुई। उनका विवाह भूतपूर्व ढाक (काठियावाड़) राज्य के अधिपति हरिश्चन्द्रसिंह की पुत्री कौशल्याकुमारी से माघ सुदी ६ सोमवार वि० स० २०२० (दि० २० जनवरी सन् १९६४ ई०) को हुवा। इसी शुभ अवसर पर उनको युवराज पद से सुशोभित किया गया।

इस शुभ विवाह के अवसर पर महाराणा भगवतसिंह उदयपुर को आमंत्रित किया गया था किन्तु कार्य व्यस्तता के कारण विवाह के समारोह मे सम्मिलित नही हो सके। उसके पश्चात् माघ सुदी पूर्णिमा को वह बनेड़ा पधारे। उनका यथायोग्य सत्कार किया गया। वह बहुत प्रसन्न रहे। दूसरे दिन भोजनोपरान्त यहां से उन्होंने प्रस्थान किया।

सम्बन्धियों के विवाह:—अपने पुत्र, पौत्र तथा पौत्रियों के विवाह स्वयम् राजाधिराज ने किये है। उनका उल्लेख सम्बन्धित राजकुमारों के जीवन चरित्र में किया गया है।

राजाधिराज ने अपनी बहन कृष्णाकुमारी का विवाह ज्येष्ठ वदी ६ वि० सं० १९७१ को

युवराज हेमन्द्रसिंह

राघौगढ नरेश राजा बहादुरसिंह से किया । दुर्भाग्यवश उनका स्वर्गवास सन १९४५ मे हो गया ।

उनके पुत्र का नाम राजा बलभद्रसिंह है । उनका विवाह मार्च सन् १६३६ मे महाराजा गिद्धौर (बिहार) की पुत्री से हुवा । उनके दो पुत्र और तीन पुत्रिया हैं ।

भूमि और धन का दान —प्रत्येक युग की अपनी मान्यताये होती हैं । एक समय था जब भूमि पुरोहितों को देवस्थान के पुजारियों को, तथा तीर्थस्थान के पन्डो आदि को दान मे दी जाती थी । उसी प्रकार जागीरे भी उन व्यक्तियों को दी जाती थी, या तो वह राजपरिवार के हो अथवा युद्ध मे पराक्रम दिखाने वाले वीर सैनिक हों । युग के साथ मान्यताये बदली । भूमि और धन उन व्यक्तियो को अथवा उन सस्थाओं को दिये जाने लगे जो राज्य के जन सेवक हो । जिन्होंने अपने गुणो को राज्य की अथवा जनता की सेवा मे समर्पित किया हो । राजाधिराज ने युग मान्यताओं को लक्ष्य कर निम्नाकित राजकर्मचारियों को तथा सस्थाओं को भूमि और धन दान मे दिये —

बनेडा नगर मे एलोपेथिक डिस्पेन्सरी खोली गई और उसके सचालन का भार डॉ० जोरावरमल को सौंपा गया । वह डॉक्टर अपने कार्य मे निपुण और जन सेवी थे । परिश्रम और लगन पूर्वक उन्होंने बनेडा राज्य की जनता की चिकित्सा और उपचार किये । उनकी सेवा के उपलक्ष मे बनेडा राज्य की ओर से उन्हे ज्येष्ठ सुदी १ वि० स० १६७३ को भूमि तथा एक कुवा दान मे दिया गया । माघ सुदी १२ वि० सं० १६७३ को उन्हे फिर एक कुवा प्रदान किया गया । प्रथम आषाढ सुदी ३ वि० स० २००७ को राजाधिराज ने उन्हे एक भवन रहने के लिये उपहार मे दिया ।

प० शिवनारायण देराश्री बनेडा राज्य के माल हाकिम थे । उनके कार्य का उल्लेख यथा स्थान लिखा जा चुका है । राज्य के बन्दोबस्त का कार्य उन्होंने तत्परता तथा बुद्धिमतापूर्वक सम्पन्न किया अतएव राजाधिराज ने उन्हे भाद्रपद सुदी ११ वि० स० १६७८ को ८० बीघा भूमि तथा तीन कुवे उपहार स्वरूप दिये ।

आषाढ बदी १० वि० सं० १९८० को भडारी गोवर्धन को १२ बीघा भूमि तथा आश्वीन सुदी १ वि० स० १९८० को भन्डारी लक्ष्मीलाल को ३४ बीघा भूमि तथा एक कुवा उनकी उत्तम सेवाओ के उपलक्ष मे दिया ।

शिक्षा सस्थाओं को भी उन्होंने दान दिया । भूपाल नोबल स्कूल उदयपुर को कार्तिक बदी ५ वि० स० १९८० को छ हजार रुपये दान दिये तथा अजमेर के दयानन्द कॉलेज को अपने पितामह तथा पिता की स्मृति मे वि० स० २००२ मे दो कमरे बना दिये । जिममे लगभग नो हजार रुपये खर्च हुवे ।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को वि० सं० २००२ मे २५०) रुपये दान दिये ।

रामचन्द्र ओझा को श्रावण सुदी ३ वि० स० २००३ को एक कुवा उपहार मे दिया ।

श्रावण सुदी ६ वि० सं० २००४ को स्थानीय मुसलमानों ने मांग की कि उर्दू और फारसी की पाठशाला के लिये भूमि प्रदान की जावे। राजाधिराज ने उक्त पाठशाला को बनेड़ा नगर मे भूमि दी।

जागीर:—तृतीय राजकुमार गुमानसिंह को आषाढ सुदी ११ वि० सं० १६८८ को ग्राम कालसांस जागीर मे दिया तथा बनेडा नगर के बाहर बना गोविन्दभवन, बाग तथा उसकी सीमा के भीतर की भूमि सहित वि० सं० २०१२ मे उनको प्रदान किया।

द्वितीय राजकुमार मानसिंह को कार्तिक वदी १३ वि० सं० १६९१ को ग्राम बरण जागीर मे दिया।

भवन आदि निर्माण कार्य:—राजाधिराज ने निम्नांकित भवन आदि बनवाये:—

दुर्ग मे "अमरनिवास" नामक एक सुन्दर और भव्य महल बनवाया। इसका पश्चिमी भाग वि० सं० १९६० मे तथा पूर्वी भाग वि० सं० १९८० मे बना।

वि० सं० १९७५ मे बड़े बाग मे बने गोविन्द भवन का ऊपर का खण्ड बनवाया।

वि० सं० १९८५ में दुर्ग मे प्रताप निवास बनवाया।

उत्तर प्रदेश के अपने जमीदारी ग्राम अछनेरा मे एक भवन बनवाया। अजमेर में एक कोठी खरीदी तथा उसी के पास एक नई कोठी का निर्माण किया।

राजकुमार मानसिंह ने जब वह उदयपुर मे हाई कोर्ट के जज थे, तब 'मान भवन' बनवाया था। जज के पद से त्यागपत्र देने पर उन्हें उदयपुर मे रहने की आवश्यकता नही रही, अतएव राजाधिराज ने उनसे मान भवन लेकर ७० हजार रुपये उन्हें प्रदान कर दिये।

दुर्ग मे कई महल जीर्ण हो गये थे। कई उसकी सुन्दरता मे बाधक थे। उन्होंने जीर्ण महलो का उद्धार किया। सुन्दरता में बाधक महलो में सुयोग्य परिवर्तन किया और दुर्ग को कलात्मक सुन्दरता प्रदान की। दुर्ग का नयनाभिराम जो रूप आज हम देखते है उसको निर्माण करने का श्रेय राजाधिराज को है।

जहां उन्होंने राजपरिवार की सुख, सुविधा के लिये भवन बनवाये। वहां प्रजा को नही भुलाया। जनता के सार्वजनिक लाभ के लिये उन्होंने निम्नांकित निर्माण कार्य किये:—

राज्य के छोटे तालाबों को उन्होंने बड़े और गहरे करके सिंचन के योग्य बनाया। जो तालाब मरम्मत के अभाव मे टूट फूट गये थे, उनकी मरम्मत करा कर उपयोगी बनवाया।

वि० सं० १९७० मे उन्होंने अपने पिताश्री के नाम पर 'अक्षय विद्यालय' बनवाया। प्रथम इस विद्यालय मे आठवी कक्षा तक पढाई होती थी किन्तु जब वह उच्च विद्यालय बनाया गया तब स्थानाभाव को देख वि० सं० २००८ मे उन्होने तीन कमरे और बनवाये तथा वि० सं० १९७४ मे "अक्षय चिकित्सालय" बनवाया। उसी प्रकार अपनी माताश्री सूर्यकुमारी के स्मरणार्थ एक रुग्णालय बनवाया। जिसका उद्घाटन रेजिडेन्ट मेवाड़ के द्वारा फाल्गुन सुदी १५ वि० सं० १९९४ (ता० १६ मार्च सन् १९३८) को कराया गया।
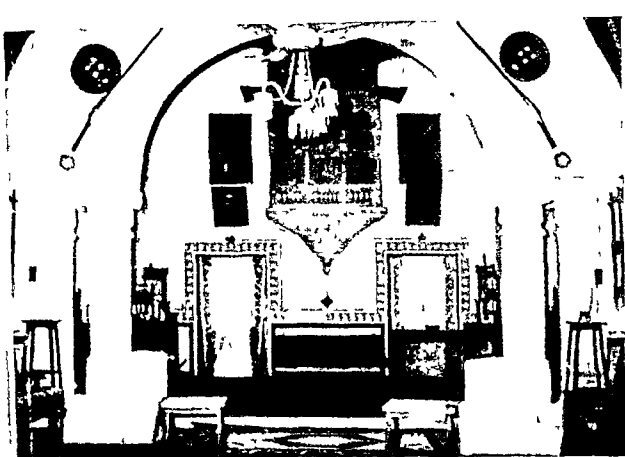
अमरनिवास का भीतरी पूर्वीय दृश्य
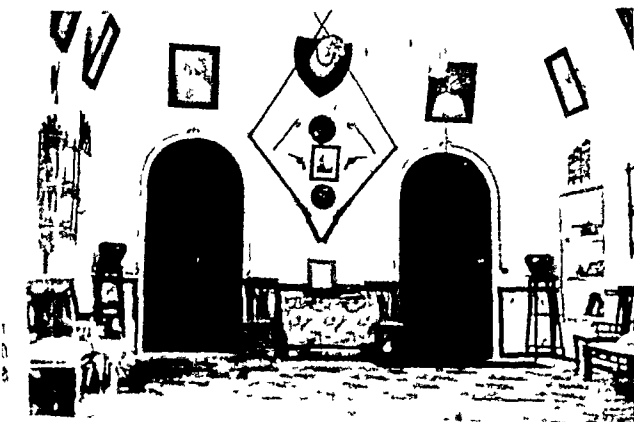
अमरनिवास का भीतरी पश्चिमीय दृश्य

चन्द्रकान्ता कन्या पाठशाला
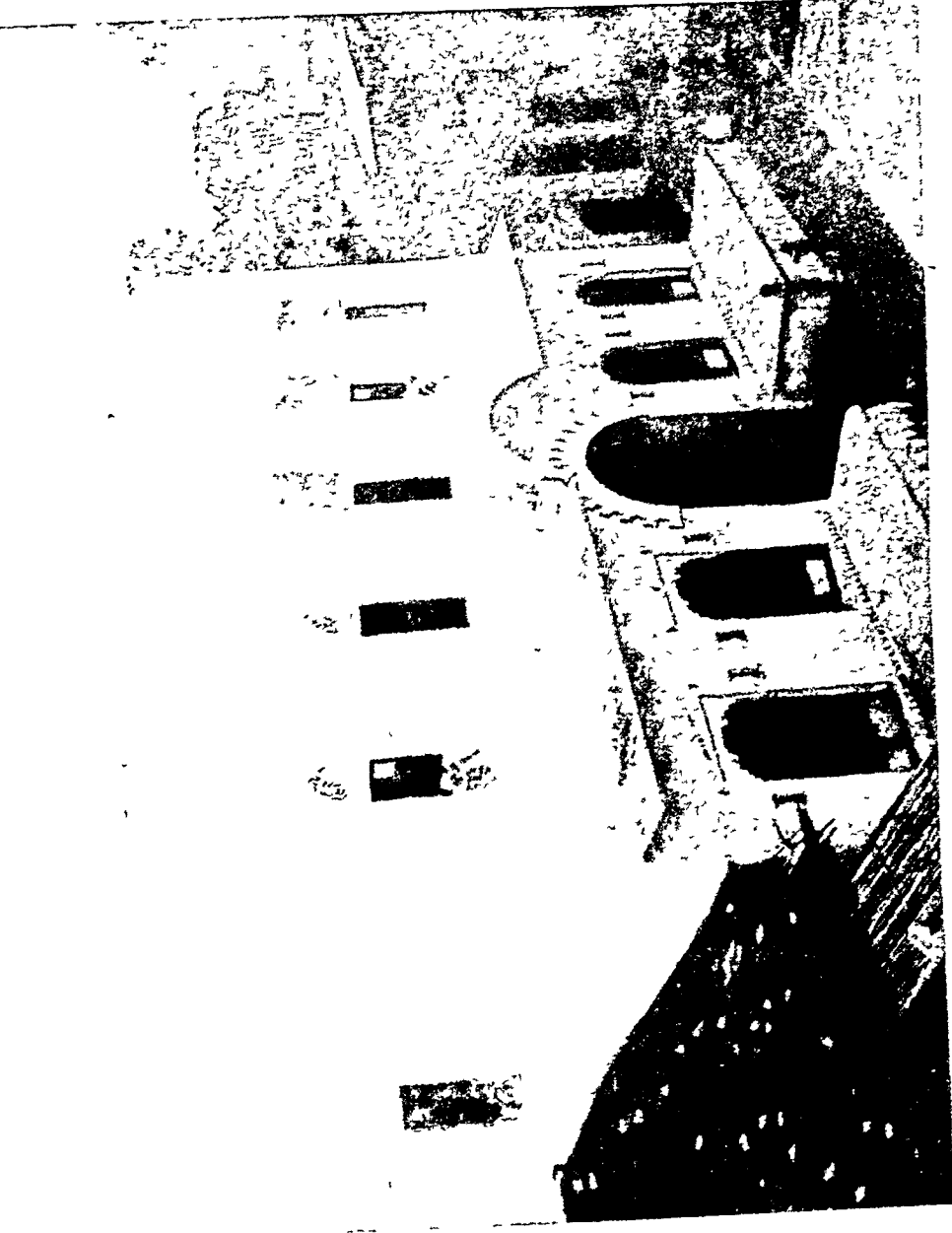
वि० सं० १९८० में राजाधिराज की धर्म पत्नी राणी चन्द्रकान्ताकुमारी ने "चन्द्रकान्ता कन्या पाठशाला" के लिये एक भवन बनवाया।

भीम स्मारक धर्मार्थ न्यास —जागीरों की समाप्ति के पूर्व तक राजपरिवार की ओर से बनाये गये मन्दिरों की, देवस्थानों की तथा छत्रियों की पूजा अर्चा का प्रबन्ध जागीर की आय से होता था। जागीरों की समाप्ति के पश्चात् उनकी पूजा अर्चा, सेवा भोग तथा जीर्णोद्धार का प्रश्न उपस्थित हुआ।

बनेड़ा राज्य के देवस्थानों का, मन्दिरों का तथा छत्रियों का प्रबन्ध भविष्य में सुचारु रूप से होता रहे एतदर्थ राजाधिराज ने बनेड़ा राज्य संस्थापक राजा भीमसिंह के नाम पर "भीम स्मारक धर्मार्थ न्यास" की स्थापना की। न्यास की सदस्य संख्या पांच रखी गई। जिन में तीन व्यक्ति राजपरिवार के और जिनकी मन्दिरों के प्रति रुची हो ऐसे बनेड़ा नगर के दो प्रतिष्ठित व्यक्ति रखे गये। राजपरिवार के तीन सदस्यों में जो वंश का पाटवी होगा, वह कार्यवाहक मन्त्री (वर्किङ्ग ट्रस्टी) रखा गया।

इस न्यास के आधीन निम्नांकित मन्दिरों का प्रबन्ध रखा गया।

बनेड़ा दुर्ग में स्थित श्री गोपालजी का मन्दिर, रनिवास में बना श्री ठाकुरजी का मन्दिर, श्री पीताम्बर रायजी का मन्दिर तथा श्री बाणमाताजी का मन्दिर। अक्षय निवास की सीमा में बना श्री हजारेश्वर महादेव का मन्दिर।

बनेड़ा नगर में बनी राजा भीमसिंह की, राजा सूर्यमल की छत्रियां, राजा सुल्तानसिंह का चबूतरा तथा उनके साथ का मन्दिर।

बनेड़ा नगर के बाहर महासतियों के स्थान पर बनी राजा सरदारसिंह, राजा रायसिंह राजा हमीरसिंह, राजा भीमसिंह (द्वितीय), राजा उदयसिंह, राजा संग्रामसिंह, राजा गोविन्दसिंह तथा राजा अक्षयसिंह की छत्रियां।

वृन्दावन जिला मथुरा उत्तर प्रदेश में बना श्री गोविन्दबिहारीजी का मन्दिर।

न्यास को व्यय के लिये निम्नांकित चल और अचल सम्पत्ति दी गई। चल सम्पत्ति किमती ९२९० रु० १४ आना।

अचल सम्पत्ति—श्रीजी का खेड़ा जिसको कल्याणपुरा भी कहते हैं जिसकी आय ५७८-४ (पांच सौ चोहत्तर रुपये चार आना) है। छत्रियों की जमीन। ग्राम नूनास और ग्राम मू डेता की बीड़ की भूमि जिसका क्षेत्रफल लगभग नौ सौ बीघा है और वार्षिक आय ५०००)रु० है वह और दुर्ग के भवन भी इसी न्यास के अन्तर्गत हैं। इनका किराया न्यास म दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त सांयरनगरम की माफी दस बिस्वा वृन्दावन के मन्दिर की थी। उसका क्षति पूर्ति धन उत्तर प्रदेश सरकार से मिला। वह भी इसी न्यास में है।

मन्दिरों का, छत्रियों का तथा भवनों का जीर्णोद्धार करना न्यास का कार्य है। उसका यह भी कर्तव्य है कि दुर्ग में प्रदर्शनी का प्रबन्ध करे।

यह न्यास आषाढ़ सुदी ७ वि० सं० २०१३ (ता० १४ जुलाई सन १९५६) को लिखा गया और आषाढ सुदी ८ वि० सं० २०१३ (ता० १५ जुलाई सन् १९५६ ई०) को उसे न्यायालय द्वारा वैधानिक रूप दिया गया।

शिकार:--राजाधिराज एक अच्छे शिकारी है। उन्होंने सरगूजा मे दस बाघों की तथा राघोगढ़ मे एक बाघ की शिकार की।

साहित्य तथा कला प्रेम:—राजाधिराज साहित्यानुरागी तथा कलाप्रेमी हैं। उनकी दिनचर्या का अधिकांश समय साहित्य के वाचन, परिशीलन तथा चिन्तन में बीतता है। उनके अपने पुस्तकालय मे अनेक सुविख्यात लेखको की पुस्तके हैं। उसमें प्राचीन संस्कृत ग्रंथों की टिकाये है। प्रख्यात अंग्रेज लेखकों की पुस्तकें हैं तथा अनेक विषयों पर लिखे ग्रंथ हैं। अपने राजत्वकाल मे राज्य कार्य करते हुये भी उन्होंने साहित्य तथा कला प्रेम को जीवित रखा। कलाकारो को तथा लेखकों को प्रोत्साहन दिया। उन्हे चित्रकला और गानकला से विशेष अभिरुचि है। उनके संग्रह मे अनेक कलापूर्ण चित्र संग्रहीत है। गानकला के प्रेमी होने के नाते आश्विन बदी २ वि० सं० १९९३ को जब अजमेर में अखिल भारतीय सगीत सम्मेलन हुवा था, तब वह उसमे गये थे और भारत विख्यात कलाकारों का गाना सुना था। कार्तिक बदी ५ वि० सं० १९९३ को राजपूताना इन्टर कालेज के वार्षिक अधिवेशन मे गान प्रतियोगिता के सभापति बनाये गये थे।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ३३ वां अधिवेशन वि० स० २००२ के आश्विन सुदी ११ से १४ तक उदयपुर मे हुआ था। साहित्यानुराग के वश वह उसमें सम्मिलित हुवे। और २५०-०० रु० प्रदान किये थे। इस अधिवेशन के सभापति कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी थे। पाच हजार व्यक्ति सुविधापूर्वक बैठ सके, इतना विशाल पण्डाल नम्बरदार पाठशाला के मैदान मे बनाया गया था। आश्विन बदी १३ को उन्होंने अपने "मान भवन" में सम्मेलन के सभापति कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी को तथा सुविख्यात साहित्यिकों को आमन्त्रित किया और जलपान कराया।

इतिहास तथा पुरातत्व से उन्हे अत्यधिक रुचि है। उनके संग्रह मे ऐतिहासिक पुस्तको की अधिकता है। उनके समस्त प्रवास वर्णनो को पढ़ने पर ज्ञात होता है कि जहा कही वह गये। जो कुछ भी देखा, उसमे उनका ऐतिहासिक तथा पुरातत्व का दृष्टिकोण ही प्रमुख रहा है। विलायत यात्रा तथा हैदराबाद यात्रा के सस्मरण इसके प्रमाण हैं।

पुरातत्व के प्रेम के कारण उन्होने अपने दुर्ग के एक भवन मे "चित्रशाला" नामक पुरातन वस्तु सग्रहालय बनाया है। जिसमे बनेडा राज्य के तीन सौ वर्ष के राजत्व काल की पुरातन वस्तुओं को प्रदर्शित किया गया है। उनका चयन कलापूर्ण है और उन्हे सुन्दरता पूर्वक सजाया गया है जो देखने योग्य है। अपने इतिहास और पुरातत्व के प्रेम के कारण उन्होने वि० सं० १७३८ से लगा कर वि० सं० २००५ तक राज परिवार की ओर से बनाये गये समस्त भवनों पर, तालाबो पर, छत्रियो पर शिला लेख लगवाये।

अब वह महाराणा राजसिंह तथा राजा भीमसिंह से लगाकर स्वयम् के राजत्व काल

तक का संक्षिप्त इतिहास शिला खण्डो पर उत्कीर्ण करवा रहे हैं। वह शिला खण्ड दुर्ग की भीतों मे योग्य स्थान पर जड दिये जावेंगे।

राजाधिराज का व्यक्तित्व —राजाधिराज का समग्र जीवन चरित्र पढने पर ज्ञात होगा कि वह एक सुधारवादी, प्रगति प्रिय, शिक्षा प्रेमी, प्रजापालक और कर्तव्यशील व्यक्ति है। उनकी दिनचर्या हमे बताती है कि उनके समस्त राजकीय तथा सामाजिक कार्यो का समय निर्धारित रहा है। निर्धारित समय पर कार्य करना मानों उनका धर्म हो। वह मित तथा मिष्ट भाषी हैं। स्वभाव शान्त होते हुये भी स्वाभिमानी हैं। उनका तर्क है कि अपमान सहना कायरता है। चली आरही राजनीतिक परिपाटी के अनुसार जिसको जितना सम्मान देना है वह देने का तथा जिसने जितना सम्मान पाना है वह पाने का दृढता से पालन करते रहे हैं। महाराणा फतहसिंह के अगवानी को न आने की घटना का उल्लेख हम कर चुके हैं किन्तु जब स्वतन्त्रता प्राप्ती के पश्चात् राजस्थान प्रान्त मे बनेडा राज्य का विलय हो गया तब राजाधिराज ने इस परम्परागत परिपाटी को स्वयम् बन्द कर दिया। महाराणा भूपालसिंह ने जब इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा, "अब भारत स्वतन्त्र हो गया है। राज्य और उपराज्य उसमे विलीन हो गये है। ऐसी अवस्था मे सत्यमार्ग यही है कि उन प्रथाओं को समाप्त कर दिया जावे, जो उन राज्यों के सम्मानार्थ प्रचलित थी।"

उन्होंने अपने राजत्वकाल मे सदा से चले आ रहे अनेक कर बन्द कर दिये। बेगार प्रथा को समाप्त किया। घृणित दासी प्रथा का अन्त किया। लगान के लाखो रुपये माफ किये। प्रजा के लिये लाखो रुपये व्यय कर तालाबों को सिंचन योग्य बनाया। उन्होंने बनेडा राज्य के सिद्धान्त के प्रतीक और राज्य चिन्ह मे अंकित "राजा रंजयति प्रजा" इस सुभाषित को प्रतिक्षण चरितार्थ किया और प्रजावत्सलता को सार्थक किया।

वह ऊंचे, गौर वर्ण, सुन्दर, सुदृढ और तेजस्वी हैं। ७८ वर्ष की आयु मे भी उनका जीवन नियमित और संयमित है। राजा कार्य तो अब नही रहा है, फिर भी अपने अध्ययन कक्ष मे बैठकर एक विद्यार्थी की भांति ज्ञानार्जन करने मे वह निमग्न रहते हैं।

परमेश्वर उनको और उनके परिवार को चिरायु करे।

परिशिष्ट क्रमांक १

"बनेड़ा राज्य" का इतिहास लिखने में जिन ऐतिहासिक पुस्तकों से सहायता ली गई, उनकी सूची:—

पुस्तक	लेखक
१—वीर विनोद	कविराजा श्यामलदास
२—उदयपुर राज्य का इतिहास	महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
३—जोधपुर राज्य का इतिहास	महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
४—बीकानेर राज्य का इतिहास	महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
५—औरङ्गजेब नामा	मुन्शी देवीप्रसाद
६—राजपूताने का इतिहास	श्री जगदीशसिंह गहलोत
७—भारत के प्राचीन राजवंश	श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ
८—मारवाड़ का इतिहास	श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ
९—जयपुर का इतिहास	श्री हनुमान शर्मा
१०—रतलाम का प्रथम राज्य	श्री डा० रघुवीरसिंह
११—मालवा में युगान्तर	श्री डा० रघुवीरसिंह
१२—वीर वंश वर्णनम्	श्री नागजीराम शर्मा
१३—मेवाड़ अण्डर दी महाराणा भूपालसिंह (अंग्रेजी)	श्री सर सुखदेवप्रसाद
१४—हमारा राजस्थान	श्री पृथ्वीसिंह मेहता
१५—भारतवर्ष का इतिहास	
१६—गदर का इतिहास	श्री पद्मराज जैन
१७—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र	पण्डित श्री घासीराम एडवोकेट मेरठ
१८—भीमविलास (हस्तलिखित)	कवि कृष्ण आढा
१९—मेवाड़ की ख्यात	बीकानेर के शिक्षा-विभाग से प्रतिलिपि प्राप्त
२०—जयपुर का इतिहास	जेम्स ब्रोन
२१—जर्नल आफ दी पंजाब हिस्टोरियल सोसायटी	
२२—पेशवा बाजीराव (अंग्रेजी)	श्री व्ही० जी० डिगे
२३—उदयपुर के वाणी विलास में रखी ख्यात सं० १२७६	
२४—भारत के उत्तर प्रान्त की यात्राओं का वर्णन (अंग्रेजी)	लार्ड विशप
२५—तुकोजीराव की गुप्त यात्रा (फारसी)	
२६—राज-विलास हस्तलिखित	
२७—अदवई आलमगिरी	
२८—राज प्रशस्ति महा-काव्य	
२९—मारवाड़ की ख्यात	

३०—टाड राजस्थान श्री जेम्स टाड
३१—फतुवाते आलमगिरी
३२—वाकेआते आलमगिरी
३३—जाटों का इतिहास

परिशिष्ट क्रमांक २

बनेडा राज्य परिवार के वैवाहिक सम्बन्ध निम्नांकित प्रमुख राजवंशों में हुवेः—

(१) जयपुर राज्य —

(१) राजा भीमसिंह (प्रथम) की ज्येष्ठ पुत्री का विवाह महाराजा सवाई जयसिंह के साथ, जब वह युवराज थे, तब ज्येष्ठ सुदी ११ वि० सं० १७५६ को हुआ। यह विवाह राजा सूयमल के समय बनेडे के प्राचीन भवन मे सम्पन्न हुआ।

(२) राजा सुरतानसिंह की पुत्री अजबकुमारी का विवाह महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह से तथा रतनकुमारी बाई का विवाह महाराजा सवाई माधवसिंह से हुआ।

(३) राजा सरदारसिंह की पुत्री बृजकुमारी का विवाह आषाढ बदी १० वि० स० १८१८ मे महाराजा सवाई माधवसिंह के साथ हुआ।

(४) राजा रायसिंह के भाई किशोरसिंह की पुत्री का विवाह फाल्गुन सुदी ३ वि० सं० १८६२ मे महाराजा सवाई जगतसिंह से हुआ।

(५) राजा उदयसिंह के भाई दौलतसिंह की पुत्री का विवाह वि० सं० १८८७ मे जयपुर नरेश महाराजा जयसिंह (तृतीय) से हुआ।

(२) जोधपुर राज्य —

(१) राजा सुरतानसिंह की पुत्री स्वरूपकुमारी का विवाह महाराजा अभय सिंह के साथ हुआ।

(२) राजा सरदारसिंह की पुत्री कमलकुमारी का विवाह जोधपुर राज्य के कुवर जालिमसिंह के साथ हुआ।

(३) बीकानेर राज्य —

(१) राजा हमीरसिंह का तीसरा विवाह महाराजा गजसिंह की पौत्री से फाल्गुन बदी ८ वि० स० १८३६ को हुआ।

(४) बूंदी राज्य —

(१) राजा भीमसिंह (प्रथम) की द्वितीय पुत्री स्वरूपकुमारी का विवाह बूंदी के राव जोधसिंह से हुआ।

(५) कोटा राज्य —

(१) राजा भीमसिंह (द्वितीय) की पुत्री मेहताबकुवर का विवाह कोटा के महाराव रामसिंह के साथ हुआ।

(६) करौली राज्यः—

(१) राजा अक्षयसिंह की पुत्री सज्जनकुमारी का विवाह महाराजा भंवरपाल-सिंह से हुआ।

(७) जैसलमीर राज्यः—

(१) राजा सूर्यमल का द्वितीय विवाह महारावल अमरसिंह की पुत्री सबलसिंह की पौत्री से हुआ।

(८) रतलाम राज्यः—

(१) राजा संग्रामसिंह की पुत्री अजबकुमारी का विवाह माघ सुदी १५ वि० सं० १६१५ को राजा भैरोंसिंह के साथ हुआ।

(९) झाबुआ राज्यः—

(१) राजा भीमसिंह (द्वितीय) की पुत्री प्रतापदेवी का विवाह राजा रत्नसिंह के साथ हुआ। यह विवाह फाल्गुन वदी २ वि० सं० १८६६ को राजा संग्रामसिंह के समय में हुआ।

(१०) रीवां राज्यः—

(१) राजा सूर्यमल का प्रथम विवाह पीथापुर बान्धवगढ़ (रीवां) के राजा भावसिंह की पुत्री राजा अनोपसिंह की पौत्री से हुआ।

(११) ईडर राज्यः—

(१) राजा भीमसिंह (द्वितीय) का विवाह राजा शिवसिंह की दूसरी पुत्री सूर्यकुमारी के साथ हुआ।

(१२) किशनगढ़ राज्यः—

(१) राजा हमीरसिंह का चौथा विवाह महाराजा बिड़दसिंह की पुत्री से फाल्गुन सुदी १ वि० सं० १८३६ को हुआ।

(१३) नागौर राज्यः—

(१) राजा सुरताणसिंह की पुत्री नाथकुंवर बाई तथा मानकुंवरबाई का विवाह राजा बख्तसिंह से हुआ।

(१४) लूनावड़ा राज्यः—

(१) युवराज प्रतापसिंह का प्रथम विवाह लूनावड़ा नरेश की पौत्री रत्न-कुमारी से माघ सुदी ६ वि० सं० १९७३ को हुआ।

(१५) धांगध्रा राज्यः—

(१) युवराज प्रतापसिंह का दूसरा विवाह महाराजराणा घनश्यामसिंह झाला की भगिनी पद्मकुमारी से मार्गशीर्ष सुदी १५ वि० सं० १९८९ को हुआ। तीसरा विवाह भाद्रपद वदी ८ वि० स० १९९३ को धांगध्रा नरेश के भाई की पुत्री यशवन्तकुमारी से हुआ। यह विवाह जामनगर (गुजरात) मे हुआ।

परिशिष्ट क्रमांक ३

राजा भीमसिंह (प्रथम) के वर्तमान पाटवी 'वंश—उद्यान' मे राजाधिराज अमरसिंह की स्वय की 'वश—वल्लरी' निम्नाकित पुष्पो मे विकसित एवम् सुवासित हो रही है। इनमे से दो पुष्प असमय मे टूटकर भूमाता की गोद मे गिर पडे हैं। शेष पुष्पो से 'वंश—वल्लरी' सुशोभित है।

राजाधिराज अमरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र का नाम राजकुमार प्रतापसिंह था। उनका स्वर्ग वास हो चुका है। दूसरे पुत्र का नाम राजकुमार मानसिंह और कनिष्ठ पुत्र का नाम राजकुमार गुमानसिंह है।

स्वर्गीय राजकुमार प्रतापसिंह को पाच पुत्रियाँ और एक पुत्र हुवे।

प्रथम राजकुमारी मुक्तावली कुमारी (सादडी) को चार पुत्र हिम्मतसिंह, लक्ष्मणसिंह, मनोहरसिंह, चन्द्रसिंह है। ज्येष्ठ पुत्र हिम्मतसिंह को दो पुत्र घनश्यामसिंह और कर्णसिंह हैं। दूसरे पुत्र लक्ष्मणसिंह को दो पुत्रिया दुर्गेश्वरीकुमारी तथा राजेश्वरीकुमारी हैं।

दूसरी राजकुमारी चन्द्रावलीकुमारी (वाकानेर) को तीन पुत्रिया हर्षेन्द्रकुमारी, हितेन्द्र-कुमारी, इन्दिराकुमारी तथा एक पुत्र जनककुमारसिंह है।

इनके पश्चात् भवर समरसिंह हुवे, उनका भी स्वर्गवास हो चुका है। उनको दो पुत्र युवराज हेमेन्द्रसिंह तथा तवर पराक्रमसिंह हैं। दो पुत्रिया ललितकुमारी तथा निर्मलकुमारी हैं।

तीसरी राजकुमारी पद्मावलीकुमारी (चादिया) को दो पुत्र कमलेन्द्रसिंह और अजीतसिंह तथा दो पुत्रिया उमाकुमारी व उषाकुमारी हैं।

चौथी राजकुमारी पुष्पावलीकुमारी (भुज) को तीन पुत्र घनश्यामसिंह, रघुराजसिंह, दीपेन्द्रसिंह तथा एक पुत्री प्रीतिकुमारी है।

पाचवी राजकुमारी कुसुमावलीकुमारी (मारथल) को पाच पुत्र गजेन्द्रसिंह, रणजीत सिंह, तेजराजसिंह, विक्रमसिंह, सुरेन्द्रसिंह है।

द्वितीय राजकुमार मानसिंह को दो पुत्र और तीन पुत्रिया हैं।

ज्येष्ठ भवर विक्रमसिंह को दो पुत्रिया प्रतिभाकुमारी तथा हसाकुमारी हैं। पुत्र तवर महेन्द्रसिंह है।

भवर उदयभानुसिंह को एक पुत्री जयाकुमारी है।

पुत्री शीलाकुमारी (नरोली) को दो पुत्र वीर विक्रमसिंह तथा धर्म विजयसिंह हैं। तीन पुत्रिया राधिकाकुमारी, रूप विजयकुमारी, पुष्प विजयकुमारी हैं।

पुत्री सुशीलाकुमारी (भावनगर) को रागिनीकुमारी तथा रंजनाकुमारी दो पुत्रिया हैं। तीसरी पुत्री का नाम लक्ष्मीकुमारी है।

राजकुमार गुमानसिंह को एक पुत्र हितेन्द्रसिंह तथा दो पुत्रिया मनहरकुमारी तथा मजुलकुमारी हैं।

परिशिष्ट क्रमांक ४

बनेड़ा राज्य की ओर से मनाये जाने वाले उत्सव:—

विजयादशमी

आश्वीन सुदी १ को घटस्थापना तथा खड्गस्थापना होती है। पूजन होने के पश्चात् 'जवार' बोये जाते हैं। यह विधि दुर्ग में स्थित कुलदेवी बाणमाता के मन्दिर में सम्पन्न की जाती है। स्थापना से विसर्जन के दिन तक घृत का अखण्ड दीपक प्रज्वलित रखा जाता है।

अष्टमी को प्रातः हवन होता है और शस्त्र पूजा होती है। नवमी को अश्वों और गजों का पूजन होता है। दशमी को घट और खड्ग विसर्जन होने के पश्चात् राज्य के समय आराध्य को विजयादशमी का चल समारोह किले से रवाना होता था। इस समारोह में जागीरदार तथा सम्बन्धिगण एकत्रित होते थे और समारोह के साथ जाते थे। समारोह सूरजपोल के बाहर शमी-चबूतरे तक जाता था। वहां राजा शमीपूजन करते थे। उसके पश्चात् रावण की डूंगरी पर रावण मारने का दृश्य होता था। वहां से समारोह फिर राज भवन में आता था। राज भवन में विजयादशमी का दरबार होता था। सीतारामजी के मन्दिर से विमान भी इस समारोह के साथ जाता था।

दीपावली

धन तेरस को श्रीकृष्ण भंडार में लक्ष्मीजी की स्थापना होती है। उसी समय से विसर्जन तक अखण्ड घृत दीपक प्रदीप्त रखे जाते हैं। विसर्जन दिवाली के दूसरे दिन होता है। दीपावली के दिन संध्या समय लक्ष्मी-पूजन और दरबार का आयोजन होता है। सामन्त, संबन्धि, राज्य के कर्मचारी एकत्रित होते हैं। दरबार के समय सबको गन्ने वितरित किये जाते हैं। दिवाली के दूसरे दिन गोवर्धन की पूजा होती है। श्रीजी के मन्दिर मे अन्नकूट होता है।

प्रायः मेवाड में कार्तिक सुदी द्वितीया को दवात-पूजन होता है किन्तु बनेडा राज्य में वह दिन सती का होने से तृतीया को दवात-पूजन होता है। यह पूजन हिसाब दफ्तर मे होता है।

होली

होली का चल समारोह किले से प्रारम्भ होकर अक्षय भवन तक जाता है। मार्ग में नगर निवासी, राजा, राजपरिवार तथा सामन्तों पर, गुलाल उड़ाते हैं फिर राजा, राजपरिवार आदि नगर निवासियों पर गुलाल उड़ाते हैं। नगर में राजा पाटवी पुरोहित के भवन पर जाते हैं, वहां भी गुलाल का आदान-प्रदान होकर राजा समारोह के साथ अक्षय भवन में चले जाते हैं, वहां गोठ होती है। संध्या समय स्वच्छ उत्तम पोशाक पहनकर समारोह फिर किले पर राज भवन मे आ जाता है।

गनगौर

चैत्र सुदी ३ को गनगौर का चल समारोह निकलता है। इस समारोह में भी जागीरदार तथा सम्बन्धि एकत्रित होकर समारोह के साथ जाते हैं। यह समारोह किले से प्रारम्भ होकर मानकुण्ड तक जाता है। जाते समय गनगौर समारोह के पीछे रहती है किन्तु जब समारोह वापिस होता है। तब गनगौर आगे और समारोह पीछे चलता है। समारोह किले तक जाकर समाप्त हो जाता है। इस प्रकार यह उत्सव तीन दिन तक मनाया जाता है।

श्रावण सुदी तृतीया

इसको छोटी तीज भी कहते हैं। यह राजाधिराज अमरसिंह का जन्म दिन होने से, जन्म दिन महोत्सव भी मनाया जाता था। उस समय दरबार होता और गोठ भी होती थी। अपरान्ह के समय चल समारोह निकलता और अक्षय पाठशाला तक जाता था, वहा 'झूलों' का दृश्य देखकर वापिस किले पर आजाता था।

भाद्रपद बदी तृतीया

प्रात काल बिना समारोह के नजर बाग मे जाते थे। वहा गोठ होती थी। झूला झूले जाते थे। सायंकाल को समारोह के साथ किले पर आ जाते थे।

डोल ग्यारस

श्रीजी का विमान चल समारोह के साथ किले से निकलता है। राजा, सामन्त, सबन्धि, राजकर्मचारी इस समारोह के साथ पैदल चलते हैं। मार्ग मे नगर के मन्दिरों के विमान भी श्रीजी के विमान के साथ सम्मिलित हो जाते हैं। जनता भी सहस्रों की सख्या मे समारोह के साथ एकत्रित हो जाती है। समारोह मानकुण्ड तक जाता है। वहा बिछायत पर सब बैठ जाते हैं। फिर श्रीजी का पूजन होता है। भजन होते हैं। रात को समारोह किले पर लौट आता है।

परिशिष्ट क्रमाक ५

दरबार और दरबारी पोषाक

मेवाड राज्य के आधीन दो राजा, सोलह उमराव, बत्तीस सरदार तथा तीन सौ से अधिक छोटे छोटे, जागीरदार थे। जब दरबार का आयोजन होता, इन्हे दरबार मे आने का निमंत्रण दिया जाता। उनके बैठने के स्थान नियत थे। दरबार के समय वह अपने-अपने नियमित स्थान पर आकर बैठ जाते।

वे दो राजा, बनेडा और शाहपुरा के थे। यह दोनो राज्य, मेवाड राज्य प्रदत्त नही थे। पहिले वह मुगल साम्राज्य के अंतर्गत स्वतंत्र राज्य थे। मेवाड राज्य से उनका कोई सम्बंध नही था किन्तु जब मुगल साम्राज्य का पतन हुआ तब यह दोनो राज्य स्वेच्छा से मेवाड राज्य के संरक्षण मे चले गये, तब मेवाड राज्य की ओर से प्रथम श्रेणी के सामन्तों मे उन्हे सर्व श्रेष्ठ स्थान तथा अनेक विशेष सम्मान प्रदान किये गये। उसमे भी बनेडा को प्रथम तथा शाहपुरा को द्वितीय स्थान दिया गया। जो विशेष सम्मान इन दोनो राज्यों को प्रदान किये गये थे, उनमे महाराणा का अगवानी को आना तथा तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न करना का विशेष उल्लेखनीय है।

विजयादशमी का समारोह

प्रति वर्ष विजयादशमी (दशहरे) से पूर्व मेवाड राज्य की ओर से निमंत्रण लेकर किसी सवार को भेजा जाता। बनेडा राज्य के राजा निमंत्रण स्वीकार कर उस सवार को चालीस रुपये और एक सिरोपाव प्रदान करते। सेवक उदयपुर लौट जाता।

राजा बनेड़ा से उदयपुर को जाने के लिये आश्विन वदी १४ को रवाना होते और अमावस को उदयपुर पहुँच जाते। वकील के द्वारा सूचना पाकर महाराणा अगवानी को आते। प्रायः संध्या के पांच या छः बजे अगवानी को आनेका समय निश्चित किया जाता। उदयपुर नगर के सूर्यपोल द्वार के बाहर आध मील के अन्तर पर अगवानी का स्थान नियत था। वहां महाराणा के आदेश से उनके सेवक फर्श आदि लाकर बिछा देते। राजा नियत समय पर उस स्थान पर पहुँच जाते। महाराणा के सेवक छड़ीदार, चोपदार आदि तो पहिले ही आ जाते। महाराणा निश्चित समय पर आते। राजा अपनी सवारी से उतर कर फर्श पर खड़े हो जाते। जैसे ही महाराणा अपनी सवारी से उतरते राजा और उसके साथी नम्रता पूर्वक 'मुजरा' करते। महाराणा के उसे स्वीकार करने पर राजा एक मोहर और पांच रुपये 'नजर' तथा पांच रुपये 'नौछावर' करते। इसके पश्चात् महाराणा 'बाहपसाव' करके राजा से मिलते थे।

राजा के साथ यदि राजकुमार होते तो वह भी 'नजर' करते किन्तु महाराणा उसमे अपनी ओर से दुगना मिलाकर उसे राजकुमारको लौटा देते थे।

साथ में कुटुम्बी भाइयों मे से जो व्यक्ति होता वह और जागीरदारों मे से कोई एक जागीरदार 'नजर' करते, उनके पश्चात् कामदार और वकील 'नजर' करते थे। उनकी नजरें रखली जाती थी।

कुछ समय वार्तालाप होता और महाराणा 'सीख' (विदाई) का 'बीड़ा' (पान) प्रदान करते और अपने भवन को प्रस्थान करते थे। राजा अपने साथियो सहित अपने निवास स्थान पर आ जाते थे।

दूसरे दिन राजा सायंकाल के समय राजभवन मे जाते, वहां सभा शिरोमणी नामक स्थान पर बैठते थे। वकील द्वारा महाराणा को अपने आने की सूचना देने पर महाराणा नियत व्यक्ति के साथ दो बीडे (पान) भेजते, राजा उनमें से एक बीड़ा लेकर उस व्यक्ति के साथ ऊपर के भवनों मे जाते, निज भवन मे जहां महाराणा बैठते थे छड़ीदार द्वारा सूचना दी जाती थी और जैसे ही राजा भवन मे प्रवेश करते, महाराणा तथा उपस्थित सामन्त खड़े हो जाते। महाराणा के गादीपर आसनस्थ होने पर राजा और सामन्त भी बैठ जाते। विदा के समय महाराणा खड़े होकर पान प्रदान करते। राजा और उपस्थित सामन्त 'मुजरा' करके चले जाते। जब तक उदयपुर मे राजा का निवास रहता था, तब तक चौथे पांचवे दिन यह कार्यक्रम होता रहता था।

विजयादशमी के दिन अपराह्न के समय उदयपुर के राजभवनों से एक चल समारोह निकलता था। महाराणा दरबारी पोषाक धारण किये सुसज्जित अश्वपर बैठकर समारोह के साथ निकलते थे। समारोह हाथी पोल द्वार के बाहर उस स्थान तक जाता था। जहां शमीपूजन का स्थान नियत था। वहां पहिले से ही बिछायत आदि का प्रबंध हो जाता था। कनातें लगादी जाती थी। दरबार की रीति के अनुसार सभी सामन्त सुव्यवस्थित रूप से अपने-अपने निर्धारित स्थान पर बैठ जाते थे। बनेड़ा के राजा का स्थान ठीक महाराणा के सामने सर्व

प्रथम था। उनके पश्चात् शाहपुरा नरेश, उनके उपरान्त फिर दूसरे सामन्तगण। महाराणा शमीपूजन करते और तत्पश्चात् राजा और सामन्तगण नजर[1] व नौछावर करते थे। फिर समारोह वहा से चलकर राजभवनो के पास आकर समाप्त हो जाता था। राजभवन मे रात को दरबार होता था, और उपरोक्त विधी के अनुसार राजा तथा सामन्तगण अपने नियत स्थान पर बैठते थे। महाराणा की ओर से इत्र पान किया जाता और दरबार विसर्जित हो जाता था।

बनेडा के राजा जब बनेडा वापिस जाना चाहते तब वकील द्वारा महाराणा को निवेदन कराया जाता था। महाराणा समय निर्धारित करते थे। राजा की ओर से बिछायत आदि पहिले से ही कर दी जाती थी। महाराणा नियत समय पर राजा के निवासस्थान पर आते थे। उनके सवारी से उतरते ही राजा खडे खडे ही एक मोहर और पाच रुपये नजर तथा पाच रुपये नौछावर करते थे। कुछ सोने चादी के पुष्प भी गद्दी के आस पास बिखेर दिये जाते थे। कुछ वार्तालाप होता और जब महाराणा 'सीख' देने के पश्चात् जाने लगते तब राजा की ओर से एक घोडा व सिरोपाव उनको नजर किया जाता था। महाराणा, राजा को एक सिरोपाव देते थे। राजा, महाराणा को पुष्प हार पहिनाते फिर महाराणा, राजा को पुष्प हार पहिनाते थे। राजा महाराणा का इत्रपान करते, महाराणा, राजा को इत्र देते थे।

इस प्रकार कार्यक्रम होकर महाराणा राजभवन मे चले जाते थे और राजा बनेडा आजाते थे।

यहा एक बात और उल्लेखनीय है कि जब तक राजा बनेडा का उदयपुर मे निवास होता था। उनके साथ जो घडी घन्टा रहता था, उसे बजाया जाता था। यदि महाराणा के साथ राजा कही बाहर भ्रमण पर जाते तब शिविर मे भी राजा का घन्टा अलग बजाया जाता था। यह सम्मान शाहपुरा नरेश को भी प्राप्त था और किसी सामन्त को प्राप्त नही था।

पोषाक

दरबार और उत्सवो के अवसरो पर तत्कालीन राजपरिवार के व्यक्ति जो पोषाक पहिनते थे, उनमे पगडी, जामा और पायजामा प्रमुख थे।

पगडी कई प्रकार की होती थी किन्तु खिडकीदार पगडी राजस्थान के सभी राजा पहिनते थे। इस कारण अकबर बादशाहने भी इसे पहिनना प्रारम्भ कर दिया था। सिरपर खिडकीदार पगडी और शरीर पर जामा पहिना जाता था। जामा प्राय मल-मल का होता था। उसका उपरी भाग 'अगरखा' जैसा ही होता था। गाहे काफी लम्बी होती थी, जिन पर

१—दोनों राजा तथा सोलह उमरावों की ओर से नजर करने की तथा महाराणा के स्वीकार करने की रीति इस प्रकार सम्पन्न की जाती थी कि राजा अथवा उमराव नजर की वस्तु अपने दाहिने हाथ पर रखकर उसे नम्रतापूर्वक महाराणा के सामने कर देते थे। महाराणा अपना दाहिना हाथ उनके हाथ पर रख देते थे। तत्काल ही महाराणा अपना हाथ नीचे कर देते और राजा अथवा सामन्त का हाथ ऊपर आ जाता इस प्रकार नजर की वस्तु महाराणा के हाथ पर आजाती थी।

सलवटे डालकर सिकुडन लाई जाती थी। कमर से नीचे घेर होता था। घेर 'कलियां' काटकर बनाया जाता था। उसकी नीचाई टखने तक होती थी। जामे के नीचे पैरों मे पायजामा पहिना जाता था जो पैरों से चिपका हुआ होता था।

मस्तक पर खिडकीदार पगडी, शरीरपर जामा, पैरोंमें पायजामा पहिनने के पश्चात् उनपर जो आभूषण पहिने जाते थे उनकी सजावट नीचे लिखे अनुसार होती थी।

पगड़ी मे कलगी लगाई जाती थी, कलगी 'होकार' नामक पत्ती के परों की बनाई जाती थी। यह पर काले होते थे और उनके बीच मे शुभ्र रेखा होती थी। कलगी के निचले भाग मे मोती जडे जाते थे। दरबार मे इस प्रकार की कलगी वही सामन्त लगा सकते थे, जिनको महाराणा की ओर से वह सम्मान प्राप्त होता था। बनेड़ा के राजा को यह सम्मान प्राप्त था। कलगी के नीचे हीरा, पन्ना या माणिक का सिरपेंच बांधा जाता था। कानों में मोती पहिने जाते थे। दो मोतियो के बीच मे लाल या पन्ना लगा होता था। गलेमे मोतियों की कंठी पहिनते थे। कंठी मे पाँच मोतियो के बाद पन्ना का नग पिरोया जाता था। ऐसी दो या तीन कंठिया पहिनते थे। हाथो मे मोतियों की पहुँची पहिनते थे। जिसके बीच में ठेकड़ा होता था जिसमें हीरे जडे होते थे। कमर बन्द के ऊपर सुनहरी कमर पट्टा बाधा जाता था। जिसके बीच में

जडाऊ काम होता था। पैरोंमे मोतियों के आभूषण होते थे। हाथ में मखमल के म्यान में रखी सुनहरी मूठ की तलवार होती थी तथा कमर मे छुरी खोसी जाति थी।

खिडकीदार पगडी मे कुछ परिवर्तन करके महाराणा अमरसिह (द्वितीय) ने अमरशाही पाग चलाई थी, जिसे महाराणा और सब सामन्त पहिनते थे किन्तु बनेड़ा के राजा खिडकीदार पगडी ही पहिनते थे। इसके पश्चात् महाराणा अडसीजी ने अडसीशाही पाग चलाई थी, उससे मिलती जुलती राजा हमीरसिंह (बनेड़ा) ने हमीरशाही पगड़ी चलाई थी।

तलवार बंधाई की रीति

प्रत्येक राजा के राज्यारोहन के पश्चात् महाराणा अपने किसी उच्च सेवक को तलवार बंधाई के सामान के साथ बनेड़ा भेजते थे। उसके आगमन के पश्चात् बनेड़ा राज्य की ओर से एक सभा का आयोजन किया जाता। सब सामन्त तथा प्रजा के प्रतिष्ठित व्यक्तिओं की उपस्थिति मे महाराणा का सेवक तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न करता था। तलवार बंधाई मे सुनहरी मूठ की तलवार, सिरोपाव, आभूषण, मोतियों की कंठी तथा घोड़ा और हाथी महाराणा की ओर से भेजे जाते थे।

यह सम्मान केवल बनेड़ा के राजा को ही प्राप्त था कि महाराणा की ओर से बनेड़ा मे तलवार भेजी जाती थी और शाहपुरा के राजा सहित समस्त सामन्तों को उदयपुर मे जाकर तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न करानी पड़ती थी।

परिशिष्ट क्रमांक ६

बनेड़ा राज्य के राजाओं के इतिहास का कालक्रम

क्रमाक	तिथि मास वि० सम्वत् अथवा तारीख मास सन् ईसवी	घटना का विवरण टिप्पणी
	महाराणा राजसिंह	
१	कार्तिक बदी २ । १७०६	म० रा० राजसिंह की गद्दी नशीनी ।
२	कार्तिक सुदी १० । १७३७	म० रा० राजसिंह की मृत्यु ।
	राजा भीमसिंह	
३	पौष बदी ११ । १७१०	भीमसिंह और जयसिंह का जन्म ।
४	भाद्रपद सुदी ८ । १७३६	बादशाह औरंगजेब का मेवाड़ पर आक्रमण ।
५	माघ बदी ७ । १७३७	शाहजादा अकबर का स्वयम् को बादशाह घोषित करना ।
६	श्रावण बदी ३ । १७३८	महाराणा जयसिंह और बादशाह औरंगजेब मे संधि हुई ।
७	भाद्रपद बदी ४ । १७३८	बेदला से भीमसिंह का प्रस्थान तथा माडल मे दिलेरखा से मिलना ।
८	भाद्रपद बदी ८ । १७३८	बादशाह ने वतन की जागीर मे परगना बनेड़ा देना ।
९	भाद्रपद बदी १० । १७३८	भीमसिंह का बनेड़ा जाना और वहा निवास करना ।
१०	भाद्रपद सुदी ३ । १७३८	भीमसिंह का बादशाह के दरबार मे अजमेर जाना ।
११	भाद्रपद सुदी ८ । १७३८	बादशाह ने भीमसिंह को 'राजा' की पदवी दी तथा चार हजारी जात तीन हजार का मनसब दिया ।
१२	आश्वीन बदी १० । १७३८	बारां तथा गैलाय (बड़नगर) परगने बादशाह ने मनसब की जागीर मे दिये ।
१३	अ० आश्वीन सुदी ६ । १७३८	बादशाह का दक्षिण जाना ।
१४	पौष बदी १२ । १७३८	मऊ मैदाना का परगना मनसब की जागीर मे मिला तथा दुर्जनसिंह को पकड़ने का शाही आदेश मिला ।

१५—माघ सुदी १३ । १७३६ ... राजकुमार अजबसिंह को तीन सदी जात सौ सवारों का मनसब मिलना ।

१६—आश्वीन वदी २ । १७४३ ... राजा भीमसिंह का बीजापुर के लिये प्रस्थान ।

१७—वि० सं० १७४३ ... राजकुमार अजबसिंह का वीरगति को प्राप्त होना ।

१८—चैत्र वि० सं० १७४६ ... जोरावर जाट के युद्ध मे राजा भीमसिंह का घायल होना ।

१९—वि० सं० १७४६ ... राजा भीमसिंह का फिर दक्षिण जाना ।

२०—ज्येष्ठ वि० सं० १७४६ ... मालपुरा परगना मनसब की जागीर मे मिलना ।

२१—श्रावण वदी १४ । १७४६ ... किला परकंद पर आक्रमण के लिये नियुक्ति ।

२२—फाल्गुन वदी १२ । १७५० ... पन्हालागढ़ के युद्ध मे नियुक्ति ।

२३—भाद्रपद सुदी ६ । १७५१ ... राजा भीमसिंह का स्वर्गवास ।

राजा सूर्यमल

२४—वि० सं० १७३४ ... राजा सूर्यमल का जन्म ।

२५—आश्वीन सुदी ११ । १७५१ ... एक हजारी जात पांच सौ सवारों का मनसब मिला ।

२६—आश्वीन वदी १० । १७५२ ... दक्षिण से आगरा आये ।

२७—ज्येष्ठ सुदी ११ । १७५६ ... राजकुमार जयसिंह (जयपुर राज्य) से अपनी बहन का विवाह किया । भविष्य मे यही सवाई जयसिंह कहलाये ।

२८—भाद्रपद वदी १२ । १७५७ ... काबुल के युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुवे ।

राजा सुरताणसिंह

२९—वि० स० १७५२ ... राजा सुरताणसिंह का जन्म ।

३०—आश्वीन सुदी ७ । १७५७ ... हजारी जात पाच सौ सवारों का मनसब मिला ।

३१—फाल्गुन वदी १४ । १७६३ ... बादशाह औरंगजेब की मृत्यु ।

३२—माघ सुदी १३ । १७६५ ... बादशाह बहादुरशाह ने राजा सुरताणसिंह को खिलअत दिया ।

३३—ज्येष्ठ सुदी १२ । १७६६ ... राजा सुरताणसिंह बादशाह की सेवा मे उपस्थित हुवे ।

३४—फाल्गुन वदी ६ । १७६८ ... बादशाह बहादुरशाह की मृत्यु ।

३५—अषाढ बदी ४ । १७६९	मोअज्जुद्दीन ने स्वयम् को बादशाह घोषित किया।
३६—माघ बदी ७ । १७६६	फर्रूखशियर बादशाह बना।
३७—कार्तिक बदी ६ । १७७०	राजा सुरताणसिह बादशाह के दरबार मे गये।
३८—वैशाख सुदी ५ । १७७१	बादशाह ने राजा सुरताणसिह को हजार पान सदी जात आठ सौ सवारों का मनसब दिया।
३९—भाद्रपद वि० स० १७७३	राजा सुरताणसिह को दक्षिण जाने का आदेश मिला।
४०—फाल्गुन वि० स० १७७५	राजा सुरताणसिह दिल्ली आये।
४१—फाल्गुन बदी ११ । १७७८	बादशाह फर्रूखशियर मारा गया।
४२—अषाढ सुदी ७ । १७९१	राजा सुरताणसिह का स्वर्गवास।

राजा सरदारसिह

४३—आश्वीन बदी ३० । १७८०	राजा सरदारसिह का जन्म।
४४—ज्येष्ठ बदी ३ । १७९२	महाराजा अभयसिह जोधपुर राजा सरदार-सिह को दिल्ली ले गये।
४५—ज्येष्ठ बदी ६ । १७९२	शाही दरबार मे उपस्थित होकर बनेडा मे किला बाधने की स्वीकृति प्राप्त की।
४६—वैशाख बदी १३ । १७९३	नौलाय (बडनगर) तथा बदनावर परगने बनेडा राज्य के अधिकार से निकल गये।
४७—वि० स० १७९८	उपरोक्त परगने निकल जाने से शाही कर वसूल होना बन्द हुआ। क्योंकि परगना बनेडा वतन की जागीर का था।
४८—चैत्र सुदी १५ । १८०१	बाइजीराज की बावडी का निर्माण हुआ यह बावडी स्व० राजा सूर्यमल की राणी धनकुवर ने बनवाई।
४९—माघ सुदी ९ । १८०२	जगनिवास महल के वास्तु संस्कार के समय राजा सरदारसिह को महाराणा ने बुलाया।
५०—वि० स० १८०५	राजा सरदारसिह ने 'स्वर-तरग' ग्रन्थ की रचना की।
५१—आषाढ बदी ७ । १८०८	महाराणा जगतसिह का स्वर्गवास।
५२—वि० सं० १८०९	सरदार निवास महल बनवाया और सरदार विलास बाग बनवाया।

५३—माघ बदी २। १८१० ··· महाराणा प्रतापसिंह द्वितीय का स्वर्गवास।
५४—पौष बदी १२। १८१३ ··· राजा उम्मेदसिंह शाहपुरा ने बनेड़ा दुर्ग पर आक्रमण किया।
५५—चैत्र बदी १४। १८१५ ··· राजा सरदारसिंह का स्वर्गवास।

राजा रायसिंह

५६—कार्तिक बदी ३०। १७९८ ··· राजा रायसिंह का जन्म।
५७—वैशाख बदी ८। १८१५ ··· राजा रायसिंह सिंहासनारूढ़ हुवे।
५८—वैशाख सुदी ७। १८१५ ··· तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न हुई।
५९—चैत्र बदी १३। १८१७ ··· महाराणा राजसिंह (द्वितीय) की मृत्यु तथा महाराणा अरिसिंह का गद्दी पर बैठना।
६०—ता० १४ जनवरी १७६१ वि० सं० १८१८ ··· अहमदशाह अबदाली द्वारा मरहठों की पराजय।
६१—वि० सं० १८२१ ··· राय आंगन बनवाया।
६२—वैशाख बदी १। १८२३ ··· अपने मूल पुरुष राणा राजसिंह (प्रथम) के नाम पर कस्बा राजपुर बनेड़ा बसाया।
६३—पौष सुदी ६। १८२५ ··· महाराणा और मरहठों का क्षिप्रा तट पर युद्ध आरम्भ हुआ।
६४—पौष सुदी ९। १८२५ ··· राजा रायसिंह का युद्ध मे वीरगति को प्राप्त होना।

राजा हमीरसिंह

६५—फाल्गुन सुदी १३। १८१७ ·· राजा हमीरसिंह का जन्म।
६६—माघ सुदी ६। १८२५ ··· राजा हमीरसिंह का राज्यारोहण हुआ।
६७—वैशाख वि० सं० १८२७ ··· महाराणा अरिसिंह बनेडा आये।
६८—श्रावण बदी ९। १८२८। ··· तलवार बधाई की रीति सम्पूर्ण हुई।
६९—वि० सं० १८२८ से १८३३ ··· सिलेगढ तथा छः बुर्ज बनवाये।
७०—चैत्र वदी १। १८२९ ··· महाराणा अरिसिंह का स्वर्गवास।
७१—चैत्र बदी ३। १८२९ ··· महाराणा हमीरसिंह (द्वितीय) गद्दी पर बैठे।
७२—वि० सं० १८३० ··· शृंगार बुर्ज बनवाया।
७३—वि० सं० १८३३ ··· उपदुर्ग बनवाया।
७४—पौष सुदी ८। १८३४ ··· महाराणा हमीरसिंह का स्वर्गवास।
७५—पौष सुदी ९। १८३४ ··· महाराणा भीमसिंह गद्दी पर बैठे।
७६—वैशाख सुदी ३। १८४० ··· ऋषभदेवजी की मूर्ति की प्रतिष्ठा की गई।
७७—वि० स० १८४० ··· ग्राम मूमी मे गढ़ बनवाया।
७८—वि० स० १८४१ ··· हमीर निवास बनवाया।

७९—वि० सं० १८४३ — राजा सुग्ताणसिंह की पुत्री नाथकुंवर ने नाथ सागर बनवाया।

८०—श्रावण वदी १। १८४७ — राजा सुग्ताणसिंह की पुत्री मानकुंवर ने मानकुण्ड बनवाना प्रारम्भ किया।

८१—वि० सं० १८५२ — राजा हमीरसिंह ने गुमानभारती को रण मैदान मे मारा।

८२—ज्येष्ठ वदी ३। १८५९ — मानकुण्ड की प्रतिष्ठा की गई।

८३—पौष वदी ३०। १८६१ — राजा हमीरसिंह का स्वर्गवास।

राजा भीमसिंह (द्वितीय)

८४—माघ सुदी १०। १८३७ — राजा भीमसिंह का जन्म।

८५—पौष वदी ३०। १८६१ — राजा भीमसिंह का राजगद्दी पर बैठना।

८६—वैशाख सुदी ९। १८६३ — तलवार बँधाई की रीति सम्पूर्ण हुई।

८७—पौष सुदी ७। १८७४ — महाराणा उदयपुर की ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि हुई।

८८—वि० सं० १८७४ — कर्नल जेम्स टाड का मेवाड का एजेन्ट बनकर आना।

८९—मार्ग शीर्ष सुदी ११। १८७५ — कर्नल टाड का बनेडा आना।

९०—आषाढ वदी ७। १८७५ — दौलतराव सिंधिया ने अजमेर का प्रदेश अंग्रेजों को दिया।

९१—चैत्र सुदी १४। १८८५ — महाराणा भीमसिंह का स्वर्गवास।

९२—चैत्र सुदी १५। १८८५ — महाराणा जवानसिंह का गद्दी पर बैठना।

९३—ज्येष्ठ वदी ८। १८८६ — राजा भीमसिंह का स्वर्गवास।

राजा उदयसिंह

९४—फाल्गुन सुदी १०। १८७३ — राजा उदयसिंह का जन्म।

९५—चैत्र वदी ७। १८८७ — तलवार बधाई की रीति सम्पूर्ण हुई।

९६—माघ वदी १३। १८८८ — महाराणा जवानसिंह का बनेडा आना।

९७—आश्वीन वदी १। १८९२ — राजा उदयसिंह का स्वर्गवास।

राजा संग्रामसिंह

९८—ज्येष्ठ वदी ४। १८७८ — राजा संग्रामसिंह का जन्म।

९९—वि० सं० १८९३ — नीमच मे अंग्रेजों की ओर से एजेन्सी स्थापित होना।

१००—फाल्गुन वदी ७। १८९३ — मेहतावकुमारी पुत्री राजा भीमसिंह का विवाह महाराव रामसिंह कोटा के साथ हुआ।

१०१—भाद्रपद सुदी १०। १८९५ ··· महाराणा जवानसिंह का स्वर्गवास।
१०२—भाद्रपद सुदी १५। १८९५ ··· महाराणा सरदारसिंह गद्दीपर बैठे।
१०३—माघ बदी १३। १८९६ ··· कौलनामे पर सामन्तों ने हस्ताक्षर किये।
१०४—फाल्गुन बदी २। १८९६ ··· प्रतापकुमारी (पुत्री राजा भीमसिंह) का विवाह झाबुआ नरेश रतनसिंह के साथ हुआ।
१०५—कार्तिक सुदी १५। १८९७ ··· महाराणा सरदारसिंह ने बनेड़ा राज्य के ग्राम मेघरास में मुकाम किया।
१०६—अषाढ़ सुदी ७। १८६६ ··· महाराणा सरदारसिंह का स्वर्गवास।
१०७—अषाढ़ सुदी ८। १८९९ ··· महाराणा स्वरुपसिंह सिंहासन पर बैठे।
१०८—कार्तिक सुदी २। १९११ ··· राजा संग्रामसिंह का स्वर्गवास।

राजा गोविन्दसिंह

१०९—माघ सुदी ६। १८९० ··· राजा गोविन्दसिंह का जन्म।
११०—कार्तिक सुदी ७। १९११ ··· राजा गोविन्दसिंह का बनेड़ा आना और राजगद्दी पर बैठना।
१११—माघ सुदी १०। १९११ ··· कर्नल लारेन्स का बनेड़ा आना और राजा गोविन्दसिंह को उदयपुर ले जाना तथा महाराणा का क्षमा करना।
११२—आश्वीन सुदी १। १९१२ ··· तलवार बंधाई की रीति सम्पन्न होना।
११३—वि० सं० १९१४ भारतीय सैनिक क्रान्ति।
११४—माघ सुदी १५। १९१५ ··· राजा संग्रामसिंह की पुत्री अजबकुमारी का विवाह रतलाम नरेश राजा भैरोंसिंह के साथ हुआ।
११५—श्रावण सुदी १०। १९१८ ··· राजस्थान मे सतीप्रथा बन्द की गई।
११६—कार्तिक सुदी १४। १९१८ ··· महाराणा स्वरुपसिंह का स्वर्गवास।
११७—कार्तिक सुदी १५। १९१८ ··· महाराणा शम्भुसिंह सिंहासन पर बैठे।
११८—आषाढ सुदी २। १९२३ ··· राजा गोविन्दसिंह के राज्यारोहन के उपलक्ष में बीकानेर नरेश की ओर से हाथी घोड़ा सिरोपाव आया।
११९—वि० सं० १९२४ ··· ग्राम कजलोदिया मे मन्दिर बनवाया।
१२०—वि० सं० १६२५ ··· मेवाड में भीषण अकाल पड़ा।
१२१—फाल्गुन सुदी २। १६२७ ··· वृन्दावन मे गोविदबिहारीजी का मन्दिर बनना प्रारम्भ हुआ।
१२२—पौष वि० सं० १६२८ ··· नीमच से नसीराबाद तक रेलवे लाईन बनी।
१२३—आश्वीन वदी १२। १६३१ ··· महाराणा शम्भुसिह का स्वर्गवास।

१२४—मार्गशीर्ष सुदी १५। १९३१	महाराजा डूंगरसिंह बीकानेर के राज्यारोहन के उपलक्ष में राज्य बनेडा की ओर से घोडा हाथी सिरोपाव भेजा गया।
१२५—मार्गशीर्ष बदी २। १९३१	महाराणा सज्जनसिंह राजसिंहासन पर बैठे।
१२६—फाल्गुन सुदी २। १६३२	वृन्दावन के मन्दिर मे गोविंदबिहारीजी की प्राण प्रतिष्ठा।
१२७—वि० सं० १६३२	गोविंद निवास महल बनवाया।
१२८—मार्गशीर्ष बदी १०। १६३३	महाराणा सज्जनसिंह बनेडा आये।
१२९—फाल्गुन सुदी १२। १६३५	दीवानी और फौजदारी की कलमबन्दी बनी।
१३०—कार्तिक बदी ३। १६३८	महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती बनेडा आये।
१३१—वि० स० १६३८	सर्व प्रथम विधिवत जनगणना हुई।
१३२—पौष सुदी ६। १६४१	महाराणा सज्जनसिंह का स्वर्गवास।
१३३—माघ सुदी ७। १६४१	महाराणा फतहसिंह गादी पर बैठे।
१३४—वि० स० १६४१	राजा गोविंदसिंह ने बादल महल बनवाया।
१३५—पौष बदी ७। १६४३	उत्तर प्रदेश मे अछनेरा आदि जमींदारी ग्राम खरीदे।
१३६—वैशाख। १६४९	ग्राम आवल खेडा खरीद किया।
१३७—कार्तिक बदी १। १६४७	सर गंगासिंह बीकानेर नरेश के राजतिलक के समय हाथी घोडा सिरोपाव भेजा गया।
१३८—वि० स० १६४८	मेवाड़ मे अकाल पडा।
१३९—वि० स० १६५०	राणी नावडी ने मन्दिर बनवाया
१४०—ज्येष्ठ वि० स० १६५२	चित्तोड से उदयपुर तक रेलवे लाईन बनकर तैयार हुई।
१४१—वि० सं० १६५६	अकाल पडा।
१४२—माघ वदी १३। १९६१	राजा गोविंदसिंह का स्वर्गवास।

राजा अक्षयसिंह

१४३—कार्तिक सुदी ६। १६२३	राजा अक्षयसिंह का जन्म।
१४४—वि० स० १६४३	कुंवरपदे मे अक्षय निवास महल बनवाया।
१४५—वि० सं० १६४६	कुंवरपदे मे सुख विलास महल बनवाया।
१४६—वि० स० १६५४	कुंवरपदे मे कृष्ण भवन महल बनवाया।
१४७—वैशाख सुदी ३। १६६१	अक्षय भवन बनाना प्रारम्भ किया।
१४८—कार्तिक सुदी ६। १६६१	अक्षय भवन बनकर तैयार हुआ।
१४९—माघ सुदी १। १६६१	राजा अक्षयसिंह राजगद्दी पर बैठे।
१५०—मार्ग शीर्ष बदी १२। १६६५	तलवार बंधाई की रीति सम्पूर्ण हुई।
१५१—पौष बदी १४। १६६५	राजा अक्षयसिंह का स्वर्गवास।

राजाधिराज अमरसिंह

१५२—श्रावण सुदी ३ । १६४३ ... राजाधिराज अमरसिंह का जन्म ।
१५३—माघ बदी ४ । १६५५ ... राजाधिराज अमरसिंह का विवाह ।
१५४—वि० सं० १६६० ... अमर निवास का पश्चिमी भाग वनवाया ।
१५५—श्रावण सुदी ५ । १६६७ ... तलवार बंधाई की रीति सम्पूर्ण हुई ।
१५६—वि० स० १६७० ... अक्षय विद्यालय वनवाया ।
१५७—ज्येष्ठ वदी ६ । १६७१ ... राघौगढ़ नरेश राजा बहादुरसिंह से कृष्णाकुमारी का विवाह ।
१५८—वि० स० १६७४ ... अक्षय चिकित्सालय वनवाया ।
१५९—वि० सं० १६७५ ... गोविन्द भवन का ऊपरी खण्ड वनवाया ।
१६०—२८ नवम्बर १६२१/१६७८ ... प्रिन्स आफ वेल्स पंचम जार्ज से मिलने राजाधिराज अजमेर गये ।
१६१—वि० सं० १६७६ ... वनेड़ा राज्य मे स्वास्थ्य विभाग कायम किया गया ।
१६२—कार्तिक वदी ५ । १६८० ... भूपाल नोबल स्कूल को छः हजार रुपये दान दिये ।
१६३—वि० सं० १६८० ... चन्द्रकान्ता कन्याशाला का निर्माण ।
१६४—वि० सं० १६८० ... अमरनिवास का पूर्वी भाग बना ।
१६५—वि० सं० १६८४ ... गुरुकुल चित्तौड़ की स्थापना तथा विजया दशमी के उत्सव पर राजाधिराज को सभापति वनाना ।
१६६—वि० सं० १६८५ ... प्रताप निवास वनवाया ।
१६७—कार्तिक वदी ५ । १६८६ ... राजाधिराज सनातन धर्म सभा के वार्षिक अधिवेशन के सभापति बने ।
१६८—ज्येष्ठ वदी ११ । १६८७ ... महाराणा फतहसिंह का स्वर्गवास ।
१६६—ज्येष्ठ वदी १२ । १६८७ ... महाराणा भूपालसिंह का राज्यारोहण ।
१७०—अषाढ़ वदी ७ । १६८७ ... राजाधिराज को राजपूत हितकारिणी सभा का सदस्य वनाया गया ।
१७१—आश्विन वदी ३० । १६८७ ... महद्राज सभा के सदस्य वनाये गये ।
१७२—कार्तिक सुदी २ । १६८७ ... ब्वाईज स्काऊट के वार्षिक अधिवेशन के सभापति वनाये गये ।
१७३—फाल्गुन वदी १ । १६८७ ... महाराणा भूपालसिंह वनेड़ा आये ।
१७४—वि० स० १६८७ ... नेपाल का प्रवास ।
१७५—अषाढ सुदी ११ । १६८८ ... ग्राम कालसांस की जागीर पर राजकुमार गुमानसिंह को स्थापित किया ।

१७६—मार्गशीर्ष सुदी १५ । १९८८ ब्रह्मचर्याश्रम के सभापति बनाये गये ।

१७७—दि० १४ अक्टूबर १९३२/१९८९ सर्व हितैषि कन्याशाला उदयपुर के वार्षिक अधिवेशन के सभापति बनाये गये ।

१७८—वि० स० १९९० करेडा मे क्षत्रिय विद्या प्रचारिणी सभा के सभापति बनाये गये ।

१७९—अषाढ वदी २ । १९९० यूरोप की यात्रा प्रारम्भ हुई ।

१८०—ता० ४ सितम्बर १९३३/१९९० यूरोप की यात्रा सम्पूर्ण हुई ।

१८१—कार्तिक सुदी ८ । १९९० गुरुकुल चित्तौड के वार्षिक अधिवेशन के सभापति बनाये गये ।

१८२—वैशाख वदी १ । १९९१ धुलेव के श्री ऋषभदेव के मन्दिर के साम्प्रदायिक झगडे को निपटाने की समिति के सदस्य नियुक्त हुवे ।

१८३—कार्तिक वदी १३ । १९९१ राजकुमार मानसिंह को ग्राम वरण जागीर मे दिया ।

१८४—ता० २२ मार्च १९३५/१९९१ मेयो कालेज की मीटिंग मे महाराणा उदयपुर के प्रतिनिधि नियुक्त हुवे ।

१८५—वैशाख वदी ८ । १९९३ चारणों के स्कूल का शिलान्यास किया ।

१८६—वि० स० १९९३ राजाधिराज की पदवी मिली ।

१८७—कार्तिक वदी ७ । १९९४ आनरेरी मेजर की पदवी मिली ।

१८८—माघ वदी १३ । १९९४ क्षयरोग निवारक समिति के सभापति बने ।

१८९—फाल्गुन सुदी १५ । १९९५ सूर्यकुमारी रुग्णालय बनवाया ।

१९०—ज्येष्ठ वदी १४ । १९९६ सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड के सभापति बने ।

१९१—फाल्गुन वदी ७ । १९९६ महाराजकुमार भगवतसिंह उदयपुर की बरात मे गये ।

१९२—वि० स० १९९६ मेवाड मे भीषण अकाल पडा ।

१९३—ता० १४ मई १९४१ । १९९७ सैनिकों को समझाने कामठी नागपुर गये ।

१९४—वि० स० १९९७ वार कमेटी के सदस्य बने ।

१९५—वि० सं० १९९८ म्युनिसीपेलिटी का कार्य जनता को सौंपा ।

१९६—ता० ११ नवम्बर १९४२/१९९९ अदालतों के अधिकारों का मेवाड राज्य मे २१ वा एक्ट बना ।

१९७—ता० १ जनवरी १९४३/१९९९ उक्त एक्ट का प्रचलन हुआ ।

१९८—श्रावण वदी १२ । २००० बनेडा नगर मे एक ही समय मे ग्यारह इंच वर्षा हुई ।

१९९—द्वि० चैत्र सुदी १ । २००२ पुलिस के भावी गठन की समिति के सदस्य बनाये गये ।

२००—वि० स० २००२ बैंक आफ राजस्थान के डायरेक्टर नियुक्त हुवे

२०१—वि० सं० २००२ ··· दयानन्द कॉलेज अजमेर को नौ हजार रुपये की लागत के दो कमरे बनवा दिये ।
२०२—ता० १५ अगस्त १९४७/२००४··· भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति।
२०३—ता० १८ अप्रेल १९४८/२००५··· महाराणा उदयपुर ने आनरेरी ले० कर्नल की पदवी दी ।
२०४—ता० १२ दिसम्बर १९४८/२००५··· हैदराबाद यात्रा पर रवाना हुवे ।
२०५—ता० २६ जनवरी १९५०/२००७··· भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य बना ।
२०६—वि० सं० २००८ ··· प्राचीन किले के समस्त भवन शिक्षा विभाग को दिये ।
२०७—वि० सं० २००८ ··· अक्षय विद्यालयको तीन कमरे और बनवा दिये ।
२०८—ता० १ जुलाई १९५४/२०११ ··· बनेड़ा राज्य का राजस्थान संघ मे विलय होना ।
२०९—वि० सं० २०१२ ··· राजकुमार गुमानसिंह को गोविन्द भवन दिया ।
२१०—आषाढ सुदी ७ । २०१३ ··· भीम स्मारक धर्मार्थ न्यास बनाया गया ।

राजकुमार प्रतापसिंह

२११—पौष सुदी ८ । १९५७ ··· राजकुमार प्रतापसिंह का जन्म ।
२१२—वि० सं० १९७८ ··· शिक्षा समाप्त हुई ।
२१३—वि० सं० १९८६ ··· अफ्रीका गये ।
२१४—श्रावण वदी १० । १९८८ ··· वम्बई से यूरोप गये ।
२१५—कार्तिक सुदी १२ । १९८८ ··· यूरोप से वापिस बनेड़ा आये ।
२१६—पौष वदी ४ । १९८८ ··· शिकार के समय जांघ मे गोली लगी ।
२१७—वि० सं० १९९० ··· पावर हाऊस बनाया ।
२१८—पौष सुदी ७ । १९९४ ··· जीनिंग फेक्टरी का निर्माण किया ।
२१९—पौष वदी ५ । २०१३ ··· स्वर्गवास हुआ ।

राजकुमार मानसिंह

२२०—मार्गशीर्ष वदी ८ । १९६५ ··· राजकुमार मानसिंह का जन्म ।
२२१—ता० १४ अप्रेल १९३०/१९८७ ··· वैरिस्टरी पास करने इंग्लैंड गये ।
२२२—ता० १३ जून १९३४/१९९१ ··· वैरिस्टरी पास की ।
२२३—ता० ५ जुलाई १९३४/१९९१ ··· स्वदेश आये ।
२२४—फाल्गुन सुदी ७ । १९९१ ··· रा० कु० मानसिंह का विवाह हुआ ।
२२५—ता० २ अगस्त १९३६/१९९३ ··· डि० एन्ड सेशन जज के पद पर नियुक्ति ।
२२६—ता० २२ जून १९४२/१९९९ ··· हाई कोर्ट के जज के पद पर नियुक्ति हुई ।
२२७—ता० १६ नवम्बर १९४६/२००३··· स्वेच्छा से पद का त्याग किया ।

राजकुमार गुमानसिंह

२२८—ता० १८ जुलाई १९१७/१९७४ राजकुमार गुमानसिंह का जन्म।

२२९—जनवरी १९२९/१९८६ प्रिन्स आफ वेल्स रायल इन्डियन मिलिट्री देहरादून मे भरती हुवे।

२३०—जनवरी १९३७/१९९४ इन्डियन मिलिट्री एकेडेमी देहरादून मे प्रवेश।

२३१—ता० १५ जुलाई १९३९/१९९६ सेकिन्ड लेफ्टिनेन्ट के पद पर नियुक्ति।

२३२—सितम्बर १९३९/१९९६ कीन्स रायल रेजिमेन्टम् इलाहाबाद मे स्थानान्तर।

२३३—सितम्बर १९४०/१९९७ हांग कांग के लिये प्रस्थान।

२३४—सितम्बर १९४१/१९९८ हांग कांग से वापसी।

२३५—अक्टूबर १९४५। २००२ छटी बटालियन राजपूत रेजिमेन्ट के साथ बर्मा भेजे गये।

२३६—ता० १६ अप्रेल १९४६/२००३ राजकुमार गुमानसिंह का विवाह हुआ।

२३७—ता० १ दिसम्बर १९४७/२००४ लेफ्टिनेन्ट कर्नल बनाये जाकर गुरुदास पुर पंजाब भेजा गया।

२३८—जून १९४८/२००५ दक्षिण भारतीय राज्यों के लिये सैनिक परामर्शदाता के पद पर नियुक्ति हुई।

२३९—ता० ११ नवम्बर १९५४/२०११ कर्नल बनाये गये।

२४०—ता० २ जून १९५५/२०१२ लद्दाख मे कमाण्डर एविलगैरिसन के पद पर नियुक्ति हुई।

२४१—ता० ६ जनवरी १९६१/२०१८ २२ सर्विसेज सलेक्सन बोर्ड मेरठ के पद पर नियुक्ति हुई।

भवर समरसिंह

२४२—श्रावण सुदी १५। १९८० भवर समरसिंह का जन्म हुआ।

२४३—ता० १७ अगस्त १९३३/१९९० शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैन्ड गये।

२४४—जुलाई १९३४। १९९१ शिक्षा समाप्त कर स्वदेश आये।

२४५—वैशाख सुदी २। १९९७ विवाह हुआ।

२४६—कार्तिक वदी १। २०१७ स्वर्गवास हुआ।

युवराज हेमेन्द्रसिंह

२४७—माघ वदी १। २००२ युवराज हेमेन्द्रसिंह का जन्म हुआ।

२४८—माघ सुदी ६। २०२० विवाह हुआ और युवराज के पद पर प्रतिष्ठित हुवे।

२४९—माघ सुदी १४। २०२० महाराणा भगवतसिंह उदयपुर से विवाह के उपलक्ष मे कनेडा आये।

परिशिष्ट क्रमांक ७

महाराणा उदयपुर की ओर से दो प्रकार के पत्र लिखे जाते थे। एक राजकीय पत्र जिसे 'परवाना' कहते थे। ऐसा पत्र प्रत्येक विजयादशमी (दशहरे) के उत्सव पर निमंत्रण के हेतु तथा ऐसे अवसर पर जब कि महाराणा की ओर से कोई ग्राम जागीर मे दिया जाता अथवा कोई भवन, बाग आदि प्रदान किया जाता तब परवाना अर्थात राजकीय पत्र लिखा जाता था।

दूसरा पत्र निजी पत्र होता था, जिसको 'खास रुक्का' कहते थे, वह साधारण कार्य तथा निजी कार्य के सम्बंध मे लिखा जाता था।

उदाहरण स्वरूप एक परवाना तथा दो खास रुक्को की प्रतिलिपियां नीचे दी जाती हैं, जिससे तत्कालीन राजकीय मान्यता तथा सामन्तों के सम्मान की मर्यादा का दिग्दर्शन हो सके।

परवाना

श्री रामोजयति

श्री गणेशजी प्रसादात   **श्री एकलिंगजी प्रसादात**

सही

स्वस्ति श्रीमत उदयपुर सुस्थाने महाराजाधिराज महाराणाजी श्री भूपालसिंहजीत आदेशात बनेड़ा सुस्थाने राजाधिराज भाई अमरसिंह सुप्रसाद लिख्यते यथा अठारा समाचार भला हे आपरा कहावजो।

१ अपर आसोजी दशरावा ऊपर परवाना द्रष्ट श्री हजूर आवजो संवत् १९९४ रा भादवा सुदी १ रवे।

खास रुक्का १

श्री सीवः

श्री एकलिंगजी   **श्री नाथजी**

स्वस्ति श्री राजा भाई रायेसिघजी हजूर म्हारो जुहार मालम व्हे ? अप्र फनुररी चाकरी मे आप नुखते आये पोच्या सारा ही फितुर भेला हुआ ने आप म्हारी वदगी पुगा जी ऊप्रे म्हारी रजावदी हुई रावत पहाड़सिघजी म्हारा हुकम थी आप हे कागद लख दीदो तीमे मुतलब मुदा सावत कर दीदा सो नभ्या जायगा पातस्यायेत में आपरा बडावा सपुत होये मुरतब कहायो ई बात सु म्हे राजी हा जेपुर जोदपुर सु म्हारो मलाप वेसी जदी आपने सामा गादी ऊप्रे ले वेठांगा आपरे नालकी हे सो आपरा भाई सगा मे भलाई राखेगा म्हारी फोज मे तथा मेवाड़ मे म्हारा दुआ थी लावेगा अस्यो ही काम पड़ेगा जदी दुवो दिवावेगा और पाडसिघ जी मुतलब मुदा लिखदीदा सो सावत नभेगा संवत १८२५ रा असोज वदी १२।

खास रुक्का २

श्रीसांब शिवः

श्री एकलिंगजी श्री नाथजी

स्वस्ति श्री राजा भीमसिंहजी हजूर म्हारो जुहार मालम व्हे ? अप्र पचोली फनेराम आयो सारा समाचार मालम कीदा आपरे तरवार बंदाई रा रुपया आगे लागे न्ही सो अजु ही माफ हे कदी लागे नही आपरे तरवार बणेडे पुगवारी मरजाद हे सो अठा थी तरवार तेनात मुनाल हेमरा साजसुदी सरपाव घोडा हाथी अलावगम मोत्यारी कंठी सरसोभा ले प्रोहत रामराये हे मोकल्यो हे सो तरवार ऊठे बणेडे बादे ने सताव पदारमी आपरी सदामदरी मरजाद श्री म्हाराणाजीरा हुकम थी रावत पहाडसिंघजी तीरामु आप हे मडाने दी दी तया न्हे सामा पदारवारी ओर मरजाद हे वो ओर अठे पदारया थी पानडी तथा लेणा-देणा वाला कणी बात खेचल करवा दा न्ही ओर नेगचार वाला बोने दीदा नही म्हाने श्रीजीरी आण ह सम्वत् १८६३ रे वेसाख सुदी ७।

परिशिष्ट क्रमांक ८

महाराणा फतहसिंह (उदयपुर) के शिकार समारोह का वर्णन

'शिकार' शब्द फारसी भाषा का है, जिसे हिन्दी भाषा मे आखेट तथा सस्कृत भाषा मे मृगया कहते हैं। फारसी के जो अनेक शब्द हिन्दी भाषा मे रूढ होकर घुलमिल गये हैं, उनमे शिकार शब्द भी है अतएव हम इसी शब्द का प्रयोग करेंगे।

प्राचीन समय से ही क्षत्रियो के अनेक कर्तव्यों मे शिकार खेलना एक प्रमुख कर्तव्य माना गया है, इसलिये कि उनका उत्तरदायित्व उन दिनो अपने देश की रक्षा करना था। स्वदेश की रक्षा मे युद्ध अनिवार्य था अतएव क्षत्रियों को सदैव वीर वृत्ति को जागृत रखना पडता था। वीर वृत्ति को जागृत रखने के हेतु मानव मे हिंसक प्रवृत्तियों का होना अति आवश्यक होने से शिकार की प्रथा का प्रचलन किया गया होगा, ऐसा हमारा अनुमान है। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि धर्म के तत्वो मे जीव हिंसा पाप होने पर भी क्षत्रियों के कर्तव्यो मे शिकार को प्रमुख स्थान दिया गया है।

वैसे तो सभी क्षत्रिय, राजा महाराजा शिकार खेलते आये हैं किन्तु मेवाड के स्वामी महाराणा फतहसिंह जिस भव्यरूप मे शिकार खेलने का आयोजन करते थे, वह अभूतपूर्व है। उसके रूप की झाकी नीचे अंकित की जाती है।

प्रतिवर्ष शिकार का सूत्रपात करने के पूर्व सर्वप्रथम मार्गशीर्ष मास मे मुहूर्त की शिकार खेली जाती थी। प्रचलित परिपाटी के अनुसार मेवाड के अधीनस्थ सभी सामंत विजयादशमी के पूर्व ही उदयपुर मे आजाते थे। शिकार का मुहूर्त मार्गशीर्ष मास की प्रतिपदा से लगाकर तृतीया के बीच किसी तिथि को निश्चित् किया जाता। मुहूर्त का दिन निश्चित् होने ही उस दिन प्रभात मे महाराणा हरे रग का एक एक रूमाल जो डेढ हाथ लम्बा चौडा होता था अपने

सेवक छड़ीदार द्वारा राजाओं के तथा सोलह सामन्तों के यहां भेजते थे। राजा और सामन्त उक्त रुमाल को लेकर उस सेवक को पांच रुपये प्रदान करते थे।

उस दिन महाराणा की ओर से भोज (गोठ) का प्रबन्ध होता और राजा, सोलह सामन्त और जागीरदार निमंत्रित किये जाते। उस दिन हरे रंग की अथवा शिकार के समय पहनी जाने वाली पोषाक पहिनना अनिवार्य होने से उसे पहिनकर सभी निमंत्रित सामन्त, उमराव आदि महलों मे ठीक दस बजे पहुँच जाते। स्वयम् महाराणा इस भोज मे सम्मिलित होते। इस भोज मे महाराणा के लिये बाजोट नही लगती थी। भूमि पर प्रथम कपड़ा बिछाया जाता उस पर पत्तल रखी जाती और फिर चादी का थाल रखा जाता। सभी सामन्त आदि व्यक्ति पत्तलों पर परोसा हुआ भोजन ग्रहण करते।

केवल मात्र बनेड़ा के राजा इस भोज में सम्मिलित नही होते थे। कारण यह था कि उन्हें सदा से महाराणा के साथ एक ही थाल में भोजन करने का सम्मान प्राप्त था, जो ऐसे सार्वजनिक भोज मे उपयुक्त नही था।

भोजन के पश्चात् महाराणा स्वयम् अपने हाथों से समस्त सामन्तों को पुष्पहार प्रदान करते। इसके पश्चात् महाराणा और अधीनस्थ राजा, सोलह सामन्त तथा बत्तीस उमराव और सभी जागीदार अपने-अपने घोडों पर बैठकर मुहूर्त की शिकार खेलने अरण्य की ओर चल पड़ते। महाराणा के चलते ही तोपें दागी जाती। आगे रण कंकण बाजा तथा अन्य बैन्ड शिकार के समय बजाये जाने वाला राग बजाते हुवे चल पड़ते।

महाराणा के साथ सम्पूर्ण लवाजमे के साथ एक सैनिक टुकड़ी, अनेक घोड़े तथा कई हाथी होते थे। हांका करने वाले पांच सौ भील भी साथ चलते, इनमे तीन सौ भील स्थायी नौकरी मे होते और दो सौ अस्थायीरूप से शिकार के दौरे के समय नियुक्त किये जाते। महाराणा के साथ के इस जन समूह के अतिरिक्त समस्त सामन्तों, राजाओं के साथ भी उनके स्वीकृत लवाजमे, के साथ सौ डेढ सौ सेवक आदि तथा हाथी घोड़े भी होते थे। महाराणा के साथ आठ दस मोटरें भी होती थी। इस प्रकार सहस्रों मनुष्यों का, अनेक चतुष्पादों का तथा मोटरो का यह सागर जब अरण्य की ओर उमड़ता हुआ चल पड़ता तब एक अपूर्व दृश्य उपस्थित हो जाता। वन मे पहुँच कर हाथी, घोडे, ऊंट और मोटरों को घेरे के रूप में वर्तुलाकार खड़ा किया जाता, जिसे तोडकर वन्य पशु बाहर नही जा पाते और महाराणा के सम्मुख आ जाते तथा शिकार हो जाती।

मुहूर्त की शिकार विशेषरूप से सूअर की होती थी। उस दिन महाराणा का आदेश होता था कि जिस सामन्त के सामने शिकार का पशु पहुँच जावे, वह उसकी शिकार करे कोई प्रतिबन्ध नही था, हांका किया जाता सामन्त सुयोग्य स्थानों को चुनकर बैठ जाते और घात में आये हुवे जंगली पशु सूअर आदि की शिकार करते।

शिकार होने पर सामन्त लोग महाराणा को 'नजर-नौछावर' करते, महाराणा महलों मे आजाते और सामन्त अपने-अपने निवास स्थान पर चले जाते।

दूसरे दिन महाराणा शिकार के दौरे पर प्रस्थान करते। यह दौरा चार माम का होता था। शिकार के प्रमुख स्थान जयसमुद्र, नाहर मगरा, चित्तौडगढ तथा कुम्भलगढ थे। ठड के दिनों मे नाहर मगरा तथा जय समुद्र इन दो स्थानो मे तथा गर्मियो मे चित्तौडगढ तथा कुम्भलगढ मे शिकार का शिविर होता था। इन स्थानो पर अनेक शिकारगृह बने हुवे है। केवल जयसमुद्र मे बामठ शिकारगृह हैं, क्योंकि जयसमुद्र का घेरा १०८ मील का है। लम्बाई सात मील और चौडाई चार मील है। शिकारगृहो मे महाराणा को बैठने के लिये चूने पत्थर के घर बने हुने है, जिन्हे ओदी अथवा मूल कहते हैं।

शिकारगृहो के आस पास के अरण्य मे कौन कौन से वन्य पशु हैं, इसका पता लगाने के लिये वर्षा काल के समाप्ति पर शिकारगृहो के चारो ओर तथा वहा के मार्गों पर बारीक नरम मिट्टी फैला देते। उसे इस प्रकार बना देते कि उन पर चलने वाले वन्य पशुओं के पैरों के चिह्न उभर जावे, और वहा का चौकीदार उन्हे देख लेवे। चौकीदार का नित्यप्रति कर्तव्य था कि प्रात उठने ही वह उन चिन्हा को देखे, और हेलोगाफ[1] द्वारा महाराणा की ओर साकेतिक सूचना भेजे कि उस स्थान पर कौन कौन से वन्य पशु हैं। शेर, अधवेसरा, सूअर, साभर, चीतल, रीछ, आदि कितने कितने हैं और कितने वडे हैं। यह सूचना दिन के दस बजे के पूर्व महाराणा के निजी कार्यालय मे भेजी जाती। वहा का अधिकारी उन संकेतों को समझकर नोट कर लेता और नियत फार्म पर उन्हे लिखकर भोजन के ममय महाराणा के सम्मुख फार्म प्रस्तुत कर निवेदन करता। उमी समय महाराणा आदेश प्रदान करते कि आज अमुक स्थान पर शिकार होगी। तत्काल पाच-छ सौ हाके वाले रवाना हो जाते, वन घेर लिया जाता। महाराणा, प्रत्येक पदाधिकारी को तथा सामन्त को बैठने के स्थान का निर्देश देते, वह वहा जाकर बैठ जाते और शिकार खेलते। दोनो राजा तथा सोलह सामन्तों को यह अनिवार्य नही था कि वह प्रतिदिन शिकार के लिये जावे, जिस दिन उनकी इच्छा होती उम दिन वह जाते किन्तु शिकार के लिये नियुक्त सरकारी पदाधिकारियो को तथा छोटे जागीर-दारों को तो नित्य शिकार मे सम्मिलित होना ही पड़ता था।

उपरोक्त व्यवस्था पहाडो मे की जाने वाली शिकार के सम्बन्ध मे है। जब शिकार का आयोजन समतल भूमि के अरण्य मे होता तब पशुओं को घेरने के लिये कनातो का उपयोग किया जाता। यह कनाते आठ हजार हाथ लम्बी होती थी और उनके कई टुकडे होने थे, जिन्हे जोडकर घेरे मे लगाया जाना। बीच मे एक स्थान खुला छोडा जाता, उमके सामने शिकारी को बैठने के लिये आठ दस हाथ ऊचे स्थान बनाये जाते। जिन पर महाराणा और सामन्त अलग अलग बैठने थे। जिस शिकारी के सामने शिकार आता, वही उसे मारता था।

जिस स्थान पर महाराणा और उनके सामन्त सेवको का पडाव होना था वहा मानो एक नया नगर बस जाता, क्योकि स्वयम् महाराणा के साथ उनके पदाधिकारी, सैनिक, सेवक, हाके वाले छ सौ भील इस प्रकार कम से कम हजार, दो हजार जन समूह होता था। महाराणा

१—हेलोग्राफ, एक काच का यंत्र है, जिसमें सूर्य का प्रकाश लेकर अपने संदेश संकेतों द्वारा प्रकट करके जतला दिये जाते थे। एक प्रकार से यह सांकेतिक भाषा है।

के साथ जाने वाले राजा, सोलह सामन्त, बत्तीस सरदार व तीन सौ छोटे जागीरदार जाते थे। इनमे से किसी के साथ सौ, किसी के साथ दो सौ सेवक सैनिक आदि होते ही थे। अतएव अनुमानतः उस पड़ाव में कम से कम तीन हजार मनुष्यों का समूह हो जाता था। जिनके रहने की व्यवस्था उनके अपने-अपने डेरे छोलदारियों मे होती थी। उनके साथ भी घोड़े, हाथी, भारवाहक ऊंट आदि होते ही थे। इनके अतिरिक्त महाराणा और सामन्तो की मोटरें होती थीं सो अलग। नव निर्मित इस अस्थायी नगर में बाजार लग जाता जिसमें परचूनी, कपड़ा आदि की दूकानें होती थी।

एक बार उदयपुर में प्लेग पड़ा उस वर्ष इस शिकार प्रयास मे महाराणा के साथ पांच हजार व्यक्ति थे।

महाराणा जब उदयपुर मे होते तब प्रतिदिन १५० मनुष्यों के लिये भोजन बनता था। उदयपुर में उपस्थित सामन्तों को भी प्रतिदिन इस भोज मे सम्मिलित होने का निमंत्रण रहता था। राजाओं की तथा सोलह सामन्तों की इच्छा होती तो भोज में सम्मिलित होते। शेष सरदार और छोटे जागीरदारों को नित्य भोज में सम्मिलित होना ही पड़ता था। शिकार के दौरे के समय ३०० से ५०० मनुष्यों का भोजन नित्य बनता था।

महाराणा का एक नियम यह था कि जब वह बाहर प्रस्थान करते तब मार्ग मे खड़ी रहने वाली स्त्रियों को प्रति स्त्री एक-एक आना प्रदान करते थे। इस परिपाटी का ज्ञान होने पर सैंकडो स्त्रियां कतार बांधकर मार्ग में खड़ी हो जाती थी। महाराणा सभी को एक-एक आना वितरण करते थे। मार्ग मे मिलने वाले अंधे, लूले, लंगडे भिखारियों को एक-एक रुपया प्रदान करते थे। जब किसी शिकार में बड़ा हांका किया जाता तब आस पास के ग्रामों से दो तीन हजार मनुष्यों को बुलाया जाता, महाराणा उन्हें भी एक-एक रुपया प्रदान करते थे।

परिशिष्ट क्रमांक ६

बनेड़ा राज्य के भाई, जागीरदार और भोमिये जो राज्य की सेवा करते थे:—

भाई

बनेड़ा राज्य के संस्थापक राजा भीमसिंह (प्रथम) के पाटवी वंश के अतिरिक्त निम्नांकित वंशज और विद्यमान है:—

परगना बड़नगर (मालवा) के ग्राम अमला में राजेन्द्रसिंह, बरडया में प्रेमचन्द्रसिंह तथा खेडावदा मे दिलीपसिंह विद्यमान है।

राजा सरदारसिंह के वंशज कालूसिंह गोपालपुरा में विद्यमान है, इनके पूर्ववर्ती पाटवी वंश को महाराणा उदयपुर की ओर से ग्राम रूपपुरा तथा उनके छोटे पुत्र को पछोरिया खेड़ा मिला था। जिनके वंशज वहां विद्यमान है।

राजा रायसिंह के वंश मे ग्राम कमालपुरा मे गंगासिंह तथा ग्राम किशनपुरा में भूपालसिंह विद्यमान है।

राजा भीमसिंह (द्वितीय) के वंशज ग्राम जोरावरपुरा मे शिवदानसिंह तथा ग्राम ससवारिया मे नाहरसिंह विद्यमान हैं ।

(इनकी बैठक राज सभा मे दाहिनी ओर सामने है)

जागीरदार

१ ग्राम बबराणा के शक्तावत, जिनकी वार्षिक आय ५००० रुपये थी । इनके वश मे सूरतसिंह विद्यमान है ।

२ ग्राम लाम्वा के कानावत, जिनकी वार्षिक आय ३००० रुपये थी । इनके वंश मे तख्तसिंह विद्यमान हैं ।

३ ग्राम चचलाणिया के राणावत, जिनकी वार्षिक आय २००० रुपये थी । इनके वंश मे मानसिंह विद्यमान हैं ।

४ ग्राम हरपुरा के कानावत, इनकी वार्षिक आय १५०० रुपये थी । इनके वश मे चावडसिंह विद्यमान हैं ।

५ ग्राम पालसा के कानावत, इनकी वार्षिक आय १००० रुपये थी । इनके वंश मे सिलेसिंह विद्यमान हैं ।

६ ग्राम हाथीपुरा के राणावत, इनकी वार्षिक आय १००० रुपये थी । इनके वंश मे अजीतसिंह विद्यमान हैं ।

(इन जागीरदार की बैठक राज सभा मे दाहिनी ओर बगल मे थी)

७ ग्राम डारला के राठौड, इनकी वार्षिक आय १५००० रुपये थी । इनके वश मे उम्मेदसिंह विद्यमान हैं ।

८ ग्राम कूडिया के जोधा, इनकी वार्षिक आय १२००० रुपये थी । इनके वश मे उम्मेदसिंह विद्यमान हैं ।

९ ग्राम उपरेडा के कानावत, इनकी वार्षिक आय ६००० रुपये थी । इनके वश मे माधोसिंह विद्यमान हैं ।

१० ग्राम बलदरखा के राठौड, इनकी वार्षिक आय ४००० रुपये थी । इनके वश मे शम्भूसिंह विद्यमान हैं ।

११ ग्राम बामणया के जोधा, इनकी वार्षिक आय ३००० रुपये थी । इनके वश मे उंकारसिंह विद्यमान हैं ।

(इन जागीरदारों की बैठक राज सभा मे बाईं ओर है)

१२ पुरोहित उम्मेदराम को ग्राम नाथुदिया माफी की जागीर मे मिला था। वार्षिक आय १००० रुपये थी । इस समय मनोहरलाल विद्यमान है । इनकी बैठक राज सभा मे सिंहासन के पास दाहिनी ओर है ।

१३. रिसालदार, कासूखां को ग्राम सरदारपुरा जागीर में मिला था। इनकी वार्षिक आय १००० रुपये थी। इस समय रिसालदार मानूखां विद्यमान हैं।

(राज सभा में इनकी बैठक सामने है।)

१४. बारेठ मेहतावसिंह को ग्राम गीड़िया जागीर में मिला था। वार्षिक आय १५०० रुपये थी। इस समय देवीदान विद्यमान हैं। राज सभा में इनकी बैठक सामने है।

१५. कायमखानी वादूखां को ग्राम छोटा निम्बाहेड़ा जागीर मे मिला था। आमदनी ८०० रुपये थी। इस समय नाथूखां विद्यमान है। इनकी बैठक राजसभा में सामने है।

(उपरोक्त सभी सामन्त ताजिमी हैं)

१६. ग्राम मण्डी महन्तों को जागीर (माफी) मे दिया गया था, वार्षिक आय ५०० रुपये थी।

१७. ग्राम कीलपुरा कांकरोली श्रीजी को माफी की जागीर मे दिया गया था। आय १५०० रुपये वार्षिक थी।

इनके अतिरिक्त बनेड़ा राज्य के वंशजों को बीकानेर और जयपुर राज्य से भी जागीरें मिली थी, क्योंकि बनेड़ा के राजाओं के वहां विवाह सम्बन्ध हुवे थे। बीकानेर राज्य का ग्राम पान्डुसर जिन्हें जागीर मे मिला था, उनके वंश में सुलतानसिंह विद्यमान हैं तथा ग्राम नया गांव जिन्हे जागीर मे मिला था उनके वंश मे जीवनसिंह विद्यमान हैं। जयपुर राज्य से ग्राम गणेशपुरा और ग्राम हांवड़िया जिन्हें जागीर मे मिला था, उनके वंश मे चन्द्रसिंह विद्यमान है। उसी प्रकार ग्राम शिवपुरिया जिन्हें जागीर में मिला था, उनके वंश मे गंगासिंह विद्यमान हैं।

भौमिये

निम्नांकित ग्रामों में बनेड़ा राज्य की ओर से भौम दी गई थी:—

क्रमांक	नाम ग्राम	भौमिया की जाति	भौम की भूमि बीघों में
१.	लुलांस	१ कानावत	५००
		२ किशनावत	२००
२.	सरसड़ी	१ वैरागी	१००
		२ किशनावत	१००
३.	हटून्दी	कानावत	२००
४.	बड़ी लाम्बिया	चूण्डावत	२५०
५.	बड़ा साल्या	भाण्डावत	३००
६.	छोटी लाम्बिया	राठौड़	१५०
७.	अकबरपुरा	कायमखानी	५००
८.	लोड़ा महुआ	शक्तावत	२५०
९.	खेड़लिया	राणावत	१००

१०	लाप्या	बल्ला	१२५
११	कमालपुरा	१ शेख	१००
		२ पठान	१००
१२	कुवार	राणावत	५०
१३	कंकोल्या	बल्ला	१५०
१४	झातल	जोधा	५००
१५	डगास	जोधा	२००
१६	छोटा निम्बाहेडा	कानावत	१००
१७	सुरतानगढ	पुवार	४००
१८	उदल्यास	राणावत	५००
१९	कोडूलाई	गहलोत	५०
२०	मेघरास	कायमखानी	२००
२१	मूमी	१ पुवार भौमिये ४ प्रत्येक को १०० कुल ४००	
		२ जैतमाल भौमिये ३ प्रत्येक को १०० कुल ३००	

भौमिये इस प्रदत्त भौम के बदले मे सेवा चाकरी करते थे। ग्राम की रक्षा करना इनका प्रमुख कर्तव्य था। राज्य की आज्ञा होने पर कार्यवश दूसरे स्थान पर भी भेजे जाते थे, तब इन्हे राज्य की ओर से, भोजन, मार्गव्यय आदि दिये जाते थे।

परिशिष्ट क्रमाक १०

अक्षय नीति सुधारक ग्रंथ

राजा अक्षयसिंह ने अक्षय नीति सुधारक ग्रथ के सुभाषितो का चयन करते समय यह नही लिखा था कि जो श्लोक इसमे सग्रहित किये गये है, उनका संकलन किन ग्रथो से किया गया है। इस अभाव से प्रेरित होकर अलवर नरेश महाराजा जयसिंह ने एक विद्वान संस्कृतज्ञ पंडित को बनेडा भेजा, उसने परिश्रमपूर्वक शोध किया तो निम्नाकित ग्रथो से उक्त पुस्तक मे श्लोको का सग्रह किया गया है —

१ अत्रिसंहिता २ कठोपनिषत ३ कामन्दकीय नीति ४ गर्ग संहिता ५ गीता ६ चर्या चन्द्रोदय ७ चाणक्य नीति दर्पणम् ८ ज्योतिर्विदा भरणम् ९ पंचतंत्रम् (पाक शास्त्रम्) १० प्रबोध चान्द्रिका ११ भर्तृहर शतकम् १२ भागवतम् १३ भारतशातिपर्व १४ भारत सभापर्व १५ भोज प्रबंध १६ मनुस्मृति १७ माघ काव्यम् १८ माधव निदानम् दात्यय प्रकरणम् १९ याज्ञवल्क्य स्मृति २० लीलावती २१ बाल्मीकि रामायणम् २२ शुक्रनीति २३ श्वेताश्वतरोपनिषत् २४ सुभाषितरत्न भाण्डागारम् २५ हितोपदेश (हय लीलावती)

परिशिष्ट क्रमांक ११

राजाधिराज ने उन समस्त स्थानों पर शिलालेख लगवाये जिन भवनों आदि को उन्होंने तथा उनके पूर्वजों ने बनेड़ा नगर मे और बनेड़ा राज्य के अन्य स्थानों पर बनवाया था। उन शिला लेखों मे संक्षेप में लिखे विवरण को पढ़कर उक्त स्थानो की जानकारी दर्शक को हो जाती है।

उन्होंने अपने पूर्वज महाराणा राजसिंह तथा उनके पुत्र राजा भीमसिंह से लगाकर स्वयम् के राज्य काल तक का संक्षिप्त इतिहास लिखवाकर नो शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण करवाया और उन्हें राय आंगन की भीतों मे जडवाया है।

जिन स्थानों पर शिलालेख लगवाये उनकी सूची निम्नांकित है:—

(१) दुर्ग बना उसके सम्वतादि (२) राजपुर की नीव लगी वहा (३) बादलमहल (४) भीम विलास (५) हमीर निवास (६) अमर निवास पश्चिमी भाग (७) पूर्वी भाग (८) सरदार निवास (९) राय आंगन (पनरा चौक्या) (१०) गोविन्द निवास (११) सूर्यप्रकाश भवन (१२) मित्र निवास (१३) हेमन्त निवास (१४) प्रताप निवास (१५) कृष्ण भवन (१६) अक्षय निवास (१७) दुर्गका पुस्तकालय (१८) दुर्ग की चित्रशाला (१९) मन प्रसन्न भवन (२०) सूर्यपोल द्वार (२१) चन्द्रपोल द्वार (२२) अजमेरी दरवाजा (२३) चार भुजाजी का मन्दिर (२४) श्यामविहारीजी का मन्दिर (२५) मानकुण्ड (२६) बाईजीराज की बावड़ी (२७) अक्षय भवन (२८) कन्या पाठशाला (२९) अक्षय आदर्श उच्च विद्यालय (३०) अक्षय चिकित्सालय तथा सूर्यकुमारी रुग्णालय (३१) १ धर्मशाला २ धर्मशाला (३२) उपदुर्ग (३३) पुरातन भवन (३४) उदयसागर (३५) मेहतावसागर (३६) लूलास का गोविन्दसागर (३७) मूमी का उदयसागर (३८) गोविन्द भवन और बाग (३९) गोपाल निवास (हवाला)

निम्नांकित छत्रियों पर तथा चौतरों पर शिलालेख लगवाये।

(नगर में)

(१) राजा भीमसिंह (प्रथम) (२) राज़ा सूर्यमल (३) राजा सुरताणसिंह (चौतरा)

(नगर के बाहर)

(१) राजा सरदारसिंह (२) राजा रायसिंह (३) राजा हमीरसिंह (४) राजा भीमसिंह (द्वितीय) (४) राजा उदयसिंह (५) राजा संग्रामसिंह (६) राजा गोविन्दसिंह (७) राजा अक्षयसिंह (८) काका रामसिंह (चौतरा) (९) राजकुमार प्रतापसिंह (चौतरा) (१०) भवर समरसिंह (चौतरा)

बनेड़ा के अतिरिक्त जहां भवन बनवाकर शिलालेख लगवाये उनकी सूची:—

(१) मान भवन उदयपुर (२) गोपालविहारीजी का मन्दिर वृन्दावन उ० प्र०

उपरोक्त शिलालेखों के अतिरिक्त दुर्ग में दो शिलालेख और लगवाये।

(१) राय आंगन मे—यह शिलालेख सम्बधियो की सहायता करने के सम्बध मे है।
(२) भीम स्मारक न्यास को दुर्ग दिया उस सम्बन्ध मे है।